आपका शोध-प्रबन्ध निसकोच विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

—सुमित्रानन्दन पन्त

कूर्माचलवासियो का राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास मे कितना योगदान रहा है, इसकी जानकारी प्राय. हिन्दी-प्रेमियों को भी नही है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से इस अभाव की पूर्ति तो होगी ही, साथ ही यह कूर्माचल के हिन्दी-साहित्य के इतिहास के रूप मे एक महत्त्वपूर्ण कृति सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—कृष्णचन्द्र पन्त
मत्री, वित्त मत्रालय, भारत

'This is a work of its own kind and is the product of a scholar who has been dedicated to the cause of Hindi for the last several years. But in all humility he regards it as the beginning of his study.

—P. N. DHIR
Deputy Secretary
to the Govt. of India
Ministry of Home Affairs,
NEW DELHI

शोध-कृति की सार्थकता इस बात पर निर्भर होती है कि उसके माध्यम से हम सम्बद्ध विषय का एक सम्पूर्ण परिवेश में आकलन कर पाते है। इस दृष्टि से डॉ० भगतसिह का प्रस्तुत शोधग्रन्थ सार्थक तो है ही, सन्दर्भ-ग्रन्थ की भूमिका भी प्रतिपादित करता है। इतिहास और काल से ढँकी हुई न जाने कितनी साहित्य-प्रतिभाओं को हम डॉ० भगतसिह की इस शोध-कृति के माध्यम से पहली बार जान पाते है और यह सभी विद्वान् जानते है कि साहित्य के इतिहास में सिर्फ नीव के पत्थर बनकर रह जाने वाली प्रतिभाओं का योगदान भी कितना महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय होता है।

हिन्दी साहित्य के भविष्य के शोधकर्ताओ के लिए इस शोध-प्रबन्ध की उपादेयता और प्रामाणिकता स्वयसिद्ध है।

—विश्म्भरदत्त भट्ट
शिक्षा-निदेशक, दिल्ली

हिन्दी साहित्य की वृद्धि मे कूर्माचल का क्या योगदान था, आपने अपने शोध-कार्य द्वारा प्रकाश मे लाकर एक बड़ी कमी की पूर्ति की है। कूर्माचल के नवीन लेखको को इसके अध्ययन से केवल प्रोत्साहन ही नही वरन् बड़ी प्रेरणा भी मिलेगी। साहित्य-प्रेमियो को भी एक अप्राप्य सामग्री एक स्थान पर आपके सागोपाग विवेचन द्वारा उपलब्ध होगी। आपके इस स्तुत्य कार्य के लिये कूर्माचल के निवासी बड़े आभारी रहगे।

—शुकदेव पाडे
मत्री, बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट,
पिलानी

कुमाऊँ अचल प्राकृतिक सुषमा का विशिष्ट आगार रहा है और वहाँ साहित्य का सृजन आदिकाल से होता रहा। वहाँ के कतिपय साहित्यकार विस्मृति के अतल तल मे लुप्त हो गये और कुछ ही प्रकाश मे आ सके। इन साहित्यकारों को जनता के सम्मुख रखने का श्रेय इस दिशा मे शोध करने वाले विद्वानों का है। डॉ० भगतसिह ने कुमाऊँ अंचल मे हुए खड़ी-बोली के प्रथम कवि 'गुमानी' पन्त से लेकर आधुनिक साहित्यकारो तक का विवेचनात्मक परिचय देकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनके इस प्रयास से हिन्दी का पाठक अनेक रूपों मे लाभान्वित होगा।

—विष्णुदत्त पन्त
उपशिक्षा-निदेशक, दिल्ली प्रशासन,
दिल्ली

हिन्दी साहित्य को कूर्मांचल की देन

अनुक्रमणिका

पूर्व-पीठिका

खण्ड १ : कूर्माचल के कवि

खण्ड २ : (क) कूर्माचल के उपन्यासकार

खण्ड २ : (ख) कूर्मांचल के कहानीकार

खण्ड ३ : कूर्मांचल के नाटककार

खण्ड ४ : कूर्मांचल के निबन्धकार और आलोचक

खण्ड ५ : विविध

परिशिष्ट

पूर्व-पीठिका

हिन्दी साहित्य

को

कूर्मांचल की देन

डॉ० भगतसिंह

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
जवाहरनगर, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण :
अक्तूबर, १९६७

मूल्य : तीस रुपये

प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
चन्द्रलोक, जवाहरनगर, दिल्ली-७
बिक्री-केन्द्र : नई सड़क, दिल्ली-६
मुद्रक : पुरी प्रिंटर्स, नई दिल्ली-५

कीर्तिशेष गुरुपत्नी श्रीमती गोविन्दी पन्त
की स्नेहमयी स्मृति को

शुभाशंसा

प्रकृति का विशेष लाड़ला हिमाचल की गोद में बसा हुआ कूर्मांचल न जाने किस अज्ञातकाल से दुर्गम देवभूमि और साधना-भूमि के रूप में प्रसिद्ध रहा है। भगवती सरस्वती की इस पर सतत कृपा रही है और आदि-शक्ति हेमवती दुर्गा का यह उद्भवस्थल न जाने किस युग से देश का सजग प्रहरी रहा है, पर लक्ष्मी की कृपा-कोर से वंचित होने के कारण प्रचाराभाव से यहाँ की विद्वत्परम्परा से शेष जगत् कम ही परिचित रहा है। महामहोपाध्याय षट्शास्त्री पंडित नित्यानन्द पन्त, पं० केशवदत्त शास्त्री, पं० तारादत्त पन्त, पं० देवीदत्त जोशी आदि अनेक विद्वानों ने संस्कृत वाङ्मय की बहुमुखी श्रीवृद्धि में जो सहयोग दिया है उससे कितने महानुभाव परिचित हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा कूर्मांचल के इन मौन साधकों एवं साहित्य-स्रष्टाओं को एक सूत्र में पिरोने का यह प्रथम एवं मौलिक प्रयास इस दृष्टि से सर्वथा स्तुत्य है—यद्यपि समय की गतिशीलता के कारण इस ग्रन्थ से पूर्णता की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

ग्रन्थारंभ में कूर्मांचल की भौगोलिक रूपरेखा, ऐतिहासिक परिचय और साहित्यिक परम्परा की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित पूर्वपीठिका है। भगवान् विष्णु के 'कूर्म' रूप में अवतरित होने के कारण प्रारम्भ में यहाँ के स्थान-विशेष को 'कूर्मांचल' कहते थे। यही अभिधान क्रमशः व्यापक होकर आज के अल्मोड़ा, पिठौरागढ़ और नैनीताल जिलों के लिए व्यवहृत होने लगा। 'कुमाऊँ' या 'कुमूँ' कूर्मांचल के अपभ्रष्ट रूप हैं। यह सिद्धान्त प्रमाण-पुष्ट होने से निर्विवाद है। अतएव 'कमाऊ' (कमाने वाला), कुंभकरण की खोपड़ी अथवा कूर्म नामक राजा विशेष से इस शब्द को व्युत्पन्न करने का प्रयास उपहासास्पद है। इन कल्पना-प्रसूत मतों को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहिए। ऐतिहासिक परम्परा में महिषासुर-मर्दिनी दुर्गा को नहीं भुलाया जा सकता। सुदूर प्रागैतिहासिक काल में जब देश की शक्ति विच्छिन्न होने के कारण आर्यावर्त असुरों द्वारा पद-दलित हो रहा था तब उन बिखरी हुई शक्तियों के संघ की प्रतीक दुर्गा ने महिषासुर का मर्दन कर देश को पुनः एकता के सूत्र में बाँधा था और जब हिमालय के उत्तर से अपने सेनानी चण्ड और मुण्ड के अधीन अपनी रक्तबीज की संतान-सी विशाल और दुर्धर्ष सेना को लेकर शुम्भ और निशुम्भ भारत पर चढ़ आये थे तब भी इसी महाशक्ति ने उनका संहार कर हिमाचल की अभेद्यता को सिद्ध किया था। अल्मोड़ा के उत्तर में 'शुम्भगढ़' आज भी इस अविस्मरणीय

घटना की स्मृति को जीवित बनाए हुए है। यह प्रसंग लेखक का विवेच्य विषय तो नहीं हो सकता था, पर संक्षेप में इसका संकेत कर देना अच्छा ही होता। साहित्यिक परम्परा भी अति संक्षिप्त हो गई है। संस्कृत-परम्परा के विद्वानों की प्रमुख कृतियों का उल्लेख शोध-प्रबन्ध के रूप में अप्रासंगिक होने पर भी ग्रन्थ के रूप में उपादेय ही होता।

मुख्य विषय पाँच खण्डों में विभक्त है और प्रत्येक खण्ड में वाङ्मय की पृथक्-पृथक् विधाओं का समीक्षात्मक परिचय है। कविता के क्षेत्र में राष्ट्रभाषा (खड़ीबोली) हिन्दी को लोकरत्न पन्त 'गुमानी' के रूप में प्रथम कवि देने का श्रेय कूर्माचल को ही है। उनका रचनाकाल सन् १८१० के आस-पास है। गोरखा राज्य और अंग्रेजी राज्य दोनों में कूर्मांचल की जो दुर्दशा हुई, उसका यथार्थ चित्रण उनकी कविता में पाया जाता है। लेखक के अनुसार पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना का शंख-निनाद करने वाले हिन्दी के सर्वप्रथम राष्ट्रीय कवि 'गुमानी' भारतेन्दु से बहुत पूर्व जन्म ले चुके थे। कूर्माचल में यह राष्ट्रीय धारा लोकभाषा 'कुमाऊँनी' के साथ-साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी में निरन्तर प्रवहमान रही। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के युग में अनेक कवियों ने राष्ट्रीय-भावना को लेकर कविताएँ रचीं। प्रकाशन-सुविधा के अभाव में अनेक कविताएँ कूर्मांचल के प्रथम वृत्तपत्र 'अल्मोड़ा-अखबार' का पंजिकाओं के पृष्ठों में ही बन्दिनी बनकर रह गईं। कुमाऊँनी भाषा के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि गौरीदत्त पांडे 'गौर्दा' की हिन्दी रचनाओं का एक संग्रह हाल ही में प्रकाशित हुआ है और एक प्रकाशन के लिए तैयार है। अनेक कवियों की कृतियों को प्रकाशन की किरणें देखने का सुयोग तक नहीं मिला। छायावाद-युग के पुरस्कर्ता श्री सुमित्रानन्दन पन्त कवित्रयी के अग्रणी माने जाते हैं। लगभग आधी शती से भिन्न-भिन्न विधाओं में रचना कर निरन्तर हिन्दी-साहित्य की गौरव-वृद्धि करने वालों में इनका नाम प्रथम है। इस प्रसंग में डॉ० भगतसिंह ने प्रमुख कवियों की सन् १९६० तक प्रकाशित कृतियों की पूर्वाग्रहहीन समीक्षा करने के साथ-साथ अज्ञात, अपरिचित और अल्प-परिचित कवियों की कृतियों का भी व्याख्यात्मक परिचय दे दिया है।

द्वितीय खण्ड में उपन्यासकारों और कहानी-लेखकों का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए लेखक ने लक्ष्मीदत्त जोशी के 'जवाकुसुम' उपन्यास (सन् १९०४) से कूर्मांचल में हिन्दी-कथा-साहित्य की परम्परा का प्रारम्भ माना है। गोविन्दवल्लभ पन्त, इलाचन्द्र जोशी, यमुनादत्त वैष्णव, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी और गौरा पंत 'शिवानी' इस युग के सशक्त कथाकारों में गिने जाते हैं। सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, मनः शास्त्रीय एवं आंचलिक सभी प्रकार के उपन्यास-कथा-साहित्य में भी कूर्मांचल की देन नगण्य नहीं कही जा सकती।

कूर्मांचल की रंगभूमि कविता और कथा-साहित्य के लिए जितनी अनुकूल सिद्ध हुई है, नाट्य-कृतियों के लिए उतनी नहीं। फलतः नाटककारों की संख्या अंगुलियों पर ही गिनी जा सकती है। गोविन्दवल्लभ पन्त ही एकमात्र नाटककार दृष्टिगोचर होते हैं, जिनके नाटक साहित्यिक होने के साथ-साथ रंगमंचीय भी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इनके नाटक 'प्रसाद' के समकक्ष नहीं रखे जा सकते, पर प्रसादयुग के नाटककारों में अभिनेय नाटक लिखने वालों में गोविन्दवल्लभ पन्त का नाम अग्रगण्य है। 'वरमाला' अपने ढंग का अपूर्व रंगमंचीय नाटक है। उपयुक्त रंगमंच के अभाव में हिन्दी का नाट्य-साहित्य संख्या की दृष्टि से

पर्याप्त होने पर भी, अभिनेयता की दृष्टि से मराठी और बंगला नाट्य साहित्य से पिछड़ा हुआ है, इसमें संदेह नहीं।

चतुर्थ खण्ड में शोध-ग्रन्थों, निबन्धों और आलोचनात्मक कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत की गई है और पंचम खण्ड में साहित्य की अन्य विधाओं पर रची हुई कृतियों का संक्षिप्त विवेचन है। कूर्मांचल के प्रथम समाचार-पत्र 'अल्मोड़ा-अखबार' का प्रकाशन संवत् १६२८ में हुआ था। हिन्दी के समाचार-पत्रों की परम्परा में 'उदंड मार्तंड' (संवत् १८८३) के पश्चात् यह हिन्दी का दूसरा समाचार-पत्र कहा जा सकता है। उस युग में सभ्य-जगत् के संसर्ग और उसकी सुविधाओं से वंचित दूर दुर्गम पर्वत-प्रदेश से हिन्दी-समाचार-पत्र निकालना एक गौरव की बात है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'अल्मोड़ा अखबार' की भाषा 'उदंड मार्तंड' की अपेक्षा शुद्ध एवं परिष्कृत थी। सन् १६६० तक कूर्मांचल से प्रकाशित अथवा कूर्मांचल-वासियों द्वारा अन्यत्र संचालित लगभग २८ साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं ने कुमाऊँ में राष्ट्रीयता की ज्योति जगाने के साथ-साथ हिन्दी-भाषा के प्रचार एवं प्रसार में प्रशंसनीय योगदान दिया है।

लेखक सन् १६६० की सीमा में बँध गया था। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ में अपूर्णता का आभास आश्चर्यजनक नहीं है। वस्तुतः सन् १६६० के पश्चात् साहित्य की सभी विधाओं में रचना करने वाले कूर्मांचल के साहित्य-स्रष्टाओं में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। पुराने कवियों की पुरानी एवं नवीनतम रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं। नये कवि, नये लेखक, आधुनिकतम शैलियों को लेकर सामने आए हैं। सुमित्रानन्दन पन्त का 'लोकायतन' इस युग की एक श्रेष्ठ काव्यकृति होने पर भी सन् १६६० के पश्चात् प्रकाशित होने के कारण इस ग्रन्थ में स्थान न पा सका। कथा और उपन्यास के क्षेत्र में भी सन् १६६० के पश्चात् पर्याप्त रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं। गौरा पंत 'शिवानी' की सशक्त लेखनी ने आज उन्हें हिन्दी के अग्रगण्य उपन्यासकारों में प्रतिष्ठित कर दिया है, पर उनके सभी उपन्यास सन् १६६० के पश्चात् प्रकाश में आने के कारण इस ग्रन्थ में स्थान न पा सके। राजकीय सेवा में होने के कारण कई कूर्मांचलीय लेखकों की कृतियाँ छद्म नाम से प्रकाशित हुई हैं। कुछ ऐसे भी साहित्यकार हैं जिनकी कृतियाँ, चाहे सुविधा के अभाव के कारण हो या आत्मगोपन की भावना के कारण, प्रकाश में ही नहीं आ पायी हैं। शैलाखोला (अल्मोड़ा) के वयोवृद्ध मौन विद्वान् पं० जीवनचन्द्र जोशी की साहित्यिक कृतियों ने बहुत पहले 'माधुरी' के पृष्ठों को अलंकृत किया था। अब भी उनके पास बहुविध साहित्यिक कृतियों का अमूल्य भंडार जीर्ण-शीर्ण स्थिति में पड़ा हुआ है। प्रकाश की किरणें उन्हें न मिलीं तो हिन्दी जगत् इन पांडित्यपूर्ण कलाकृतियों से वंचित रह जायेगा। कसून (अल्मोड़ा) के स्वर्गीय तारादत्त पांडे के कुमाऊँनी बहुभाषा कोश तथा अन्य साहित्यिक कृतियों की भी यही दशा है। नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस कार्य को हाथ में ले सकें तो उत्तम हो।

ग्रन्थ की अपूर्णता विवशता के कारण है। एक परिशिष्ट द्वारा लेखक ने इस अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। मुझे आशा है कि आगे चल कर हिन्दी-साहित्य की प्रत्येक विधा में पृथक्-पृथक् 'कूर्मांचल की देन' का परिचय देने के इच्छुक लेखकों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय होगा और यह उनके पथ-प्रदर्शक का भी काम कर सकेगा। मेरी शुभाशंसा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का लेखक स्वयं इस लेखन-परम्परा को आगे बढ़ाए।

शोध-प्रबन्ध के रूप में यह ग्रन्थ मेरे ही निर्देशन मे लिखा गया है, अतः इसके सम्बन्ध में अधिक कुछ न कह कर इसकी समालोचना का भार मैं सहृदय पाठकों पर ही छोड़ता हूँ। कूर्मांचल के साहित्य-सेवियों पर लिखा हुआ यह ग्रन्थ हिन्दी-जगत् में आदृत एवं लोकप्रिय होगा। कूर्मांचल की गौरव-वृद्धि में सफल होने में ही इसकी सार्थकता है।

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं।
सो स्रम बादि बालकवि करहीं।।
कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सबकर हित होई।।

लखनऊ
बसंत पंचमी, २०२३ वि०

—मोहनवल्लभ पन्त

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरे पी-एच०डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध का यत्किंचित् परिवर्तित स्वरूप है। कलेवर-वृद्धि के भय से ग्रन्थ में कूर्मांचल के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन विशद् रूप से न कर केवल पूर्व-पीठिका में अत्यन्त संक्षेप में कर दिया गया है।

कूर्मांचल में केवल हिन्दी साहित्य का ही सृजन नहीं हुआ अपितु कुमाऊँनी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा उर्दू साहित्य का सृजन भी समानान्तर रूप से हुआ है। इसका विवेचन 'कूर्मांचल की साहित्यिक परम्परा' में किया गया है।

कूर्मांचल के हिन्दी साहित्यिकों को एक सूत्र में पिरोने का यह प्रथम एवं मौलिक प्रयास है। इसलिए सामग्री एकत्रित करने तथा उसकी प्रामाणिकता आदि कतिपय विवादास्पद एवं पेचीदा प्रश्नों के समाधान के लिए मैंने सम्पूर्ण कूर्मांचल—जिला अल्मोड़ा, नैनीताल और पिठौरागढ़—का विस्तृत भ्रमण किया है। अपने भ्रमणकाल में जिला पुस्तकालयों, जिला गजेटियरों, सार्वजनिक एवं निजी पुस्तकालयों से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सन् १७६० से १९६० ई० तक के साहित्य का सांगोपांग विवेचन है।

प्रथम खण्ड में कूर्मांचल के कवियों की रचनाओं का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कूर्मांचल के प्रथम कवि लोकरत्न पन्त 'गुमानी' को राष्ट्रभाषा हिन्दी के सर्वप्रथम राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने और हिन्दी जगत् के समक्ष लाने का यह प्रथम प्रयास है। 'गुमानी' के परवर्ती कवियों में राष्ट्रीय भावना की जो एक परम्परा चली, उसका भी इसमें विवेचन है।

द्वितीय खण्ड में कूर्मांचल के कथाकारों की कृतियों का विवेचनात्मक अध्ययन है। कूर्मांचल की कथा-साहित्य की परम्परा सन् १९०४ से प्रारम्भ हुई है और इसका सूत्रपात स्वर्गीय लक्ष्मीदत्त जोशी के उपन्यास 'जवाकुसुम' से हुआ है। ४५० पृष्ठों का यह उपन्यास मुरादाबाद के लक्ष्मीनारायण प्रेस में छपा था। इन पंक्तियों के लेखक को मुद्रित प्रति के दर्शनमात्र का सौभाग्य मिल सका। अध्ययन की सुविधा न मिल सकने के कारण उपन्यास के साहित्यिक मूल्यांकन के सम्बन्ध में मौन ही रहना पड़ा। उनका एक और अधूरा उपन्यास उनके सुपुत्र के पास पड़ा है। कूर्मांचलीय कथाकारों से कोई भी

विषय अछूता नहीं रहा है। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, वैज्ञानिक, मनो वैज्ञानिक, प्रतीकात्मक तथा परिहासमूलक सभी प्रकार के उपन्यासों तथा कहानियों का सृजन किया है।

तृतीय खण्ड में नाट्य-साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नाट्य साहित्य की रचना नाममात्र को हो हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कूमाँचल की सरस्वती ने वहाँ के साहित्यिकों के अन्तर्मन में काव्य एवं कथा के ही भाव भरे हैं। कूर्मांचल में रामलीलाभिनय की अति प्राचीन, बहुप्रचलित एवं व्यापक परम्परा है। इसलिए उसके समक्ष अन्य रंगमंच वहाँ के सामाजिकों को आकर्षित न कर सके। सम्भवतः इसीलिए वहाँ के लेखक नाटक लिखने की प्रेरणा कम ही पा सके।

चतुर्थ खण्ड में आलोचना-साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। इसमें शोध-प्रबन्ध भी शामिल किये गये हैं। डॉ० हेमचन्द्र जोशी ने कूमाँचल की बोली का भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण अपने अनेक लेखों द्वारा प्रस्तुत किया है। प० मोहनवल्लभ पन्त कूमाँचल के एकमात्र विद्वान है, जिन्होंने आलोचना के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। बाबू श्यामसुन्दरदास और बाबू गुलाबराय की परम्परा में पन्त जी का 'आलोचनाशास्त्र' तृतीय होते हुए भी मौलिकता एवं विवेचन की दृष्टि से प्रथम ग्रन्थ है। 'रस विमर्श' एक छोटी-सी कृति है पर रस-सिद्धान्त के विभिन्न पक्षों को जितनी सरलता और स्पष्टता से उसमें समझाया गया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। 'भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच' में पन्त जी की मौलिक स्थापनाएँ है जिनका अभी तक खण्डन नहीं किया गया है। डॉ० जगदीशचन्द्र जोशी, डॉ० त्रिलोचन पांडे एवं डॉ० अम्बादत्त पांडे ने विद्वतापूर्ण कृतियों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। अन्त में परिशिष्ट रूप में सन् १९६० के बाद के साहित्य का परिचयात्मक विवरण जोड़कर ग्रन्थ को अद्यतन करने का प्रयत्न किया गया है।

कूमाँचलवासी सरस्वती के वरद्पुत्र कविता, कथा, नाटक तक ही सीमित नहीं रहे, उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं के भंडार की श्रीवृद्धि की है। इसका विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ के पंचम खण्ड में किया गया है। इस खण्ड में जीवन-चरित्र, संस्मरण, इण्टरव्यू, बाल-साहित्य, अनूदित साहित्य तथा कूमाँचल से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है।

कूमाँचलवासी विद्वज्जनों में सदैव आत्मगोपन की भावना रही है। वे सदैव प्रचार, प्रसार एवं विज्ञापन की प्रवृत्ति से दूर रहे हैं। इसीलिए वे प्रकाश में न आ सके। यह एक अकाट्य तथ्य है कि हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में कूमाँचल का महान् योगदान रहा है। आज तक सरस्वती के ऐसे वरद्पुत्रों की कृतियों का सांगोपांग विवेचन अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। इस ग्रन्थ के द्वारा यत्किंचित् इस अभाव की पूर्ति कर कूमाँचल के हिन्दी साहित्यिकों को उनकी रचनाओं सहित प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। इस अंचल सीमा के अन्दर बँधने पर भी मैंने व्यापक दृष्टि से कार्य किया है। राष्ट्रभारती के पूजन में कूमाँचल ने कितने पत्र-पुष्प अर्घ्य समर्पित किये हैं, उनकी गणना मात्र करा सका हूँ।

नई दिल्ली

—भगतसिंह

आभार

शोध-प्रबन्ध का प्रकाशन अपने आप में एक महत्ता रखता है। आज की परिस्थितियों में किसी विशाल परिवेश वाले शोध-प्रबन्ध का प्रकाशन सुलभ नहीं। व्यावसायिक दृष्टि से भी हिन्दी में ऐसे प्रकाशक बहुत नहीं हैं जो इस कार्य के लिए सहर्ष आगे आएं। इस स्थिति में जब लेखक का शोध-प्रबन्ध प्रकाश में आता है तो उसका ध्यान सर्वप्रथम उन व्यक्तियों के प्रति जाता है जिन्होंने इस महत् कार्य में सहयोग दिया हो और तब वह सहज ही कृतज्ञता-ज्ञापन के सर्वप्रथम दायित्व का निर्वाह करता है। इस प्रसंग में मुझे सर्वप्रथम अपने बाल्यावस्था के शिक्षक पूज्यवर पंडित धर्मदत्त काण्डपाल (भूतपूर्व प्रधानाध्यापक), मिडिल स्कूल, मानिला (अल्मोड़ा) का स्मरण हो आता है। उनके प्रति विनम्र श्रद्धा व्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। पूज्य पंडित जी ने मुझे जीवन के प्रभात में विद्यानुराग की ज्योति दी। इसी ज्योति के प्रकाश में मुझे विद्याध्ययन की प्रेरणा मिली और मैं आज इस कार्य को सम्पन्न कर सका।

मैं आदरणीय डॉ० ओमानन्द सारस्वत (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, नलिनी आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलिज, विद्यानगर), स्वर्गीय पं० तारादत्त पांडे (कसून, अल्मोड़ा) के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने सत्परामर्शों से मेरा दुस्तर-मार्ग सरल किया। बन्धुवर डॉ० उपेन्द्र पंत, डॉ० पूनम दईया, भाई हिमांशु जोशी, भाई मस्तराम कपूर ने समय-समय पर मुझे अपना सहयोग दिया। मैं इन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। मेरे प्रिय भानजे प्रेमसिंह एवं चन्द्रसिंह भी इस कार्य में मेरे सहायक हुए। पूज्य मित्रवर श्री पदमसिंह घुघत्याल ने हर परिस्थिति में सदैव मुक्त हृदय से मेरी सहायता की तथा सतत प्रोत्साहन दिया। मैं उनका चिरऋणी हूँ। उन सभी विद्वानों के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी रचनाओं के अध्ययन से मुझे प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की प्रेरणा मिली। इनके अतिरिक्त विषय से सम्बन्धित वरेण्य विचारकों, साहित्यिकों एवं विद्वानों की कृतियों से जो सहायता प्राप्त हुई है उसके लिए भी मैं उनका चिरऋणी रहूंगा। मैं उन सभी व्यक्तियों का भी आभारी हूँ जो इस शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित—प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में सदैव मेरी सहायता करने को प्रस्तुत रहे हैं।

आदरणीय गोपालदा (श्री गोपालदास चक्रवर्ती) ने मुझे उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः दिल्ली आने पर यदि गोपालदा की 'स्नेहल फटकार' मुझे न मिलती तो सम्भवतः हाई स्कूल ही मेरी अन्तिम सीढ़ी होती। माननीय नुटबिहारी चटर्जी ने मुझे सदैव प्रोत्साहित कर मेरे मनोबल को कभी भी दुर्बल नहीं होने दिया। मैं इन दोनों बंगभाषी महानुभावों के आत्मीय स्नेहल व्यवहार से सदा प्रेरणा पाता रहूँगा।

मुझे अपने जीवन-निर्माण में तीन अहिन्दी-भाषी परिवारों का सम्बल मिला। मैं इन सहृदयजनों की आत्मीयता की तुलना नहीं करना चाहता हूँ परन्तु इतना भर कहना चाहता हूँ कि आज से लगभग अठारह वर्ष पहले अपने परदेश-प्रवास की प्रथम वेला में पूज्यवर श्रीयुत् प्रेमनाथ धीर और ममतामयी श्रीमती कैलाश धीर ने मुझ मातृपितृहीन बालक को सम्बल दिया, आश्रय दिया, ममता दी, स्नेह दिया और दिया अपना दुलार-भरा अपनत्व। इनकी सतत प्रेरणा, अनवरत प्रोत्साहन, सहृदयता एवं आत्मीयता के परिणाम-स्वरूप ही मेरी यह मृगतृष्णा साकार हुई। शब्दों की सीमा में इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने की क्षमता मुझमें नहीं और आभार-प्रदर्शन की मैं कामना नहीं करता क्योंकि ये अब मेरे ही आत्मीयजन हैं और अपनों के प्रति आभार प्रकट करना औपचारिकता होती है, दिखावा होता है जिससे मैं सदैव दूर रहा हूँ।

यह मेरा सौभाग्य है कि कूर्मांचल की विद्वत् परम्परा के मूर्धन्य विद्वान् आदरणीय पंडित मोहनवल्लभ पन्त के चरणों की मंगलमय छाया में मुझे ग्रन्थ-रचना का अवसर प्राप्त हुआ। इस कार्य की सम्पन्नता श्रद्धेय गुरुवर के उदार एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का ही परिणाम है। पूज्य गुरुवर के आशीर्वाद ने ही मेरे विचारों को ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान किया है। शब्दों में उनके प्रति आभार प्रदर्शित कर गुरुऋण से उऋण होने की मैं कामना नहीं करता और जिन्होंने गुरुवर के शिष्यों को पुत्रनिविशेष वात्सल्य और माता की ममता प्रदान की और अस्वस्थ होने पर भी निरन्तर सबकी सुविधा का ध्यान रखा, उन ममतामयी गुरुमाता को मैं कैसे भूल सकता हूँ। वस्तुतः उनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से ही मैं विषम परिस्थितियों में भी यह कार्य पूरा कर सका। दुःख है कि इस अकिंचन के प्रयास को वह पुस्तक-रूप में प्रकाशित न देख सकीं। अतः उन्हीं स्वर्गवासिनी गुरुपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती गोविन्दीदेवी पन्त की पुण्य-स्मृति में उनकी प्रथम वार्षिकी के अवसर पर अपनी यह श्रद्धांजलि सविनय साश्रु समर्पित करता हूँ।

अंत में, मैं सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभविद्यानगर का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे पी-एच०डी० उपाधि के इस शोध-प्रबन्ध को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की। श्रीयुत् कन्हैयालाल मलिक के प्रति भी मैं कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ, जिन्होंने मेरे शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन की व्यवस्था की।

—भगतसिंह

कूर्मांचल : एक परिचय

भौगोलिक रूप रेखा

नामकरण—कूर्मांचल के नामकरण के विषय में अनेकों मत हैं परन्तु जनश्रुति के अनुसार कूर्मांचल का नाम 'कूर्मावतार' से हुआ है। कहा जाता है कि "जब विष्णु भगवान का दूसरा अवतार कूर्म अथवा कछुवे का हुआ तो यह अवतार चम्पा नदी के पूर्व कूर्म पर्वत, जिसे कांडा देव या कान देव कहते हैं, मे तीन वर्ष तक खड़ा रहा, जिसके चरण चिह्न एक पत्थर में आजतक भी विद्यमान हैं। तब से इस पर्वत का नाम कूर्मांचल (कूर्म+अञ्चल) हो गया और इसके नाम से इस प्रदेश का नाम भी कूर्मांचल पड़ गया।"[1] कूर्मांचल का नाम आज जन-व्यवहार में कूमूं या कुमाऊं होता है। कुछ लोगों का कथन है कि किसी समय चम्पावत में कूर्मदेव नाम के नरेश राज्य करते थे, उन्ही के नाम पर इस प्रदेश को कूर्मांचल कहते हैं।"[2]

श्री जोधसिंह नेगी के अनुसार कुमाऊं के लोग खेती व धन कमाने में सिद्धहस्त होते हैं। उनकी कमाऊ प्रवृत्ति के कारण ही इस प्रदेश का नाम कुमाऊ पड़ा है।[3] इस प्रदेश के नामकरण के सम्बन्ध में अनेकों कल्पनाएं की जाती हैं। इस प्रदेश [illegible]। कूर्म नरेश, कमाऊ प्रवृत्ति, कालू तड़ागी के नाम पर या किसी [illegible] आधारित होना अधिक जन सम्मत नहीं है। इस प्रदेश का [illegible] नाम पर होना उचित ठहरता है। आजकल प्रयुक्त नाम कुमाऊं कूर्मांचल का तद्भव रूप है।

सीमा व क्षेत्रफल, जनसंख्या, शिक्षा, व्यवसाय

राजकीय प्रशासन की दृष्टि से कुमाऊं कमिश्नरी के अन्तर्गत सात ज़िले आते हैं—(१) अल्मोड़ा (२) नैनीताल, (३) गढ़वाल (४) टिहरी गढ़वाल (५) पिठौरागढ़ (६) उत्तरकाशी (७) चमोली। सामान्य जनता के व्यवहार में कुमाऊं शब्द केवल अल्मोड़ा, नैनीताल और पिठौरागढ़ के लिए प्रयोग होता है। मैंने अपने शोध प्रबन्ध के लिए "कुमाऊंनी भाषी" क्षेत्र को ही "कूर्मांचल" स्वीकार किया है। इसके अन्तर्गत जिला अल्मोड़ा, तराई भावर के किच्छा और थारू को छोड़कर शेष जिला नैनीताल तथा धारचूला खंड को छोड़कर शेष जिला पिठौरागढ़ सम्मिलित है। इस प्रदेश के दक्षिण में जिला मुरादाबाद, रामपुर, बरेली; उत्तर में तिब्बत, पूरब में नेपाल और पश्चिम में गढ़वाल जिले हैं। कूर्मांचल उत्तरी अक्षांश २८° ५१ व ३०° ४६ तथा पूर्वी देशान्तर ७७° ४३ व ८१° ३१ के बीच स्थित है।

१. कुमाऊं का इतिहास पृ०-१
२. अचल-पत्रिका—मई, १९३८
३. हिमालयन ट्रेवल्स—पृ० ११२

कूर्मांचल के क्षेत्रफल, जनसंख्या व शिक्षा प्रतिशत की तालिका नीचे दी गई है—

प्रशासनिक इकाई	क्षेत्रफल व० मी०	जनसख्या	शिक्षा प्रतिशत पु०	स्त्री	कुल
पिठौरागढ	२७८६.१२	२६२२६३	३२·५६ %	२०६ %	१५.६३ %
अल्मोड़ा	२७२१.१७	६३११०८	३६४३ %	१४२९ %	२७.१५ %
नैनीताल	२६२५.६०	५७४३६७	२६.०५ %	७.७८ %	१७५२ %
	८१३५.८९	१४६७७६८	३१.६८ %	८.०४ %	२०.३३ %

कुमाऊंनी भाषी प्रदेश का शिक्षा प्रतिशत २०.३३ है, उत्तर प्रदेश का १७.५ और सम्पूर्ण भारत का २३.७ है। इससे प्रतीत होता है कि कुमाऊ का शिक्षा प्रतिशत सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के औसत से अधिक है। कुमाऊं का बुद्धिजीवी वर्ग भारत के विभिन्न स्थानों, क्षेत्रों एवं पदों पर प्रतिष्ठित है। यहां की लगभग ९२ प्रतिशत जनता ग्रामो में रहती है, जिसका मुख्य व्यवसाय खेती है। वाणिज्य, व्यवसाय व कलाकौशल का यहां अभाव है इसलिए आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र अभी काफी पीछे है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन

कूर्मांचल के मूल निवासी खस माने जाते है, इनके बाद किरात जाति का आगमन हुआ। तदुपरान्त वैदिक आर्यों ने आकर दोनो जातियो पर विजय पाकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। मध्य काल में पश्चिम की ओर से आक्रातांओ से बचने के लिए या अन्य किसी न किसी कारण सिन्ध के अमीर, राजस्थान के राजपूत, सौराष्ट्र के गुर्जर, महाराष्ट्र व कन्नौज के ब्राह्मण, बंगाल के पाल इस क्षेत्र में आकर बस गए। 'कूर्मांचल मे जो भी जातियां आकर बसी है, वे सब भातृभाव के पावन बंधन में बधी हैं। हरिजन, खस, किरात, शक, हूण, आर्य, यवन, ईसाई सब जातियों की जन्मभूमि अब एक है, उनमें कोई भेदभाव नहीं है। वे सब एक ही जननी जन्म-भूमि की सन्तान हैं।[1]

कुमाऊं में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों के लोग मिलते हैं। इनमें क्षत्रियों की संख्या सबसे ज्यादा है। धर्म व्यवस्था की दृष्टि से हिन्दू धर्म ही प्रमुख है। बौद्ध धर्म ८वीं शताब्दी तक रहा। इस धर्म के कुछ-कुछ अनुयायी आज भी कूर्मांचल के उत्तरी भाग जोहार, दरमा में मिलते हैं। यहां के स्थानों के नाम गणनाथ, पीनाथ आदि से प्रतीत होता है कि कूर्मांचल सिद्ध और नाथों की तपस्या की भूमि भी रही है। कनफटे जोगी नाथ सम्प्रदाय की परम्परा का आज भी प्रतिनिधित्व करते हैं। आर्यसमाज का प्रादुर्भाव सन् १९१६ से हुआ। ईसाई धर्म के प्रचार-कार्य के केन्द्र १८५० ई० में अल्मोड़ा में और १८७६ ई० मे द्वाराहाट में आरम्भ हुए। मुसलमानों अथवा इस्लाम धर्म का आगमन राजा बाज बहादुरचंद के शासन काल में हुआ। कूर्मांचल में प्रकृति-पूजा के चिह्न आज भी मिलते हैं। जाखन देवी अल्मोड़ा का मन्दिर यक्ष पूजा की परम्परा को व्यक्त करता है। नाग पूजा की परम्परा को व्यक्त करनेवाले यहा कई मंदिर, पर्वत व स्थानों के नाम भी मिलते हैं। शेषनाग, फेनीनाग, कालीनाग, पिंगल नाग आदि नाम इसी परम्परा के द्योतक हैं।

पौराणिक देवताओं मे शिव या महादेव की पूजा आज भी अनेको नामों से होती है। प्रायः दो नदियों के संगम पर शिव मदिर विद्यमान हैं। भूतेश शिव की उपासना के

१. कुमाऊं का इतिहास—पृ० ५१३

कारण यहां भूत-प्रेत-पूजा, जादू-टोना आदि का भी प्रचलन है। विष्णु मंदिर कूर्मांचल में कम हैं। मुरली मनोहर कृष्ण, लक्ष्मीनारायण, राम मन्दिर भी नाम मात्र के है। शक्ति पूजा के रूप में नन्दा, उमा, अम्बिका, पार्वती, गौरी, दुर्गा, चंडी, जयंती, मंगला, काली, महाकाली आदि नामों से पूजा होती है और इन शक्तियों के मन्दिर भी यत्र-तत्र मिलते हैं। स्थानीय देवता के रूप में सत्यनाथ, भोलानाथ, शभूनाथ, ग्वाल्ल, भूमिया, ऐड़ी कल्बिष्ट, चौमू, हरु, कत्यूर, रूणिया आदि की पूजा होती है। इन स्थानीय देवताओं का ग्राम-देवता के रूप में पूजन होता है। इनकी जागर भी लगाते हैं।

कूर्मांचलवासी धर्मपरायण होते हैं। उनके सभी दैनिक आचार-विचारों में धार्मिक रुचि झलकती है। कूर्मांचल मे धार्मिक कट्टरता अधिक होने के परिणामस्वरूप जातकर्म, नामकरण, व्रतबंध, विवाह आदि १६ संस्कारों का पालन दृढ़तापूर्वक किया जाता है। यहाँ के वासियों के लिए प्रत्येक मास, प्रत्येक तिथि कुछ न कुछ धार्मिक महत्व की होती है। ऐसे अवसरों पर अनेकों मेले भी लगते हैं, परन्तु कुछ मेलो का ऐतिहासिक महत्व भी होता है और कुछ मेले व्यावसायिक महत्व के भी होते हैं। त्यौहारों मे संवत्सर प्रतिपदा, चैत्राष्टमी, रामनौमी, दशहरा, बिखोती, बैसाखी पूर्णिमा, हरेला, रक्षा-बंधन, घृत संक्रान्ति, जन्माष्टमी, नन्दाष्टमी, खतड़ुवा, विजयादशमी, दीवाली, कार्तिक पूर्णिमा, मकर संक्रान्ति, वसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली मुख्य त्यौहार है और मेलों में जन्माष्टमी, नन्दाष्टमी, शिवरात्रि, दशहरा, कार्तिक पूर्णिमा, सोमनाथ, बैसाखी, उत्तरायणी आदि प्रमुख हैं।

ऐतिहासिक परिचय

कूर्मांचल के प्रागैतिहासिक निवासी खस, गंधर्व, किन्नर, किरात कहे जाते हैं। किरातों और खसों के बाद वैदिक आर्यों की पहली लहर मैदान से पहाड़ों की ओर बढ़ी।[१] फिर इस प्रदेश का संबंध अन्य आर्य जनपदों से किसी न किसी रूप में रहा। शक्तिशाली एवं व्यवस्थित राज्य के रूप में हमें कत्यूरी वंश का राज्य मिलता है। बदरीदत्त पांडेय जी कत्यूरी शासन काल को २५०० ई० पू० से ७०० ई० तक मानते हैं।[२] परन्तु राहुल सांकृत्यायन ८५० ई० से १०५० तक मानते हैं।[३] कत्यूरी वंश का संबंध अयोध्या से जोड़ा जाता है, जिनका प्रथम राज्य शालिवाहन माना जाता है। इस वंश की राजधानी पहले जोशीमठ (गढ़वाल) में थी। बाद में कार्तिकेयपुर (अल्मोड़ा) में हुई। कत्यूर शासनकाल जब क्षीण होने लगा, तो कुमाऊं में छोटे-छोटे राज्यों का उद्भव हुआ, जिनमें काली कुमाऊं, डोटी, बाराह मंडल, अस्कोट, सीरा, कत्यूर, द्वाराहाट प्रमुख थे। इन बिखरे हुए राज्यों को एक सूत्र में बांधने का कार्य चन्दवंशी राजाओं ने किया। कूर्मांचल में चंदवंश राज्य का समय राहुल १४००-१७९० मानते हैं।[४] पाडेय जी ८०० से १७९० मानते हैं।[५] दोनों लेखक चन्दवंश के प्रथम राजा सोमचन्द मानते हैं।

सोमचन्द प्रारम्भ में एक छोटे से मंडलिक राजा थे, जो महाराजा डोटी को कर देते

१. कुमाऊं पृ० ३१
२. कुमाऊं का इतिहास १८३
३. कुमाऊं पृ० ८७
४. कुमाऊं पृ० ७६
५. कुमाऊं का इतिहास पृ० २२७

थे। परन्तु इनकी मृत्यु के समय सम्पूर्ण काली कुमाऊं पर इनका राज्य फैल गया था फिर इनके उत्तराधिकारी राजा आत्मचन्द ने राज्य विस्तार का कार्य जारी रखा। राजा पूर्णचद, इन्द्रचन्द, ससार चन्द, सुधाचन्द, हरिचन्द, वीणाचन्द आदि ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। फिर राजा गरूड़ ज्ञानचन्द (१३७४-१४१९ई०) के समय में राज्य विस्तार के साथ साथ दिल्ली नरेश, रोहिलखण्ड राज्य के साथ सम्बन्ध भी स्थापित हुए। चन्दवंशी राजाओं में उद्योतचन्द्र, विक्रमचन्द, भारतीय चन्द, रतन चंद, कीर्ति चन्द, मणिक चन्द, भीष्म चंद, कल्याण चन्द, दीपचन्द प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने चन्दवंश राज्य को शक्तिशाली और राज्य की सार्वभौम सत्ता स्थापित की। चन्द राज्य का उत्कर्ष राजा रुद्रचन्द के शासन काल में हुआ। इस समय चंदवश राज्य सम्पूर्ण कुमाऊं में फैला हुआ था। राजा लक्ष्मीचन्द व उद्योतचन्द के समय गढ़वाल तथा डोटी के शासको से युद्ध हुआ। कल्याणचन्द के समय में रूहेला आक्रमण हुए। मोहनचन्द के उपरान्त चन्दवश का ह्रास द्रुत गति से होने लगा और महेन्द्रचन्द (१७९० ई०) के समय गोरखा आक्रमण ने चन्द राज्य नष्ट कर दिया।

सन् १७९०-१८१५ तक कुमाऊं में गोरखा शासन रहा। इनके अमानवीय अत्याचार के कारण आज भी दानवीय व्यवहार के लिए 'गोरखा राज्य' की उपमा दी जाती है। सन् १८१५ में अंग्रेजो ने गोरखों को हराकर ३ मई १९१५ से अपने राज्य में कुमाऊं को भी मिला लिया। मि० ट्रेल ने कुमाऊं में अंग्रेजी राज्य की जड़ें मजबूत कीं। यद्यपि ब्रिटिश राज्य काल में कुमाऊँ में कई सुधार हुए परन्तु अंग्रेजी राज्य का विरोध आरम्भ से ही मिलता है। जो कुमाऊं की उग्र राष्ट्र विचार-धारा को व्यक्त करता है। मि० ट्रेल का विरोध खुले रूप से श्रीकृष्ण पाडे ने किया। गुमानी की कविताओं में अंग्रेजी राज्य का विरोध मिलता है। देश में १८५७ में राष्ट्रीयता की लहर आई, परन्तु हम देखते हैं कि कूर्मांचल में राष्ट्रीय भाव-धारा शुरू से ही चली आ रही है। १९वी शताब्दी की द्वितीय दशाब्दी में कवि गुमानी ने राष्ट्रीयता के गीत गाए और इनके बाद लोक कवि कृष्ण पांडे ने गांव-गांव को राष्ट्रीय धारा से प्लावित किया।

कूर्मांचल में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् १९१२ में हुई। पं० वाचस्पति पंत, पं० ज्वालादत्त जोशी, पं० हरिराम पांडे, मुंशी सदानंद सनवाल, शेख मानुल्ला, पं० माधव गुरुरानी तथा रायबहादुर बदरीदत्त जोशी कुमाऊं मे कांग्रेस के सृष्टि करनेवाले माने जाते हैं। १९१३ में स्वामी सत्यदेव ने "शुद्ध साहित्य समिति" स्थापित कर इसके द्वारा नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना का स्वर फूका। इसी वर्ष मे "अल्मोड़ा अखबार" का सम्पादन-कार्य का भार श्री बदरीदत्त पांडे ने लिया और यह पत्रिका विशुद्धतः राष्ट्रीय ढंग से निकलने लगी। कुमाऊं में राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने एवं आन्दोलन को उग्रतम रूप देने में इस पत्रिका, बाद में 'शक्ति' का प्रमुख हाथ रहा है। १९१६ में कूर्मांचल के शिक्षित पुरुषों ने मिलकर 'कुमाऊं परिषद' स्थापित की। इस संस्था ने कुली उतार, जंगलात, लाईसेन्स, नयाबाद, बन्दोबस्त आदि विषयों पर काफी आन्दोलन किए। १९२३ मे परिषद् का विलय कांग्रेस में हो गया। तदुपरान्त कुमाऊं में राष्ट्रीय आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया। सन् १९२१ में कुमाऊं में असहयोग आन्दोलन की प्रचंड आंधी आई। बागेश्वर में पतित पावनी सरयू के तट पर चार हजार कूर्मांचली वीरों ने गंगाजल उठाकर कुली उतार न देने की भीष्म प्रतिज्ञा की[1]। सम्पूर्ण कूर्मांचल जाग उठा। स्कूल, न्यायालय, कौंसिल, टाइटिल विदेशी

---

१. कुमाऊं का इतिहास पृ० ५००

वस्त्र के बहिष्कार में स्थान-स्थान पर अनेकों सभाएं होने लगीं। नमक कानून, तथा अन्य कानून तोड़े गए। हजारों कूर्मांचली कृष्ण भवन के यात्री बने। पाली पछाऊं की सल्ट पट्टियों में पुरुषोत्तम उपाध्याय (सल्ट) के नेतृत्व में लगान बंदी की आवाज बुलन्द हो उठी। कई सौ पधान, थोकदारों ने इस्तीफे दिये। सरकार ने सल्ट वासियों पर अमानवीय अत्याचार किये और पुलिस भेजकर दुगुनी लगान वसूल की। "भारत छोड़ो आन्दोलन" के अवसर पर गंगादत्त शास्त्री एवं लक्ष्मणसिंह अधिकारी के नेतृत्व में ५ सितम्बर १९४२ को इसी सल्ट को खून की होली खेलनी पड़ी। इस दिन खुमाड़ में निहत्थे सत्याग्रहियों पर गोलियां चलीं, ४ व्यक्ति शहीद हुए थे, अनेकों घायल हुए थे तथा कई बंदी बनाए गए।

समय-समय पर कई मनीषियों ने कुमाऊं आकर सम्भाषण दिए, जिनमें किशनचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्र ठाकुर, दयानन्द सरस्वती, मालवीयजी, गांधीजी, प० मोती लाल नेहरू, श्रीमती एनीबेसेन्ट व पं० जवाहरलाल नेहरू उल्लेखनीय हैं। इनके आगमन एवं ओजस्विणी वाणी ने यहां के राष्ट्रीय आन्दोलन को चरम अवस्था दी।

राष्ट्रीय नेता के रूप में स्व० गोविन्दवल्लभ पन्त जी एकमात्र कूर्मांचली हैं, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता त्याग-तपस्या व देश सेवा के कारण राजनीतिक क्षेत्र में अखिल भारतवर्षी व्यक्तित्व प्राप्त किया है। चिकित्सा-क्षेत्र में डा० नीलाम्बर चिन्तामणि जोशी तथा उच्च कानूनी शिक्षा में डा० लक्ष्मीदत्त जोशी, भाषाविद् के रूप में डा० हेमचन्द्र जोशी तथा शिक्षा शास्त्री कमांडर सुखदेव पांडे एवं प्रो० मोहन बल्लभ पंत आदि विद्वानों ने ख्याति प्राप्त की हैं, इन्हें कूर्मांचल के ऐतिहासिक पुरुष कहा जा सकता है, जिन्होंने कूर्मांचल के नाम को किसी न किसी क्षेत्र में उज्ज्वल किया है। हरगोविन्द बल्लभ पन्त, गोविन्द बल्लभ पन्त, बदरीदत्त पांडे, देवीदत्त पन्त, लक्ष्मणसिंह अधिकारी आदि कुमाऊं के राष्ट्रीय युग के पथ-प्रदर्शकों में सदैव स्मरण किए जाएंगे।

१५ अगस्त, १९४७ को शुभ घड़ी आई, अंग्रेजी राज्य का अवसान हुआ और हमारे लाखों, करोड़ों भारतीयों के आत्मत्याग, आत्म-तपस्या एवं आत्म-बलिदान के शुभ फल प्राप्त हुए और भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। अब कूर्मांचल का ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से और भी अधिक महत्व हो गया है। चीन की कुचाल एवं कुटिल दृष्टि का सामना इसी भू-भाग ने करना है। प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण देश के उत्थान में कूर्मांचलवासियों का महान योगदान है। आज भी कूर्मांचलवासी भारत के उच्च एवं महत्वपूर्ण पदों पर सुशोभित होकर राष्ट्र भारती की सेवा में संलग्न हैं।

कूर्मांचल की साहित्यिक परम्परा

भारत की संस्कृति में हिमालय का महत्वपूर्ण स्थान है। कालिदास-साहित्य में हिमालय देवताओं की आत्मा और सत्यं, शिवं, सुन्दरं के रूप में मिलता है तथा उनके काव्य में कुमाऊं के कतिपय स्थलो का सजीव चित्रण मिलता है, जो कवि के इस क्षेत्र के व्यापक ज्ञान के द्योतक हैं। हिमालय गंगा, यमुना, सिन्धु की पावन धाराओं का स्रोत ही नही रहा, अपितु काव्य-प्रेरणा, ललित-कलाओं का प्रेरणा स्रोत भी है। वह हमारी शान्ति का रक्षक एवं उत्तरी सीमा का सजग प्रहरी भी रहा है। हिन्दू धर्म के पवित्र धार्मिक स्थल—गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, कैलाश, मानसरोवर आदि इसी के गर्भ में हैं। यहां की प्रत्येक कन्दरा, प्रत्येक शिला और प्रत्येक शिखर किसी न किसी ऋषि-मुनि की तपोभूमि रही है। इसी पावन भूमि पर युग-युग के महान् तत्त्व चिन्तकों द्वारा प्राचीन ग्रंथों—वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण आदि बहुशाखा सम्पन्न संस्कृति पल्लवित हुई है। इसी भूभाग के मध्यवर्तीय क्षेत्र को कूर्मांचल कहते हैं। स्वयं कूर्मांचल नाम पौराणिक है, जिसका सम्बन्ध कूर्मावतार से है।

मध्य युग में सिन्ध के अमीर, राजस्थान के राजपूत, सौराष्ट्र के गुर्जर, महाराष्ट्र के ब्राह्मण, बंगाल के पाल, कर्नाटक के संगीतज्ञ, कन्नौज के ब्राह्मण किसी न किसी कारणवश इस क्षेत्र में आकर बस गए। इसलिए आज का कूर्मांचल सम्पूर्ण भारत की संस्कृति का एक समन्वित रूप है। वैदिक काल में यहां अनेकों सम्मेलनों का विस्तृत उल्लेख मिलता है जिसमें भारद्वाज ऋषि की अध्यक्षता में लगभग पचास तत्त्वान्वेषी आयुर्वेद-सम्मेलन में एकत्र हुए थे। कूर्मांचल की यह विद्वत् परम्परा प्राचीन काल से ही अनवरत रूप से चली आ रही है। जो आगे चलकर संस्कृत, कुमाऊंनी, हिन्दी और अंग्रेजी—चार धाराओं में प्रवाहित हुई है। संस्कृत वाङ्मय की भी वृद्धि में कूर्मांचलीय पंडितों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। सम्पूर्ण भारत में कूर्मांचलीय पंडित, वैयाकरण, ज्योतिषाचार्य एवं आयुर्वेदाचार्य विख्यात रहे हैं। कई भारतीय नरेशों के राजदरबारों में राजगुरु के रूप में कुमाऊंनी पंडित सम्मानित हुए हैं। चन्द्रवंशी राज्यकाल में भारतीय विद्वानों का प्रचुर उल्लेख मिलता है। जो इस प्रदेश की विद्वत् परंपरा एवं प्रकांड पांडित्य के द्योतक है। जगन्नाथ पन्त, देवीदत्त पांडे, लोकरत्न पंत गुमानी, पुरुषोत्तम पंत आदि ने संस्कृत में काव्य सृजन किया, जिसमें भक्ति-रस विशेष रूप से प्रवाहित हुई है। महामहोपाध्याय नित्यानन्द (पट्शास्त्री), पं० तारादत्त पंत, पं० केशवदत्त शास्त्री, पं० देवीदत्त जोशी, पं० चंद्रादत्त शास्त्री आदि विद्वानों ने संस्कृत साहित्य का भंडार समृद्ध किया। वैयाकरणाचार्य में हरिवल्लभ पंत, नित्यानंद पंत और प्रो० मोहनवल्लभ पन्त का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने व्याकरण जैसे क्लिष्ट विषय को बोधगम्य बनाकर पाठकों के सम्मुख रखा।

हिन्दी के विकास में भी कूर्मांचलीय साहित्यकारों का महान् योगदान रहा है। भारतेन्दु

काल से १०० वर्ष पूर्व गुमानी कवि की खड़ी बोली की रचनाएं आज भी अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं, इसके बाद कवि रूप में शिवदत्त सती, गौरीदत्त पांडे का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने खड़ी बोली को काव्य का रूप दिया।

आधुनिक काल के कवियों में युग द्रष्टा कवि सुमित्रानन्दन पन्त सर्वोपरि हैं। ये छायावाद के पोषक, प्रगतिवाद के जनक और अरविन्द दर्शन के महान् चिन्तक हैं। कूर्मांचल के हिन्दी कवियों ने आज तक महाकाव्य की रचना नहीं की थी। कविवर पन्त के "लोकायतन" महाकाव्य से इस अभाव की पूर्ति हो गई है। श्रीमती तारा पांडे ने अपने काव्य में निराशा एवं वेदना की धारा प्रवाहित की। स्वच्छंदवादी कवियों में जीवन प्रकाश जोशी, विनोद चन्द्र पांडे, कान्ति त्रिपाठी, प्रदीप पन्त आदि का नाम उल्लेखनीय है। कथा-साहित्य क्षेत्र में स्वर्गीय लक्ष्मीदत्त जोशी कूर्मांचल के प्रथम उपन्यासकार हैं। इन्होने सीमान्त प्रदेश कूर्मांचल की समस्याओं पर आधारित "जवा कुसुम" उपन्यास बीसवीं सदी के प्रथम दशाब्दी में लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद से प्रकाशित किया था। एक अधूरा उपन्यास अभी अप्रकाशित पड़ा है। इलाचन्द्र जोशी ने हिन्दी कथा साहित्य में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन सर्वप्रथम किया। लज्जा, संन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया इनकी श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक औपन्यासिक कृतियां है। गोविन्दवल्लभ पन्त जी ने लगभग दो दर्जन उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्य भंडार की श्री वृद्धि की है। इन्होने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, प्रतीकात्मक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे है। मदारी, जूनिया, प्रतिमा, नूरजहां, नौजवान, तारिका, एकसूत्र, अमिताभ, मैत्रेय, फारगेट मी नाट, कागज के फूल, चक्रकान्त आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं। यमुनादत्त वैष्णव ने दोपहर को अंधेरा, शैलवधू उपन्यासों में समाज में व्याप्त कुरीतियों, भ्रष्टाचार का चित्रण कर एक आदर्श समाज की कल्पना की है। शैलेश मटियानी ने बोरीवली से बोरीबन्दर तक, कबूतरखाना और किस्सा नर्वदा बेन गंगूबाई में बम्बइया जीवन के वक्ष पर सामाजिक अनाचार, अत्याचार के फोड़े की शल्य-चिकित्सा बड़ी कुशलता एवं प्रभावोत्पादक ढंग से की है। कुमाऊं के जन-जीवन की पृष्ठभूमि पर चिट्ठी रसैन हौलदार, एक मूठ सरसों, बेला हुई अबेर आदि लिखी हैं। इसी नव प्रचलित शैली "आंचलिक" के कथाकारों में शैलेश मटियानी, शिवानी, हिमांशु जोशी, जगदीशचन्द्र पांडे, बलवन्त मनराल आदि उल्लेखनीय हैं।

शैलेश मटियानी का प्रभाव तो उनके परवर्ती कथाकारों पर इतना पड़ा है कि नई पीढ़ी के कलाकारों की कृतियां पढ़ने से अगर कथा साहित्य में इसे मटियानी युग कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। भाव, भाषा, शैली, कथावस्तु चयन आदि सभी पर मटियानी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कूर्मांचल के साहित्यकारों में इतने प्रभावशाली कथाकार शैलेश मटियानी हैं—जिन्होंने यहां के सभी कथाकारों को एक ही धारा में मोड़ दिया है। परन्तु मटियानी ने अपने साहित्य में कूर्मांचल की पावन भूमि एवं आदर्श संस्कृति पर आंचलिकता के नाम पर कीचड़ उछालने का दुस्साहस किया है जो प्रशंसनीय कृत्य नहीं है। अन्य कलाकारों ने इस प्रवृत्ति का आश्रय न लेकर यथार्थ लोक जीवन को ही प्रस्तुत किया है।

नाटक साहित्य का सृजन कूर्मांचल में बहुत कम हुआ। इस क्षेत्र में श्री गोविन्दवल्लभ पन्त जी ने कई नाटकों की रचना की है और आजकल भी भारत सरकार के नाट्य एवं संगीत विभाग में नाटक साहित्य भंडार की वृद्धि कर रहे है। इनके नाटकों में वरमाला, राजमुकुट, अन्तःपुर का छिद्र, ऐतिहासिक नाटक ययाति—पौराणिक और; कंजूस की खोपड़ी, अंगूर की बेटी, सुहाग बिन्दी, सुजाता सामाजिक नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हैं। पन्त जी के

नाटकों में सबसे बड़ी विशेषता उनकी रंगमंचीयता है। इनके कथोपकथन सरस, छोटे-छोटे, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक होते है जो साधारण से साधारण मंच पर बड़ी सुविधा से खेले जा सकते हैं। सुमित्रानन्दन पन्त जी ने अपने नाटक "ज्योत्स्ना" में एक स्वर्गिक आत्मा का अवतरण विश्व की मगल कामना के लिए की है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई रेडियो रूपक भी लिखे हैं जिनमें "रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण आदि लोक-प्रिय एवं प्रसिद्ध है।

आलोचना क्षेत्र में प्रो० मोहनवल्लभ पन्त का नाम अग्रणीय है। प्रो० पन्त के आलोचना सिद्धान्तों एवं प्रक्रिया पर इनके गुरुवर लाला भगवानदीन एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्पष्ट प्रभाव है। हिन्दी साहित्य के गुटबन्दी पूर्ण जगत् में मूर्द्धन्य आलोचक सदैव तटस्थ रहे और इन्होने साहित्य को गुटबन्दी की पंक्तिलता से सदैव मुक्त रखा है। तुलसी का अलंकार विधान, रस विमर्श, भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, आलोचना शास्त्र, नहुष का स्वाध्याय, सूर पंचरत्न और दोहावली आदि गम्भीर एवं विद्वत्तापूर्ण कृतियों से हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की। अनुसधानात्मक साहित्य में डा० हेमचन्द्र जोशी, डा० अम्बादत्त पन्त, डा० त्रिलोचन पांडे का कार्य प्रशंसनीय रहा है। वर्तमान में भी अनेकों प्रतिभाएं हिन्दी साहित्य की सेवा सक्रिय रूप से कर रही हैं और विभिन्न क्षेत्रो में समय, स्थिति और वातावरण के अनुसार सजग होकर कार्यरत हैं।

लोक साहित्य की ओर कुमाऊंनी विद्वानो का ध्यान यद्यपि उपेक्षणीय न रहा अपितु उचित प्रोत्साहन के अभाव में वह वहा की गिरि-कन्दराओं और उपत्यकाओं तक सीमित रहा। कूर्मांचलीय भाषा अन्य लोक भाषाओं से कम समृद्ध नहीं। इसका साहित्य भंडार अत्यन्त समृद्ध है। कूर्मांचल के लोक साहित्य का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना वहां के संस्कृत साहित्य का। प्रकाशित रूप में हमें कविवर गुमानी की ही रचनाएं मिलती हैं इससे पूर्व की रचनाए नहीं मिलती। सम्भवतः इससे पूर्व के लोकगीत आदि परम्परागत रूप में मौखिक ही चलते आए हों।

कुमाऊंनी बोली पर कैलाग, ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने बड़ा कार्य किया है। भारतीय विद्वानो मे सर्वप्रथम श्री गंगादत्त उप्रेती का ध्यान उधर गया। कुमाऊंनी में साहित्य सृजन कब से हुआ है यह अलग विषय है किन्तु कुमाऊंनी साहित्य की मौखिक परम्परा तो अतीत काल से चली आ रही है। प्राचीन वीरगाथाएं, परियों की कहानियां, पशु-पक्षियो की कहानिया, जादू-टोना, धार्मिक, पौराणिक, वैदिक और देवी-देवताओं की कथाएं और कौरव-पांडवों की कहानी तथा शिव-पार्वती और हिमालय के गीतों की। इस परम्परागत मौखिक साहित्य को शैलेश मटियानी ने कुमाऊं की लोक-कथाओं के १२ भागों में संग्रह कर वहां की संस्कृति का उद्धार किया। देवी देवताओं के अवतरण एवं पूजन तथा सांस्कृतिक गीतों को अपनी रचना "बेला हुई अबेर" और "मुख सरोवर के हंस" मे ग्रहण कर स्तुत्य कार्य किया है। कुमाऊंनी लोक संस्कृति सम्पन्न साहित्य को स्थायी साहित्य के रूप में प्रस्तुत करने में आज तक केवल एक ही लेखक---शैलेश मटियानी का प्रयास रहा है। ओकले के अनुसार हिमालय के साहित्य की अपनी विशेषताएं है। उन्होंने कुमाऊंनी साहित्य को अपने जन्मदाता हिमालय की ही भांति पवित्र और रहस्य-पूर्ण माना है। मटियानी ने ऐसे साहित्य को अपना प्रश्रय प्रदान कर उसे अमर बनाया है।

कुमाऊंनी में लिखित साहित्य की परम्परा १९-वीं शताब्दी से मिलती है और यह परम्परा अपने प्रथम कवि गुमानी पन्त से लेकर आज तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है।

प्राचीन काल में कुमाऊंनी में बहुत कम रचनाएं सामने आयीं। किन्तु इस काल की अपनी अलग परिस्थितियां, परम्पराएं और विशेषताएं रही हैं। कुमाऊनी के प्रथम कवि गुमानी पंत से इसका आरम्भ माना जा सकता है। इस काल में गोरखा राज्य के बाद अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। अंग्रेजी राज्य की बुराइयों और त्रुटियों पर कवि ने रोष प्रकट किया। राष्ट्रीय भावना प्रबल रूप मे स्पष्ट होने लगी। गुमानी ने कुमाऊ की प्रकृति, वहां के जीवन और समाज का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया। उन्होंने काफल और हिसालू की सरसता और दाड़िम, केले के मिठास को कुमाऊंनी साहित्य में समेटा। इनका दृष्टिकोण प्रकृति के प्रति संवेदनशील रहा है। सामाजिक चित्रणों में इनकी कविता व्यंग्य और विनोद प्रधान है। इन्होंने नीति और उपदेश की बातें भी लिखीं। उनकी कविताओं के संग्रह "गुमानी नीति" और "गुमानी विरचित काव्य संग्रह" के नाम से प्रसिद्ध है।

कृष्ण पांडे नामक लोक कवि गुमानी जी के समकालीन थे जो अपने व्यंग काव्य के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके काव्य में ब्रिटिश सरकार पर कटु व्यंग्य प्रहार किया गया है। श्री भैरवदत्त जोशी ने दुर्गा (चन्डी) पाठसार पुस्तक का कुमाऊंनी में अनुवाद किया। श्री गंगादत्त उपरेती ने अनेक पुस्तकें लिखीं और [illegible] अध्ययन सर्वप्रथम इन्होंने ही किया। फारस के महाराज की रानी असनर का इतिहास, प्रोवर्ब्स एण्ड फाकलोर आफ कुमाऊ एण्ड गढ़वाल तथा "हिल डाइलेक्ट्स आफ दी कुमाऊं डिवीजन" इनकी प्रसिद्ध कृतियां है। श्री ज्वालादत्त जोशी ने रघुकुमार चरित और श्री लीलाधर जोशी ने मेघदूत का अनुवाद कुमाऊंनी पद्यो में किया। अतः इस काल में मौलिक रचनाओ के अतिरिक्त अनूदित रचनाओं ने भी कुमाऊंनी साहित्य को समृद्ध किया। श्री गौरीदत्त पाण्डेय जी की रचनाओं में हास्य का अधिक पुट रहा। अल्मोड़ा अखबार और शक्ति मे इनके हास्य रस प्रधान अनेकों गीत प्रकाशित हुए हैं। इनके हास्य रस मे तात्कालीन समाज पर कटु व्यंग्य का पुट भी मिलता है। ये जनता मे 'गौर्दा' नाम से प्रसिद्ध थे। इसके बाद साहित्य धारा में नया मोड़ आया और नई चेतना, सामाजिक उत्थान तथा नव-निर्माण की भावना से ओत-प्रोत रचनाए लिखी जाने लगी। इस काल में प्रसिद्ध कवि श्री शिवदत्त सती ने सरल और मार्मिक शैली में रचना की। बुद्धि प्रवेश (तीन भाग) घस्यारी नाटक और गोपी गीत इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इनकी शैली बड़ी चुटीली है। व्यंग्योक्तियों के लिए ये प्रसिद्ध है। "मित्र विनोद" मे तात्कालीन समाज का सुन्दर चित्र है। गोपी गीत की शैली बड़ी ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी है। इसी काल में कवि [illegible] के दिवाली विनोद में पारिवारिक और सामाजिक जीवन की झांकी मिलती है।

आधुनिक काल का उत्तरार्द्ध १९३० से माना जा सकता है। सन् १९३० के बाद कुमाऊं राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र रूप मे बढ़ा और वहां के कवियों ने भी राष्ट्रीय जागरण और स्वतन्त्रता के गीत गाए। समाज के बदलते ढांचे से एक नई लहर, एक नई चेतना आई और साहित्य भी उससे अछूता न रहा। राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति, नव निर्माण और समाज सुधार की भावनाएं काव्य के विषय बने। इस काल मे श्री श्यामाचरण? ने अपना काव्य-संग्रह "विपत्ति का हाल" से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने और समाज सुधार की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया है। हीरावल्लभ शर्मा ने अपनी काव्य साधना द्वारा कई पुस्तकें लिख कर कुमाऊंनी साहित्य को समृद्ध किया। इनमें भी समाज सुधार की प्रवृत्ति

भावना मिलती है।

वर्तमान काल के प्रमुख कवि श्री चिंतामणि पालीवाल है, जिन्होने लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखी है। इन्होने सामाजिक कुरीतियो का खण्डन किया है। समाज सुधार की प्रबल इच्छा मे कवि उपदेशक का रूप ले लेता है। पालीवाल जी ने सामाजिक बुराइयो की निर्भीकता से आलोचना कर आदर्श समाज की स्थापना का मार्ग बताया है। देश भक्ति, प्रकृति प्रेम, समाज सुधार, नव जागरण और राष्ट्रीय एकता के गीत लिखे है। ये कुमाऊ के जनप्रिय कवि है। दिल्ली की झलक, बलिदान खण्ड, कुमाऊ के सम्राट, इनकी प्रसिद्ध रचनाए है। इन्होने कुमाऊ के मौखिक महाकाव्य मालूसाई को काव्य का रूप दिया है। इनकी शैली बड़ी ही मर्मस्पर्शी और प्रभावपूर्ण है। कविराज रामदत्त पत ने "गीत माला" और "गाधी गीत" तथा अनेक फुटकर रचनाओ से कुमाऊं साहित्य की बडी सेवा की है। ऐतिहासिक प्रसगो को काव्य का जामा पहनाने में श्री खीमानन्द शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। इनकी रचना "हरू हीत" बडी सुन्दर एव लोकप्रिय रचना है। कुलानन्द भारतीय सामाजिक समस्याओ को लेकर काव्य रचना करते है। इनकी भाषा मे गढवाली, कुमाऊनी दोनो बोलियो का सम्मिश्रण मिलता है। "डौल्या" इनकी प्रमुख रचना है, जो अपने आप मे एक लोक साहित्य का खण्ड-काव्य बन गया है। इसमे देश-प्रेम झलकता है तथा लेखक युवक वर्ग को अपने ही समान परिश्रम, राष्ट्र-सेवा का सदेश देता है। परिणामत लेखक का व्यक्तित्व यत्र-तत्र स्पष्ट रूप मे झलकता है। नवयुग तथा नव निर्माण की प्यास के दर्शन श्री नरसिह हीत विष्ट की रचनाओ मे होते है। "कलियुग का हाल" और "ग्राम पंचायत" में इन्होने समाज सुधार की भावना भी व्यक्त की है। सर्व श्री श्यामाचरण पत, ताराराम आर्य, भवानीदत्त पत, बजेसिह पटवाल आदि मे नव जागरण, सामाजिक विकास, राष्ट्रीय एकता आदि की प्रवृत्ति पाई जाती है। श्री पूर्णानन्द भट्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होने बाल साहित्य से लेकर कुमाऊं के जीवन के विभिन्न पक्षों को अपनी रचना "मेरी भावना" मे चित्रित किया है। नई-नई प्रतिभाए सामने आ रही है और कुमाऊंनी में एक से एक उत्कृष्ट रचनाओ के दर्शन हो रहे है। डा० गुणानन्द जुयाल ने "कुमाऊनी और गढवाली के तुलनात्मक अध्ययन" पर शोध कार्य किया है और डा० त्रिलोचन पाडे ने कुमाऊनी लोक साहित्य पर शोध कार्य किया है। (डा० नारायणदत्त पालीवाल ने अपने शोध-प्रबन्ध "कुमाऊं के लोक गीत" द्वारा महान कार्य किया है।) अब विभिन्न विश्वविद्यालयों मे कई अन्य विद्वान कुमाऊंनी साहित्य पर शोध कार्य मे जुटे है।

कुमाऊनी काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि यहां के साहित्यकारो ने लता-पादपो के अन्तर की वेदना को अनुभव किया, वन-उपवन के पुष्पो की हसी को जीवन में समेटा, चाद सितारो के गीत गाए, पशु-पक्षियों की बोली को काव्य का जामा पहनाया। बसन्त की बहार और वर्षा की रिमझिम को काव्य में समेट कर प्रकृति के नाना मनोहारी रूपों का सजीव चित्रण किया है। कुमाऊं के जन-जीवन की झांकी, नव जागरण और राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति, नवयुग और नव निर्माण के गीत, भारतीय संस्कृति व धर्म का स्वरूप भी सभी कुछ उसमें मिलता है।[1]

---

१. हिन्दुस्तान समाचार—नारायणदत्त पालीवाल

खण्ड १

कूर्मांचल के कवि

गुमानी पन्त

गुमानी कूर्माचल में खड़ी बोली को काव्य-रूप देने वाले प्रथम कवि कहे जा सकते है। सर जार्ज गियर्सन के अनुसार कूर्माचल के सबसे प्राचीन कवि गुमानी हैं।[1] गुमानी जी के काव्य पर उनके जीवन-काल के राजनीतिक, सामाजिक घटनाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। १७९० ई० से पूर्व कुमाऊं एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में था और चन्दवंशी राजा राज्य करते थे। हम चन्दवंशी राज्य-काल को सुख और शान्तिपूर्ण नहीं कह सकते क्योंकि उन दिनों कुमाऊं पर सदैव ही गढ़वाल तथा नैपाल की ओर से आक्रमण के मेघ मंडराते रहते थे। कुमाऊंनी वीरों की तलवारों की झनकार और रणवाद्यों के घोरनाद से कुमाऊं की घाटियां सदैव गूंजती रहती थीं। १७९० ई० के आरम्भ में गोरखो की एक बड़ी फौज चौतरिया बहादुरशाह, काजी जगजीत पांडे, अमरसिंह थापा और सूरसिंह थापा के नेतृत्व में डोटी के मार्ग से काली नदी को पार कर शोर करती हुई (काली कुमाऊं की ओर बढ़ी।) और दूसरी सेना विसुंग की ओर से आई। तत्कालीन राजा महेन्द्रचन्द तथा कुंवर लालसिंह ने गोरखाली सेना का डटकर सामना किया, परन्तु असफल रहे। परिणामत: मार्च १७९० ई० में अलमोड़ा गोरखों के अधिकार में चला गया।[2] गोरखों के बर्बरतापूर्ण अत्याचार, अमानवीय व्यवहार एवं नरसंहार से आतंकित होकर बहुत से कुमाऊंनी परिवार अपनी प्राण-रक्षा के लिए तराई-भावर, कोटा, हल्द्वानी, काशीपुर, हरिद्वार आदि स्थानों की ओर चले गए और गोरखों के चंगुल से स्वदेश को मुक्ति दिलाने की चिन्ता करने लगे। गोरखाली राज्य का नरसंहार इस सीमा तक पहुंचा हुआ था कि आज भी अत्याचार, अन्यायपूर्ण व्यवहार एवं अमानवीय घटना के लिए "गोरखाली राज्य" की उपमा दी जाती है।[3] जिन दिनों कुमाऊं में गोरखाली राज्य की बर्बरता का तांडव-नृत्य हो रहा था, उन्हीं दिनों हमारे प्रथम राष्ट्रकवि का आविर्भाव हुआ। ✓

गुमानी जी के पूर्वज कुमाऊं के चन्दवंशी राजाओं के राज-वैद्य थे। गुमानी का

---

१. The oldest writer in Kumoni with whom I am acquainted is Gumani Pant, who was born in 1790 A D—Sir George Grierson—Linguistic Survey of India. Vol. I Part IV pp 109

२. The Gorkhas finding the way thus opened retraced their steps and after some slight resistance at Hawalbagh occupied Almora early in 1790—H.G. Walton—Almora Gazetteer 1911-pp 188.

३. Many stories are told of cruelties perpetrated by Gurkhas during their occupation..........Their tyrrany has passed into proverb and at present time when a native of hills wishes to protest in the strongest language in his power against some oppression—H. G. Walton—Almora Gazetteer—1911-pp 189.

जन्म विक्रम संवत् १८४७ कुम्भार्क गते २७, बुधवार फरवरी सन् १७९० में काशीपुर जिला नैनीताल में हुआ। इनके पिता उपराडा ग्राम, वर्तमान पिथौरागढ जिले के निवासी थे। इनकी माता का नाम देवमंजरी था। गुमानी जी का अधिकांश बाल्यकाल पितामह प० पुरुषोत्तम पंत के साथ काशीपुर व उपराडा में बीता। इनके जन्म का नाम लोकरत्न था। पिता प्रेम-वश गुमानी कहते थे और इसी नाम से वे प्रसिद्ध हुए। कुछ लोगों का मत है कि गुमानी सन् १८१२ के लगभग काशीपुर के महाराज गुमानसिंह देव की सभा के राज-कवि नियुक्त हुए थे, तभी से वे गुमानी कहलाये।[1] परन्तु अधिक छान-बीन के पश्चात् यह बात निराधार ठहरती है। गुमानी जी की शिक्षा-दीक्षा मुरादाबाद के पंडित राधाकृष्ण वैद्यराज तथा मलाज निवासी पंडित हरीदत्त ज्योतिर्विद की देख-रेख में हुई। २४ वर्ष तक विद्या-ध्ययन के पश्चात् इनका विवाह हुआ। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने भी नहीं पाये थे कि सहसा १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य-व्रत पालन की प्रतिज्ञा कर बैठे और उसी निमित्त तीर्थयात्रा आरम्भ कर दी। तीर्थयात्रा के प्रसंग में गुमानी जी चार वर्ष तक तीर्थराज प्रयाग में रहे और वहां एक लाख गायत्री-जप किया। प्रयाग के प्रवास-काल के अन्तिम दिनों में जब ये श्रीमद्भागवत् का पारायण कर रहे थे, तो भोजन बनाते समय इनका यज्ञ-सूत्र दग्ध हो गया। बस क्या था, गुमानी जी की क्रान्तिकारी आत्मा ने व्रत-समाप्ति तक पका हुआ अन्न न खाने की प्रतिज्ञा ली और फलाहार पर ही निर्भर रहे। गुमानी जी के प्रपौत्र श्री गोवर्द्धन पंत जी के अनुसार प्रयागराजवास के पश्चात् गुमानी जी ने बद्रीनाथ के समीप दूर्वारस पीकर कुछ वर्षों तक तपस्या भी की। अपने व्रत की समाप्ति के बाद माता के आग्रह से इन्होंने पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। गुमानी जी के दो विवाह हुए थे। प्रथम पत्नी रामपुर की थी और दूसरी पत्नी उपराडा से चार मील दूर वेलकोट ग्राम की। गुमानी जी के दो पुत्र और एक कन्या थी। श्री गोवर्द्धन पंत जी ने गुमानी का वंश-वृक्ष इस प्रकार बताया है :

१. यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'—कूर्माञ्चल की साहित्यिक परम्परा—सरहदी साप्ताहिक, लखनऊ १५ अगस्त, १९६०, पृ० २७

राज-कवि के रूप मे गुमानी जी सर्वप्रथम काशीपुर नरेश महाराजा गुमानसिंह देव की राजसभा मे नियुक्त हुए थे। महाराज गुमानसिंह देव की राज्यसभा के अन्य कवि गुमानी जी की प्रतिभा एव ख्याति से ईर्ष्या करने लगे और एक बार काशीपुर के पडित सुखानन्द पत ने इन पर व्यग्योक्तिपूर्वक दोषारोपण किया। विद्वन्मण्डली मे पर्याप्त शास्त्रार्थ के पश्चात् महाराज निश्चित निर्णय पर न पहुच सके तो मध्यस्थ की आवश्यकता प्रतीत हुई तो महाराज गुमानसिह देव ने मुरादाबाद के प० टीकाराम शर्मा को *मध्यस्थ नियुक्त किया।* स्वय प० टीकाराम शर्मा गुमानी जी से द्वेष-भावना रखते थे इसलिए उनका निर्णय भी पक्षपातपूर्ण रहा। गुमानी जी की क्रातिकारी आत्मा इस अन्याय को न सह सकी और उन्होने तत्क्षण एक श्लोक रचकर प० टीकाराम शर्मा के आगे रखकर राज-सभा त्याग दी। श्लोक इस प्रकार था —

चन्दनकर्दमकलहे भेको मध्यस्थतापन्नः।
ब्रूते पङ्कनिमग्नः कर्दमसाम्यं न चन्दनं लभते ॥[1]

गुमानी जी अनेक तत्कालीन राजाओ द्वारा सम्मानित हुए, जिनमें पटियाला के महाराज श्री कर्णसिंह, अलवर के नरेश बनेसिंह देव, और नहान के राजा फतेह प्रकाश का नाम उल्लेखनीय है।

गुमानी जी टेहरी नरेश सुदर्शन शाह की सभा के भी मुख्य कवि रहे थे। एक बार महाराज सुदर्शन शाह के दरबार मे एक नवागत पडित ने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रगट की। *महाराज का सकेत मिलने पर गुमानी जी शास्त्रार्थ के लिए उतर पडे।* नवागत पडित ने परिचय रूप में गुमानी जी से नाम पूछा। गुमानी जी ने अविलम्ब ही निम्नलिखित श्लोक कहकर नवागत पडित को अपनी प्रखर बुद्धि, विद्वत्ता, पाडित्य एव काव्य-कुशलता का सुन्दर परिचय देकर उसे भ्रम मे डाल दिया।

कोर्मध्यमो ह्रस्वतृतीयकेन स्वरेण दीर्घप्रथमेन युक्तः।
पोऽन्तिमस्तोऽचरमस्तु वर्णो दीर्घद्वितीयेन ममाभिधानम् ॥[2]

नवागत पडित पर्याप्त मनन के पश्चात् श्लोक का अर्थ लगा सका तथा कविवर के नाम से परिचित हो सका। फिर दोनो मे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। परन्तु विजय और पराजय का निर्णय न हो सका। इस पर मध्यस्थ की आवश्यकता प्रतीत हुई। योग्य मध्यस्थ के अभाव मे महाराज ने निर्णय किया, जो विद्वान 'टिहरी' नाम पडने का कारण बता सकेगा उसे विजयी घोषित किया जाएगा। कविवर गुमानी जी ने तत्क्षण ही निम्नलिखित पद्य बनाकर महाराज के सम्मुख प्रस्तुत किया:—

सुरगगतटी रसखानमही धनकोशभरी यहु नाम रह्यौ।
पद तीन बनाय रच्यौ बहु विस्तार वेगु नहीं जात कह्यौ।
इन तीन पदों के बखान बस्या अक्षर एक ही एक लह्यौ।
जन राज सुदर्शन शाह पुरी टिहिरी यहि कारण नाम रह्यौ ॥

---

१ चंदन और कीचड में कलह हुआ। मेंढक मध्यस्थ बनाया गया। कीचड में निमग्न मेंढक ने निर्णय दे दिया "चदन भला कीचड की समता कर सकता है।"

२. कवर्ग का मध्यम वर्ण 'ग' तृतीय स्व ह्रस्वर 'उ' से युक्त (गु), पवर्ग का अंतिम वर्ण 'म' प्रथम दीर्घ स्वर 'आ' से युक्त (मा), तवर्ग का चरम वर्ण 'न' द्वितीय दीर्घ स्वर से युक्त (नी) – इनसे मेरा नाम बनता है।

प्रतिस्पर्द्धी पंडित से कुछ न बन सका और लज्जित होकर चला गया। गुमानी जी अपनी इस प्रत्युत्पन्नमतित्व के कारण पर्वतीय राज्यों में ही विख्यात नहीं थे किन्तु कुमाऊं से सैकड़ों मील दूर बिहार राज्य तक उनकी प्रसिद्धि थी।[१] इस प्रकार गुमानी जी अपने शिल्प-वैचित्र्य और प्रत्युत्पन्नमतित्व के लिए प्रसिद्ध थे। गुमानी जी ने काव्य-रचना हिन्दी-मिश्रित संस्कृत, कुमाऊंनी, नैपाली, हिन्दी, संस्कृत और ब्रजभाषा में की है। समस्यापूर्ति के लिए गुमानी जी उस युग में सर्वोपरि थे और उनकी विशिष्टता थी शिल्प-वैचित्र्य, अनेक भाषाबद्ध पद्य, गूढ़ाशय और शिक्षा भरी लोकोक्तियों का समावेश। गुमानी जी संस्कृत के वर्णवृत्त, दोहा, कुंडलिया और चौपाई में काव्य-रचना किया करते थे। गुमानी जी की कविताओं में विशेषतः अद्‌भुत और हास्यरस, स्वाभावोक्ति अलंकार और आर्या छन्द पाया जाता है। गुमानी जी की निम्नलिखित रचनाएं उपलब्ध हैं :-

१. रामनामपंचपंचासिका
२. राममहिमा वर्णन
३. गंगा शतक
४. जगन्नाथाष्टक
५. कृष्णाष्टक
६. रामसहस्त्र गणदंडक
७. चित्रपदावलि
८. राममहिमन्
९. रामाष्टक
१०. कालिकाष्टक
११. रामविषयभक्तिविज्ञप्तिसार
१२. तत्त्वविनोदिनी पंच पंचाशिका
१३. नीतिशतक शतोपदेश
१४. रामविषय विज्ञप्तिसार
१५. ज्ञान भैषज्य मंजरी

इनके अतिरिक्त गुमानी जी के अनेक भाषाओं में लिखी हुई रचनाएं गुमानी-नीति में संगृहीत हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन ने "लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया" में गुमानी कवि की दो रचनाओं का उल्लेख किया है। एक है गुमानी-नीति, जिसका सम्पादन रेवादत्त उप्रेती ने १८९४ ई० में किया था और दूसरी है गुमानी काव्य-संग्रह, जिसका संकलन एवं सम्पादन देवीदत्त शर्मा ने १८९७ ई० में किया था। इनके अतिरिक्त गुमानी जी की कविताओं का कोई संग्रह प्रकाशित न हो सका। पं० देवीदत्त शर्मा को प्रामाणिक सज्जनों से ज्ञात हुआ है कि "यदि इनके लिखे हुए सभी खर्रे मिल सकते तो इनकी समस्त कविता एक लक्ष (लाख) पद से कम न होती।" इन रचनाओं के अतिरिक्त गुमानी जी की अन्य संस्कृत रचनाओं का उल्लेख मिलता है जो उन्होंने तत्कालीन नरेशों के विषय में लिखे हैं। कवि गुमानी ने पटियाला के महाराज कर्णसिंह के पराक्रम के विषय में सात सर्ग, अलवर नरेश बनेसिंह देव की कुशल नीति के विषय में पांच सर्ग और नहान के भूपति फतेह प्रकाश के सुख-शान्ति-पूर्ण राज्य के विषय में तीन सर्ग के सरस एवं सुन्दर काव्य की रचना की, जो आज भी सम्बन्धित राज-पुस्तकालयों में उपलब्ध है।

गुमानी जी ने अधिकांश काव्य सृजन संस्कृत में किया है। इन्होंने किसी महाकाव्य की रचना न कर शतक, सतसई अथवा मुक्तक पदों की रचना की है। शतक या सतसई संस्कृत में हैं; परन्तु कुमाऊंनी, नैपाली, ब्रज, खड़ी बोली में मुक्तक पदों की रचना की है।

---

१. This and some subsequent verses were collected in Tirhut are said to be by Gumani Kavi of Patna. His name is however unknown in Patna itself—Curiosits of Indian Literature—The Indian Antiquary Vol. XIV April, 1885.

गुमानी जी शिक्षाग्रहण काल से ही कविता लिखने लगे थे। अतः हम उनका रचना-काल १८१०ई० के लगभग मान सकते हैं। यह काल हिन्दी-साहित्य के रीतिकाल के अन्तर्गत आता है। परन्तु रीतिकाल की शृगारिकता से इनकी सम्पूर्ण रचनाएं अछूती रही हैं। उस समय काव्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रचलन था किंतु गुमानी जी ने खड़ी बोली को ही काव्य-भाषा के रूप में अपनाया। गुमानी जी की रचनाओं में खड़ी बोली का परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप मिलता है। खड़ी बोली का ऐसा रूप अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा उनके परवर्ती कवियों में ही पाया जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार प्रायः आधुनिक हिन्दी-साहित्य के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की इस उक्ति का समर्थन करते हैं कि भारतेन्दु-काल में खड़ीबोली काव्य भाषा के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी तथा उसमें लालित्य, ओज आ ही नहीं सकता था। परन्तु ये विद्वान संभवतः इस तथ्य से आज भी अपरिचित हैं कि हिमालय के अंचल में कूर्माचल के कवि गुमानी खड़ी बोली को उस समय काव्य रूप दे चुके थे, जिस समय भारतेन्दु बाबू का पदार्पण साहित्य-जगत् में तो दूर रहा, इस जगत् में भी नहीं हुआ था। अगर पहेलियों को भी काव्य की संज्ञा दी जाय तो खड़ी बोली में अमीर खुसरो की पहेलियों के बाद गुमानी की ही कविताएं मिलती हैं। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत श्रीधर पाठक को हिन्दी का प्रथम कवि स्वीकार किया जाता है, परन्तु इनका रचनाकाल गुमानी जी के रचनाकाल से एक शताब्दी बाद का है। गुमानी जी की खड़ी बोली की रचनाएं काव्य-शास्त्र की कसौटी पर खरी उतरती हैं। उनकी रचनाओं में काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। इसलिए यह निर्विवाद तथ्य है कि खड़ी बोली के प्रथम कवि गुमानी ही हैं, अन्य कोई नहीं।

पहले निवेदन किया जा चुका है कि गुमानी जी का रचनाकाल रीतिकाल के अन्तर्गत आता है; परन्तु गुमानी जी रीतिकालीन शृगारिकता के पंक से सर्वथा मुक्त रहे हैं। उन्होंने कविता कामिनी को नरेशों के प्रासादों की चार दीवारी से निकाल कर जनसाधारण के बीच में लाकर खड़ा किया। उनकी कविता में नख-शिख व नायक-नायिका के मनोभावों का शृंगारपूर्ण व विरह-चित्रण न होकर समाज का यथार्थ चित्रण है। उन्होंने समकालीन साहित्यिक प्रवृत्ति में अपनी काव्यधारा को नवीन दिशा दी और वह दिशा है सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर।

गुमानी जी ने जब आंखें खोलीं तब उन्हें जगत् एवं समाज का कटु अनुभव हुआ। उन्होंने अपनी जन्मभूमि कूर्माचल में गोरखाली राज्य के भीषण अत्याचार-अनाचार देखे तथा समाज की दिन-प्रतिदिन की गिरती हुई दशा का अवलोकन किया। उनके कवि हृदय पर इस दशा से जो आघात पहुंचा, वही वाणी के रूप में मुखरित हुआ।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का चित्रण कवि के काशीपुर वर्णन में मिलता है। गोरखाली राज्य के भय से आतंकित होकर कुमाऊं की अधिकांश जनता तराई-भाबर की ओर आ गई थी। वहां एकदम अधिक जनसंख्या के बढ़ने से जनता में अनेकों दुर्गुणों का समावेश हुआ। प्रकाण्ड पंडितों, ब्राह्मणों व वैद्यों की नकल कर अन्य लोग भी अपनी जीविका चलाने लगे—

"कथा बाले सस्ते फिरत धर पोथी बगल में,
लई थैली गोली घर घर हकीमी सब करें।

रंगीला सा पत्रा कर धरत जोशी सब बने,
अजब देखा काशीपुर सारे जगत् में।"[1]

अपने लहलहाते खेतों को छोड़कर कुमाऊ के किसान काशीपुर आ गए थे। वहां आकर अपने परिवार के पेट भरने के लिए आजीविका की खोज में वे इधर-उधर दिन-रात भटकने लगे :—

"कबी जसपुर पट्टी फिर कदी तो चिलकिया।
कदी घर में सोते भर नयन भोरे उठ चले॥
सभी टट्टू लादे बनज रुजगारी सब बने।
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत् में।"[2]

शादी-विवाह तथा अन्य धार्मिक कार्यों में मित्रों, सगे-संबधियों तथा ब्राह्मणों को आमंत्रित करना हमारे धर्म में पुण्य माना जाता है। कूर्मांचल में भी ब्रह्मभोज कराना तीर्थ स्थान के समान पुण्य एव महान् कार्य समझा जाता है। परन्तु समय एवं परिस्थिति के विवश होकर आमंत्रित व्यक्तियों के साथ अन्य भी आने लगे तो कवि इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहता है :—

"जहाँ पूरी गर्मागरम तरकारी चटपटी,
वहीं बूरा दूने भर भर भले ब्राह्मण छके।
छहै न्यौतारे सुनकर अठारे बढ़ गए,
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत् में।"[3]

समाज का दूसरा छोर जो सदैव पंकमय रहा है उसका चित्रण कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :—

"यहां ढेला नदी ढिग रहत मेला दिन छिपे,
जहाँ पट्टी पातुर झलकत परीसी महल में।
तले ठोकर खाते फिरत सब गल्लगलिन में।
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत् में।"[4]

और धर्म के नाम पर पलने वालों का चित्रण करते हुए कवि ने काशीपुर की तुलना काशी से की है।

"यहाँ ढेला नदी उत बहत गंगा निकट में।
यहाँ भोला मोटेश्वर रहत विश्वेश्वर वहाँ॥
यहाँ संडे वंडे कर धर फिरैं शाह उत ही,
फरक क्या है काशीपुर शहर काशी नगर का।"[5]

गुमानी ने अपने जीवन के आरम्भ में गोरखाली राज्य की बर्बरता देखी और बाद में अंग्रेजी राज्य की छल-कपट पूर्ण नीति। कवि ने अंग्रेजी राज्य वर्णन संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में किया है और इसे "छाई रहा काले भूतल में" चित्रित किया है। ३ मई,

१. गुमानी विरचित काव्य संग्रह पृ० ४८
२. वही
३. वही
४. वही
५. वही पृ० ५४

१८१५ ई० को अल्मोड़े के किले पर यूनियन जैक का झडा लहराया था। इस समय तक कूर्माचलवासी स्वदेश मुक्ति के प्रयत्नो में लगे थे और पूर्ण आशा भी थी कि वे इसमें सफल होंगे। चदवशी नरेश महेन्द्रचद अपने चाचा कुवर लालसिह् के साथ अपनी सैन्य शक्ति संगठित करने में लगे हुए थे। परन्तु अग्रेजों ने कपट नीति से कुमाऊं को हड़प लिया तो सबकी आशाए मिट्टी मे मिल गई। सम्पूर्ण कुमाऊ अग्रेजो के अधिकार मे चले जाने से वहा की श्री और समृद्धि लुप्त हो गई और ऐतिहासिक स्थानों एव भवनों का भी ध्वंस होने लगा। कवि का भावुक हृदय कुमाऊ की दुर्दशा पर कराह उठता है :—

"आइ रहा कलि भूतल में छाइ रहा पाप निशानो।
हैरत है पहरा कछु और ही टेरत है कवि विप्र गुमानी।"[1]

और कलि के भूतल पर छा जाने से प्राचीन मदिरों, धार्मिक स्थानो का ध्वस कार्य आरम्भ हो गया तथा इस तोड़-फोड़ से अल्मोड़े का नक्शा और का और ही हो गया— जिसका चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है :—

"विष्णू का देवाल उखाड़ा, ऊपर बंगला बना खरा।
महाराज का महल ढवाया बेड़ीखाना तहाँ धरा॥
मल्ले महल उड़ाई नन्दा बंगलों से भी तहाँ भरा।
अंग्रेजों ने अल्मोड़े का नक्शा और और करा॥"[2]

अग्रेजो ने अपने ऐश्वर्य व आराम के लिए अल्मोड़े के ऐतिहासिक स्थानों को तोड़कर अपने लिए बगले बनवाए। यहा तक कि नन्दादेवी के मन्दिर तक को हटवाकर उस क्षेत्र में अपने लिए बगले बनवाए।

इतना ही नही, जनता के सुख की ओर तो अग्रेजो ने तनिक भी ध्यान न दिया। कुमाऊं कृषि प्रधान प्रदेश है। प्रत्येक परिवार भी पशु पालता है जिनके चारे के लिए जंगल एवं बंजर भूमि की आवश्यकता होती है। उन जंगलो मे भी सैनिकों की छावनिया आदि बनाकर अंग्रेजों ने वहां की जनता की परेशानियों को बढ़ा दिया :—

"करैं फिरंगी राज आबादी धरती में ना जंगल हैं।
कंपू पल्टन जगे जगे पर किले कोतघर बंगले हैं॥
चूड़े और चमार धनन्धर, बामन बनिये कंगले हैं।
अधम जाति के पढ़े-लिखे सब बाबू मिस्टर बनते हैं॥"[3]

कुमाऊं की शासन व्यवस्था कुछ सीमा तक वर्ण-व्यवस्था पर आधारित थी। कुमाऊं के प्रमुख नागरिक व विद्वानों को कोई महत्ता या प्रतिष्ठा न मिली। जो अंग्रेजों की खुशामद कर सकता था उन्ही का बोलबाला होता था :—

"दुब्बर्याव जगे जगे सड़क हैं ना जोर है, चोर का,
राजी रय्यत है सिपाह बश में दुश्मन भी खुशामन है।
दुनिया में अंग्रेज को यह अमलदारी अजब क्या कहें,
होती पूरण रामराज सम जो दुखी न होते गुनी।"[4]

---

१. गुमानी विरचित काव्य संग्रह पृ० ५२
२. वही पृ० ५०
३. वही पृ० ५२
४. वही पृ० ४८

अंग्रेजों के राज्य में प्रतिभा, पुरुषार्थ, पाण्डित्य के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। धन के बल पर ही व्यक्ति की मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा, व्यक्तित्व आदि आंका जाने लगा। रुपया ही सम्पूर्ण आचार, व्यवहार एवं संबंध का माध्यम बन गया। अंग्रेजी राज्य में बढ़ती हुई स्वार्थपरता और अर्थप्रियता का चित्रण कवि ने सुन्दर शब्दों में किया है —

"जिसके खातर प्रेम बिसर के पूत पिता के संग लड़ा,
जिसके खातर चोरी आफत कैदखाने बीच पड़ा।
जिसके खातर भाई बन्धु और इष्ट मित्र से बैर पड़ा।
कहै गुमानी सो सबसे कलिदार रुपय्या एक बड़ा।।
होता रहै धुरन्धर पंडित पढ़ें भागवत भारत है,
होता रहे बड़ा जोरावर लड़े जंग नहीं हारत है।
होता रहै अजब खूबसूरत रूपकला छवि धारत है,
कहै गुमानी जग मे गुण कलिदार बिना सब गारत है।।"[1]

पैसे के बल पर सब कुछ किया जा सकता है। अगर पैसे हैं तो सभी वस्तुएं अल्मोड़ा शहर में उपलब्ध हैं—इसका चित्रण कवि ने कितना यथार्थ किया है —

"खासे कपड़े सोने के तो बने बनाए जोड़े लो,
पश्मीने गजगाज चंवर दो भोट देश के घोड़े लो।
बड़े पान के बीड़े खासे बढ़ के शाल दुशाले लो,
कहै गुमानी नगदी है तो चीज सबी अल्मोड़े लो।
लट्ठा कम्खब मन्दराजों की छींट गजों से सस्ती है,
टके सेर के मेवे खासे डुमड़ी मे भी मस्ती है।
मुलक भरे में बड़ी अबादी जंगल में भी बस्ती है,
कहै गुमानी अंग्रेजों की दुनिया में परवस्ती है।।"[2]

अंग्रेजों के राज्य मे जो कुछ है वह या तो रुपया है या अंग्रेज सरकार। बस इन दोनों के अतिरिक्त और सब व्यर्थ है —

"उसी की विपत सब पलक में फिरेगी,
उसी के परों चौक गाती फिरेगी।
उसी पर चंवर छत्र जोड़ी फिरेगी,
जिसी पर मिहर्बान होगा फिरंगी।"[3]

जिस पर अंग्रेज सरकार की कृपादृष्टि होती थी उसे आठों सिद्धि नवों निधि की समृद्धि प्राप्त हो जाती थी। वस्तुत अंग्रेजों के राज्य मे उनके चाटुकारों को ही हर प्रकार की सुविधाएं प्राप्त होती थी। जन-साधारण तो उनसे सदैव आतंकित रहा और प्रतिभाएं उनकी आंखो मे सदा खटकती रहीं। कवि ने अपनी रचनाओं में इनका यथार्थ चित्र अंकित किया। जब अंग्रेजों के विरुद्ध एक शब्द भी बोलना काल के मुंह मे अपना सिर देने के समान था। ये रचनाएं कवि के अतुल साहस, उत्साह और निर्भीकता की द्योतक हैं।

प्राचीनकाल मे भारतीय दण्ड-विधान में इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि

---

१. गुमानी विरचित काव्य संग्रह पृ० ४८
२. वही पृ० ४८
३. वही पृ० ५२

वास्तविक अपराधी को ही दंड मिले और न्याय-व्यवस्था आज की भांति सदैव न थी। परन्तु अंग्रेजों की शासन-प्रणाली एवं दंड-विधान कितना दोषपूर्ण था और न्याय किस प्रकार चांदी के चंद टुकड़ों में खरीदा जा सकता था इसका चित्रण कवि की निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है :—

'आए गोरे ना रही राजगद्दी,
झूठे रिश्वतखोर मुंशी मुसद्दी।
ना पैदा है अन्न धौरे नद्दी,
अल्मोड़े से दूर को खेंच लद्दी।।'[1]

रिश्वतखोरी इस सीमा तक बढ़ गई कि रिश्वत के सौ-पचास रुपए देते ही सारा फैसला ही बदला जा सकता था। यही रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति मुल्क को चट्ट कर गई :—

"सौ पच्चास इस मुकद्दमें पर खर्च करे तो झट्ट,
घर मजमून जमाव मसौदा करूं चित्त का पट्ट।
ऐसा रिश्वतखोर मुसद्दी करे मुलक सब चट्ट।
कवी फिरंगी जानै तो सब ये पहुँचे मरघट्ट।।"[2]

आज भी यही प्रवृत्ति भारत के शासन-तंत्र के रग-रग में समायी हुई है। आए दिनों दस-बीस की नहीं लाखों-करोड़ों रुपए के गबन तथा रिश्वतखोरी की घटनाएं सुनने-पढ़ने में आती हैं और ये रिश्वतखोरी निम्नस्तर तक ही सीमित नहीं अपितु उच्चस्तर में भी व्याप्त है। गुमानी जी ने तो उस समय का चित्रण किया जब इसका जन्म हुआ ही था अब तो इसकी जड़ें बहुत गहरे तक पहुंच चुकी है। इस रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति के सम्मुख गंगाजल आदि की कसम भी व्यर्थ है। अगर यों कहें कि इस रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति ने पैसे के सम्मुख नैतिक मान्यताओं का मूल्य ही घटा दिया है। पैसे के लिए लोग धर्म तक गंवा देते हैं। कवि को इस पर आश्चर्य होता है कि ऐसे पापियों का उद्धार कैसे होगा ?

"रिश्वत खाय गवाह बिरानी वजह सबूती करते हैं,
गंगाजल हरिवंश हलक की राह हाथ पर धरते हैं।
पैसे खातर धर्म गंवाया मौत पराई मरते हैं,
कहै गुमानी अब ये पापी कैसे पार उतरते हैं।"[3]

अंग्रेजी राज्य द्वारा निर्धारित तर्कजाल के ताने-बाने से बुना हुआ छिद्रमय दंड-विधान से तो अपराधी साफ बच निकलता है और सच्चा ईमानदार रो-रो कर मरता है। कवि ने ऐसे शासन-तंत्र व दंड-विधान का यथार्थ चित्रण किया है। फिरंगी सरकार को कटु सत्य का बोध कराया है—

"जो है जाली बड़ा सवाली पापों से ना डरता है,
लिखे बनाए तमस्सुक झूठे गवाहों को धरता है।
सो रिश्वत से डिग्री पावे सच्चा रो रो मरता है,
कहै गुमानी जुल्म फिरंगी अमला तेरा करता है।[4]

१. गुमानी विरचित काव्य संग्रह पृ० ५२
२. वही, पृ० ५२
३. वही, पृ० ५२
४. वही, पृ० ४८

वस्तुतः अंग्रेजों का राज्य एक व्यवसायी सम्प्रदाय का राज्य था, जिनका मुख्य उद्देश्य देश की समृद्धि को मिटाकर अपने व्यवसाय के लिए क्षेत्र बनाना था। अंग्रेजों ने देश की सम्पूर्ण दौलत को लूटा-खसोटा, कला को नष्ट किया और देश की आर्थिक दशा को दयनीय बना दिया। कवि ने इन शब्दों में इसका मार्मिक चित्रण किया है :—

"छोटे पै पोशाक बड़े पे ना धोती ना टोपी है।
कहै गुमानी सुन ले बानी होनी है सो होती है।
अंग्रेज के राज भरे में लोहा महंगा सोने से,
दौलत खींची दुनियां की सो पानी पीवें दोने से॥"[1]

गुमानी जी ने गोरखाली व अंग्रेजी शासनकाल में कूर्मांचल प्रदेश का सामाजिक यथातथ्य चित्रण किया। समाज के सम्मुख शासन तंत्र की दुर्बलताओं तथा उसके परिणाम-स्वरूप सामाजिक दुर्गति का चित्रण समाज के सम्मुख रखकर उनमें नव जागरण, नवचेतना की भावना लाने का प्रयास किया। तत्कालीन परिस्थितियों तथा ब्रिटिश राज्य के दमनचक्र, छल-कपट पूर्ण नीति को देखते हुए गुमानी जी इतना कुछ कह गए, महान् गौरव की बात है। भारतेन्दु युग में समाज का चित्रण हुआ। नारी-उद्धार की पुकार हुई। किसानों और दीनों की दरिद्रता का चित्रण हुआ और उन्होंने यह सब उस समय कहा जब लोगों में कुछ साहस उत्पन्न हो चुका था। परन्तु गुमानी जी ने शासन-तंत्र पर सीधी चोट की है और उस समय जब अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बोलने वाला गोली का निशाना बनाया जाता था। गुमानी जी ने शासन-तंत्र का एवं तत्कालीन समाज का ही चित्रण नही किया अपितु राष्ट्रीय-भावना की पवित्र धारा भी प्रवाहित की। उन्होंने भारतीय वीरों को ललकारा है। उनकी ललकार ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार राजा जनक ने धनुष-यज्ञ में वीरों को ललकारा था—गुमानी की रचना में ललकार के साथ-साथ उन दुर्बलताओं का अंकन भी है, जिनके कारण देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा गया :—

"विद्या की जो बढ़ती होती फूट न होती राजन में,
हिन्दुस्तान असम्भव होता वश करना लख बरसन में।
कहे गुमानी अंग्रेजन से कर लो चाहो जो मन में,
धरती में नहीं वीर वीरता तुम्हें दिखाता जो रण में"[2]

इस पराधीनता को कवि कलियुग का आगमन मानता है और कलियुग की समाप्ति तभी होगी जब प्रलय होगा :—

"आइ रहा कलि भूतल में अब छाइ रहा छल पाप निशानी,
हैरत है पहरा कुछ और ही टेरत है कवि विप्र गुमानी।"[3]

और निम्नलिखित पद में शासन से उत्पन्न निराशापूर्ण भावनाएं व्यक्त की हैं :—

"जा दिन सैतून ते नदियाँ सब रेतिन में अटकाय धिरंगी,
जा दिन नाव समान बनी कहूं, भारी शिला जल पाय तरंगी।
जा दिन मेघ घटा धरती पर ऊपर से बलखाय गिरंगी।
ता दिन जानी गुमानी कहै छति छोड़ विलायत जाय फिरंगी॥"[4]

---

१. गुमानी विरचित काव्य संग्रह पृ० ५०
२ वही, पृ० ५०
३. वही, पृ० ५०
४. वही, पृ० ४९

कवि अंग्रेजी को कलिकाल का भेजा हुआ मानता है। भारत धर्मप्रधान देश है। उसकी सभ्यता संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से है इसलिए इसके ह्रास के लिए कलिकाल ने अंग्रेजों को भारत भेजा है :—

"अपने घर से चला फिरंगी पहुंचा पहले कलकत्ते,
अजब टोप बन्नाती कुर्ती ना कपड़े ना कुछ लत्ते।
सारा हिन्दुस्तान किया सर बिना लड़ाई कर फत्ते,
कहै गुमानी कलियुग ने यों सुब्वा भेजा अलबत्ते ।।"[1]

कवि अंग्रेजों की किस्मत की प्रशंसा भी करता है जिन्होंने भारत जैसे वीरों के देश को अपने अधीन कर लिया परन्तु कवि की इस प्रशंसा में एक टीस है, एक व्यंग्य है और भारतीयों के लिए पुनर्जागृति का संदेश है :—

"दूर विलायत से जल का रास्ता करा जहाज सवारी है।
सारे हिन्दुस्तान भरे की धर्ती वश कर डारी है।
और बड़े शाहों में सबमें धाक बड़ी कुछ भारी है,
कहै गुमानी धन्य फिरंगी तेरी किस्मत न्यारी है ।।"[2]

गुमानी ने कुमाऊं में गोरखों का युद्ध देखा उसका नरसंहार देखा और अंग्रेजों का युद्ध भी देखा। इन युद्धों से प्रदेश की जनक्षति हुई। अन्य महान् आपत्तियां आईं। कई घर सूने पड़ गए। गांव के गांव ध्वंस हुए। सन् १८४० के लगभग अंग्रेजों को कुमाऊं में अपनी सत्ता जमाए पच्चीस वर्ष हो गए थे। उन्हीं दिनों सिक्ख सरदार जोरावर सिंह ने लद्दाख के मार्ग से कुमाऊं के सीमांत के किनारे-किनारे हिमालय के उत्तरी ढाल पर तिब्बती सेना को हराकर कैलाश मानसरोवर तक अपनी धाक जमा ली थी। कवि को उस मार्ग से युद्ध की आशंका हुई तो उसने वेदना भरे हृदय से निराशापूर्ण भावना व्यक्त की है :—

"को जाने था जल के मारग,
यहां फिरंगी आयेगा।
को जाने था हिकमत करके,
हिन्दुस्तान दबाएगा।
को जाने था सिक्खों का भी,
राज इसी बस आएगा।
कहै गुमानी हरि इच्छा का,
कोई पार न पाएगा।"[3]

गुमानी की समस्त रचनाओं में तत्कालीन समाज का चित्रण मिलता है। इनमें देश, जाति के उत्थान, पुनर्जागरण की भावना निहित है। इसलिए गुमानी जी खड़ी बोली के प्रथम कवि ही नहीं ठहरते अपितु प्रथम राष्ट्रीय कवि भी ठहरते हैं। राष्ट्रीय कवि वह है जो देश, जाति और समाज की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करे, जिसकी रचनाओं में जातीय उत्थान, जागरण, सामाजिक चित्रण, संस्कृति की अभिव्यंजना, मानवता का कल्याण और पराधीनता की मुक्ति का आह्वान निहित हों, गुमानी जी की रचनाओं में इन सभी

१. गुमानी विरचित काव्य संग्रह पृ० ४९
२. वही, पृ० ४९
३. वही पृ० ४६

भावनाओं का परिपाक हुआ है। गुमानी जी एक जाति के, एक अंचल के, एक वर्ग के कवि न होकर सम्पूर्ण भारत के कवि हैं। अंग्रेजी राज्य की पराधीनता के कारण देश में फैला हुआ भ्रष्टाचार, दरिद्रता, नैतिक हीनता, सांस्कृतिक पतन का चित्रण सम्पूर्ण भारत का है। अत यह निर्विवाद सत्य है कि गुमानी जी खड़ी बोली के प्रथम राष्ट्रीय कवि एवं जनकवि है। राष्ट्रीयता की पावन धारा का स्रोत गुमानी जी प्रवाहित कर गए थे, जिसने आगे चल कर महानदी का रूप ग्रहण किया। ऐसे महान् कवि का देहावसान सं० १६०३ में आषाढ़ कृष्ण अष्टमी को हुआ।

गुमानी जी शिल्प-वैचित्र्य और शब्द-चमत्कार के लिए प्रसिद्ध थे। वे बड़े विनोदी स्वभाव के थे। विनोद में कई रचनाएं लिख डालते थे—कुमाऊंनी बोली में इस प्रकार की कई रचनाएं मिलती है जैसे अन्य विक्रयकारि खशोक्ति, महालया श्राद्धविप्रोक्ति, पं० मनोरथ पंतोक्ति, पं जयदेव पंत विपर्योक्ति आदि प्रसिद्ध हैं।

गुमानी जी की लिखी कुमाऊंनी कविताएं मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक है। 'काफल', 'हिसालू', 'केला', 'दाड़िम', आदि फलों पर लिखी उनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति उनकी जागरूक सवेदनशीलता के साथ-साथ उनके विनोदप्रिय स्वभाव का भी प्रदर्शन करती है। *सुख किसे कहते हैं और कौन सा मनुष्य इस संसार में सुखी है इसका दार्शनिक विवेचन कवि* गुमानी ने कुमाऊंनी भाषा के इन पदों में किया है :—

कुणकुणो ख्द हो कणिक मडुओ को, हो साग या लूण हो।
घर को घ्यू आंगुलेक हो, भुटणसू या तेल चौख्यूण हो।
ह्यूना म्हैण प्रभात घाम, देलि में या ब्याल को तैल हो।
बाड़ो लग कुनको सदा हो, साग हरियों मेलो भलो गेल हो।
निक लुकड़ा, हृथकान बिन खसमकी जो घीण ज्वैकन नि हो।
ये है लग खुशि ने सिवाय घर में जो ऋण कतुक नि हो।

"मडुवे के आटे की गुनगुनी रोटी हो, साथ में साग हो, या केवल नमक हो।
रोटी चुपड़ने को थोड़ा सा घर का घी हो, बघारने के लिए तेल हो।
हेमन्त मास में प्रातःकाल देहली में घाम आए अथवा सायंकाल की धूप हो।
घर के आगे ही अपनी ही वाटिका सदा हो (उसमें) साग हरा भरा, उर्वरी भली बस्ती हो।
अच्छे कपड़े (या) जेवर न पाने पर भी पति की यदि घृणा पत्नी को न हो।
(तो) इससे अधिक खुशी नहीं कोई सिवाय इसके कि घर में ऋण किंचित् भी (देना) न हो।

अनेक भाषाओं में रचना करना गुमानी की एक और विशेषता है। निम्नलिखित पद की प्रथम पंक्ति हिन्दी, दूसरी कुमाऊंनी, तीसरी नेपाली और चौथी संस्कृत में है :—

बाजे लोग त्रिलोकनाथ शिव की पूजा करें तो करें।
क्वै क्वै भक्त गणेश का जगत में बाजा हुनीत हुन॥
राम्रो ध्यान भवानि का चरण में गर्दन कसेले गरन।
धन्यात्मातुलधामनीह रमते रामे गुमानी कविः॥[1]

गुमानी जी की इस प्रकार की बहुभाषा-बद्ध रचनाएं अनेकों मिलती है जिनकी प्रथम

1. गुमानी नीति

तीनों पंक्तियां संस्कृत में होती हैं और चौथी हिन्दी या कुमाऊंनी मे।[1]

गुमानी की रचनाएं प्रमुखतया हिंदी और संस्कृत मे है अन्य भाषाओ—ब्रज, कुमाऊंनी, नैपाली—की रचनाए विनोदपूर्ण क्षणों की रचनाएं है। सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार —

"वे (गुमानी) संस्कृत और हिन्दी के आढ्य लेखक थे। उनकी कृतियों की प्रशंसा उनकी जन्म-भूमि में आज भी बहुत अधिक होती है परन्तु उनकी प्रसिद्धि भारत के मैदानों मे अधिक है। ये मैदान जैसा कि हम देख चुके है तिरहुत तक फैले हैं जो उनकी जन्म-भूमि से लगभग ५०० मील दूर है।[2]

निम्नलिखित पद की प्रथम तीन पंक्तिया संस्कृत में और चौथी पंक्ति हिंदी में है:—

शिरसि जटाजूटं बिभ्रत् कौपीनन्धृतवान्।
भस्माशेषं वपुषि दधानो हरिचर्माम्बरवान ।।
तृष्णामुक्तः स्वैरविहारी योगकलाविद्वान ।।
अलख निरंजन जपता योगी ओन्नमोनारान् ।।
(अवधूत वर्णन)[3]

गुमानी जी कुमाऊंनी, हिन्दी व गोरखाली लोकोक्तियों को समस्यापूर्ति के रूप में लिया है।

समस्या—पीड़ कुठोर कि वैद बैठाणो
पूर्ति —स्वप्नगत स्मरसुनुनिमित्रं कष्पलपाप्लवलोमविधित्म।
हेतुमपृच्छवुगाबिति वाणो पीड़कुठौर कि वैद बैठाणो ।।
समस्या—चौरहि कुलिया मिल गए पहरा किसका होय।
पूर्ति —मन्त्रिभिररिमिलितैः कृतौ हृतराज्य: सुरथोहि।
चौरहि कुतिया मिल गई पहरा किसका होय ।।

इसी प्रकार कवि ने अनेकों भाषा की लोकोक्तियों को समस्यापूर्ति के रूप मे लिया है। गुमानी की समस्यापूर्ति के विषय मे सर जार्ज ग्रियर्सन के शब्द उल्लेखनीय हैं। उन्होंने मुख्यतः संस्कृत मे रचनायें की हैं परन्तु वे ऐसी कई सूक्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं जिनमें पहली तीन पंक्तिया संस्कृत की होती थीं और चौथी कुमाऊंनी या हिन्दी की होती थी। ये सूक्तियां उत्तर भारत मे अत्यन्त लोकप्रिय है।

गुमानी जी द्वारा प्रवाहित राष्ट्रीय भावना की पावन धारा को अंग्रेजी सरकार भी रोक न सकी। कूर्मांचल के प्रथम समाचार पत्र "अल्मोड़ा अखबार" (१८७१ ई०) में इस

१. He composed principally in Sanskrit, but he is neverthless best known for a number of curious verses, in each of which the first three lines are in Sanskrit while the fourth is in Kumaoni or Hindi. These are very popular in Northern India. Sir George Grierson–Linguistic Survey of India vol. 9, Part IV pp 109.

२. He (Gumani) was a prolific author both in Sanskrit and in Hindi. His works were still greatly admired in the land of his birth but his reputation in the plains of India, which, as we have seen, extends to Tirhut, some five hundred miles away: The Indian Antiquary—Vol 38, July 1909.

३. गुमानी नीति

प्रकार की अनेकों रचनाए मिलती हैं जिनका विवेचन आगे किया गया है। अल्मोड़ा अखबार जून १६१३ से राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख अस्त्र का काम करने लगा।[1] गुमानी के बाद राष्ट्रीय भावना की धारा कुमाऊंनी तथा खड़ी बोली दोनो के साहित्य में समान रूप से मिलती है। कृष्ण पाडे कुमाऊंनी बोली के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं जिन्होंने लोक गीतों को राष्ट्रीय रंग दिया। खड़ी बोली मे अनेकों कवियों ने कविता कामिनी को राष्ट्रीयता का स्वर दिया। शनैः-शनैः सम्पूर्ण भारतवर्ष में गंगा-यमुना के पावन जल के समान स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीय भावना का स्वर सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया।

कूर्मांचल के कई कवियों ने स्वात:सुखाय की भावना से साहित्य सृजन किया, जिनकी साहित्य साधना हिमालय की उपत्यकाओं तक ही सीमित रही। कूर्मांचल के भ्रमण काल मे मुझे अनेकों अप्रकाशित रचनाएं एवं कृतियाँ मिली, जिनका मैं केवल उल्लेख मात्र ही कर सका हूं। "अल्मोड़ा अखबार," शक्ति की पुरानी फाइलों में अनेकों कविताएं, कहानियां मिली, जिनका बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है।

स्वतन्त्रता संग्राम मे कूर्मांचलवासियों ने बहुत बड़ा त्याग किया। ब्रिटिश सरकार ने कूर्मांचलवासियों की कट्टर राष्ट्रीय वृत्ति को देखकर उनके सेना में भरती ने पर रोक लगा दी थी तथा कोई भी कूर्मांचलवासी बड़े पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता था। स्वाधीनता की यह लहर कुमाऊं के घर-घर तक जन-जन तक फैली। इस विषय में एक लोकोक्ति अब तक प्रचलित है कि "कुमाऊं का बैल भी कांग्रेसी होता है।" यह कथन वहां की राष्ट्रीय भावना की पुष्टि भली-भांति कर देता है। कूर्मांचल के कवि रामलाल वर्मा ने स्वाधीनता को "देवी" के रूप में देखा है। उसे आमन्त्रित किया है, उसकी उपासना की है और उसका आह्वान किया है—राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत गीत गाये। ये गीत उस समय गाये जब कि अंग्रेजी सरकार सशक्त थी। उसके विरुद्ध बोलना लोहे के चने चबाना था। वीर प्रसूता भूमि के लालों ने तनिक भी चिन्ता नहीं की—

स्वाधीनते अब वेगि आओ,
हम पड़े मंझधार में,
व्यर्थ है जीवन सभी का,
तुझ बिना संसार में ॥१॥
सब सुखों की जन्मदात्री,
तु हि है स्वाधीनता।
कौन कहता है कमी
किसको तेरे दरबार में ॥२॥
अन्याय अत्याचार सब कुछ
सह रहे हैं तुझ बिना
दासता से बंध रहे हैं
हाय! दु:खागार में ॥३॥[2]

देश की दुर्दशा अब कूर्मांचल के कवि गौर्दा (गौरीदत्त) से सही नहीं गई, इसलिए वे राष्ट्र नेता को देश की स्थिति का बोध कराते हुए उसका उद्धार करने का संदेश देते हैं—

---

१. कुमाऊं का इतिहास—५००
२. स्वाधीनते : आओ-शक्ति—२० फरवरी, १६२१

प्रस्तुत मल्लार (कुमांउनी गीतों का एक प्रकार) में स्वयं गोपी बनकर अपनी व्यथा का संदेश भेजते है। कवि की व्यथा कहीं व्यक्तिगत कहीं देशगत है—

तिलकदास लाल लालादिक
नेता स्वर्ग सिधारे
घर घर में बड़ी फूट पड़ी है
हो रहे दल न्यारे न्यारे
गुलाम बनने को पढ़ जात हैं
धन है पुषकन सारे
फैशन को अपनाया सबने
खबर न देत देशारे
सगरी सत्ता वही चली है
अब यहाँ धरो कहारे
मरन समय में मुहु डारन को
सुवर्ण न पास रहा रे
कमला नेहरू कृष्णकान्त से
कहियो दुख हमारे
मझदार पड़ी भारत की नैय्या
तुम ही खेवन हारे
अपना कौल निभाओ मोहन
तुम श्यामा हम कारे
अब मत देर लगाओ आवो
तुमरो दास पुकारे[1]

जिस प्रकार कृष्ण भगवान् ने द्रुपद सुता की पुकार सुनकर उसकी लाज रखी थी। कवि श्यामाचरण पन्त भी उसी प्रकार आज कृष्ण को आह्वान् कर रहे हैं क्योंकि भारतमाता आज ब्रिटिश सरकार की दासता में पड़ी है। कवि भारत माता की मुक्ति के लिए प्रार्थना करता है:—

द्रुपद-सुता सी अबला भारत माता की सुन पुकार
एक बार फिर आओ मोहन पावन करने कारागार
सौदामिनी समान शुभ्र शुभ शक्ति शालिनी ज्योति प्रचार
करो भरतसुत नर नारी गण उत्सुक करते जय जय कार।[2]

पं० दुर्गादत्त पांडेय ने श्री कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर यदुनन्दन को भारतमाता की मुक्ति के लिए प्रार्थना की है परन्तु कवि का यदुनन्दन महात्मा गांधी के रूप में है और कृष्ण भगवान का शंख, चक्र, गदा, पद्म महात्मा गांधी के असहयोग, चर्खा, सत्याग्रह, अहिंसा हैं। अंत में कवि याचना करता है कि संपूर्ण देशवासी महात्मा गांधी का अनुकरण करें और उन्हीं का आदर्श ग्रहण करें:—

१. गौदी की मल्लार—शक्ति २२ अगस्त, १९३६
२. आह्वान—श्यामाचरण पंत—शक्ति १५ अक्तूबर, १९१८

मोहन ! क्या 'मोहन' को भेजा
अब करने भारत उद्धार !
शंख चक्र अरु गदा पद्म थे
ये यदुनन्दन तुम्हरे हाथ
असहयोग का शंख, सुदर्शन—
चक्र है चर्खा गांधी साथ
सत्याग्रह की गदा लिए हैं
पद्म अहिंसा इनका नाथ
मोर मुकुट था शीस तुम्हारे
शांति मुकुट है इनके माथ
युगल चरण में शीस नवाकर
विनय आप से है यदुराज
गांधी का अनुकरण करें सब
ले आदर्श तुम्हारा आज
देश निवासी कपट रहित हों
रखे भारत माँ की लाज
दीजे यह वरदान कृपा कर
हमें प्राप्त हो शीघ्र स्वराज[1]

अब कूर्मांचल के कवियो ने भगवान की याचना प्रार्थना, व अंध भक्ति पर विश्वास खोकर स्वयं स्वतंत्रता संग्राम में कूदने के लिए सारे प्रदेश को जगाना आरम्भ कर दिया है:—

जाग रे जाग पहाड़ी देश
लिए नव उर का संदेश
जगा बंगाल, जगा पाँचाल
जगा है सारा देश अशेष
जाग तू भी मेरे अभिमान
वीर बलवानों के शुचि वेल
हिमांचल की गोदी के लाल
आज भारत की लाज संभाल
अरे प्रहरी मत सो उठ जाग
शुभ्र अंचल पर लगा न दाग[2]

अब सम्पूर्ण पर्वत प्रदेश जाग चुका है। स्वतंत्रता के सेनानी स्वतंत्रता संग्राम के लिए तैयार खड़े हैं। कवि रामलाल वर्मा उन्हें युद्ध में जाने से पूर्व अपना संदेश देता है, प्रोत्साहित करता है और प्राणों की बाजी लगाने के लिए ललकारता है:—

कर्म वीरो ! आ डटो इस, पुण्य के संग्राम में
स्वार्थ को अब त्याग दो तुम मातृ भू के नम में ॥

---

१. श्रीकृष्ण जन्म—शक्ति—३० अगस्त १९२१
२. हमारी जागृति—ललिताप्रसाद पांडे—शक्ति, ४ अप्रैल, १९१६

शस्त्र से नहीं आत्मबल से युद्ध करना है तुझे
जय तो निश्चय हो जायगी जो शांति रखी काम में।
आसुरी शक्ति की होती हार निश्चय सर्वथा
लेकिन न डरना युद्ध से निर्भय फिरो मैदान में ।।
मारना नहीं तुम किसी को किन्तु जो मारन पड़े
हँस हँस के प्राणों को तजो अरु आओ सुरधाम में ।।
पैदा हुआ जो वह मरेगा धर्म है संसार का
देश हित तब जाय जीवन, हानि क्या इस काम में ।।
नेतृत्व में गांधी के वीरो बढ़े चलो आगे बढ़ो
आराम पाओ राम फिर स्वातंत्र्य के शुभकाम में ।।[1]

अब कवि केवल तन से युद्ध करने के लिए ही नहीं अपितु देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने की प्रेरणा देता है:—

यही पुण्य है, यही दान है, यही ज्ञान और ध्यान
सब धर्मों का धर्म यही है, यही है मोक्ष निर्माण
यही कहते है वेद कुरान करो तन मन धन सब बलिदान।[2]

कवि अब तत्कालीन शासन के अत्याचारों के प्रति निर्भीक होने को कहता है और प्रतिष्ठापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए स्वतंत्रता संग्राम में निर्भय होकर लड़ने का आह्वान करता है :—

समय नहीं है पशुबल से अब डर जाने का
आया है यह काल मान पर मर जाने का
निर्भय हो कर वीर गण आओ हो जावे खड़े
हो इष्ट सिद्धि के मार्ग में चाहे क्यों न कंटक पड़े।[3]

कवि देखता है सम्पूर्ण देश में स्वाधीनता संग्राम का नया जोश, नया उत्साह, नयी उमंग उत्पन्न हो गई है। यह ज्वाला इतनी विकराल हो गई है कि अब इसे कोई भी नहीं रोक सकता है। अब स्वतन्त्रता की वेदी पर रणचंडी का तांडव होने को है:—

साहस भारत का आया है
कौन हमें अब रोकेगा ?
तीर तोप का वार अमर हो,
हम सब का हिय सह लेगा

तांडव होगा रणचंडी का
भारत के भूतों के बीच
डिम्भ तुम्हीं को बनना होगा
ओ अन्यायी आँखें मीच

---

१. रामलाल वर्मा—शक्ति ८ फरवरी, १९२१
२. बलिदान—गोविन्द बल्लभ पन्त—शक्ति १५ मई, १९२३
३. जगन्नाथ जोशी—शक्ति २१ दिसम्बर, १९२०

हटो फिरंगी हटो यहाँ से
छोड़ो भारत की ममता
सम्भव क्या यह हो सकता है
होगी हम तुम में समता

कूर्मांचल में स्वतंत्रता के वीर सेनानियों को प्रोत्साहित ही नहीं किया बल्कि उनके प्रति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में श्रद्धा भी है। श्री बदरीदत्त पांडेय के जेल यात्रा से लौटने पर उनका हार्दिक स्वागत हुआ। प्रस्तुत कविता उस समय की जनभावना का प्रतिनिधित्व पूर्ण रूप से व्यक्त करती है :—

स्वागत भारत जननी-सेवक
स्वागत पर्वत नव द्विजराज
सादर स्वागत सम्पादक वर
शक्तिवन्त गुण गौरव आज
सभ्य शिरोमणि वीर धीर तप
कृष्ण भवन कर आए आज
आओ कूर्मांचल केशरि, पुनि
गरजो जिससे मिले स्वराज[1]

राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतंत्रता आन्दोलन के विकास के साथ कूर्मांचल में सामाजिक चेतना की लहर भी दौड़ी। कुमाऊं में जातिपांति का भेदभाव बहुत था। अछूतोद्धार की भावना से उप्रेती ने "अछूत की आह" कविता में कहा है :—

न समझिए दुख 'बूँद' है
ये हैं कड़ी चिनगारियाँ
दल तू संसार को क्या
ले 'आह' की अंगारियाँ
हिन्दुओं के हिन्दुत्व पर
दो बूँद आँसू हैं, गिरे
पोंछिए अब शीघ्र ही
हे कृष्ण! हे अच्युत हरे
बधा है न ठाकुर गले से
तभी हो क्या कटे पड़े
कह क्या पर धर्म ध्वजी
डंडा लिए है खड़े
भील रमणी के बेर तुमने थे चाव से खाये नहीं
वह भी हमारी पूर्वज थी, क्या भूल करता हूं कहीं[2]

कूर्मांचल के प्राचीन कवियों ने राष्ट्रीय चेतना का स्वर फूंका। स्वतंत्रता आन्दोलन की दुदभी बजायी। सम्पूर्ण देश में एक नई लहर नई क्रान्ति उत्पन्न की। परन्तु प्रकृति की गोद में क्रीड़ा करनेवाला कवि उससे विलग न हो सका। उसने वहां की छटा के गीत भी

१. पं० बदरीदत्त पाण्डेय जी का स्वागत—शक्ति २५ नवम्बर, १९२२.
२. अछूत की आह—भैरवदत्त उप्रेती—शक्ति ११ अप्रैल, १९२६

गाए हैं, जिनमें कूर्माचल छटा[1], प्रकृति[2], पीलाबसत[3], सावन[4] कविताएं विशेपरूप से उल्लेखनीय हैं, इसी परम्परा के कवियों मे भोलादत्त पन्त 'भोला', धर्मानन्द पन्त, चन्द्रसिह तड़ागी, गोपाल शाह, विष्णुदत्त वैद्यराज, मनोहर पंत, चन्द्रादत्त पाडे, तारादत्त पांडे आदि के नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीयता के स्वर के साथ-साथ कूर्माचल की प्रकृति छटा का वर्णन सजीव ढंग से किया है। इसी समय के कवियों मे शिवदत्त सत्ती भी है। इनकी रचनाएँ उपदेशात्मक होती है। इनकी कविताओं के संग्रह बुद्धि प्रवेश पहला, दूसरा और तीसरा भाग में संग्रहीत है। काव्यात्मकता के दृष्टिकोण से इनकी रचनाओं का अधिक महत्व नहीं है परन्तु कूर्माचल की हिन्दी साहित्य की परम्पराओं मे इसका ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। इन्होंने सामाजिक कुरीतियो जैसे रिश्वतखोरी, अपव्यय, जमींदार, किसानों की शिक्षा, वेश्यावृत्ति आदि पर रचना की है।

---

१. लीलाधर उप्रेती — शक्ति १५ अक्टूबर, १९३८
२. यमुनादत्त जोशी — शक्ति २४ अगस्त, १९२९
३. महेशचन्द्र पंत — शक्ति २८ मार्च, १९२९
४. [illegible] जोशी 'मधुप' — शक्ति २६ अगस्त, १९३१

पंत : छायावाद

द्विवेदीयुगीन कवियों की रचनाओं के वर्ण्य-विषय अधिकांशतः इतिहास व पुराण से लिए जाते थे, जिनकी शैली तथा अभिव्यंजना प्रणाली पर प्राचीन आदर्शों का ही प्रभाव था। ये रचनाएं राग-विराग से मुक्त विषय-प्रधान होती थीं, इनमें बहिर्जगत तथा समाज-कल्याण की प्रमुखता होती थी। सन् १९१५-२० में कविता क्षेत्र में नया मोड़ आया। "वे द्विवेदी-युगीन कवियों की भांति फूल को फूल और चांदनी को चांदनी समझकर उसका इतिवृत्तात्मक चित्रांकन नहीं करते थे, अपितु फूल और चांदनी को देखकर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अपने हृदय में उठने वाली सूक्ष्म भावनाओं को अपनी कविता का विषय बनाने लगे। स्पष्टतः "छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म प्रतिक्रिया थी।"[1] "हिन्दी में छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियां अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य की प्रवृत्तियों के इतने अधिक अनुरूप हैं कि वे उनकी छायामात्र प्रतीत होती हैं।...दोनों महायुद्धों के बीच हिन्दी छायावादी कवियों ने १९वीं शताब्दी के अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों से बहुत ग्रहण किया। उनमें से तो कुछ ने सीधे अंग्रेज़ी कवियों से सीखा और कुछ ने बंगला साहित्य के माध्यम से अंग्रेज़ी रोमांटिक काव्य की विशेषताओं को अपनाया।"[2] हिन्दी छायावाद की उत्पत्ति का अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य की छायामात्र कहना अथवा सीधे अंग्रेज़ी रोमांटिक काव्य का प्रभाव या बंगला के माध्यम से प्रभाव कहना युक्तिसंगत नहीं। छायावाद की उत्पत्ति में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के अतिरिक्त देश [illegible], सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी प्रमुख भाग रहा है। छायावाद [illegible] ार १९२९ के असफल राष्ट्रीय आन्दोलन की तिक्त स्मृतियां थीं। [illegible] देश की राष्ट्रीय-जागृति की हलचल में ही पनपी और फली-फूली है और उनकी मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और [illegible] है।[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "द्विवेदी युग की गद्यवत् रूखी और [illegible] के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई वही पीछे छायावाद कहलाया है। [illegible] लक्ष्य काव्यशैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। हिन्दी [illegible] ही नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त हो चुकी थी। कसर थी तो आवश्यक व्यंजक शैली की कल्पना और संवेदना के अधिक योग की। तात्पर्य यह है कि छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था।"[4]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के कथनानुसार नई छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, परन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक

१—आधुनिक हिन्दी काव्य में छायावाद, पृ० २.

२—हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० १४०.

३—हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० ८३.

४—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५६.

है। उसे हम बीसवी शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। छायावाद मानव-जीवन, सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न रूप मानता है।"[1]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी छायावाद को अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली मात्र ही स्वीकार नही करते, बल्कि, "छायावाद को हम शुक्ल जी के अनुसार अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नही मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक अस्तित्व और गहराई है।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आगे छायावाद को अंग्रेजी और बंगला कविताओं की छायामात्र स्वीकार करते हुए कहा है: "पुराने ईसाई संतों के छायाभास तथा यूरोपीय काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगला की ऐसी कविताएं "छायावाद" कही जाने लगी थी। यह "वाद" क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाए रास्ते का दरवाजा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नए कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नही था। इसका दूसरे साहित्य-क्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियो का इस पथ पर एक साथ चल पड़ना और कुछ दिनों तक इसके भीतर अंग्रेजी और बंगला की पदावली की जगह ज्यो का त्यों अनुवाद रखा जाना, ये बाते मार्ग की स्वतंत्र उद्भावना सूचित नहीं करतीं।"[3] शुक्ल के मत का समर्थन करते हुए डा० केसरीनारायण शुक्ल का मत है: "छायावाद का अपना इतिहास है। इसका मूल बंगला साहित्य के छायादृश्य पद में मिलता है। ब्रह्म-समाज की उपासना का ढंग रहस्यात्मक है। इसके उपासना के गीतों में उस प्रियतम की झलक का वर्णन होता है जिसका उपासक को कभी-कभी आंशिक आभास मात्र मिलता है। उपासक के लिए प्रतीकों का उपयोग आवश्यक हो जाता है क्योंकि इस माध्यम द्वारा वह 'दिव्य ज्योति' को धूमिल बनाकर आत्मा के साक्षात्कार के उपयुक्त बनाता है। इन प्रतीकों के सहारे उन्हें 'उस प्रियतम' का आभास भी मिल जाता है। उस प्रियतम की अपूर्व प्रतिकृति होने के कारण इन प्रतीकों को बंगला में 'छायादृश्य' कहा गया। अतः रहस्यात्मक प्रतीकों (छायादृश्य) से युक्त कविता का नाम छायावादी कविता पड़ा।"[4] शांतिप्रिय द्विवेदी छायावाद को इतिवृत्तात्मकता के आगे की वस्तु स्वीकार करते हुए कहते हैं, "इतिवृत्तात्मक कविता का सम्बन्ध यदि स्थूल शरीर से है तो छायावाद का सूक्ष्म प्राणों से। इतिवृत्तात्मक दृष्टि का पदाधिकार यदि पुष्प के सर्वांग का विवरण प्रस्तुत करेगा तो छायावादी कवि उस पुष्प के भीतर से केवल उस प्राणमय जीवन को अपनाएगा जो उसके साथ आत्मीयता स्थापित किए हुए है।"[5]

जैसे :

"रंगीले मृदु गुलाब के फूल !
कहाँ पाया मेरा यौवन ?
प्राण, मेरा प्यारा यौवन ?
रूप का खिलता हुआ उभार,

१—आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ३५२.
२—बीसवीं शती का साहित्य, पृ० २५०.
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५१.
४—आधुनिक काव्य-धारा, पृ० २६२-६३.
५—कवि और काव्य, पृ० १५०.

मधुर मधु का व्यापार,
चुभे उर में सौ-सौ मृदु-शूल,
खुले उत्सुक दृग द्वार,
हृदय हो से गुलाब के फूल
तुम्हीं-सा है मेरा यौवन ।[1]

आलोचकों ने प्रकृति काव्य को छायावाद की संज्ञा दे दी जिसे कवियों ने स्वीकार कर लिया। इस विषय मे पंत जी ने लिखा है कि 'वीणा' से लेकर 'ग्राम्या' तक मेरी सभी रचनाओं में प्रकृति व्याप्त है।"[2] छायावाद में प्रकृति-चित्रण अत्यधिक है परन्तु अभिनव रूप में। इसमें प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता है। चेतना का आरोप है।

डा० रामकुमार वर्मा छायावाद को अंग्रेजी के "मिस्टिसिज्म" का पर्याय मानते हैं। आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावाद को स्पष्ट करते हुए पुनः कहते हैं : "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहां इस का सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।"[3] परन्तु आचार्य शुक्ल अपने इस कथन का खण्डन करते हुए लिखते हैं : "छायावाद समझकर हिन्दी में जो कविताएं लिखी जाती हैं उनमें अधिकांशतः का छायावाद से या रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उनमें से कुछ तो विलायती अभिव्यंजना के आदेश पर रची हुई बंगला कविताओं की नकल पर, और कुछ अंग्रेजी कविताओं के लाक्षणिक, चमत्कारपूर्ण वाक्य, शब्द, प्रतिशब्द उठाकर जोड़ी जाती हैं।" डा० नगेन्द्र स्वप्नों और कुण्ठाओं के मिश्रसंचर को ही छायावाद मानते हैं। उनका मत है : "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। जिस प्रकार भक्तिकाव्य जीवन के प्रति एक प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण था और रीतिकाव्य एक दूसरे प्रकार का, उसी प्रकार छायावाद भी एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का आधेय नव-जीवन के स्वप्नों और कुण्ठाओं के सम्मिश्रण से बना है, प्रकृति अन्तर्मुखी और वायवी है और अभिव्यक्ति हुई है प्रायः प्रकृति के प्रतीकों द्वारा।"[4]

परन्तु समीक्षक इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि "कोई भी प्रबल साहित्यिक प्रवृत्तिमात्र अंग्रेजी या बंगला प्रभाव से उद्भूत नहीं हो सकती और न किसी विदेशी प्रवृत्ति की नकल में किसी भाषा में कोई नवीन प्रवृत्ति पनप ही सकती है।"[5]

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी अंग्रेजी की रोमाण्टिक कविता को ही छायावाद का प्रेरणा-स्रोत स्वीकार करते हुए कहते हैं—"इस श्रेणी (छायावाद) की कविता लिखनेवालों को मूल प्रेरणा इंगलैण्ड के रोमांटिक भावधारा की कविता से प्राप्त हुई थी और इसमें सन्देह नहीं कि उक्त भावधारा की पृष्ठभूमि में ईसाई सन्तों की रहस्यवादी साधना अवश्य थी। ...अंग्रेजी के रोमांटिक साहित्य से हटकर यह प्रभाव बंगला और हिन्दी के आधुनिक

१—पल्लव, पृ० १३६.
२—आधुनिक कवि भाग २ पृ० ८.
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६९८.
४—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृ० १५.
५—कवि सुमित्रानन्दन पंत और उनका आतिनिधि काव्य, पृ० २६.

साहित्य (छायावाद) में आया था।[1]

डा० देवराज उपाध्याय ने छायावाद को मनुष्य की कोमल भावनाओं के प्रति द्विवेदी युग की उपेक्षा के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वीकार करते हैं : "छायावाद अनाधुनिक पौराणिक धर्मचेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह था।"[2] किन्तु उनका विश्वास है कि "छायावाद की प्रेरक शक्ति "प्रेम और सौन्दर्य" की वासना ही थी; न कि आध्यात्मिक पूर्णता की भूख।"[3]

छायावाद की उत्पत्ति के मूल में बताये गए ये सभी कारण एकांगी और अपर्याप्त हैं। वस्तुतः छायावाद के जन्म का इतिहास समझने के लिए हमें तत्कालीन परिस्थितियों को समझना पड़ेगा। कोई भी प्रबल साहित्यिक प्रवृत्तिमात्र अंग्रेजी या बंगला से उद्भूत नहीं हो सकती और न किसी विदेशी प्रवृत्ति की नकल में किसी भाषा में कोई नवीन प्रवृत्ति पनप सकती है। विगत युग की साहित्यिक प्रवृत्ति खड़ी नहीं रह सकती, जब तक उसकी जड़ें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की गहराई में न प्रविष्ट हों। छायावाद ईसाई सन्तों या रवीन्द्र की कविताओं या अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की नकल नहीं। वह मात्र द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली की प्रतिक्रिया भी नहीं। वह देश के तद्युगीन सामाजिक जीवन और उसकी परिस्थितियों की युग की काव्यचेतना पर प्रतिक्रिया है। उसकी जड़ तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों में है।[4]

तद्युगीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ ही छायावाद की मूल प्रेरक शक्तियां थीं और जिस अंग्रेजी रोमांटिक काव्य और रवीन्द्रयुगीन बंगला कविता के प्रभाव की बात कही जाती है।

काव्य की इस नई दिशा में पहला प्रयास प्रसाद जी ने किया, किन्तु "हिन्दी छायावाद के मुख्य प्रवर्तक सुमित्रानन्दन पंत हैं, जिन्होंने अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का गहन अध्ययन किया है। अंग्रेजी कवियों के प्रभाव को व्यक्त करते हुए पंत जी ने कहा है—'अंग्रेजी लेखकों में से शेक्सपियर हिन्दी कवियों को सर्वाधिक प्रिय था।' छायावाद-युग के आरम्भ में शेक्सपियर के सुखान्त नाटक हिन्दी कवियों को विशेष प्रिय थे। सुमित्रानन्दन पंत 'मिड समर्स नाइट ड्रीम' और 'टैम्पेस्ट' में वर्णित परियों के जगत् से विशेष आकर्षित हुए। सुखांत नाटकों में 'ऐज यू लाइक इट', 'ट्वैल्थ नाइट' और 'द कमेडी ऑफ् एरर्स' भी उनके प्रिय नाटक थे।"[5]

"पल्लव" में मैं उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कवियों—मुख्यतः शैली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टैनीसन से विशेषरूप से प्रभावित रहा हूं, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन-युग का सौन्दर्यबोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है।[6] "पल्लव" की भूमिका को हिन्दी छायावादी काव्य का मैनीफैस्टो कहा जा सकता है। उन्होंने ब्रजभाषा और रीतिकालीन काव्य-परम्परा के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया। रीतिकालीन काव्य की भाषा,

---

१. अवन्तिका, काव्यालोचना, जनवरी, १९५४, पृ० २११.
२. छायावाद का पतन, पृ० १३-१४.
३. वही, पृ० ६.
४. कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य, पृ० २६.
५. हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० १४४.
६. आधुनिक कवि, भाग २—पर्यालोचन, पृ० ११.

शैली, विषय और उपादानों के विषय में उनके कथन उल्लेखनीय है :

"भाव और भाषा का ऐसा शुष्क प्रयोग राग और छन्दो की ऐसी एक-स्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एव तुकों की ऐसी अश्रांत उपल-वृष्टि क्या ससार के किसी और साहित्य में मिल सकती है।...आंख की उपमा? खजन, मृग, कज, मीन इत्यादि; होंठों को? किसलय, प्रवाल, लाल, लाख इत्यादि; और इन धुरंधर साहित्यकारो की? शुक, दादुर, ग्रामोफोन इत्यादि।"[1]

तब ब्रजभाषा को ही काव्य-रचना के लिए उपयुक्त माना जाता था पर पंत के विचार से ब्रज अनुपयुक्त है। वे कहते है: "हम ब्रज की जीर्ण-शीर्ण छिद्रों से भरी, पुरानी चोली नहीं चाहते, उसकी संकीर्ण कारा मे बन्दी हो कर हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है।"[2] अतः पत ने "काव्य भाषा के रूप में खडी बोली को ब्रजभाषा के स्थान पर अपनाया तथा उसमें 'आधुनिक इच्छाओं के अंकुर', 'भूत की चेतावनी' और 'भविष्य की आशा' के दर्शन किए।"[3] चित्र भाषा और सस्वर शब्दों को वे कविता के लिए आवश्यक समझते है।[4] अलकारों का प्रयोग वे रीतिकालीन कवियों की भांति भाषा की सजावट के लिए नहीं, वरन् भाव की अभिव्यक्ति के लिए मानते हैं।[5] भाव तथा भाषा का पूर्ण रूप से सामंजस्य स्थापित करने के लिए वे हिन्दी काव्य में मुक्त-छन्द के प्रयोग के समर्थक हैं।[6]

काव्य-रचना में व्यक्तित्व को प्रधानता देने के कारण उनका काव्यादर्श अंग्रेजी रोमांटिक परिवर्तन के काव्यादर्श के अनुरूप कहा जा सकता है। पंत ने इस प्रकार हिन्दी कविता में नूतन क्रान्ति का सूत्रपात किया। द्विवेदी-युग में खड़ी बोली काव्यात्मक अनुभूति और कल्पना की अनवरुद्ध अभिव्यक्ति करने में असमर्थ रही थी। किन्तु पंत ने खड़ी बोली को भाव की सफल एवं पूर्णाभिव्यक्ति के उपयुक्त सिद्ध कर दिया।[7] पंत जी ने शब्दों को व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करके अपनी रुचि के अनुसार सस्वर और चित्रात्मक बनाने का प्रयत्न किया और इस प्रकार खड़ी बोली में काव्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए (कोमल कांत पदावली) एक सरल माध्यम ढूंढ़ निकाला। पंत ने न केवल काव्य-भाषा में ही क्रांति उपस्थित की, वरन् काव्य के विषयो और उपादानों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। उनके पहले तीन काव्यग्रन्थ—"वीणा", "पल्लव" और "गुंजन" इस नवीन काव्य-शैली के सुन्दर आदर्श हैं तथा छायावादी कविता की सर्वोत्तम कृतियों में से हैं।

"मेरा मधुकर का सा जीवन, कठिन कर्म है कोमल मन।" के कवि सुमित्रानन्दन पंत प्रकृति और मानव के सुन्दर रूप हैं। उनकी कविता में सौन्दर्यप्रियता और स्निग्ध कोमलता का ही रस प्रवाहित है। साधारणतः प्रकृति के सुंदर रूप ही ने उन्हें लुभाया है, प्रकृति का उग्र रूप उन्हें कम रुचता है।[8]

१. पल्लव, पृ० ८.
२. वही, पृ० ११.
३. वही, पृ० १२.
४. वही, पृ० १७.
५. वही, पृ० १८.
६. वही, पृ० ३२.
७. हिंदी-काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० १४६.
८. आधुनिक कवि, पृ० ३.

पंत जी प्रकृति के सुकुमार कवि हैं और मूलतः वे सौन्दर्यवादी कवि हैं। अपने बाल्य-काल में ही सुदूर क्षितिज तक फैली कूर्मांचल की पर्वतमालाओं की छटा, जन्मभूमि कौसानी की सौन्दर्यपूर्ण भूमि ने उन्हे अपने नीरव सम्मोहन से विभोर कर दिया था। "कविता करने की प्रेरणा मुझे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्म-भूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आंखें मूंदकर लेटता था तो वह दृश्य-पट चुपचाप मेरी आंखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज मे दूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल, कूर्मांचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमालय को धारण की हुई है और अपनी ऊंचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाई हुई है, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबाकर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं।[1]

पंत जी ने अपनी प्रथम रचना संग्रह "वीणा" के विषय में कहा है : "मेरी प्रारम्भिक रचनाएं "वीणा" नामक संग्रह में प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धरकर चपल मुखर नूपुर बजाती हुई अपने चरण बढ़ाती रही है। समस्त काव्य प्राकृतिक सुन्दरता की धूप-छाँह से बुना हुआ है। चिड़िया, भौंरे और तितलियां, झरने, लहरें इत्यादि जैसे मेरी बाल-कल्पना के छायावन में मिलकर वाद्य-तरंग बजाते रहे हैं।"[2] पंत जी की रचनाओं में प्रकृति के उत्कट प्रेम के दर्शन होते है। पंत के लिए प्रकृति सौन्दर्य और प्रेरणा की वस्तु है।

पंत जी ने प्रसाद, निराला, महादेवी सबसे अधिक सूक्ष्मता और गहराई से प्रकृति के प्राणों को पहचाना है। बाल कवि के रूप में "कागज कुसुम", "सिगरेट का धुंआ" आदि रचनाएं "अलमोड़ा अखबार" में छपीं। १५ वर्ष की आयु में "हार" एक उपन्यास भी लिखा, जिसमें भावी कवि का रूप स्पष्ट दिखाई देता हैं। "वीणा" पंत जी की रचनाओं का प्रथम संग्रह है, इसमें प्रकृति-प्रेम प्रधान रचनाएं हैं। "गुंजन" एक खण्ड-काव्य है। "पल्लव" तीसरा संग्रह है, इसमें "परिवर्तन" कविता को छोड़कर सर्वत्र प्रकृति का मोहक रूप मिलता है।

"पल्लव" की रचना के बाद ही कवि के पिता का देहांत हो गया। कवि स्वयं भी रोगग्रस्त हो गया। प्रकृति-प्रेम से कवि में जीवन के सुख-दुख की ओर देखने की प्रवृत्ति जगी। दुःख का अनुभव हुआ पर स्वस्थ होने पर आशा भी जगी। 'गुंजन' इसी अवसर की रचना है। इसीलिए उसमें मानव-जीवन की आशामयी अभिव्यक्ति पाई जाती है। मानव-जीवन की मंगलमयी कल्पना "ज्योत्स्ना" नाटिका में मिलती है। इसके बाद तो कवि की भावधारा में नया मोड़ आ जाता है, जिस पर हम आगे विचार करेंगे।

पंत ने 'वीणा', 'ग्रंथि' और 'पल्लव' में ऐसी सौंदर्यमयी कविताएं लिखी है जिनमें उनकी कल्पना को बहुत दूर तक उड़ान भरने का अवकाश मिला है। उन्होंने अपनी आंतरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अतिशय कल्पना की।

---

१. आधुनिक कवि, भाग २, पृ० १०२.

२. गद्य-पथ, पृ० १२४.

छायावादी कवियो के समान पंत जी ने भी प्रकृति के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाया है। वे प्रकृति के स्थूल-बाह्यरूप का इतिवृत्तात्मक चित्रण न कर अपनी भावनाओं का प्रतिरूप मानते हैं। प्रकृति के साथ प्रगाढ़ तादात्म्य का अनुभव इनकी सबसे बड़ी मौलिकता है। हिंदी कविता जगत् में इस प्रकार नूतन दृष्टिकोण सर्वप्रथम ही आया है:

"रूप का खिलता हुआ उभार
मधुर मधु का व्यापार
तुम्हीं सा है मेरा यौवन।"

पंत ने प्रकृति की एक-एक वस्तु में चेतनता के दर्शन किये हैं। उसमे भी वे मानव के समान ही शरीर, मन, भावना, और क्रिया-कलाप का अस्तित्व देखते हैं। प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर वे उनके हृदय स्पंदनों को सुनते हैं। प्रकृति का रूप तो सभी निहारते है, उसकी बाह्य सुन्दरता के प्रशसक भी बहुत होते हैं; परन्तु उसके उर की बात भी सुनते हैं और उससे वे सख्य भाव से मिलते हैं।

'मैं भी उससे गीत सीखने
आज गई थी उसके पास,
उसके कैसे मृदुल भाव हैं?
उज्ज्वल तन, मन भी उज्ज्वल!"[१]

प्रकृति की उस चेतनता को पंत ने अपनी सखी के रूप में पाया है। कवि सरिता के पास जाकर उससे गीत सीखना चाहता है, सखी से मिलकर उसके उज्ज्वल तन और मन तथा मृदुल स्वभाव से प्रभावित होता है, कवि को प्रकृति के केवल वे ही तत्त्व प्रिय एवं मोहक लगते हैं जिनमें मृदुलता, लावण्य, सुन्दरता, स्निग्धता एवं आकर्षण है। लहरों के नृत्य का चित्रण करते हुए कवि उन्हें छुई-मुई की उपमा देते हुए कहता है:

"छुई मुई सी तुम पश्चात्
छूकर अपना ही मृदु गात,
मुरझा जाती हो अज्ञात!"[२]

जीवन को एक विशेष दृष्टिकोण से देखा जाए तो छायावाद का अपना एक दर्शन है। कवि प्रारम्भ में आत्मवादी भावना से प्रेरित होकर प्रकृति में चेतना का आरोप करता है और उसमें अज्ञातसत्ता को स्वीकार कर सर्वात्मवादी हो जाता है। प्रकृति भी उसे अपनी अनुभूतियों के समान दिखाई देती है। उसमें एक अज्ञात सत्ता के दर्शन होते हैं। प्रकृति में विराट् चेतना की व्याप्ति मानकर उसका व्यक्तित्व प्रकृति से मिल जाता है। विस्मय और जिज्ञासा की भावना कवि को आगे बढ़ाती है तब सर्वचिंतन और सर्वचेतना का अभ्युदय होता है। सारी प्रकृति कवि की सहचरी बनकर एक अत्यन्त सुन्दरी के रूप में आई। कवि को ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रकृति के विविध रूप उसके हृदय मे साकार हो उठे हैं। समस्त प्रकृति में उसे असीम भावों की प्रतिछाया किसी अखण्ड व अभिन्न चेतना का आभास मिलता है.

"कनक छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुंजार;

१—वीणा, पृ० ३६.
२—पल्लव, पृ० ७६.

न जाने, छुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !"[1]

"आंसू की बालिका" में कवि ने बालिका का शारीरिक सौंदर्य चित्रित किया है। समस्त अनुभूति का आधार भावात्मक है। भावात्मक उपमानों में सौंदर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है :

"अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार,
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार।
करुण भौंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार;
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार।[2]

उपर्युक्त रचना में "करुण भौंहों में आकाश" और "हास में शैशव का संसार" परिष्कृत और कलात्मक अभिव्यक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं। "भावी पत्नी के प्रति" कविता में प्रेम और सौंदर्य अमूर्त रूप से व्यक्त हुआ है। "आज रहने दो गृह काज" स्वस्थ प्रेम की अभिव्यक्ति है। यहां पर सौंदर्य के प्रति विस्मय और आकर्षण का भाव है, मांसल उपभोग का नहीं।

"हृदय की पलकों में गतिहीन
स्वप्न संसृति सी सुखमाकार,
बालभावुकता बीच नवीन
परी सी धरती रूप अपार;
झूलती उर में लाज किशोरि !
तुम्हारे मधुर मूर्ति छविमान।
लाज में लिपटी उषा समान,
प्रिये, प्राणों में प्राण !"[3]

मानव और जगत् का संबंध अटूट है। दोनों अन्योन्याश्रित है। कवि ने मानव और जगत् के समान प्रकृति और जगत् का भी सुन्दर संबंध दिखाया है। "वीणा" में रात्रि को अंधकार की और "पल्लव" में छाया को वृक्ष की प्रेयसी बताया है :

"अब न अगोचर रहो सुजान !
निशानाथ के प्रियवर सहचर !
अंधकार, स्वप्नों के यान !"[4]

इतना ही नहीं, कवि ने मनुष्य के सदृश्य आकर्षण-व्यापार प्राकृतिक तत्वों में भी देखा है। सामान्य मानव जीवन के समान उनमें भी आलिंगन, चुम्बन, आदि सूक्ष्म

१—पल्लव, पृ० ६१.
२—आधुनिक कवि भाग २-पृ० ११.
३—गुंजन, पृ० ५०.
४ वीणा, पृ० ३२.

क्रियाओं को भी देखा है

"तरुण विटपों से लिपट सुजात,
सिहरती लतिका मुकुलित गात,
सिहरती रह रह सुख से प्राण,
लोम लतिका बन कोमल गात
गंध गुंजित कुंजों में आज
बंधे बांहों में छाया लोक,
मर्मरित छत्र, पत्र दल व्याज
लिये, द्रुम, तुमको खड़ी विलोक ![1]

'प्रथम रश्मि' (गुंजन) कविता में कवि ने प्रकृति के जड़ और गतिमान दोनों रूपों को लेकर उसमें अखण्ड-चेतना की व्याप्ति का संकेत किया है। "मौन निमंत्रण" में कवि ने सघन मेघों के भीमाकाश और प्रखर झरती पावस की धारा को एक चेतन सत्ता के रूप में देखा है जो निरंतर कवि को बुलाती है। कवि ने प्रकृति को पूर्ण मानवीय चेतना के साथ क्रियात्मक भी देखा है। 'मौन निमंत्रण' में पल्लव बच्चे है सुमनों का हार गूँथकर वे उपहार के लिए तत्पर हैं। कवि प्रकृति मे चेतना के साथ विस्मय की भावना भी भर देता है और उसे विराट् सत्ता का संचालन समझ कर अभिव्यक्त करता रहता है :

"अरे, ये पल्लव बाल !
सजा सुमनों के सौरभ हार
गूंथते वे उपहार;
अभी तो है ये नवल प्रवाल
　　　　नहीं छूटी तरु डाल;
विश्व पर विस्मित चितवन डाल,
　　　　हिलाते अधर-प्रवाल ![2]

कवि ने नौका-विहार, एक तारा, (गुंजन) संध्या के बाद, रेखा-चित्र में प्रकृति पर चेतना का विभिन्न रूपों मे आरोप किया है।

पंत जी प्रकृति के रहस्यवादी कवि हैं। कवि को जगमगाते 'नक्षत्रों' से कोई बुलाने का मौन निमंत्रण देता है, 'तड़ित की तपक' में मौन इंगित करता है, "कुसुम के सौरभ के मिस कोई संदेश भेजता है" और लहरों से उठकर न जाने कौन बुलाता है—

"स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
　　　　न जाने नक्षत्रों से कौन
　　　　निमंत्रण देता मुझको मौन।
×　　　　×　　　　×
क्षुब्ध जल शिखरों को जब बात
सिन्धु में मथकर फेनाकार[3]

१—गुंजन, ६०-३१.
२—पल्लव, पृ० ५३.
३—पल्लव, पृ० ६०.

बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता कौन !"[1]

पीड़ा, वेदना, दुःख आदि निराशावादी अनुभूतियों का अस्तित्व पंत जी के प्रकृति रहस्यवाद में नहीं मिलता।"[2] इसका कारण स्पष्ट करते हुए पंत जी ने कहा है : "व्यक्तिगत सुख-दुःख के सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नहीं दी है क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है" ।[3] पंत जी के निराशावाद को दार्शनिक निराशावाद कहा जा सकता है। पिता की मृत्यु और कवि की अपनी रुग्णता का कवि हृदय पर अगाध प्रभाव पड़ा, जिससे कवि की कल्पना में निराशा का आविर्भाव हुआ। जगत् अनित्यता, शरीर की मरणशीलता आदि दार्शनिक विचार प्रधान 'परिवर्तन' नाम की रचना में मिलते हैं :

"हाय ! सब मिथ्या बात !
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी सांस !
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल,
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती—जीवन है भार !
आज पावस नद के उद्‌गार
काल के बनते चिन्ह कराल
प्रात का सोने का संसार;
जला देती संध्या की ज्वाला !
अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल,
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, कांस सिवार;
गूंजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार !"[4]

इसी कविता पर देह की अनित्यता, जीवन का मिथ्यापन, संसार की असारता, मायावाद, प्रारब्धवाद, वैराग्य-भावना आदि प्राचीन दर्शन के विभिन्न, निराशावादी प्रवृत्तियों का प्रभाव स्वीकार करते हुए पंत जी ने लिखा है : "प्राकृतिक दर्शन, जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता है और एक प्रकार से प्रकृति को सर्वशक्तिमयी मानकर, उसके प्रति आत्म-समर्पण सिखलाता है।...साथ ही हमारा विश्वास मनुष्य की संगठित शक्ति से हटकर आकाश कुसुमवत् दैवी शक्ति पर अटक गया है जिसके फलस्वरूप,

१. पल्लव पृ० ६०-६१
२. हिंदी काव्य में निराशावाद, पृ १८१
३. आधुनिक कवि, भाग २, पृ० १२
४. पल्लव, पृ० १४७-१४८

देश पर विपत्ति के युगों में सीढ़ी दर सीढ़ी नीचे गिरते गए हैं।"[1]

पंत जी ने प्रकृति में एक अज्ञात् तथा अलौकिक सत्ता के दर्शन किए हैं जिसे कवि कहीं मां और कहीं प्रियतम के रूप में चित्रित करता है। वीणा की अधिकाश रचनाएं 'मा' को निवेदित है जो "अति रम्य स्वरूपा" "सर्व शक्तिमत्ता" है, "विराट् विश्व जननी" है। रहस्यवादी कवियों के समान पंत जी भी सर्व शक्तिमयी मा के मिलन में मोह, काम, अहंकार, द्रोह, छल, अज्ञानता आदि असद्भावों को बाधक मानते हैं।

"काला तो यह बादल है!
कुमुद कला है जहाँ किलकती
वह नभ जैसा निर्मल है,
मैं वैसी ही उज्ज्वल हूँ माँ!
काला तो यह बादल है!
मेरा मानस तो शशि हासिनी!
तेरी क्रीड़ा का स्थल है,
तेरे मेरे अन्तर में माँ।
काला तो यह बादल है!"[2]

कवि 'गुण गण अतुला' मां की छवि का प्रतिबिम्ब प्रकृति के प्रत्येक तत्व में देखता है और अश्रु हार गूंथकर मां को पुकारता है:

"तुहिन बिन्दु बनकर सुन्दर;
कुमुद किरण से सहज उतर,
माँ! तेरे प्रिय पद पद्मों में
अर्पण जीवन को कर दूँ—
इस उषा की लाली में!"[3]

वीणा की अधिकांश रचनाएं मां के गहन पुनीत अनुराग से भरी हैं। इनमें शक्तिमती मां के "अतुल गुण गुणों" और उसकी शक्ति पर विस्मय है और उसके वात्सल्यमय विराट् रूप के प्रति आत्मसमर्पण।

"पर अब करती हूँ अनुमान
मुझमें कितना था अज्ञान
जीवन भर भी माँ! मैं पूरे
गा न सकूँगी तेरे गीत
अपनी वाणी में स्वर भर।"[4]

"वीणा" में कवि ने मां के सम्मुख एक नन्हीं बालिका के समान विस्मय, जिज्ञासा के भाव प्रकट किए हैं। पल्लव में वीणा की बालिका प्रौढ़ हो गई है इसलिए उसमें विनय, आकांक्षा और याचना की भावना मिलती है। वह कर्म के श्रम और व्रत आचार से मां को अलंकृत कर पूजन करती है जबकि वीणा में अश्रु के तुहिन बिंदुमात्र उसके अलंकरण एवं पूजन सामग्री हैं।

---

१. आधुनिक कवि, भाग २, पृ० १०
२. वीणा, पृ० १०
३. वही, पृ० ३
४. वीणा, पृ० ६०

"माँ ! मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय हार हो,
अश्रुकणों का यह उपहार,
० ०
माँ तेरी निर्भयता हो नित
तेरे पूजन के उपचार।"[1]

"आकांक्षा" रचना में कवि लोकहित, मानव-कल्याण के लिए माँ की याचना करता है। वह किसी वस्तु की इच्छा न रखकर मानव-हित व कल्याण की आकांक्षा प्रकट करता है।

जलद यान में फिर लघुभार,
जब तू जग को मुक्ताहार
देती है उपहार रूप माँ,
० ०
हरने जग का ताप अपार।"[2]

इसके बाद कवि की भावना दब-सी जाती है और गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि, युगांतर को पारकर ३० वर्ष के उपरांत 'उत्तरा' में मां को स्मरण करता है। कवि को चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। मानवता का जो स्वप्न उसने देखा है वह सफल नहीं होता। तब मां की अनंत करुणा का स्मरण कर वह उसकी वंदना करता है :

"खोलो, अंतरमयि, खोलो
अपना स्वर्गिक वातायन,
निज स्वर्णिम आभा से भर दो
मेरा स्वप्नों का मन ![3]

कवि प्रकृति में अपनी प्रकृति का रूप भी देखता है। वह अपने प्रियतम की विरह-वेदना में अश्रुहार पहनता है। यहां पर कवि ने नायिका रूप का वरण किया है। वह देवताओं को आह्वान कर अपनी सम्पूर्ण इच्छाएं उन्हें समर्पित कर स्वयं वियोग की बाँहों में रहना चाहता है।

"सजकर वसन विभूषण भार,
अश्रुकणों का हार पहनकर
आज करूंगी मैं अभिसार ![4]
निज वियोग की बाँहों में
मुझे सदा को बंध जाने दो,
फिर चाहे मेरा अंतर
अंधकार होवे दुस्तर !"[5]

---

१. पल्लव, पृष्ठ ७५
२. वही, पृष्ठ १३८
३. उत्तरा, पृष्ठ ११५
४. वीणा, पृष्ठ ३८
५. वही, पृष्ठ ५४

पंत : प्रगतिवाद

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारम्भिक युग संघर्ष, विचारधारा परिवर्तन और विदेशी सत्ता के निरन्तर बढ़ते हुए शोषण और उत्पीड़न का युग है। १८५७ ई० की असफल क्रांति से भारतीय जन-जीवन में निराशा की भावना उत्पन्न हो गई थी। महारानी विक्टोरिया की राजकीय घोषणा से यद्यपि भारतीयों के हृदय में किंचित् आशा का संचार तो हुआ परंतु आर्थिक व्यवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गई, किसानों के विद्रोह होने लगे; भारतीयों में आत्मसम्मान की भावना निरन्तर बढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों विदेशी सत्ता का आर्थिक-शोषण और निर्दयता की नीति का दमनचक्र स्पष्ट होता गया, त्यों-त्यों इस युग की रचनाओं में देशभक्ति का स्वर भी उग्र रूप धारण करने लगा और आत्म-निर्भरता तथा आत्मत्याग की भावना प्रबल होने लगी। सामाजिक सुधार आदि सभी भावनाएं एकत्रित होकर संगठित रूप से कार्य करने लगीं। रीतिकालीन साहित्य के ठीक विपरीत द्विवेदी-युग का काव्य लोक-जीवन के अधिक समीप आता गया। शिक्षा-प्रसार और राजनीतिक जागृति के कारण लोगों में मातृभाषा के प्रति अनुराग बढ़ता गया। स्वदेशी आन्दोलन की लहर प्रचंड रूप धारण करने लगी और तब तक राष्ट्रीय कांग्रेस भी एक सशक्त राजनीतिक दल के रूप में अपना स्थान बना चुकी थी। राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित होने के कारण इस युग की कविताओं में देशभक्ति का जो स्वरूप व्यंजित होता है वह पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गया है। गुप्त जी की 'भारत-भारती' की रचना इसी काल में हुई। 'रीतिकाल की दरबारी संस्कृति, द्विवेदी-युग की शुष्क इतिवृत्तात्मक, स्थूल नैतिकता और समाज के तत्कालीन स्वरूप के प्रति विद्रोह का स्वर छायावादी कविताओं में निहित है। परम्परायुक्त प्राचीन प्रतीकों का परित्याग कर इन कवियों ने स्वतः अनुभूत नवीन प्रतीक कल्पना से कविता कामिनी का शृंगार किया।'[1] परन्तु ये कविताएं भी जनता के वास्तविक जीवन से दूर जा पड़ीं और शनैः-शनैः इनका प्रचलन कम होता गया।

"१९३६ ई० के आसपास फैलनेवाले समाजवादी प्रभाव, दूसरा महायुद्ध तथा उसके फलस्वरूप उत्पन्न आर्थिक, राजनीतिक संकट, महंगाई, बेकारी, १९४२ ई० की क्रांति और उसका दमन, मजदूरों की ऐतिहासिक हड़तालें, किसानों की जागृति, और उससे बढ़कर बंगाल का अकाल आदि देश की तत्कालीन विविध परिस्थितियों ने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को 'नई गति' देकर हमारे साहित्यकारों को एक ऐसे पथ की ओर अग्रसर होने को प्रेरित किया जिस पर चलकर वे अपने साहित्य को युगीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब बनाते हुए जन-मानस की आशाओं, आकांक्षाओं को मूर्त रूप दे सकें तथा समाज की प्रगति में साहित्य को एक अनिवार्य अस्त्र तथा माध्यम के रूप में प्रस्तुत कर सकें। योरोपीय देशों में भी ऐसी

१. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद, पृ० १९

ही परिस्थितियों के फलस्वरूप वहां के बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क में भी समान प्रतिक्रिया हो रही थी। सामाजिक विकरालता और उससे उत्पन्न विषमताओं से मुक्ति पाने के लिए तथा साहित्य और जीवन को नई राह दिखाने के लिये योरोप के प्रमुख लेखकों तथा साहित्यकारों ने प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं लेखक श्री ई० एम० फोस्टर की अध्यक्षता में १९३५ ई० में पेरिस में एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था 'प्रगतिशील लेखक संघ' के नाम से स्थापित की। भारतीय विद्वान् लेखकों ने भी इससे प्रेरित होकर 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की, जिसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में मुंशी प्रेमचन्द की अध्यक्षता में १९३६ ई० में हुआ। अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए इसके घोषणा-पत्र में कहा गया। "हमारा समाज जो नया रूप धारण कर रहा है उसको साहित्य में प्रतिबिम्बित करना और वैज्ञानिक युग के बाद के साहित्य में प्रतिष्ठा करना, प्रगतिशील चिंतनधारा को वेगवती करना यही हमारे लेखकों का कर्तव्य है।"[1] इसके बाद प्रगतिशील लेखक संघ के अनेक अधिवेशन हुए जिनसे प्रगतिशील साहित्य के निर्माण के हेतु समूचे देश के लेखक वर्ग को नई प्रेरणा प्राप्त हुई, इस नवीन साहित्यिक पुनर्जागरण ने देश के साहित्य तथा हिन्दी कविता के क्षेत्र में इस दिशा परिवर्तन का स्पष्ट आभास छायावाद के रोमांटिक और अतिशय कल्पना-प्रियता के स्थान यथार्थ ग्राह्यता को प्रतिष्ठा मिली।

एक समय जिस कवि ने 'पल्लव' की भूमिका के रूप में छायावाद की कोमल कल्पना का घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया था, वही कवि अब समाज की विषम स्थिति से प्रभावित होकर प्रगतिवाद का संदेश देने लगा है और अपने परवर्ती कवियों से अहं की संकरी प्राचीरों को तोड़कर बाहर जन-जीवन में निकलने के लिए आदेश देने लगा है—"इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए है। श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है—अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है···हमारा उद्देश्य इस इमारत में थूनियां लगाने का कदापि नहीं है जिसका कि गिरना अवश्यंभावी है। हम तो चाहते हैं उस नवीन के निर्माण में सहायक होना जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है।"[2] कारण स्पष्ट था, "छायावाद का अतिशय अवस्था तक पहुंचा हुआ माधुर्य और सौन्दर्य नये युग की भूमिका में लोगों को लुभा सकने में सर्वथा असमर्थ और अशक्त साबित हो चुका था।"[3]

"रूपाभ" के द्वितीय अंक में सुमित्रानन्दन पंत ने प्रगति शब्द की वास्तविकता पर प्रकाश डाला और सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से युगान्तर उपस्थित करने के अपने संकल्प को व्यक्त किया। ये तथ्य "अपने में इतने महत्वपूर्ण हैं कि मात्र इन्हीं के अध्ययन से तत्कालीन कवि मानस की सर्वथा बदलती हुई स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।"[4] "प्रगतिवादी काव्य की स्पष्ट पर प्राथमिक दशा की झलक जुलाई, सन् १९३८ में श्री सुमित्रानन्दन

---

१. साहित्य का उद्देश्य, पृ० १०
२. रूपाभ, संपादकीय वर्ष १, अंक १, जुलाई, १९३८
३. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा, पृ० १५२
४. नया हिन्दी काव्य, पृ० १४६

पंत और नरेन्द्र शर्मा के सम्पादकत्व मे निकलने वाले 'कालाकांकर' के मासिक पत्र 'रूपाभ' में मिली।"[१] "द्विवेदी-युग के समान प्रगतिवादी युग में भी निराशावाद का अभाव है, छायावादी काव्य ने राष्ट्रीयता, उपादेयता, आत्माभिव्यक्ति और आवेगपूर्ण अनुभूतियों को अपने गीतों का विषय बनाया था, प्रगतिवादी विचारधारा ने छायावादी प्रवृत्तियो का तिरस्कार करके यथार्थवाद, उपादेयता और समष्टिवादी भावनाओं को पुनः अपने काव्य का लक्ष्य बनाया। प्रगतिवाद ने छायावादी काव्य के वेदनावाद, वैयक्तिकता और निराशावाद का तीव्र विरोध करके संघर्ष, सामाजिक चेतना और आशावादी भावनाओ की साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिष्टा की। व्यक्तिवाद से समष्टिवाद, वेदना से संघर्ष और निराशा से आशा की और यह प्रतिगमन के अन्त और दूसरे युग के आगमन की सूचना देता है।"[२]

वस्तुत इस समय राजनीतिक जगत् मे जो कुछ परिवर्तन हुए उसका प्रभाव हिन्दी काव्य धारा की वर्तमान प्रवृत्ति पर पड़े बिना न रहा। इस समय राजनीतिक क्षेत्र में गांधीवाद का व्यापक प्रभाव पड़ गया था। इसका मौलिक आधार मानव-प्रेम और अहिंसा था। मार्क्सवाद की नीति गांधीवादी विचारधारा से भिन्न है। रूस में इसके अनुसार शासन-व्यवस्था स्थापित हो जाने के कारण इन विचारधाराओं का प्रभाव यूरोप के अन्य देशों पर भी हुआ और भारत मे भी मार्क्सवाद की चर्चा होने लगी। मार्क्सवाद के अनुसार सृष्टि का मूल भौतिक पदार्थ या भूत तत्व (मेटर) है, जिसका विकसित रूप वर्तमान जगत् है। मार्क्सवाद के अनुसार वर्तमान अवस्था—शोषक और शोपित—पूंजीपति और श्रमिक—में आमूल परिवर्तन होने पर ही वैषम्य मिट सकता है। मार्क्सवाद का उद्देश्य जन-क्रांति द्वारा राजशक्ति हस्तगत कर एक ऐसे नवीन वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करना है जिसमें आर्थिक विषमता नष्ट होकर समाज के सभी व्यक्तियों को अपने विकास के लिए समान सुविधाएं प्राप्त हों।

"मार्क्स के भौतिकवाद से प्रभावित होकर रचनाएं करनेवालों में पंत जी सबसे आगे आए। इन भौतिकवादी विचारों को लक्ष्य में रखकर पहले पहल लिखी गई प्रगतिवादी रचनाएं "युगवाणी", "मानव पशु" हैं। रूपाभ के अंकों में पंतजी की नए ढंग की कई-कई रचनाएं साथ प्रकाशित होने लगीं। इससे बहुत से नवयुवक कवि इस ओर आकृष्ट हुए।"[३]

इस प्रकार हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद के प्रतिष्ठापक पंत जी हैं और इनकी रूपाभ में प्रकाशित रचनाओं ने परवर्ती कवियों के लिए एक नया पथ-प्रशस्त किया। पंत जी की प्रगतिवादी प्रारम्भिक रचनाएं उन्हीं के द्वारा सम्पादित पत्रिका "रूपाभ" में प्रकाशित हुई जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

"युग युग से रच शत शत नैतिक बंधन,
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु-तन।
विद्रोही हो उठा आज पशु वंचित,
वह न रहेगा अब नवयुग में गर्हित।
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताड़न,
रूढ़ि नीतियों का गत निर्मम शासन।

१. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद, पृ० ३३
२. आधुनिक काव्य में निराशावाद, पृ० ३२८
३. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद, पृ० ३३

वह भी क्या मानव जीवन का लांछन ?
वह मानव के देहभाव का वाहन।
नहीं रहे जीवनोपाय तब विकसित,
जीवन-यापन कर न सके तब इच्छित।
नैतिक सीमाएं कर वह निर्धारित,
जीवन इच्छा को जन ने मर्यादित।
० ० ०
देव और पशु, भावों में भी सीमित,
युग युग में होता परिवर्तित, अवसित।
मानवपशु ने किया आज भव अर्जित,
मानव देव हुआ अब वह सम्मानित।
मानव के पशु के प्रति,
मध्यवर्ग की हो रति।"[1]

पंत जी की इन रचनाओं में आर्थिक स्थिति से पीडित, शोषित जन-समुदाय का चित्रण मिलता है। यह सब कुछ समाज में उच्च वर्ग ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए किया है। आज सत्य, शिव और सुन्दर केवल उच्च वर्ग की सीमा में संकुचित है। कवि ऐसे वर्ग समाज को पृथ्वी से मिटाकर ऐसे स्वर्ग की स्थापना करना चाहता है जिसमें श्रेणी-संघर्ष, रूढ़ियों का जाल और जन-श्रम-शोषण न हो। सुमित्रानन्दन पंत ने जीवन और साहित्य का नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। कविता के इस नए आदर्श ने कलाकार को उसके अहं अतिशय कल्पना के खोखले पर्दे से बाहर निकाल दिया और वह अपनी प्रेरणा के लिए धरती और उस पर आश्रित जन-जीवन की ओर देखने लगा। पंत की "पुण्य प्रसू" कविता में कवि के लिए यही संदेश है कि वह "मृत्यु नीलिमा गगन" का ताकना छोड़कर इस "स्वर्णिम भू" पर "मानव पुण्य प्रसू" की ओर निहारे। "इस प्रकार की नवीन काव्य की मूल विचारधारा का परिचय सर्वप्रथम पंत जी ने ही प्रस्तुत किया। अतएव हिन्दी में प्रगतिवादी काव्य का सूत्रपात पंत ने अपने पत्र "रूपाभ" (१९३८ ई०) से किया है।

"मार्क्सवादी विचारधारा का आभास पंत जी की उपरोक्त रचनाओं में मिलता है परन्तु यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि वे वर्ग-संघर्ष तथा हिंसात्मक क्रांति के समर्थक कदापि नहीं हैं। पंत इस बात को स्वीकार करते हैं कि धर्म राजनीति और सदाचार तभी सार्थक है जब उसकी उपयोगिता जनहित में हो। जो कुछ भी जन-जीवन से पृथक् है वह सत्य नहीं हो सकता। वह संस्कृति जहां सत्य, सुन्दर और शिव कुछ विशेष उच्च वर्गों के लिए है उसका पतन अवश्यंभावी है :

धर्म नीति औ, सदाचार का
मूल्यांकन है जन हित।"[2]

पंत जी ने रूढ़िवादियों की भर्त्सना के साथ-साथ संकीर्ण भौतिकवादियों की दृष्टि के विस्तार की कामना भी की है। अपने इस प्रकार की नवीन परिवर्तित दृष्टिकोण के

१. रूपाभ, जुलाई, ३८
२. युगवाणी, पृ० ४१

विषय में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है—"ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म दर्शन में मुझे किसी प्रकार का विरोध नही जान पड़ा क्योंकि मैने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी पक्ष ही ग्रहण किया है। मार्क्सवाद के अन्दर श्रमजीवियों के संगठन वर्ग-संघर्ष आदि से संबंध रखनेवाले बाह्य दृश्य कोजिसका वास्तविक निर्णय आर्थिक और राजनीतिक क्रान्तियां ही कर सकती हैं, मैंने इसे अपनी कल्पना का रंग नहीं बनने दिया है।"[1]

अतः निर्विवाद तथ्य है कि हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद सूत्रपात करनेवाले सुमित्रानंदन पंत है। इनके छायावाद से प्रगतिवादी आन्दोलन की ओर मुड जाने मे समवर्ती तथा परवर्ती नवयुवक कवियों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और वे भी उस ओर प्रवृत्त हुए। मार्क्सवाद की ओर पंत जी का झुकाव सामूहिक हित की दृष्टि से है। व्यक्तिगत रूप से गांधीवाद से भी ये प्रभावित है और भारतीय आत्मवाद का भी इन पर गहरा प्रभाव है। मार्क्सवादी आत्मा की सत्ता को नही मानते, पदार्थ को ही सब कुछ समझते है। पर पंत जी पदार्थ को ही सब कुछ नही स्वीकार करते और ऐसे संकीर्ण भौतिकवादियों से असहमति प्रकट करते हैं। "जहा आत्मदर्शन अनादि से समासीन है उस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए ये भौतिकवाद को साधन मात्र मानते हैं। स्पष्ट है कि मार्क्स के भौतिकवाद की ओर इनका झुकाव वर्तमान विषमता के उन्मूलन की आशा से है। इस प्रकार वे आत्मा और जगत् का सामंजस्य ही घटित करना चाहते हैं। भौतिकता की जो उपेक्षा हुई है, उसका परिहारमात्र इनका आशय प्रतीत होता है। "युगवाणी" से "ग्राम्या" की ओर जाते हुए हम कवि को यथार्थोन्मुख पाते है। कल्पना के लोक से उतरकर कवि यथार्थ जगत् के वैषम्य और उसकी पीड़ा का अनुभव करने के साथ ही निम्नवर्गीय जन-जीवन के नानाविधि चित्र आंकने का प्रयास करता है। यद्यपि युगवाणी" की अधिक रचनाएं गांधीवाद और मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती हैं तथापि "ग्राम्या" की रचनाओं में जन-जीवन के हर्ष-विषाद और सुख-दुःख की मार्मिकता है। जो वास्तविकता है उसको यथातथ्य रूप मे कवि ने प्रस्तुत किया है। अभी तक प्रायः कवियों ने भारतमाता को भावुकतामयी दृष्टि से ही देखा था, अधिकतर उसके प्राकृतिक सौन्दर्य पर ही उनकी दृष्टि टिकी रहती थी; पर अब पंत जी ने उसके दुःख, दर्द, व्यथा, शोषण, दीनता और अज्ञान से भरा ग्रामीण रूप को भी देखा है। कवि ने "युगवाणी" में इस बात को स्वीकार किया है कि भौतिकता की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए और वास्तविक जगत् के कठोर सत्यों से पलायन अनिष्टकर है; परन्तु मार्क्सवाद की स्थापना के लिए उन्होंने निश्चित योजना प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं किया और न वर्ग-संघर्ष आदि उपालंबो का ही उपदेश दिया। यह सब उनके कवि रूप के सर्वथा अनुकूल हुआ है। "ग्राम्या" में यद्यपि इनकी बौद्धिक दृष्टि है तथापि विषाद की कंटकाकीर्ण भूमि से भी इन्होंने बड़े कौशल से सौन्दर्य, पुष्पों का चयन किया है। इससे इनका कविरूप भी बना रहा और भावी की सदाशयता की भी झलक मिली।

पंत जी के काव्य में "युगांत" के प्रारम्भ से ही प्रगतिवाद आरम्भ होता है और युगवाणी" तथा "ग्राम्या" में वह अपनी जड़ें जमा लेता है। अब हम प्रकृति के साथ क्रीडा करनेवाले कवि को संसार में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत करता हुआ पाते हैं और उसे वर्तमान मानव अपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि :

---

१. आधुनिक कवि, भाग २, पर्यालोचन, पृ० १०

"मैं प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक—स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष - विमर्शों का,
लगता अपूर्ण मानव—जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन !"[1]

कवि अपने नए मार्ग का पथानुगामी बनकर नई दिशा की ओर मुड़ता है। 'कोकिल' में कवि के विचार परिवर्तन स्पष्ट लक्षित होते हैं। वह पावक बरसाकर जीर्ण पुरातन को नष्ट-भ्रष्ट कर नवल-मानव का सर्जन करना चाहता है।

'गा', कोकिल, बरसा पावक गण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंसभ्रंस जग के जड़ बंधन।
पावक—पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।[2]

"युगांत" में कवि अतिशय कल्पना से यथार्थ जगत् की ओर उन्मुख है। इसमें कवि का कथन है . "युगांत के मरु में मेरे मानसिक निष्कर्षों" के धुंधले पद्चिह्न पड़े हुए हैं। फिर भी कवि के प्रगतिशील काव्य में 'युगांत' का प्रारम्भिक स्थान है। कवि ने इसे स्वीकार करते हुए स्वयं कहा है : "'युगांत' में मैं निश्चय रूप से इस निर्णय पर पहुंच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन-युग का प्रादुर्भाव अवश्यंभावी है। जिन प्रेरणाओं से प्रभावित होकर यह कहा था उसका आभास "ज्योत्स्ना" में पहले दे चुका था।"[3] सामाजिक धरातल पर आकर भी कवि को शांति नहीं मिलती, वह भावी मानव की रूप-रेखा तैयार करता है। "युगांत" में यह विचारधारा स्पष्ट होती जाती है :

"मैं सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित भीतर,
सौंदर्य, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सका नहीं जग में बाहर !"[4]

"युगांत" में जिस नवीन दृष्टिकोण का कवि ने आभास मात्र दिया है, "युगवाणी" में उसी की व्याख्या है और ग्राम्या में उसी के व्यावहारिक पक्ष की स्थापना। "युगांत" पंत के नवीन दृष्टिकोण की भूमिका है, "युगवाणी" उसका दर्शन-पक्ष और "ग्राम्या" उसी का व्यावहारिक प्रयोग।[5] "अध्यात्म से प्रकृति, प्रकृति से प्रेम, प्रेम से जीवन और जीवन से जगत् की रूप-रेखा ही कवि के भावविकास की कोटियां हैं। पंत सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर, कल्पना से सत्य की ओर बढ़ते रहे हैं। "युगवाणी" "ग्राम्या" में ठोस और सत्य जगत् ही उनके चिन्तन का विषय रहा है। प्रत्यक्ष जगत्, हंसता और क्रंदन करता जगत्, उठता गिरता जगत्, सुन्दर-कुत्सित जगत्, सोने-मिट्टी का जगत् ही अब उनकी कल्पना का आधार

१. गुंजन, पृ० २६
२. युगपथ, पृ० १३
३. युगांत, भूमिका
४. युगपथ, पृ० ३५
५. सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १३३

है ।"[1] सौन्दर्य प्रेमी मन जब धरती को प्यार करता है :

"चाहे वह कुरूप ही क्यों न हो,
हे कुरूप, हे कुत्सित, पाकृत
× × ×
परिचित से मिल बाँह भरो ।"

अब कवि पलायनवादी नहीं बल्कि कवि संघर्षों का स्वागत करता है और उन्हें ही जीवन के सुख का कारण मानता है :—

"जीवन संघर्ष देता सुख
लगता ललाम ।"

"युगांत" से तात्पर्य सामंत एवं पूँजीवादी युग का अन्त है क्योंकि मध्य-युग अर्थात् पूँजीवाद एवं सामंतवादी युग की विकृतियां मानव के विकास मार्ग में बाधक हैं । इस युग ने मानव को सभ्यता और संस्कृति के भ्रमजाल में आत्मविस्मृत बनाया हुआ है इसलिए कवि कहता है :

"शत मिथ्या वाद-विवाद तर्क,
शत रूढ़ि नीति, शत धर्मद्वार,
शिक्षा, संस्कृति, संस्था समाज,
यह पशु मानव का अहंकार ।"[2]

बाहरी क्रांति की अभावात्मक की पूर्ति मेरा मन नवीन मनुष्यत्व की भावात्मक देन द्वारा करना चाहता है । "द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र", "हे समस्त ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण" द्वारा पिछली वास्तविकता को बदलने के लिए ओजपूर्ण आह्वान है । वहाँ 'कंकाल जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर पल्लव लाली" में पल्लव काल की स्वप्न-चेतना द्वारा उस रिक्त स्थान को भरने के लिए आग्रह भी है ।...."ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन" के साथ ही "हो पल्लवित नवल मानवपन", "रच मानव के हित नूतन मन" भी मैंने कहा है ।[3]

टैनीसन की "रिंग आऊट द ओल्ड बैल" की भाँति पंत भी जीर्ण पुरातन को नष्ट-भ्रष्ट होने तथा नवल मानवपन को पल्लवित होने की प्रार्थना करता है ।

"नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन ।
पावक—पग धर आवे नूतन ।
हो पल्लवित नवल मानवपन ।"[4]

उपरोक्त पंक्तियों में पंत जी का संकेत स्पष्टतः नवीन व्यवस्था अर्थात् साम्यवाद की ओर है । कवि को विश्वास है कि यह नवीन व्यवस्था अपने साथ स्वर्ण-युग लाएगी :

"साम्यवाद के साथ स्वर्ण-युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन ।"[5]

कवि चाहता है कि जिस प्रकार रूस में साम्यवाद के आने से सम्पूर्ण बुद्धिजीवी वर्ग

१. सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ११३
२. युगांत, पृ० ३१
३. शिल्प और दर्शन, पृ० ७५
४. युगांत, पृ० १२
५. युगवाणी, पृ० ४५,

एवं कवि और लेखक सभी नवीन व्यवस्था का समर्थन करने लगे उसी प्रकार भारत में भी लेखक वर्ग इसी नवीन व्यवस्था के भावों को नवीन छंद, आभरण, रस-विधान द्वारा व्यक्त करे :

"कवि, नवयुग की चुन भाव राशि,
नव छंद, आभरण, रस विधान,
तुम बन न सकोगे जन मन के
जाग्रत भावों के गीत यान ?"[1]

और इस जन मन के भावों को नवीन छंद, आभरण, रस-विधान को व्यक्त करने के लिए कवि का आग्रह है कि ऐसी सरल भाव-भाषा होनी चाहिए जो जन-मन पर अपना सीधा प्रभाव डाल सके :

"तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहियें तुम्हें क्या अलंकार ।"[2]

पंत मानवता को ही सर्वोपरि मानते हैं। इसीलिए मार्क्सवादी विचारधारा का सबसे बड़ा प्रभाव पंत पर यह पड़ा :

"देश काल औ' स्थिति से ऊपर
मानवता को करो प्रतिष्ठित !"[3]

और अखिल विश्व में सत्यं, शिवं और सुन्दरं आदि गुण केवल मानवता में ही निहित है :

"कहाँ खोजने जाते हो
सुन्दरता औ' आनन्द अपार ?
इस मांसलता से है मूर्तित
अखिल भावनाओं का सार ।"[4]

प्रगतिवाद की इस प्रवृत्ति को कवि ने स्वयं भी स्वीकारा है । 'युगवाणी' में मैंने गद्य युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है । यदि युग की मनोवृत्ति का किंचितमात्र आभास इसमें मिल सका तो मैं अपने प्रयास को विफल नहीं समझूँगा । "युगवाणी" का कवि "नव संस्कृति" के आविर्भाव का अभिलाषी है :

"रूढ़ि रीतियाँ जहाँ न हो आराधित,
श्रेणि वर्ग में मानव नहीं विभाजित ।
धन-बल से हो जहाँ न जन श्रम शोषण
पूरित भव जीवन के निखिल प्रयोजन !"

× × ×

संस्कृत वाणी, भाव, कर्म, संस्कृत मन,
सुन्दर हो जनवास, वसन, सुन्दर तन,

---

१. युगवाणी, पृ० ६६
२. ग्राम्या, पृ० १०३
३. युगवाणी, पृ० ४२
४. वही, पृष्ठ २४

—ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित,
नव-मानव संस्कृति किरणों से ज्योतित !"[1]

कवि साम्यवाद वर्ग-संघर्ष के द्वारा वर्गहीन समाज की व्यवस्था का पक्षपाती है। वर्ग संघर्ष की चेतना जागरित करने के लिए पूँजीपतियों के प्रति अशुभ दृष्टि और श्रमजीवियों के प्रति सहानुभूति रखना साम्यवादी विचारों की पहली शर्त है। जिसका प्रभाव हम युगवाणी में पाते है। कवि का विश्वास है कि इसी नव-संस्कृति के लिए "मानव जग" में "पतझर" आया है। आज युगों के बाद युगांतर हो रहा है। प्राचीन व्यवस्थाओं के नष्ट होने से डरना नहीं चाहिए, फिर शीघ्र ही 'नवल मृदुल मंजरियों' से शोभित होगा जिसके "नव मधु" का वैभव मानव शताब्दियों तक भोगेगा। पंत जी कवि समाज से नवयुग के गीत गाने का आग्रह करते हैं

"कवि नवयुग को चुन भाव राशि, नव छंद, आभरण, रस-विधान
तुम बन न सकोगे जन-मन के जाग्रत-भावों के गीत यान ?"[2]

कवि की युगवाणी नवयुग की वाणी प्रमाणित होती है। देश के कोने-कोने मे संघर्ष की आवाज गूँजने लगी। मार्क्सवादी विचारों से युवक कवि विशेष रूप से प्रभावित हुए और हिन्दी काव्य में वेदना की जो आँधी उठ रही थी वह संघर्ष के रूप में परिणत हो गई। साहित्य के सत्यं, शिवं, सुन्दरं का नारा जन-विरोधी नारा है, पूँजीवादी सभ्यता का विनाश निश्चित है। इस प्रकार के विचार पंत जी ने युगवाणी की "मूल्यांकन" कविता में इस प्रकार दिए हैं :

"आज सत्यं, शिव, सुन्दरं करता नहीं हृदय आकर्षित
ऊर्ध्व मूल संस्कृति का होना अधोमूल निश्चित।"[3]

परिवर्तन जग-जीवन का चिरंतन नियम है कितने ही मुखियों, कुलपतियों, सामंतों और महंतों के वैभव क्षण सागर के बुलबुले की भांति बिला गए। आज :—

"रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनों में शोभन
पूँजीवाद निशा भी है होने को आज समापन !"[4]

"नृशंस, दंभी, दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित, धनपति, समाज को जोंक की भांति चूसते हैं। दुनिया को उनकी जरूरत नहीं। उनके अन्तिम क्षण अब आए ही समझिए। वे नृशंस हैं। वे जन के श्रमबल से पोषित दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जन से शोषित अब न प्रयोग उनका, अन्तिम है क्षण उनके।"[5]

मध्यमवर्ग के व्यक्ति की दशा यह है —

गत संस्कृति का दास : विविध विश्वास विधायक,
यशकामी. व्यक्तित्व प्रसारक पर हित निष्क्रिय।"[6]

उधर कृषक :—

युग युग का वह भारवाह, आकटि, नत मस्तक,
× × ×

१. वही, पृ० २४.
२. वही पृ० ६६.
३. वही, पृ० ३५.
४. वही पृ० ४६.
५. वही, पृ० ४६
६. वही पृ० ५०

विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित, यह निश्चल,
वही खेत, गृह-द्वार, वही वृष, हंसिया औ, हल !
× × ×
वह संकीर्ण, समूह-कृपण, स्वाश्रित पर पीड़ित ।[1]

परन्तु श्रमिक :—

लोक क्रांति का अग्रदूत, वरवीर जनादृत
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शासित !
चिर पवित्र वह; भय अन्याय घृणा से पालित,
जीवन का शिल्पी, पावन श्रम से प्रक्षालित ।[2]

इस विचारधारा में कवि पर युग अर्थात् मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। शोषकवर्ग के अत्याचारों के विशद चित्र देकर, शोषित किसानों और श्रमिकों की मर्मान्तक दशा का आभास देने का प्रयत्न किया है। पंत जी एक ओर तो भौतिक दर्शन की विचार-शृंखला सामने रखते हैं और दूसरी ओर गांधीवाद की। उनका विश्वास है कि गांधीवाद "मनुष्यत्व का तत्व" सिखाता है और साम्यवाद "सामूहिक जीवन विकास" का सबसे अच्छा साधन है। इस प्रकार पंत जी के काव्य में गाँधीवाद और मार्क्सवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है। कवि ने गांधीवाद के 'सत्य और अहिंसा' को व्यक्तिगत साधन के लिए उपयुक्त बताया है और भौतिकवाद भव जीवन के दैन्य दुःख से परित्राण दिलानेवाला और महान् सामूहिक जनतंत्र का अधिष्ठाता दिखाया है। इसलिए संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति कवि का कथन है :

'हाड़ मांस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम ?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम संवार कर चाम ?[3]

कुछ प्रगतिवादी कवि काव्य और जीवन दोनों में अधिकांशतः मार्क्सवाद का शब्दशः अनुवाद चाहते हैं। परन्तु पंत जी के अपने स्वतंत्र विचार हैं। वे केवल बाहरी आर्थिक समता से संतुष्ट नहीं बल्कि मानव के बीच आंतरिक साम्य के अभिलाषी हैं। प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि, समाज की विशृंखलता, दयनीय दशा, किसानों, मजदूरों, अत्याचारों, शोषकों आदि की ओर विशेषरूप से गई है, समाज के निम्न मध्यम वर्ग की ओर कवि का विशेष ध्यान गया है। पासी के दो मटमैले, सांवले लड़के फुर्ती से सिगरेट के खाली डिब्बे, चमकीले पन्ने आदि को बटोरकर ले जाते और अपनी इस निधि पर प्रसन्न होते हैं। कवि को वस्तुतः ये आकृष्ट करते हैं :

सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन—मन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापन।"[4]

प्रगतिवादी कवि के रूप में पंत जी ने ग्रामों की ओर अपनी कला का स्रोत एक नवीन विचार प्रणाली से प्रवाहित किया है : "युगवाणी" में मार्क्सवादी दृष्टिकोण में कवि को

१- युगवाणी पृ० ५१
२. वही पृ० ५२
३. वही पृ० ४८
४. वही पृ० ३३

प्रभावित किया है। "मार्क्स के प्रति" रचना में मार्क्स को 'प्रलयंकर शिव का तीसरा चक्षु' बतलाया है :

> वर्ग हीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन,
> पूरित होंगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन !
> दिग-दिगंत में व्याप्त, निखिल युग युग का चिर गौरव हर,
> जन संस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर।
> धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
> तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।"[1]

संसार, इतिहास और समाज की जैसी व्याख्या साम्यवाद करता है वैसी ही व्याख्या पंत ने भी की है। साम्राज्यवाद और पूँजीपतियों की निंदा भी कवि ने साम्यवादी दृष्टिकोण से की है और इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर किसानों और मनुष्यों की प्रशंसा भी की है।

प्रगतिवादी लेखक समाज के शोषित और पीड़ित वर्ग को कर्म का संदेश सुनाता है। समाज की समस्त प्रगतिशील शक्तियां जन स्वातंत्र्य के युद्ध के लिए सदैव तत्पर हैं। वे पीड़ित, ताड़ित और तिरस्कृत साधारण जनता को शक्तिशाली कर्मशील बनाने के लिए उद्यत रहता है—पंत ने 'घननाद'[2] में श्रमिकों को जाग्रत होने और अपनी शक्ति पहचानने के लिए पुकारा है क्योंकि वे ही इस वसुंधरा के सच्चे स्वामी हैं।"

श्रमजीवी जन-स्वातन्त्र्य के युद्ध का नेतृत्व करता है। वह नवीन संस्कृति का निर्माता और जन-जीवन का कलाकार है। किन्तु आज परिस्थिति के वैषम्य से वह शासित बना है और भय, अन्याय और घृणा के वातावरण में पोषित किया जा रहा है। इसलिए वह मानवता की इस अपरिमित शक्ति को जगाता है।

> "जागो श्रमिकों, बनो सचेतन,
> भू के अधिकारी हैं श्रमजन !
> "माँस पेशियाँ हृष्ट-पुष्ट घन,
> बढ़ी शिराएं, श्रम बलिष्ठ तन,
> भू का भव्य करेंगे शासन
> चिर लावण्यपूर्ण श्रम के कण।"[3]

मार्क्सवाद समस्त मानव जाति को दो वर्गों में विभाजित देखता है। ये वर्ग हैं—शोषक और शोषित। शोषितों में श्रमिक, कृषक, और नारी का नाम लिया जाता है। इन तीनों के शोषण के हृदय विदारक चित्र हमें मार्क्सवादी कविता में मिलते हैं। भारतीय ग्राम तो इस शोषण के जीते-जागते केन्द्र बिन्दु हैं वह एक ऐसा स्थान है :

> जहाँ दैन्य जर्जर असंख्य जन
> पशु जघन्य क्षण करते यापन,
> कीड़ों से रेंगते मनुज शिशु
> जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन[4]

१. युगवाणी, पृ० ४४.
२. वही, पृ० ५३
३. वही पृ० ५३.
४. ग्राम्या. पृ० १३.

पंत जी ने साम्यवाद को ठीक उसी रूप में ग्रहण किया है जिस रूप में वह पाया जाता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पंत जी के काव्य मे मार्क्सवाद के प्रचारात्मक प्रवृत्ति की गंध है। साम्यवादियों से उनका मतभेद प्रारम्भिक अवस्था से है। यह मतभेद मतवादी और कलाकार का मतभेद है। पंत जी ने अपना मतभेद, स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है। उन्होंने साम्यवादी विचारधारा को केवल लोक-कल्याण की भावना से ही स्वीकार किया है। साम्य वाद मे भी त्रुटियाँ और अपूर्णता पाने पर उन्होंने अन्य मनीषियों की विचारधारा को ग्रहण किया है। इसीलिए मार्क्स के प्रति आकर्षित होते हुए भी गांधी, अरविंद, रवीन्द्र और उनकी मानवता की प्रतिष्ठा गांधी-मार्क्स-रवीन्द्र दर्शन की आधार-शिला पर होती है।

गाँधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण।
गाँधीवाद हमें जीवन पर देता अन्तर्गत विश्वास,
मानव की निःसीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।[1]

अन्त में भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के ही प्रति उनका आकर्षण रहता है।

भौतिकवाद के प्रतीक के रुप में मार्क्स को लिया है और आध्यात्मवाद का प्रतीक गांधी। पंत जी के काव्य में इन दोनों की विचारधारा व सिद्धांत का समन्वय सुंदर ढंग से हुआ है। वे इन दोनों वादों को जीवन-सरिता के दो कूल मात्र समझते हैं।

युगवाणी में कवि इसी सामूहिक जीवन की प्रेरणा जगाता है :—

"क्षुद्र व्यक्ति को विकसित होकर
बनना अब जन-मानव,
सामूहिक मानव का निर्मित
करनी है संस्कृति नव।"[2]

क्योंकि इस सामूहिक निर्माण के अभाव में व्यक्ति निराधार है इसलिए सामूहिक जीवन के लिए कवि मार्क्सवाद को चाहता है और व्यक्तिगत साधना के लिए गांधीवाद को ही संदेश-वाहक समझता है :

"गांधीवाद हमें जीवन पर देता अन्तर्गत विश्वास,
मानव की निःसीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।
व्यक्ति पूर्ण बन, जगजीवन में भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्व कर सकता पशुता से जन का कल्याण
मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।"[3]

युगवाणी में पंत जी मार्क्स के इतिहास विज्ञान और फ्राइड के मनोविज्ञान से प्रभावित हुए हैं। इसीलिए एक ओर मार्क्सवादी दृष्टि से कहते हैं : 'बाह्य परिवर्तन से होता युगवत् परिवर्तन' दूसरी ओर फ्रायडियन दृष्टि से कहते हैं : 'अब चेतन मन से होता है, चेतन मन सन्तत संचालित।'

ग्राम्या के दृष्टिकोण से यदि हम अपने ग्रामीणों के जीवन को देखें तो हमें गांवों

१. युगवाणी, समाजवाद, गांधीवाद, पृ ४७.
२. वही पृ० ४०
३. वही पृ० ४७

को शांति और प्राकृतिक सुंदरता की रंग-स्थली पायेंगे। न वहा आप को कहीं स्वर्ग का ही सुख देखने को मिलेगा। जैसा कि प्रायः द्विवेदी-युग के कवियों के ग्राम वर्णन में है।

'ग्राम्या' के निवेदन में कवि ने ग्राम्यों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा है "जहा आलोचनात्मक दृष्टि की आवश्यकता है वहां केवल भावुकता और सहानुभूति से कैसे काम चल सकता ? वह तो ग्रामीणों के दुर्भाग्य पर आंसू बहाने या पराधीनता सुधाराग्रस्त किसानों को तपस्वी की उपाधि देने के सिवाय हमें आगे नहीं ले जा सकती। इस प्रकार की थोथी सहानुभूति या दया-काव्य (पिटि पोयट्री) से मैंने वे आखें, गाव के लड़के, वह बुड्ढा, ग्राम वधू, नहान आदि कविताओं को बनाया है, जिनके वर्तमान प्रणाली के शिकार ग्रामीणों की दुर्गति का वर्णन होने के कारण ये बाते सहज ही में आ सकती थी।"[1]

कवि ने ग्राम्य जीवन का एक स्वस्थ पक्ष प्रस्तुत किया है। वहां की प्राकृतिक शोभा की अकृत्रिमता अपना पृथक् आकर्षण रखती है। वहां के लहलहाते खेत, जल भरे नदी-नाले मैदान, कछार, वन-उपवन पशु-पक्षी सभी कितने प्रिय लगते है। वहा के युवक-युवतियों का स्वास्थ्य, वहां के आनंदोत्सव, वहां के नृत्यगीत—सब प्राणप्रद हैं धोबियों का नृत्य, कहारो का रुद्र नृत्य, चमारों का नाच, गंगा, संध्या के बाद, ग्रामश्री, ग्राम युवती, नहान आदि ऐसी ही रचनायें हैं। कवि ग्राम्य जीवन के यथार्थ चित्रण करने में वहां की श्री, स्वास्थ्य, रोमांस और आनन्द की कुछ झलक को नहीं भूला :

"उन्माद जीवन से उभर
घटा सी नव-असाढ़ की सुंदर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गजगति
सर्प डगर पर !"[2]

गांव के व्यापक जीवन पर भी कवि की दृष्टि पड़ी है। उसने धूलि में खेलते बच्चों, विदा होती बहू-बेटियों और पीतल तथा गिलट के गहने लादे किसानों की पत्नियों को नहाने के लिये जाते देखा है।

पर यह सुन्दरता, यह निर्द्वन्द्वता, यह मस्ती, यह आह्लाद ग्राम्य जीवन का एक पक्ष है। उसका एक दूसरा पक्ष भी है जिसमें दरिद्रता है, रोग है, कराह है। यहाँ क्षुधा मिटाने को अन्न नहीं, शरीर ढंकने को वस्त्र नहीं, रक्षा पाने को घर जैसे घर नहीं। नर-नारी रूढ़ियों में बंधे हुए हैं, छोटी-छोटी बातों पर लड़ते-झगड़ते हैं, जीवन के प्रकाश से मुह फेरे बैठे हैं। शिक्षा, कला, संस्कृति की बात यहां करना व्यर्थ है। चित्र का यह पक्ष भी कवि ने पूरे यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रित किया है।

"मिट्टी से भी मटमैले तन,
अधफटे, कुचैले, जीर्ण वसन—
ज्यों मिट्टी के हों बने हुए
ये गंवई लड़के-भू के धन !

---

1. ग्राम्या, निवेदन, पृ० १७
2. वही पृ० २७

कोई खंडित, कोई कुंठित,
कृश बाहु, पसलियाँ रेखांकित,
टहनी सी टाँगें, बड़ा पेट
टेढ़े-मेढ़े, विकलांग घृणित !
जग-जीवन धारा में बहते
ये मूक, पंगु बालू के कण।[१]

ससुराल में जाती हुई ग्रामवधू का चित्रण कवि ने हृदयस्पर्शी किया है :—

"नहीं आँसुओं से आँचल तर, जन विछोह से हृदय न कातर :
रोती वह, रोने का अवसर, जाती ग्राम वधू पति के घर !"[२]

ग्राम युवती का यौवन असमय में ही ढल जाता है। उसका यौवन एक क्षण भर का सपना है, दुःख और वेदना में उसका तन शीघ्र ही जर्जर हो जाता है :

"रे दो दिन का
उसका यौवन !
सपना छिन का
रहता न स्मरण
दुःखों से पिस
दुर्दिन में घिस
जर्जर हो जाता उसका तन।
ढह जाता असमय यौवन धन।"[३]

वस्तुतः ऐसा चित्रण वही कवि कर सकता है जो ग्राम-जीवन से पूर्ण परिचित हो और उसमें घुल-मिलकर रहा हो। "भारतमाता" कविता में कवि की बदलती हुई विचारधारा है। पंत का "भारत मां" का चित्र सचमुच ही हृदय विदारक है। पंत की "भारत माता ग्रामवासिनी" है, वह तीस कोटि विभुक्षित और नग्न तन सन्तान की मां है। वह किसी तरु के तले नत मस्तक बैठी हुई है :

"भारत माता,
ग्रामवासिनी !
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल
गंगा-यमुना में आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी !
तीस कोटि सन्तान नग्न तन,
अर्धक्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन

१. ग्राम्या, पृ० २७
२. वही, पृ० ३४.
३. वही, पृ० १९.

नत मस्तक
तरु तल निवासिनी !"[1]

'ग्राम्या' के प्रगतिवादी कवि ने ग्रामों में युग-युग से अभिशप्त, अन्न पीड़ित, पारस्परिक कलह में रत नर-नारियों के प्रकृति धाम ग्रामों में देता है, कवि ने विषमताओं का मूल कारण वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक दुर्व्यवस्था बताया है, जिसको उलटकर समाजवाद प्रतिष्ठित करने में ही कल्याण है। पंत जी ने ग्राम देवता, धोबियों, कहारों आदि के नाच अनेक विषयों पर भी रचनाएं कीं।

नारी को प्राय: सभी नवीन कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है, नर समाज ने नारी को अपनी वासनापूर्ति का एकमात्र साधन बनाकर उसे कृत्रिम आदर्शात्मक नियमों में बांध बंदी बना दिया है। कवि उसकी मुक्ति चाहता है :

"क्षुधा काम वश, गत युग ने
पशु बल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण सदृश्य नारी भी कर ली अधिकृत !"[2]

इसलिये:—

"मुक्त करो जीवन संगिनी को,
जननि देवि को आदृत,
जग जीवन में मानव के संग
हो मानवी प्रतिष्ठित।"[3]

इसके साथ ही साथ कवि ने आधुनिकता के प्रति व्यंग्य भी कसा है :—

"तुम सब कुछ हो, फूल, लहर तितली, विहगी, मार्जारी,
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।"[4]

और साथ ही कवि ने दुनिया से अपरिचित केवल हास-विलासमयी कुल-वधुओं पर "स्वीट पी के प्रति" कविता में अन्योक्ति के द्वारा व्यंग्य किया है :—

"कुल वधुओं सी अयि सलज्ज सुकुमार !
शयन कक्ष, दर्शन गृह की शृंगार !
उपवन के यत्नों से पोषित,
पुष्प पात्र में शोभित रक्षित,
कुम्हलाती जाती हो तुम निज शोभा ही के भार !"[5]

मार्क्सवादी लेखक नारी में एक ऐसा शोषित वर्ग देखता है जिसका नर द्वारा खूब शोषण किया गया है। नारी नर की सम्पत्ति और विलास का साधन समझी जाती है। उसके स्वयं के व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध किया जाता है और मनुष्य से कम शारीरिक शक्ति होने के कारण नारी पुरुष की दासीमात्र समझी जाती है। उसके स्वयं का कोई व्यक्तित्व नहीं। वह केवल पुरुष की छायामात्र है। ऐसे नारी संबंधी अनेक विचार पंत

१. वही, पृ० ४८
२. युगवाणी पृ० ६५
३. वही पृ० ६५
४. ग्राम्या पृ० ८१
५. वही पृ० ७८

जी द्वारा व्यक्त किए गए हैं।

"सामंत-युग के स्त्री-पुरुष सदाचार का एक दृष्टिकोण अब अत्यन्त सकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है। उस सदाचार के अंचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बालविधवा अपनी छाती से चिपकाए हुए हैं और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या। 'न स्त्री स्वार्तंत्र्यमर्हति' के अनुसार उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं है। वह पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती है। स्त्री स्वातन्त्र्य संबंधी हमारी भावना का विकास वर्तमान युग की आर्थिक परिस्थितियों के साथ हो ही रहा है। स्त्रियों का निर्वाचन अधिकार संबंधी आन्दोलन प्राचीन संस्कृति एवं पूँजीवादी युग की आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। सामंत युग की नारी नर की छायामात्र रही है।"[1]

पंत जी नारी-स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक हैं। उनके लिए नारी योनिमात्र नहीं है। उसका अपना निज का व्यक्तित्व है और वह समान अधिकारों की अधिकारिणी भी है :—

'सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित;
अंग अंग उसका नर के वासना चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इंगित संचालित, चिर पद लुंठित!
योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।"[2]

मार्क्सवाद ईश्वर की आस्था में विश्वास नहीं रखता। ईश्वर मार्क्सवादी सिद्धांतों के अनुसार शोषक वर्ग द्वारा निर्मित एक अस्त्र है। जिसे शोषितों को सदैव दासत्व की जंजीरों में जकड़कर रखने के लिए काम में लाया जाता है। अतः ईश्वर मन का भ्रममात्र है। ईश्वर के नाम पर शताब्दियों से पीड़ित और निर्धन वर्ग का शोषण होता रहा है। पंत जी का ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण 'ग्राम देवता' में व्यंग्यात्मक है। उनका ग्राम देवता भी जनता के शोषण का आकांक्षी है। वह जनस्वातंत्र्य के युद्ध को देखकर अपना हृदय थामकर रह जाता है। ऐसे ग्राम को कवि रूढ़ि रीति की अफीम खाकर चिर-विश्राम लेने के लिए कहते हैं।[3]

प्रगतिवाद की ओर आकृष्ट होने पर पंत जी में भी व्यंग्य की रुचि जगी। 'ग्राम्या' की कई बहुत अच्छी व्यंग्यात्मक रचनाएँ हैं। कवि देवी-देवताओं के भरोसे भाग्य का नाम लेकर बैठे रहने वाले अकर्मण्य ग्रामीणों और अंधविश्वासियों के आवरण में लिपटे हुए ग्राम देवता पर व्यंग्य करता हुआ कहता है :

"राम राम,
हे ग्राम्य देवता, यथा नाम!
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य,
तुम्हें सविनय प्रणाम!

१—आधुनिक कवि, भाग २, पर्यालोचन, पृ० २६.
२—ग्राम्या, पृ० ८५.
३—वही, पृ० ८७.

विजया, महुआ, ताड़ी,
गांजा पी सुबह-शाम
तुम समाधिस्थ नित रहो,
तुम्हे जग से न काम !
पंडित, पंडे, ओझा,
मुखिया औ' साधु, संत
दिखलाते रहते तुम्हें,
स्वर्ग अपवर्ग पंथ।
जो था, जो है, जो होगा—
सब लिख गए ग्रंथ,
विज्ञान ज्ञान से बड़े[1]
तुम्हारे मंत्र तंत्र ।

संसार समय चक्र के साथ-साथ कहाँ का कहाँ पहुंच गया और भारत के गाँव अभी अनिष्ट देवों की पूजा मे लीन साधारण कोटि के विश्वासों पर टिके जहां के तहां पड़े हुए हैं, रूढ़ियाँ किस प्रकार उन्हें खींचे हुए है। इन सबका उल्लेख जिस व्यग्यपूर्ण पद्धति पर हुआ है वह देखने योग्य है। अपनी सुरुचि, सम्पन्नता, कलामयता और परिष्कृति के कारण पंत जी का व्यग्यविधान मार्मिक और परिमार्जित हुआ है।

१—ग्राम्या, पृ० ६०

पन्त : अन्तश्चेतनावाद

अरविन्द दर्शन की सामान्य रूपरेखा

भारतीय दार्शनिक परम्परा में अद्वैतवाद प्रधान रहा है। श्री अरविन्द का दर्शन भी अद्वैतवादी है। उनके दर्शन को पूर्णाद्वैत कहा जा सकता है। अद्वैतवाद विश्व की मौलिक एकता में विश्वास रखता है। विश्व में दिखाई देने वाला नानात्व मिथ्या नहीं है लेकिन परमार्थतः उसका महत्व नहीं है। इस नानात्व के मूल में, जो एकत्व है वही परमार्थ है। वह अद्वैत ही नहीं है बल्कि अनिर्वचनीय और अचिन्त्य भी है वह निर्विशेष है। हमारी तर्क बुद्धि उसके स्वरूप को जानने में असमर्थ है। अंतःप्रज्ञा से ही उसे जाना जा सकता है। वह निर्गुण ब्रह्म है जो एक और अनेक द्रव्य और गुण, कार्य और कारण इत्यादि भेदाश्रित प्रत्ययों से परे है। वह अपरिभाषेय है। सीमित बुद्धि की पकड के बाहर है। वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती है। उसका स्वरूप न नेति-नेति कर बताया जा सकता है और न इति-इति कहकर—निषेधात्मक और विधानात्मक दोनों ही तरीके उसके स्वरूप निर्धारण के लिए अपर्याप्त है।[1]

आधारभूत प्रत्यय जड़ और चेतन

अरविन्द के दर्शन का आधारभूत प्रत्यय यह है कि जड़ और चेतन दोनों ही सत्य हैं। अरविन्द दर्शन न तो जड़ की ही उपेक्षा कर सकता, न चेतन की ही। अध्यात्मवादी दर्शन, जड़ का निषेध करता है और जड़वादी दर्शन चेतन का निषेध करता है, इसलिए दोनों दर्शन एकांगी हैं। दर्शन को इन दोनों से बचते हुए एक बीच का मार्ग अपनाना है। अरविन्द ने कहा है कि पृथ्वी पर दिव्य जीवन का अवतरण और नश्वरता के अन्दर अमरत्व का बोध तब तक सम्भव नहीं है जब तक हम न केवल नित्य आत्मा को शरीर के अन्दर रहने वाला न माने बल्कि इस शरीर को बनाने वाले जड़ द्रव्य को भी उस सामग्री के रूप मे स्वीकार न करे जिससे आत्मा अपने लिए नित्य नवीन परिधानों का निर्माण करता है।[2] हमें प्राचीन ऋषियों की भाति कहना होगा ("अन्नम् ब्रह्मेति व्यजनात्") अन्न भी ब्रह्म है। जैसा कि श्री अरविन्द ने बताया है कि जड़ को चेतन से पृथक् करने का अपरिहार्य परिणाम यह होगा कि हमें दोनों में से एक को चुनने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। मानवीय चिन्तन के इतिहास में यही बात हमें दिखाई देती है। कहीं तो आत्मा को कल्पना कहकर छोड़ दिया गया है और कहीं जड़ को इन्द्रियों का भ्रम कहकर हटा दिया है। फलतः एक तरफ जीवन और दूसरी ओर आत्मा को निस्सार बना दिया गया है।

---

१. लाइफ डिवाइन, जिल्द १, पृ० २१२

२. लाइफ डिवाइन, जिल्द १, पृष्ठ ८

जड़वादी आत्मा का निषेध करना है इसलिए कि वह इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को ही सब कुछ मानता है। वह ज्ञानेन्द्रियों को ही ज्ञान का एकमात्र साधन मानता है और बुद्धि को स्वतन्त्र साधन मानने से इन्कार करता है। वस्तुतः बुद्धि के सर्जनात्मक शक्ति से और उससे भी ऊची अध्यात्मिक शक्तियों से इन्कार नही किया जा सकता। ज्ञान के अधिकतर क्षेत्रो मे इन्द्रियों की पहुंच नहीं है। अध्यात्मवाद ने भौतिक जगत का जो निषेध किया है वह भी समान रूप से अनुचित है। इसे भी श्री अरविन्द ने अहितकर बताया है।

आरोहण और अवरोहण

एकमात्र आत्मा का अस्तित्व भारतीय विचारधारा में वेदान्त ने माना है। लेकिन यह भी जड़वादी की तरह एकांगी ही है, क्योंकि यह विश्व प्रक्रिया का केवल एक ही पक्ष अपने सामने रखता है और यह पक्ष है—आरोहण, लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है—अवरोहण का पक्ष। जगत में आत्मा के अवरोहण के बिना जगत का आत्मा में आरोहण सम्भव नहीं है। जिस सीमा तक आत्मा का विश्व में अवरोहण हुआ है उस सीमा तक विश्व का आत्मा में आरोहण भी सम्भव है। आत्मा का जड़ पदार्थ में भी अवरोहण होता है इसीलिए जड़ पदार्थ अपने से किसी ऊंची चीज अर्थात् जीवन में विकसित होने की चेष्टा करता है। आत्मा का जीवन में अवरोहण होना है और इसीलिए जीवन ऊपर उठकर अपने से ऊंची चीज अर्थात् बुद्धि में पहुंचने की चेष्टा करता है। इसी प्रकार आत्मा का बुद्धि में अवरोहण होता है और इसलिए बुद्धि को अपने उद्‌गम में अपने से ऊंची वस्तु में अर्थात् पराबुद्धि में पहुंचने की चेष्टा करनी चाहिए। यह आरोहण की प्रक्रिया पराबुद्धि में पहुंचकर समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि आगे चलती रहती है तब तक जब तक कि वह परमब्रह्म या सच्चिदानन्द में नहीं पहुंच जाती है। अवरोहण की प्रक्रिया को अपकर्ष कहा गया है और आरोहण की प्रक्रिया को उत्कर्ष सर्वत्र उत्कर्ष अपकर्ष पर निर्भर होता है। जड़ प्रकृति का उत्कर्ष केवल इसलिए सम्भव है कि आत्मा का जड़ प्रकृति में अपकर्ष हुआ है। यदि जड़ द्रव्य में आत्मा व्याप्त न होती तो जड़ द्रव्य का उत्कर्ष सम्भव न होता। इसलिए जड़ द्रव्य को भी आत्मस्वरूप या आत्मरूप मानना आवश्यक है और इसीलिए जड़ द्रव्य की उपेक्षा करनेवाला अध्यात्मवाद एकांगी और असत्य है। कोई भी, जो उत्कर्ष की बात करता है जड़ द्रव्य में व्याप्त आत्म तत्त्व का निषेध नहीं कर सकता। यही बात जीवन बुद्धि इत्यादि में भी है। इनके उत्कर्ष की बात करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक इनमें आत्मतत्त्व को व्याप्त न माना जाए। अवरोहण के बिना आरोहण की अपकर्ष के बिना उत्कर्ष की बात सोची भी नही जा सकती। वेदान्ती जीवात्मा का ब्रह्म में पहुंचने की बात करते हुए इस आधारभूत तथ्य को निरमूल कर देता है वह उत्कर्ष में मुख्य स्रोत की उपेक्षा कर देता है। आत्मा प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त है। अपकर्ष मे आत्मा के अवरोहण की प्रक्रिया होती है। उत्कर्ष में यही प्रक्रिया विपरीत दिशा मे चलती है। श्री अरविन्द ने अपकर्ष का क्रम इस प्रकार बताया है[1]—सत्, चित्, आनन्द, पराबुद्धि, बुद्धि, जीवात्मा, जीवन, जड़वस्तु। उत्कर्ष का क्रम इस प्रकार होगा—जड़वस्तु, जीवन, जीवात्मा, बुद्धि. पराबुद्धि, आनन्द, चिद्, सत्। प्रथम चार तत्व अधोलोक और बाद के चार तत्व ऊर्ध्वलोक के हैं। अधोलोक की चार विभिन्न अवस्थाएं ऊर्ध्वलोक की चार अवस्थाओं के गौण रूप हैं। बुद्धि पराबुद्धि की एक गौण शक्ति है। जीवन सच्चिदानन्द के शक्ति पक्ष की एक गौण शक्ति है। जड़ वस्तु सत् का एक रूप है। जीवात्मा असीम आनन्द की एक गौण शक्ति है। ऊर्ध्व-

१- देखिये लाइफ डिवाइन-जिल्द पृ० ४०३

लोक और अधोलोक की कड़ी वहा से जहां बुद्धि और पराबुद्धि का सहयोग होता है। बुद्धि और पराबुद्धि के बीच में एक आवरण है। इस आवरण का छिन्न भिन्न होना ही मनुष्य के अन्दर दिव्य जीवन के प्राकट्य का कारण है। इसके छिन्न भिन्न होने से, उच्च सत्ता का निम्न सत्ता में अवरोहण होने से और निम्न सत्ता का बलपूर्वक उच्च सत्ता में आरोहण होने से बुद्धि पराबुद्धि में अपने दिव्य प्रकाश को पुन. प्राप्त करती है। जीवात्मा सर्वव्यापक, आनन्द में अपने दिव्य स्वरूप को प्राप्त होता है। जीवन सर्व शक्तिमान चितशक्ति मे अपनी दिव्य शक्ति से पुनः सम्पन्न हो जाता है। और जड़ द्रव्य, सता के एक रूप के बतौर अपनी दैवी स्वतंत्रता को प्राप्त कर सकता है।[1] पराबुद्धि के बुद्धि में अवरोहण से और फलत: बुद्धि का पराबुद्धि में उत्कर्ष होने से जो परिवर्तन होते हैं उनका वर्णन आगे किया गया है।[2] श्री अरविन्द के दर्शन में मनुष्य का ऊंची अवस्था में उत्कर्ष का यह अर्थ नहीं है कि उसका शरीर, जीवन जीवात्मा या बुद्धि से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है बल्कि यह है कि इन सब का पूर्ण रूप से रूपान्तरण हो जाता है। इस रूपान्तरण में उसके औपाधिक लक्षण लुप्त हो जाएंगे। उदाहरणार्थ मृत्यु एक औपाधिक लक्षण है। जीवन की स्वाभाविक विशेषता नहीं। इसका अस्तित्व केवल तभी तक है जब तक जीवन बुद्धि के अधीन है। जब वह पराबुद्धि के अवरोहण के पश्चात बुद्धि की अधीनता से मुक्त हो जाएगा तब मृत्यु के बन्धन से भी मुक्त हो जाएगा। श्री अरविन्द मानते हैं कि जड़ प्रकृति पदार्थ का निषेध वास्तव में आत्मा का निषेध है यदि आत्मा को वस्तुत. परमतत्व होना है तो यह मानना ही पड़ेगा कि जड़ प्रकृति आत्मा से व्याप्त है उत्कर्ष की प्रक्रिया जड़ वस्तु का अध्यात्मिकीकरण कर देगी न कि उसका निषेध। श्री अरविन्द निषेधवादी नहीं है।[3] पर उन्होने इसका विवेचन किया है जगत का उत्कर्ष अब तक जड़ वस्तु, जीवन, जीवात्मा और बुद्धि चार चरण पूरे कर चुका है। लेकिन अब वह समय आ पहुंचा है जब उत्कर्ष की प्रक्रि‌‌या को अगले पराबुद्धि के चरण में पहुंचा है। पराबुद्धि में पहुंच जाने पर सम्पूर्ण जगत का पूरा-पूरा रूपान्तरण हो जायगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है बुद्धि का पराबुद्धि में आरोहण, पराबुद्धि के बुद्धि में अवरोहण से ही सम्भव होगा तब, जब इन्हें पृथक करनेवाला आवरण छिन्न-भिन्न हो जाएगा और यह छिन्न-भिन्न दिव्य शक्ति के द्वारा होगा। लेकिन दिव्य शक्ति का इस आवरण को छिन्न-भिन्न करने के लिए उद्यत होने पर भी यह छिन्न-भिन्न तब तक नहीं होगा, पराबुद्धि का प्रकाश हमारी चेतना को तब तक प्रकाशित नहीं कर पायेगा जब तक हमारी इसके लिए तीव्र इच्छा न हो और हमारा सम्पूर्ण शरीर, जीवन, जीवात्मा और बुद्धि इस प्रकाश को ग्रहण करने के लिए पूरी तरह से तैयार न हो। यहां दर्शन और योग का सम्मिलन होता है। दर्शन सिद्धान्त रूप में जिस बात की आवश्यकता बताता है उसकी पूर्ति केवल योग से ही सम्भव है।

दर्शन और योग

श्री अरविन्द के योग का उद्देश्य ऐसी भूमि तैयार करना है जो पराबुद्धि के प्रकाश

---

१. देखिए लाइफ डिवाइन, जिल्द १, पृ० ४०३
२. लाइफ डिवाइन, जिल्द १, पृ० ४०४
३. देखिए लाइफ डिवाइन, जिल्द १, पृ० ३३९
४. लाइफ डिवाइन, जिल्द १, पृ० ३७१

के अवरोहण के अनुकूल हो क्योंकि सम्भव है कि दिव्य शक्ति आकर हमारे द्वार पर खड़ी हो और हम अज्ञानवश तथा अहंकारवश उसका स्वागत न कर पायें । इस दुर्घटना से योग ही हमको बचा सकता है । इसकी सहायता से हम अपने शरीर, जीवन, आत्मा और बुद्धि को आने वाले नये प्रकाश के स्वागत के लिए खुला रखते हैं ।[1] हमको दिव्य प्रकाश से पृथक् करने वाले आवरण का भेदन केवल परमात्मा ही कर सकता है । मनुष्य के अन्दर यह शक्ति नहीं है फिर भी यदि मनुष्य ऊंची दिशा मे प्रयत्नशील रहे तो पराबुद्धि के अवरोहण के लिए वह अपने को तैयार कर सकता है जब इस आवरण का भेदन हो जाता है और पराबुद्धि का अवरोहरण हो जाता है तब मनुष्य उठकर एक उच्चतर स्तर पर पहुंच जाता है । लेकिन इसकी निष्पत्ति के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—(१) चेतना, (२) सुनम्यता और (३) पूर्ण-शरणागति । इनके स्वरूप की विस्तृत व्याख्या दी है ।[2] शायद इससे कोई यह समझे कि इस प्रकार सम्पूर्ण मानव जाति पराबौद्धिक स्तर में पहुंच जाएगी । श्री अरविन्द ने इस बात का स्पष्टतया निषेध किया है । सम्पूर्ण मानवजाति के पराबौद्धिक स्तर पहुँचने की कतई सम्भावना नहीं है ।[3]

सृष्टि और जगत प्रक्रिया

सृष्टि और सृष्टि के बाद जगत प्रक्रिया की समस्या ने सारे जगत के अद्वैतवादी दार्शनिकों के लिए कठिनाई पैदा की है । एक अनेकों में रूपान्तरित कैसे हो सकता है ? और यदि अनेकत्व सत्य है तो अद्वैत तत्व की बात ही कैसे की जा सकती है ? इन समस्याओं ने हमारे महान् वेदान्ताचार्यों तथा प्लेटो और स्पीनोजा को भी उलझन में डाल दिया था । श्री अरविन्द ने इन समस्याओं पर विशद विचार किया है । उन्होंने परमतत्व को सच्चिदानन्द माना है । वह सन्मात्र है और आधारभूत तत्व है लेकिन गति, शक्ति, प्रक्रिया भी उससे कम सत्य नहीं है । दो आधारभूत तथ्य हैं जिन्हें हमें मानना पड़ता है कि एक है सत्ता और दूसरा है सत्ता का परिवर्तन । ब्रह्म न सत् है और न परिवर्तन है न एक है, न अनेक है बल्कि इन दोनों से परे है । वास्तव में स्थिरता और गतिशीलता एकत्व और नानात्व ब्रह्म के बारे में सोचने के हमारे मानसिक तरीके है । जगत् शिव का नृत्य है । आनन्दमय नृत्य है जो उसके शरीर को देखने में असंख्य रूप से बढ़ा देता है । वह (जाति प्रक्रिया) शुभ्र सत्ता को यथा स्थान और यथावत् छोड़ देती है । उसका एकमात्र लक्ष्य नृत्य का आनन्द प्रदान करना है ।[4] लेकिन हमारी ब्रह्म की कल्पना स्थिरता और गतिशीलता, एकता और अनेकता के परे नहीं जा सकती, इसलिए हमें दोनों बातों को सत्य मानना होगा । शिव और काली दोनों ही सत्य हैं और हमें जानना है कि इस देश कालातीत, अद्वितीय, शाश्वत, सन्मात्र, तत्व से देश काल में होने वाली अनन्त परिवर्तन का क्या संबध है ?

माता-एक दिव्य शक्ति

अब प्रश्न यह उठता है जिस शक्ति को हमने आधारभूत सत्य के रूप में देखा है

१. दी मदर—पृ० ८३-८४
२. देखिये—दी मदर पृ० ७५-७७
३. लाइफ डिवाइन—जिल्द २ पृ० ८३७
४. लाइफ डिवाइन—जिल्द १ पृ० ११६

उसका स्वरूप क्या है ? वह चेतन है या अचेतन। श्री अरविन्द ने इसे चेतन मानने का आग्रह किया है। शान्ति की तरह उसे जड़ प्रकृति के स्वरूप का मानना या पाश्चात्य जड़वादियों की तरह चेतना को जड़ शक्ति से उद्भूत मानने में कठिनाइयाँ हैं। शक्ति के चेतन मानने में सबसे बड़ी बाधा यह व्यापक मत है कि चेतना सदैव उस प्रकार की होती है जिसका हमें जाग्रत अवस्था में अनुभव होता है। इस मत को मानने के कारण ही लोग यह नहीं समझ पाते कि चेतना प्रकृति में सक्रिय है। श्री अरविन्द इस मत को बिलकुल गलत बतलाते हैं। हमारी चेतना के उच्चतम रूप वे हैं जिनका हमें अनुभव नहीं होता है। इस चेतना में जितनी गहराई है और जितनी क्रिया शक्ति है वह हमारी जाग्रत अवस्था की चेतना की अपेक्षा बहुत अधिक है। एक और चेतना भी है जिसको पराचेतना कहा जा सकता है। ऊपर उद्धृत मत को इसकी बिलकुल भी जानकारी नहीं है। अब प्रश्न यह है कि यह चेतन शक्ति सन्मात्र, जो कि परम तत्व है, से किस प्रकार संबंधित है। यदि हम इस चेतन शक्ति को संपूर्ण सत्ता का सार मानते हैं तो सन्मात्र भी सन्मात्र बना नहीं रह सकता है। बल्कि उसे गतिमान होना पड़ेगा। लेकिन इससे सन्मात्र की निर्पेक्षता जाती रहेगी। इसलिए हमें चेतन शक्ति को सन्मात्र से समवेत मानना पड़ेगा। इस प्रकार सन्मात्र में समवेत शक्ति गतिहीन या गतिमान हो सकती है। गतिहीन होने से उसके अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं आता। सन्मात्र में रहने वाली यह चेतन शक्ति ही जाग्रत प्रक्रिया का मूल कारण है। इसे श्री अरविन्द ने माता कहा है। 'दी मदर' में इसका पूरा वर्णन किया गया है। माता दिव्य शक्ति है। यही जगत् को चलाती है, लेकिन वह जब तक अधोलोक में कार्यरत रहती है, तब तक अपनी योग माया के आवरण में छिपी रहती है। इसके तीन रूप हैं :—(१) लोकोत्तर, (२) सर्वगत और (३) व्यक्तिगत। लोकोत्तर रूप में वह आद्य परम शक्ति है, वह लोकों से परे रहती है और सृष्टि को अव्यक्त और गूढ़ ब्रह्म से जोड़ती है। सर्वगत रूप में वह विश्व में व्याप्त महाशक्ति है। सब वस्तुओं की सृष्टि करती है और सभी असंख्य प्रक्रियाओं और शक्तियों में नियामक रूप से प्रविष्ट रहती है। व्यक्तिगत रूप में वह मनुष्य और दिव्य प्रकृति के बीच मध्यस्थता करती है। सब कुछ शक्तिमय है। सब इस दिव्य चेतन शक्ति के अंश हैं। जो कुछ जहाँ है वह उसकी इच्छा और परम तत्व की स्वीकृति से ही है। अपने सर्जनात्मक आनन्द में वह जो देखती है और जो कुछ बनाती है वही होता है। अब प्रश्न यह है कि ब्रह्म सृष्टि क्यों करता है ? और सृष्टि करने के बाद इस नाना रूपमय जगत् को क्यों चलाता है ? इसका उत्तर है, आनन्द।

आनन्द—शुद्ध आनन्द के लिए ही ब्रह्म जगत् का निर्माण करता है और उसे स्थित रखता है। पहले कहा जा चुका है कि श्री अरविन्द के अनुसार विश्व का अस्तित्व शिव का आनन्द-विह्वल नृत्य है और उसका एकमात्र लक्ष्य नृत्य से प्राप्त आनन्द है। ब्रह्म सत् और चित् शक्तिमात्र नहीं है बल्कि आनन्द भी है। उसका आनन्द सीमा के अन्दर नहीं बाँधा जा सकता जिस प्रकार चेतन शक्ति विश्व के अनन्त आकारों में परिणत हो जाती है, उसी प्रकार उसका आनन्द भी जगत् की अनन्त नाना वस्तुओं में प्रस्फुटित होता है। इस अनन्त गति और नानात्व का आनन्द लेना ही चेतन शक्ति की सृजनात्मक लीला का प्रयोजन है। इस शाश्वत आनन्द में सापेक्ष और सीमित वस्तुएँ जहाँ तक भाग लेती हैं वहाँ तक वे अपने सापेक्षत्व और सीमितत्व से ऊपर उठ जाती हैं। अतः आनन्द प्रत्येक परिछिन्न वस्तु और प्रत्येक जाग्रत प्रक्रिया का सहज लक्षण है। इस मत को स्वीकार करने में सबसे बड़ी

बाधा पाप, पीड़ा और दुःख का अस्तित्व है। यदि यह सिद्ध नहीं हो सकता कि पाप, दुःख और पीड़ा का अस्तित्व आनन्द का निषेध नही है बल्कि उसकी अभिव्यक्ति का ही एक प्रकार है, तो आनन्द का सब का सहज लक्षण होना सिद्ध नही हो पाएगा। कहा जाता है कि पाप का अस्तित्व आनन्द की व्यापकता में बाधक है। श्री अरविन्द का कहना है कि हम एक नैतिक जगत् में निवास नहीं करते। प्रकृति को नैतिक अर्थ देने की चेष्टा एक भ्रम है और मनुष्य के संपूर्ण प्रकृति को अपनी ही बुद्धि के अनुसार देखने और उसमें अपनी बुद्धि का आरोप करने का फल है। यह उसके सच्चे ज्ञान और सम्यक् दृष्टि की प्राप्ति मे बाधक है।[1] अरविन्द के इस कथन से हमे आश्चर्यान्वित नही होना चाहिए, क्योंकि यही बात बोसांक्वेट इत्यादि आधुनिक प्रत्ययवादियो ने भी कही है। श्री अरविन्द की तरह वे भी कहते हैं कि नैतिकता मानवीय जीवन की ही विशेषता है और समस्त जगत् का तात्विक लक्षण उसे नही माना जा सकता। ब्रैडले ने नैतिकता को एक आभास माना है और सर्वोच्च स्थिति को पुण्य-पाप से परे बताया है। दूसरे शब्दों में नैतिकता विकास का एक चरणमात्र है। वास्तविक वस्तु सच्चिदानन्द की आत्माभिव्यक्ति की चेष्टा है। श्री अरविन्द के अनुसार यह चेष्टा प्रारम्भ में नैतिकता शून्य होती है, पर पशुओं में अधोनैतिक रहती है। मनुष्य के स्तर के नीचे सब कुछ अधोनैतिक है और उसके ऊपर जिस अवस्था में हम पहुंचेंगे वह अधिनैतिक होगी। उसे नैतिकता की आवश्यकता नहीं होगी।[2] पीड़ा और दुःख के विषय में यह बात ध्यान देने की है कि सार्वभौम आनन्द उससे, जिसे हम साधारणतया सुख कहते हैं, अधिक विस्तीर्ण और व्यापक चीज है। ठीक वैसे ही जैसे सार्वभौम चेतना हमारी जाग्रत अवस्था की चेतना से अधिक विस्तीर्ण और व्यापक है। आनन्द अपनी व्यापकता में सुख और दुःख दोनों को अपने अंदर ले लेता है। वस्तुतः सुख और दुःख सार्वभौम आनन्द की धनात्मक और ऋणात्मक धाराएँ हैं। अनुभव में उसकी प्रथम अभिव्यक्तियाँ सुख और दुःख के द्वैत से विशिष्ट रहती हैं, लेकिन वह इनसे ऊपर उठकर सत्ता के परम आनन्द में पहुँच जाता है जो सुख और दुःख के भेद से परे है। वास्तव में सुख-दुःख और अनुनय भाव हमारी परिछिन्न आत्मा की ऊपरी सतह में होने वाले कम्पनमात्र हैं और इनका अनुभव हमारी जाग्रत अवस्था की चेतना में सबसे ऊपर रहता है। ये जगत् से होने वाले हमारे नाना रूप सम्पर्कों के प्रति होने वाली हमारी अपूर्ण आत्मा की अपूर्ण प्रतिक्रियाएँ मात्र हैं। वे हमारे अन्दर निवास करने वाली चेतन सत्ता की पूर्ण लीला की भूमिका मात्र है। हमें अपने ऊपरी अनुभव से नहीं बल्कि अपने अंदर रहने वाले दिव्य तत्व से अपने को एकाकार करना चाहिए। हमारे मनोमय कोष के अंदर आनन्दमय कोष का निवास है। मनोमय कोष जिसकी छायामात्र है। सुख-दुःख और तटस्थ भाव निर्पेक्ष नही है। वे हमारे परिछिन्न आकार की वे प्रतिक्रियाएँ है जो जगत् से हमारा सम्पर्क होने पर पैदा होती है। विशेष परिस्थितियों में सुख-दुःख आदि का अनुभव हमारी आदत बन गई है। ऐसा बिलकुल सम्भव है कि हम इस आदत को बदल डालें और दुःखद परिस्थिति में सुख का तथा सुखद परिस्थिति मे दुःख का अनुभव करें। हम इन अभ्यस्त प्रतिक्रियाओं को छोड़कर आनन्द की प्रतिक्रिया में वापस लौट सकते हैं और यही हमारे अन्दर रहने वाली सच्ची आनन्दमय आत्मा का अनुभव है। इस प्रकार पाप और दुःख यह मानने में बाधक नही हैं

१. लाइफ डिवाइन, जिल्द-१, पृ० १४४

२. लाइफ डिवाइन, जिल्द-१, पृ० १४६

कि सार्वभौम आनन्द सम्पूर्ण जगत् को चलाने वाली शक्ति है।

श्री अरविन्द के इसी दर्शन से प्रभावित होकर कवि के स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा, अतिमा, कला और बूढ़ा चाँद की सृष्टि हुई है और यह उनके काव्य जीवन का तीसरा मोड़ है।[1] हिन्दी साहित्य में अरविन्द-दर्शन को ग्रहण करने वाले एक मात्र कवि पंत जी ही है। इन कृतियों में पंत ने अन्तर विकास द्वारा मानव विकास पर अधिक जोर दिया है, क्योंकि अन्तर विकास से ही पूर्ण चेतना की प्राप्ति होगी और अविकसित चेतना एकांगी होती है। इसीलिए उन्होंने समन्वय पर जोर दिया है। वे जड़ और चेतन, अध्यात्म और भौतिकता, हृदय और मस्तिष्क का पूर्ण समन्वय चाहते हैं, क्योंकि इन्हीं के समन्वय से मानवता का पूर्ण विकास हो सकेगा।

स्वर्ण किरण में चेतना प्रधान रचनाएँ हैं। इस कृति की प्रथम रचना "अभिवादन" में ही कवि का अरविन्दवादी दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। इस रचना में किरण को ब्रह्म की शक्ति का प्रतीक माना गया है और इस शक्ति के माध्यम से चेतना का अवरोहण किया गया है। चेतना के अवरोहण के बाद उसके संस्पर्श से जड़ जीवन किस प्रकार चैतन्य से व्याप्त होते है—इसका सुन्दर ढंग से चित्रण किया है—

"हँसी, लो, स्वर्ण किरण,
शिखर आलोक वरण!
विचरती स्वर्ण किरण
धरा पर ज्योति चरण!"[2]

पर्वत शिखरों को अपना संस्पर्श देती हुई जब "धरा" पर किरण उतरी तो पृथ्वी की क्या दशा हुई, कवि ने आकर्षक ढंग से उस स्थिति का वर्णन किया है:—

"जगे तरु नीड़ सकल
खगों की भीड़ विकल,
पवन में गीत नवल
गगन में पंख चपल!
× × ×
सरों में सौ लहर
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सिहर
स्पर्श यह विजय अमर!
विजय से दीप्त गगन
ध्वजा सी उड़ती पवन,
धरा रज नव चेतन
खिला मन का लोचन,
युगों का तमस् हरण
करे यह स्वर्ण किरण!"[3]

---

१. सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० २७८
२. स्वर्ण किरण, पृ० १
३. स्वर्ण किरण, पृ० १-२

श्री अरविन्द-दर्शन का मूल सिद्धान्त दिव्य पुरुष का अवरोहण है। ब्रह्म की चेतना किरण जब उसको अपना स्पर्शदान देती है तो वह तमस् नष्ट हो जाता है और जड़ में अन्त-र्निहित चैतन्य जाग्रत हो उठता है। कवि ने "सम्मोहन" कविता में भी अरविन्द के इसी विचार को मूर्त किया है। प्रस्तुत कविता मे कवि ने जीवन को नूतन सौन्दर्य-दृष्टि, दिव्य ज्योति और जगत् के स्नेह मिलन की आतुरता स्पष्ट की है। अरविन्द दर्शन में ऐसी मिलन आतुरता योग द्वारा होती है। योग द्वारा जड़ में अन्तर्निहित चैतन्य जब ब्रह्म की चेतना शक्ति का संस्पर्श पाकर चेतना लाभ करता है, तब की स्थिति का चित्रण कवि की निम्न पंक्तियों में है :—

"प्रणय दृष्टि दे दी मुग्ध दृगों को,
प्राणों में संगीत दिया भर,
स्वर्ण कामना का नथ, घूँघट
डाल धरा के मुख पर सुन्दर !
निज जीवन का कटु संघर्षण,
भूल गया अब मानव अन्तर,
जग जीवन के नव स्वप्नों की,
ज्योति वृष्टि में स्नान कर अमर !"[1]

किरण रूपी चेतना के धरा-संस्पर्श करने के बाद सारा जड़-चेतन जगत् एक नव-जीवन, नव-स्फूर्ति तथा नूतन-कल्पना से भर गया है। उसे नव-सौंदर्य-दृष्टि प्राप्त हुई है। मानव-हृदय अनेक प्रकार के विक्षेपों से संभूत संघर्षों को भूल गया है और ज्योति वृष्टि में स्नान करने के पश्चात् उसके मानस में नई कल्पनाएँ जागी हैं और सौंदर्य के नए क्षितिजों को उद्घाटित करने में तत्पर हुआ है। अरविन्द दर्शन में इस स्थिति को आनन्द (ब्लिस) कहा गया है।

स्वर्ण किरण की रचनाओं में कवि पर अरविन्द-दर्शन का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अरविन्द का यह विचार है कि सर्वत्र-जड़ चेतन में एक ही आत्मा, चैतन्य रूप से परिव्याप्त है। पंत जी ने निम्न पंक्तियों में अरविन्द के उपर्युक्त विचारों की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से की है—

"यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चंचल,
इनमें चिर आनन्द भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल,
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रंग—बादल,
मेरी आकांक्षा की विद्युत
बहती इनमें प्रतिपल !"[2]

आकाश की नीलिमा अथवा आकाश का आकाशत्व आत्मा का चैतन्य तत्व है जो उस जड़िमा को रूप देता है, उसे प्रोद्भासित करता है। वायु की जड़ता को कंपन देने वाला

१. स्वर्ण किरण, पृ० ३
२. स्वर्ण किरण, पृ० ६७

भी वही चेतन है। बादलों के हलके गहरे रंगों में भी उसी चैतन्य की आकांक्षा की विद्युत् व्याप्त हो रही है। तात्पर्य यह कि जड़ का चेतन के बिना कोई अस्तित्व नहीं। यह आत्मा ही चेतना के रूप में विकसित होकर विश्व के स्थूल रूप में परिणत हो गई है।

स्वर्ण किरण की अधिकांश कविताओं का विषय ही अरविन्द द्वारा प्रतिष्ठित ब्रह्म की शक्ति के अवरोहण की व्याख्या रहा है। कवि पंत ने इन कविताओं के माध्यम से चेतना के विभिन्न स्तरों को रूपायित किया है। "अरुण ज्वाल" शीर्षक रचना में कवि ने नव चेतना से स्फूर्त प्रकृति के अंग-प्रत्यंगों को नवीन सौंदर्य और जीवन शक्ति से अर्जित देखा है। "स्वर्ण निर्झर" शीर्षक रचना में अभ्यन्तर में छिपे हुए सौदर्य-चेतना के उन मोहक रूपों को दर्शित किया है, जिनके विषय में लोक अभी तक अपरिचित रहा है। चेतना के संस्पर्श में प्रत्येक वस्तु एक विशिष्ट आभा और अनुपम सौंदर्य से प्रोद्भासित हो उठी है। 'ऊषा' के अभिनव सौंदर्य की एक मनोहर झाँकी निम्न प्रकार से प्रस्तुत की है :—

> "ऊषा की लाली से कल्पित नव वसंत के कोंपल,
> सौरभ बाष्पों पर पुष्पों के शतरंग खिलते प्रतिपल
> शशि किरणों के नभ के नीचे, उर के सुख से चंचल,
> तुहिनों का छाया वन नित कंपता रहता तारोज्वल।"[1]

इसके अतिरिक्त स्वर्ण किरण की "ज्योति-भारत" रचना में भी दिव्य चेतना के अमोघ और अमिट प्रभाव को स्वीकार किया गया है।

"नोआखाली में महात्मा जी के प्रति" शीर्षक रचना में कवि ने कदाचित् श्री अरविन्द द्वारा प्रतिष्ठित "अतिमानव" के दर्शन किए हैं। कवि ने गांधी जी का स्तवन करते हुए कहा है :—

> "कौन खड़े उन्नत अविचल, दुर्धर झंझा के सम्मुख ?
> स्वर्ग दूत से, जाति भेद का हरने धरणी का दुख।
> देह मात्र से मानव तुम, बल में अदम्य तुम भूधर,
> ऊर्ध्व चरण धर चलते निश्चल, भू से स्वर्ग क्षितिज पर।"[2]

"हिमाद्रि और समुद्र" शीर्षक रचना में चेतना के ऊर्ध्व और निम्न उभय स्वरूपों अथवा अंगों का प्रतीकात्मक वर्णन किया गया है। एक "हिमालय" का शिखर-शिखर उठ कर चिदाकाश के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्तरों का स्पर्श करता है और दूसरा 'समुद्र' युगों से प्रसुप्त धरती को जाग्रत करने के लिए उससे लिपटा है। कवि ने हिमालय (ऊर्ध्व चेतना) की ऊँचाई को गहरा माना है और समुद्र (निम्न चेतना) की उच्चता को अत्यंत गंभीर स्वीकार किया है। श्री अरविन्द ने जड़-जंगम में भी चैतन्य शक्ति को स्वीकार किया है। जड़ पदार्थों में वह चैतन्य-शक्ति अवचेतन में इस प्रकार प्रसुप्त रहती है कि उसका आभास नहीं होता। वह एक दिन जागेगी अवश्य, ऐसा श्री अरविन्द का विश्वास है। पंत जी ने उसी चेतन शक्ति को हिमालय और समुद्र के द्विविध प्रतीकों में देखा है—

> हिमालय :— "वह शिखर शिखर पर स्वर्गोन्नत
> स्तर पर स्तर ज्यों अन्तर्विकास।

---

१. स्वर्ण किरण, पृ० ३१

२. स्वर्ण किरण, पृ० ३५

चढ़ सूक्ष्मतम चिद् नभ में
करता हो शुचि शाश्वत विलास !

समुद्र :— "यह मनश्चेतना ज्यों सक्रिय
भू के चरणों पर बिखर बिखर
शत स्नेहोच्छ्वसित तरंगों की
बाँहों में लेती भू को भर !
नभ से बन पवन, पवन से जल
लालायित यह चेतना अमर
सोई धरती से लिपट, जगाने
उसे, युगों की जड़ता हर !"[1]

"समुद्र" में कवि ने श्री अरविन्द द्वारा प्रतिपादित चेतन शक्ति के अवरोहण पर उसके क्रमागत निम्न अवतरण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वह चेतन शक्ति इस प्रकार आकाश से पवन और पवन से जल में विवर्तित होकर पृथ्वी में प्रसुप्त चेतन शक्ति को जगाने के लिए उसे अपने आलिंगन पाश में बांध लेती है।

पराबुद्धि और जीव में श्री अरविन्द कोई भेद नहीं मानते, किन्तु जड़ता अथवा माया के कारण वह (जीव) ब्रह्म से भेद मान बैठा है।

स्वर्ण किरण की "चन्द्रोदय" शीर्षक रचना में श्री अरविन्द द्वारा प्रतिपादित पराबुद्धि स्थिति का और "द्वासुपर्णा" शीर्षक रचना में कवि ने अरविन्द द्वारा प्रतिष्ठित पराबुद्धि के स्वरूप को स्थिर किया है जो उपनिषदों में प्रतिष्ठित एकांगी दर्शन के विरुद्ध पूर्ण संतुलन उपस्थित करता है।

चन्द्रोदय : "वह सोने का चाँद उठी ज्योतित अधि-मन सा
मानस के अवगुंठन के भीतर पूषण सा
दुग्ध धार सी दिव्य चेतना बरसा झर-झर
स्वप्न जड़ित करता वह भू को स्वजीवन भर !"

द्वासुपर्णा : "कहीं नहीं क्या पक्षी ? जो चखता जीवन फल
विश्व वृक्ष पर नीड़, देखता भी है निश्चल।
परम अहम् जो द्रष्टा भोक्ता जिसमें संग-संग,
पंखों में बहिरंतर के सब रजत स्वर्ण रंग
ऐसा पक्षी, जिसमें हो संपूर्ण संतुलन,
मानव बन सकता है, निर्मित कर तद जीवन !
× × ×
भीतर बाहर एक सत्य के रे सुपर्ण द्वय
जीवन सफल उड़ान, पंख संतुलन जो, विजय !"[2]

स्वर्ण किरण की "श्री अरविन्द-दर्शन" शीर्षक कविता में कवि ने श्री अरविन्द द्वारा प्रतिष्ठित दर्शन के मूल सिद्धान्त की व्याख्या की है। कवि उनकी विचारधारा से इतना प्रभावित है कि वह उन्हें राम, कृष्ण आदि अवतारों की पंक्ति में ही नहीं रखता वरन् वह

१. स्वर्ण किरण, पृ० ४५
२. स्वर्ण किरण, पृ० ६४-६५

उन्हें युग के क्रमागत अवतारों की क्रमशः वर्द्धमान क्षमता और पूर्णता का विश्लेषण करता हुआ श्री अरविन्द को अत्यन्त महान् ठहराता है। उसकी इस सर्वांग प्रणति से उस महापुरुष के प्रति महान् आस्था और भक्ति प्रकट होती है —

"जल जीवन में मच्छ, कच्छ तुम कर्दम में बन,
भू जड़त्व में शूकर, वन-चर में नृसिंह तन,
आदि मनुज वामन, शूरों में राम परशुपण,
मर्यादामय राम, विश्वमय बने कृष्ण घन!
आज लोक संघर्षों से जब मानव जर्जर,
अति मानव बन तुम युग संभव हुए धरा पर!
अन्न प्राण मन के त्रिदलों का कर रूपान्तर,
वसुधा पर नव स्वर्ग संजोने आए सुन्दर।"[1]

श्री अरविन्द द्वारा प्रतिष्ठित अतिमानव का स्वरूप मन के अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, और मनोमय कोश के ऊपर रूपान्तरित होकर अधिष्ठित हो जाने में होता है। श्री अरविन्द द्वारा प्रतिष्ठित "अतिमानव" इहलोक (भौतिकता) और परलोक (आध्यात्मिकता) दोनों का ज्ञान रखता है तथा जागतिक संघर्षों में रहता हुआ भी वह उनमें व्याप्त नहीं होता। पंत जी ने श्री अरविन्द के इसी रूप को प्रणतिदान दिया है।

स्वर्ण धूलि की रचनाओं में सामाजिक व्यवस्था, भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय करने का प्रयत्न किया है। कवि मानव-संस्कृति का विकास जाति-वर्ण-धर्म निरपेक्ष तथा केवल मानवता के ही आधार पर करना चाहता है। श्री अरविन्द द्वारा प्रतिपादित अध्यात्म-भौतिकता समन्वित मानवता के सिद्धान्तों की ओर संकेत है। अभीप्ट संस्कृति का निर्माण इन्ही के आधार पर ही सभव है, इसलिए वे उसका उल्लेख सभी स्थलों में पूर्ण प्रकर्ष के साथ करते हैं—

"बरसो हे घन!
आशा का प्लावन बन बरसो,
नव सौन्दर्य प्रेम बन सरसो,
प्राणों में प्रतीत बन हरसो,
अमर चेतना बन नूतन,
बरसो हे घन!"[2]

स्वर्ण धूलि की अनेक रचनाओं में कवि की वृत्ति अन्तर्मुखी रही है, फिर भी उन सभी को अरविन्द-दर्शन के परिवेश में नहीं लिया जा सकता। स्वर्ण धूलि में संग्रहीत 'सामंजस्य', 'आजाद,' 'लोक सत्य,' 'स्वप्न निर्बल,' 'मृत्युंजय,' 'आशंका,' 'चौथी भूख,' 'पैगम्बर,' 'छाया', 'अन्तर्विकास' और 'मुक्ति बंधन', शीर्षक रचनाओं का स्वर सिद्धान्तवादी है किन्तु इनमें से बहुत कम पर श्री अरविन्द-दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है।

"स्वप्न निर्बल" शीर्षक रचना में, ब्रह्म की चेतना-शक्ति किस प्रकार जगत् में परिवर्तन-विवर्तन कर सतत प्रवाहित रहती है, कवि की इन पंक्तियों में देखिये—

---

१. स्वर्ण किरण, पृ० ६३
२. स्वर्ण धूलि, पृ० ६६

"यह जीवनी शक्ति का सागर
उद्वेलित जो प्रतिक्षण,
जिसका युग चेतना सदा से
करती आई मंथन !
× ×
"कर शंभु चाप का भजन
किया राम ने मुक्त
जीर्ण आदर्शों से जग जीवन !
बन कर युग चेतना राम फिर
नव युग परिवर्तन में
मध्य युगों की नैतिक असि
खंडित करती जन मन में !"[1]

सृष्टि के प्रारम्भ से जगत् में व्यवस्था लाने के लिए चेतना द्वारा सतत परिवर्तन होते रहे हैं। यह चेतना शक्ति कभी राम के कभी कृष्ण, बुद्ध और गांधी के रूप में आई है। स्वर्ण किरण से उद्भूत विचारधारा स्वर्ण धूलि में पुष्पित हुई और उत्तरा में पूर्ण पुष्ट हुई है।

कवि ने उत्तरा की रचनाओं के विषय में स्पष्ट किया है कि—"इसमें कुछ रचनाएँ तो प्रतीकात्मक हैं, कुछ प्रकृति-चित्रण सबंधी, कुछ युग जीवन संबंधी और कुछ विप्रलम्भ शृंगार सम्बन्धी। कुछ गीत ऐसे भी हैं जो प्रार्थना-परक हैं।"[2] और यह भी स्वीकार किया है—"मैं बाहर के साथ भीतर की क्रान्ति का भी पक्षपाती हूँ जैसा कि मैं ऊपर संकेत कर चुका हूँ। आज हम वाल्मीकि तथा व्यास की तरह एक ऐसे युग शिखर पर खड़े हैं जिसके निचले स्तरों में धरती के उद्वेलित मन का गर्जन टकरा रहा है और ऊपर स्वर्ग का प्रकाश, अधरों का संगीत तथा भावों का सौन्दर्य बरस रहा है। ऐसे विश्व-संघर्ष के युग में सांस्कृतिक संतुलन स्थापित करने के प्रयत्न को मैं जाग्रत चैतन्य मानव का कर्त्तव्य समझता हूँ। ......! अतएव मेरी इन रचनाओं में पाठकों को धरा शिखर के इसी संगीत की अथवा नवीन चेतना के आविर्भाव संबंधी अनुभव की क्षीण प्रतिध्वनियाँ मिलेंगी।"[3]

कवि के कथन से स्पष्ट है कि इन रचनाओं में अतिशय रूप से कवि अरविन्द-दर्शन के सिद्धान्त से प्रभावित रहा है।

"उत्तरा" की रचनाओं में कवि पर श्री अरविन्द द्वारा प्रतिष्ठित अन्तर्चेतना का व्यापक प्रभाव है। अन्तर्चेतना ब्रह्म की वह शक्ति है जो जीव और जगत् को ब्रह्म से सूत्रबद्ध किये हुए है। कवि ने चेतना के उस ऊर्ध्व-स्तर का वर्णन किया है, जिस पर स्थित कवि का मन जगत् को निम्न प्रकार से देखता है —

"बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,

---

१. स्वर्ण धूलि, पृ० ६६
२. उत्तरा की भूमिका, पृ० २८
३. उत्तरा की भूमिका, पृ० २९

विस्तृत होता बहिर्जगत अब
विकसित अन्तर्जीवन अभिमत !"[1]

इसके अतिरिक्त उत्तरा में अन्य अनेक रचनाओं में कवि ने चेतना के अवरोहण को चित्रित किया है। "चेतना" को कवि ने 'ज्वाल गर्भ शोणित', 'ज्योति', 'विद्युत ज्वाला', 'शोभा की लपट' के प्रतीक रूप मे स्वीकार किया है। 'मेघ' अथवा 'घन' के प्रतीक को जगत् और चेतना के निम्न स्तरों के लिए प्रयुक्त किया है।

कवि ने "गीत विहग" कविता मे उस मत की ओर संकेत किया है जो चेतना के विकसित होने पर संभव होगी, क्योंकि मानवता का विकास अन्न से प्राण, प्राण से मन तक हो चुका है। अब उसका अग्रिम कदम पराबुद्धि है। इस स्थिति पर पहुँच कर मानवता में प्रेम आदि गुण आ जाएंगे तथा वह भौतिकता और आध्यात्मिकता का अद्भुत समन्वय होगा।

मैं स्वर्गदूतों को बाँध मनोभावों में
जन जीवन का नित उनको अंग बनाता,
मैं मानव प्रेमी, नव भू - स्वर्ग बसा कर
जन धरणी पर देवों का विभव लुटाता !
मैं जन्म मरण के द्वारों से बाहर कर
मानव को उसका अमरासन दे जाता,
मैं दिव्य चेतना का संदेश सुनाता,
स्वाधीन भूमि का नव्य जागरण गाता !"[2]

कवि ने "रूपान्तर" कविता में चेतना द्वारा रुपान्तरित जग की भावी झाँकी प्रस्तुत की है :—

"आज शिखर सब उच्च उच्चतर
ज्योति द्रवित बह रहे धरा पर,
रक्तोज्वल चेतना ज्वार में
नव स्वप्नस्थ दिशा क्षण !
उतर तुम्हारी आभा चेतन
नव-मानव मन करती धारण
भावी की स्वर्णिम छायाएँ
भू पर करती विचरण !
नव प्रकाश रेखाओं से भर
मन: स्वर्ग नव उठा अब निखर,
अन्तर्वैभव से तुम निर्मित
करते नव मानव मन।"[3]

कवि ने "उत्तरा" में श्री अरविन्द-दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों की विशद व्याख्या की है। "काला और बूढ़ा चाँद" में सहज स्फुरण से प्राप्त सत्यों पर आधारित रचनाएँ हैं।

१. उत्तरा, पृ० १
२. उत्तरा, पृ० १३
३. उत्तरा, पृ० ४६

जिनकी अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से हुई है। श्री अरविन्द के अनुसार सहज-स्फुरण का वह धरातल जहाँ कवि भाषा के माध्यम से भावों को वाणी नहीं दे सकता, विज्ञानमय कोश का होता है। इसलिए प्रतीकों और बिम्बों की भाषा का प्रयोग किया गया है। पंत जी ने लिखा है—

"बोध के
सर्वोच्च शिखर से
बोल रहा हूँ।"[1]

× ×

"भाषा नहीं
यश नहीं—
वो अव्यक्त
तुम में समा जाऊँ
आगे मौन है,
केवल
निश्चल मौन।"[2]

कवि ने "निश्चल मौन" की अभिव्यक्ति के लिए इसीलिए शब्द और छन्द-बंध को स्वीकार नही किया क्योंकि वे अधिक बोलते है, बड़े मुखर हैं—

"शब्दों के कधों पर
छन्दों के बँधों पर
नहीं आना चाहता।
वे बहुत बोलते हैं।"[3]

कवि ने इसीलिए उस अनिर्वचनीय स्थिति की अभिव्यंजना के लिए कला और बूढ़ा चाँद में प्रतीकों की भाषा अपनाई है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कवि का मानस उच्च धरातल पर स्थित होकर श्री अरविन्द-दर्शन की गहरी अनुभूति में डूब गया है। उस अनुभूति के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं। सत्य की सबसे ऊँची अनुभूति कैसी होती है, कवि की निम्न पंक्तियों में देखिए :—

"इन रजत नील ऊँचाइयों पर
सब मूल्य सब विचार
खो गए!"[4]

× ×

"यहाँ रूप रस गंध स्पर्श से परे
अवाक् ऊँचाइयों
असीम प्रसारों
अतल गहराइयों में

---

१. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १७६
२. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १७६
३. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १५२
४. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १३१

केवल
अगम शान्ति है।
अरूप लावण्य
अकूल आनन्द
प्रेम का
अभेद्य रहस्य।"[1]

कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य का वह शिखर इन्द्रयातीत है। उस अरूप-लावण्य अकूल आनन्द और प्रेम के अभेद रहस्य को किसी प्रकार अभिव्यक्त नही किया जा सकता। वह गूगे का गुड़ है।

सृष्टि विकास-क्रम मे 'नये मानव' का अरविन्द के मतानुसार एक विलक्षण ही स्वरूप होगा। श्री अरविन्द ने उस मानव की स्थिति अतिमानस में मानी है। पंत जी ने कला और बूढ़ा चाँद की "देन" शीर्षक रचना में उसके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"काल नाल पर खिला
नया मानव
देश धूलि में सना नहीं!
× ×
एक है वह
अन्तः स्थित
बाह्य संतुलित,
भविष्य मुखी
रश्मि पंख
प्राण विहग,
सूर्य कमल
× ×
अन्तः प्रबुद्ध,
बहिः शुद्ध,
पूर्व पश्चिम का नहीं,
काल की देन
अत्याधुनिक
अन्तर्विकसित
चैतन्य पुरुष
ज्योति पद्म।"[2]

इस कविता में कवि ने श्री अरविन्द द्वारा समर्थित नूतन सृष्टि का आह्वान किया है और प्राचीन सभ्यता के नाश की कामना की है। इसकी महती आवश्यकता इसलिए है क्योंकि देश स्वतन्त्र हो गया है—

१. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १३२
२. कला और बूढ़ा चाँद, पृ० १६४-६५

"मंथन कर
आत्म मंथन,
ओ सागर,
ओ मानस,
ओ स्वाधीन देश,
अन्तर मंथन कर !
× ×
ओ आत्म पराजित
एक बार क्रुद्ध होकर
अपनी आरीदार पूँछ
समस्त बल से
धरती पर मार—
फटकार,
पुरानी केंचुल झाड़ !
नया यौवन
तेरी प्रतीक्षा में खड़ा है।
ओ गुप्त द्रोही,
रीढ़ के बल रेंगना छोड़,
ऊर्ध्व मेरु बन !
नयी भूमियाँ निखर आई है—
अपनी झूठी मणि फेंककर
मुक्त नील तले
स्वच्छ वायु में विहार कर।"[1]

अतिमा में दो प्रकार की रचनाएँ संग्रहीत हैं—(१) प्रकृति-संबंधी और (२) सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों में मूर्त। कवि ने अतिमा की व्याख्या अपने विज्ञापन में इस प्रकार की है, "वह मनःस्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक और सांस्कृतिक परिवेश का अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो।"[2]

कवि ने इसकी व्याख्या निम्न कविता में स्पष्ट की है :—

"यह अतिमा
तन से जो बाहर
जग जीवन की रज लिपटा कर,
उपचेतन के कर्दम में धंस
घायल खोहों में घुस हँस-हँस
अंधकार को छेड़ जगाती।"[3]

---

१. काला और बूढ़ा चाँद, पृ० २०७-२०८
२. अतिमा, विज्ञापन
३. अतिमा, पृ० ४४

कवि ने इस रचना में भी अरविन्द के इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि चेतना की वह किरण, जड़-अंधकार और अचेतन से चलकर अचेतन-अतिचेतन से परे ऊर्ध्वतम में विकसित होने जा रही है। उसके चतुर्मुखी विकास के कितने रूप और स्थितियाँ हो सकती है, कहना असम्भव है। कवि ने उन विकास रूपों में से कुछ को प्रतीको और रूपकों के माध्यम से मूर्त करना चाहा है। अतिमा में संग्रहीत उन प्रतीक, रचनाओं के शीर्षक इस प्रकार हैं—'कौए', 'बत्तखें', 'मेंढक', 'प्रकाश', 'पतिंगे', 'छिपकलियाँ', 'केंचुल', 'स्वर्ण-मृग', 'दीपक जलना'। *इन प्रतीकों के माध्यम से कवि ने चेतना के विभिन्न-स्तरों को स्पष्ट करना* चाहा है। कवि ने इस रचना की प्रतीकात्मकना को इस प्रकार स्वीकार किया है—कौए, वत्तखें और मेंढक निम्न वृत्तियों के ही प्रतीक है जो ऊर्ध्व-चेतना का संस्पर्श पाकर रूपान्तरित हो गए है। प्रतीक-विधान का अतिमा में सगृहीत रचनाओं में यह सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। प्रकाश, पतिंगे, छिपकलियाँ शीर्पक रचनाओ की प्रतीकात्मकता के विषय में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—

"पर प्रकाश प्रेमी पतंग था,
छिपकलियाँ केवल प्रतीक भर।
ये प्रवृत्तियाँ भू मानव की,
इन्हें समझ लेना श्रेयस्कर।"[1]

और अग्रिम पंक्तियों में प्रतीक को इस प्रकार खोला है—

"ये आत्मा, मन, देह रूप हैं,
साथ साथ जो जग में रहते।
× × ×
तुच्छ सतह से उच्च ज्योति तक
एक सृष्टि सोपान निरन्तर।
जटिल जगत्, गति मुक्त मुक्ति चिति,
तीनों सत्य व्याप्त जगदीश्वर।"[2]

इन पंक्तियों में श्री अरविन्द के इस मत को कि जगत् जीव और ब्रह्म एक ही चेतना से संबद्ध हैं, अनुस्यूत कर दिया गया है। प्रकाश आत्मा का, पतिंगे मन का और छिपकलियाँ देह की प्रतीक हैं। प्रतीक-स्पष्टता के कारण कविता व्यंग्यहीन होकर सतही स्तर की हो गई है। "सोन-जुही" रचना में भी निम्न चेतना के रूपान्तर की व्याख्या की गई है। भुजंगीर (जो निम्न चेतना है) सोन-जुही (ऊर्ध्व चेतना) में रूपान्तरित हो गई है—

"मूल-स्थूल धरती के भीतर,
खींच अचेतन का मन बाहर।
यह अपने अन्तर का प्रिय धन,
शान्ति ध्वजा सा शुभ्र मणि सुमन।
कंपित मृदुल हथेली पर धर,
उठा क्षीण भुज वृन्द उच्चतर।
अर्पित करती लो प्रकाश को।

---

१. अतिमा, पृष्ठ ६२
२. अतिमा, पृष्ठ ६१

मित्र, अधरों के अमृत हास को,
प्राणों के स्वर्णिम हुलास को।"[1]

दर्शन सबधी अतिमा की ध्वनि "वाणी" मे भी यत्र-तत्र प्राप्य होती है, "विकास क्रम", "रूपान्तर", "रूप देहि", "अर्थ देहि" और "अग्नि संदेश" आदि रचनाओं में अरविन्द-दर्शन का प्रभाव झलकता है।

इसके अतिरिक्त "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" शीर्षक रचना में भी शाकर मायावाद का खण्डन कर अरविन्द-दर्शन की प्रतिष्ठा की है—

"जड़ से चेतन, जीवन से मन
जग से ईश्वर को वियुक्त कर,
जिस चिन्तक ने भी युग-दर्शन
दिया भ्रांतिवश जन-मन दुस्तर,
किया अमंगल उसने भू का
अर्ध सत्य का कर प्रतिपादन,
जड़ - चेतन, जीवन - मन आत्मा
एक अखंड, अबंध संचरण।
× × ×
अंत: स्वर्णिम नव चेतन में
आज प्रवृत्ति निवृत्ति समन्वित
वही शुद्ध अन्तत: स्थित निश्चय
जो जन भू जीवन में स्थित।"

अतिमा में "संस्मरण और जीवन-दर्शन" के अन्तर्गत कवि ने अपने जीवन दर्शन की व्याख्या की है। इसमें भी श्री अरविन्द-दर्शन को प्रधानता दी गई है।

---

१. अतिमा, पृ० ५३

पंत : प्रकृति

प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है। आदिकाल में प्रथम पुरुष ने जब अपने नेत्र खोले होंगे तो सर्वप्रथम उसको प्रकृति का ही साहचर्य और सहयोग मिला होगा। आदि-काल के मानव ने जब चेतना उपलब्ध की तो उसने अपने को हिमाच्छादित उत्तुंग शिखरों से परिवृत्त पाया। अगाध जलराशि का अवलोकन किया। सूर्य, चंद्र, नक्षत्रों ने अपनी नियत गति द्वारा उसे विस्मित कर दिया। श्याम जलद खण्ड और वसुधा की विभूति को देखकर वह चकित और आश्चर्यान्वित हो उठा। प्रकृति का अगम्य, अबाध, अनन्त रूप तथा सरिताओं की कलकल-छलछल-ध्वनि, मेघ-मालाओं का गर्जन, दामिनि की दमक एवं फलदानी और छायादानी वृक्ष मानव को मनोमुग्धकारी प्रतीत होने लगे। प्रकृति के सौम्य और रौद्र दोनों रूपों से उसका साक्षात्कार हुआ। विभिन्न अंगों एवं उपांगों में उसे देवत्व की झलक दिखाई पड़ी। इन्हीं को इन्द्र, सूर्य, वरुण, चंद्र, वायु, पृथ्वी आदि दिव्य नामों से अभिहित कर उसने इनका गुणगान किया और उसने अपने मंगल की कामना की। वेदों की ऋचाओं में इस प्रकार के गुणगान एवं मंगल-कामनाएँ मिलती हैं।

ज्यों-ज्यों मानव मस्तिष्क अधिकाधिक विचारशील होता गया उसने अपनी चिर-सहचरी प्रकृति के विभिन्न रूपों से तादात्म्य स्थापित किया। प्रकृति को उसने अपने आनन्द में उल्लसित एवं कष्ट में विपन्न अनुभव किया। महाकाव्य-काल में आकर तो प्रकृति मानव हृदय की विभिन्न भावनाओं की क्रीड़ा-भूमि बन गई। पशु-पक्षी, गिरि, सरिता, निर्झर, पादपावलि उसके मनोभावों के सहयोगी बन गए। बाल्मीकि के राम लता, गुल्म इत्यादि से सीता के विरह में अपना दुःख निवेदन करते हैं और प्रकृति भी उनके रुदन की सहयोगिनी सी प्रतीत होती है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति के भव्य और भयंकर दोनों रूपों का चित्रण विशद रूप से मिलता है। एक ओर तो उन्होंने कलकल निनादिनी नदी, यौवन, मस्त पुष्पों एवं मलय समीर का मनोमुग्धकारी सुन्दर चित्रण किया है, दूसरी ओर अतिहास आतपाकुल सर्प, जीव-जन्तु, पत्रशून्य पादपावलि एवं प्रलय को अपने काव्य का उपादान बनाया। हिन्दी साहित्य के आरम्भ काल में आलम्बन और उद्दीपन के रूपों में प्रकृति का चित्रण किया गया है। इस युग में वीरता, वैभव-ऐश्वर्य और वियोग-संयोग वर्णन करने के अतिरिक्त कवियों के लिए प्रकृति चित्रण का अन्य कोई उद्देश्य न था। पूर्व मध्यकाल में प्रकृति का चित्रण मिलता है; परन्तु इष्ट की महिमावर्णन की प्रधानता के परिणामस्वरूप उसमें प्रकृति-चित्रण गौण हो गया है। उत्तर मध्यकाल में कवियों ने अपने आश्रयदाता नरेशों के मन-बहलाव के लिए प्रकृति का रूप नायिका के नख-शिख चित्रण के लिए लिया है। इस काल के प्रकृति चित्रण अतिशयोक्तिपूर्ण हैं।

आधुनिक काल में प्रकृति-चित्रण प्राचीन परिपाटी से मुक्त होकर नवीन रूप में हुआ है। इस काल के कवियों ने प्रकृति के अन्तर में एक नारी रूप की उद्भावना की। द्विवेदी-युगीन इतिवृत्तात्मक शैली से कुछ अधिक व्यंजनात्मक सूक्ष्मता की ओर प्रवृत्ति हुई। इस काल

के कवियों ने स्थूल वस्तुओं की स्थूल सीमाओं का अतिक्रमण कर एक नवीन रहस्यमयी नारी रूप के दर्शन किए। प्रकृति उनके सामने बोलने-सी लगी और नवीन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिए एक नवीन शैली का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार की नवीन शैली के लिए लाक्षणिक भाषा, नए अलकार, सूक्ष्म उपमान आदि का प्रचलन हुआ। इस नवीन धारा के कवियों मे पंत जी प्रमुख हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रकृति का जितना विशद, व्यापक एवं कोमल तथा भावनापूर्ण चित्रण पंत जी ने किया है उतना किसी ने भी नही किया।

पंत प्रकृति से सुकुमार कवि हैं। पंत के लिए प्रकृति सौंदर्य की वस्तु है, वे प्रकृति के उग्र रूप के उपासक नही है। उनका कहना है कि "प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचता है, यदि मैं संघर्षप्रिय अथवा निराशावादी होता तो प्रकृति का रक्तरंजित कठोर रूप, जो जीवन विज्ञान का सत्य है, मुझे अपनी ओर अधिक खींचता।"[1]

पंत जी के भावुक हृदय पर प्रकृति के उस रम्य शृंगार-गृह ने काव्य करने की प्रेरणा दी, जहाँ कूर्मांचल की पर्वतश्री एकान्त मे बैठकर अपना पल-पल परिवर्तित वेश सँवारती है।[2] इसके विषय में कवि ने भी लिखा है :

"कविता करने की प्रेरणा मुझे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है, कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकान्त में बैठा, प्रकृति दृश्यों को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुन कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँद कर लेटता था, तो वह दृश्य-पट चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में दूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल, कूर्मांचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमालय को धारण किए हुए हैं और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाए हुए हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबाकर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं।"[3]

'वीणा' में पंत जी की छोटी-छोटी कविताएँ हैं, जिनमें प्रकृति की छोटी-छोटी वस्तुओं के सौंदर्य ने उन्हें आकर्षित किया है:

"मेरी प्रारम्भिक रचनाएँ' वीणा नामक संग्रह में प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धर कर चपल मुखर नूपुर बजाती हुई अपने चरण बढ़ाती रही है, समस्त काव्य-पट प्राकृतिक सुन्दरता के धूप-छाँह से बुना हुआ है, चिड़ियाँ, भौंरे और झिल्लियाँ, झरने, लहरें इत्यादि जैसे मेरे बाल-कल्पना के छाया वन में मिलकर वाद्य-तरंग बजाते रहे हैं।"[4]

पेड़ों की छाया, नर्तन करती हुई लहरें, इन्द्रधनुषी रंग आदि ने कवि-कल्पना पर संम्मोहन का जादू कर दिया है, उसे इन प्राकृतिक दृश्यों का सौंदर्य अपनी प्रेयसी के सौंदर्य से भी अधिक प्रिय है।

---

१. आधुनिक कवि, भाग २, पृ० ६.
२. गद्य पद्य, पृ० ११५.
३. आधुनिक कवि, भाग २, पर्यालोचन.
४. गद्य-पद्य, पृ० १२४.

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन ?
भूल अभी से इस जग को।"[1]

कवि का शिशु का सा भोलापन और सहज स्नेह प्रकृति के प्रत्येक व्यापार के प्रति उसके मन में आश्चर्य का प्रादुर्भाव करता है। उषाकाल उसके हृदय में उत्साह भर देता है। शीतल समीर, ओस बिन्दु, और प्राची की स्वर्ण छवि का वह अवलोकन करता है। एकाएक बाल-विहंगिनी एक स्वर्गिक ज्ञान और तरुवासिना कोकिल की कूक उसकी नीरवता को भंग करती है।

पंत में प्रकृति-सौन्दर्य के लिए एक बालक की-सी उत्सुकता है। उच्छ्वास में उन्होंने 'पावस ऋतु में पर्वत प्रदेश' में प्रकृति के 'पल-पल परिवर्तन' होने वाले वेश का वर्णन किया है :—

"पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश !
गिरि का गौरव गाकर झर झर
मद में नस नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों-से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर !"[2]

पंत का यह प्रकृति-प्रेम वर्ड्सवर्थ के प्रकृति-प्रेम की प्राथमिक दशा के अनुरूप है, जबकि समस्त प्रकृति के सौन्दर्य ने उसे आत्मविभोर कर दिया था।

प्रकृति के केवल मनोरम चित्र

इसी तरह 'बादल'[3] पंत के प्रकृति-प्रेम की एक सुन्दर कविता है। सम्पूर्ण कविता छन्दों की एक सुन्दर लड़ी है, जिसमें अनेक रूपकों और उपमाओं में बादल का वर्णन किया गया है। 'एक तारा' और 'नौकाविहार' कविताएँ भी उनके प्रकृति-प्रेम के उत्कृष्ट नमूने हैं।

'वीणा' में बाल-सुलभ कौतूहल के शमन के पश्चात् कवि का प्रकृति-प्रेम अनेक धाराओं में प्रवाहित होता है। कहीं-कहीं तो वह प्रकृति का सहज, स्वाभाविक और द्विवेदी-युगीन कवियों के समान इतिवृत्तात्मक चित्रण करता है - -

"बाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट—
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी वी टी-टुट-टुट।"[4]

---

१. आधुनिक कवि, पृ० १
२. आधुनिक कवि, पृ० १३
३. वही, पृ० २३-२८
४. युगान्त, पृ० २७

मधुमास के प्रभात की सौन्दर्यानुभूति से आकुल होकर कवि का हर्षोल्लास मन स्वत: ही फूट पड़ता है :—

'लो, जग की डाली डाली पर
जागी नव जीवन की कलियाँ !
मिट्टी ने जड़ निद्रा तजकर
खोली स्वप्निल पलकावलियाँ !''[१]

मधुमास में कूर्मांचल प्रदेश की छटा स्वर्गिक बन जाती है। रंग-बिरंगे पुष्पों से लदी हुई घाटियाँ, पर्वतमालाएँ, खेत तथा सर्वत्र नाना रंगों से रंगे हुए पुष्पसमूह से आवृत घाटी कवि के हृदय को आह्लादित और प्राणों को स्पंदित करती है।

कवि को प्रकृति के कोमल अंग-उपांग ही प्रिय है। सम्पूर्ण काव्य मे कुछ ही ऐसी कविताएँ है, जिनमें प्रकृति ने किंचित्मात्र रौद्र रूप धारण किया है। प्रस्तुत कविता मे शुभ्र और धवल मेघों का रौद्र रूप चित्रित किया गया है :—

"विलोड़ित सघन गगन में आज,
विचर रहा है दुर्बल घन भी
धर कर भीमाकार—
बना है कहीं—क्रुद्ध गजराज!''[२]

पंत जी सौन्दर्यप्रिय तो है परन्तु स्थिर सौन्दर्य के ही उपासक नही। वे चल दृश्यों के भी अत्यन्त मनोरम चित्र देते हैं।[3] 'नौका विहार' में नौका की मंथर गति से ज्योत्स्ना जल में संतरण करती चित्रित की गई है। इन्दु रश्मियाँ जल में चाँदी के साँपों सी 'रलमल नाचती' हुई प्रतीत होती हैं। शशि और तारों के जल पर असंख्य प्रतिबिम्ब लहरों की लतिका में खिले प्रसूनों की भाँति लगते हैं। कविता का संगीत भी नौका की गति के अनुरूप है। पंत जी के ऐसे प्रकृति-चित्रण के रंग जगत् में अभिनय करते हुए दिखाई देते हैं। प्रकृति के अंग बादल, खद्योत, निर्झर आदि का चित्रण सुन्दर एवं चित्रात्मक ढंग से किया गया है। कभी-कभी ये नाटक के पात्रों के समान अपना परिचय स्वयं देते हैं :—

"कभी चौकड़ी भरते मृग - से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतंगज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते ;''[४]

इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण सरस, सजीव, सरल, स्वाभाविक और चित्रात्मक है। प्रकृति-चित्रण में कवि ने कहीं-कहीं वस्तु परिगणन शैली का प्रयोग भी किया है :—

"आ, समदृष्टि प्रकृति! विषण्ण आँगन में स्वर्गिक स्मिति भर
फूल उठे ये आड़ू, ललछौंहे मुकुलों में सुन्दर!
सेबों की कलियाँ प्रभूत, रक्तिम छींटों से शोभित,
खिलीं मँझोले रजत फलों में करती थीं मन मोहित!

१. पल्लविनी, पृ० १८।
२. वीणा, पृ० ४५
३. गुंजन, पृ० १०६-१०८
४. पल्लव, पृ० १२१

नारंगी, अखरोट, नाक के फूल, मजरी, कलियाँ,
बढ़ा रही थीं ऋतुशोभा, केले की फूली फलियाँ
काफल थे रंग रहे, फूल में थी फल लिए खुबानी।
लाल बुरुसों के मधु छत्तों से थी भरी वनानी।"[1]

परन्तु ऐसे साधारण से साधारण दृश्य के अंकन में भी कवि की भावुकता और संश्लिष्टता स्पष्ट दिखाई देती है।

भावी घटनाओं अथवा मानव-व्यापारों की पृष्ठभूमि के रूप में भी पंत जी ने प्रकृति चित्रण किया है। ऐसा बहुधा प्रबन्ध काव्यों में ही होता है। गीतिकाव्य की आवेशपूर्ण स्थिति की तीव्रतम अभिव्यक्ति एवं संक्षिप्तता में इसके लिए कम अवकाश होता है। 'आँसू', 'ग्रंथि' और 'उच्छ्वास' मे इसके उदाहरण मिलते हैं।

कवि ने अपनी प्रणय-कथा को कहने से पहले पूर्वपीठिका के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है, जिससे कथा में सरसता एवं सजीवता आ गई है। इस प्रणय-व्यापार मे प्रकृति का प्रयोग कवि ने नायिका द्वारा नायक के दर्शन तथा नायिका के मनोवेगों और मनो-व्यापारों के चित्रण में किया है। प्रियतम को मालूम नहीं नायिका न जाने कब से प्रतिदिन वातायन से नायक को देखती है। उसकी मनोदशा का चित्रण सजीव है :—

"कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से
संध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आंगन से।
× × ×
हैं मुकुल मुँदे डालों पर
कोकिल नीरव मधुवन में
किसने प्राणों के गाने
ठहरे हैं तुमको मन में।"[2]

पंत ने प्रकृति का मानवीकरण भी किया है। प्रकृति का भी हृदय होता है। उसका भी मन और प्राण है, वह रोती-गाती भी है। पंत के छायावादी काव्य में प्रकृति के मानवीकरण के दृश्य सुन्दरता के साथ चित्रित किये गये हैं :—

"आत्मा सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता
जल जल है लहर लहर रे
गति-गति सृति-सृति चिरभरिता।

प्रकृति के कम्पन-उल्लास और भव्यरूप में कवि और प्रकृति एक रूप हो जाते हैं और कवि प्रकृति में मानव आकृति, मानव क्रिया और मानव भावों का आरोप करता हुआ एकात्म्य स्थापित करता है। प्रकृति के जिन चित्रों में कवि ने अपने मन की भावनाओं का चित्रण किया है उनमें प्रकृति सप्राण हो उठी है। मानव मन के ही समान प्रकृति में भी भावनाएँ उठती हैं। कवि को सम्पूर्ण प्रकृति मानवीय भावनाओं से अनुरंजित दिखाई देती

१. अतिमा, पृ० २३.
२. वीणा ग्रन्थि, पृ० ६६.

है। संध्या, छाया, किरण, चाँदनी, पवन, बादल, मधुकरी आदि के दृश्यचित्र मानवरूप को धारण करते हैं। प्रकृति का सजीव रूप कवि के हृदय में स्पन्दन और स्फुरण का संचार करता है और प्रकृति भी मानव की ही भाँति अपने उद्गार प्रकट करती है। प्रकृति के इन स्वतंत्र वर्णनों के अतिरिक्त हम प्राकृतिक वस्तुओं के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी पाते हैं। पंत सौन्दर्यवादी कवि हैं, प्रकृति के सुन्दर तत्वों का चित्रण उनमें मानवी भावनाओं के आरोपण से और भी खिल उठा है। कवि उनमें अपनी ही अभिव्यक्ति पाता है। इस प्रकार के सचेतन प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण पंत काव्य में कई मिलते हैं। पंत ने प्रकृति को मानव से स्वतंत्र सचेतन सत्ता के रूप में भी देखा है। प्रकृति को कवि ने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है। संध्या के स्वर्णिम रूप को देखकर कवि उसका परिचय पाने के लिए व्यग्र होता है।

"कौन तुम रूपसि कौन
ग्रीक तिर्यक, चंपक द्युतिमान
नयन मुकुलित, नत मुख जल जात
देख छवि छाया में दिन रात।"[1]

"नौका विहार" में एक लेटी हुई शांत और क्लान्त बाला के रूप में गंगा की धारा का सुन्दर एवं सजीव चित्रण किया है, जिसके शरीर का नीला वस्त्र लहरा रहा है और गोरे व सुन्दर अंग में सिहरन-सी पैदा हो रही है।

"सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल!
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल!
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर!"[2]

वर्ड्सवर्थ की भाँति पंत भी प्रकृति में हर्ष के भाव का अनुभव करते हैं। वर्ड्सवर्थ के चारों ओर विहग फुदक रहे थे, किन्तु वह उनके विचार जानने में असमर्थ था, तथापि उनके हाव-भाव से उनके आनन्द का सहज उद्रेक स्पष्ट भासित हो रहा था। यहाँ पर वर्ड्सवर्थ के अनुसार विहगों का हर्ष स्वयं उनका ही हर्ष था, कवि का नहीं। पंत को विहगों, तितलियों और भौरों से विशेष प्रेम है और वे उन पर मानवीय भावनाओं का आरोप करते हैं। वे विजन वन में विहग बाला का गाना सुनकर सोचते हैं कि उसने कवि का खोया गान कहाँ से पा लिया है, और वे उससे इसे लौटा देने के लिए प्रार्थना करते हैं:—

"विजन वन में तुमने, सुकुमारि
कहाँ पाया यह मेरा गान?...
मुझे लौटा दो, विहग कुमारि,
सजल मेरा सोने का गान!"[3]

---

१. पल्लविनी, पृ० ६५
२. गुंजन—नौका विहार, पृ० १०१
३. पल्लव, पृ० १२४

पंत के प्रकृति काव्य में शैली का प्रभाव भी है, शैली ने 'स्काई लार्क' से अपनी प्रसन्नता सिखाने के लिए प्रार्थना की थी ! जिससे वह भी मधुर गीतों की रचना कर सके। इसी प्रकार पंत भी मधुकरी के मधुर राग से मुग्ध होकर "मीठे गान" सिखाने की स्नेहिल अनुनय करता है :—

"सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे, गान !"[1]

शैली ने 'ओड टू द वेस्ट विंड' में प्रभंजन से अपनी भावनाएँ समस्त विश्व में बिखेर देने के लिए प्रार्थना की है। पंत भी विहग में कवि के मनोहर गीत घर-घर और वन-वन में फैलाने के लिए कहते हैं :—

"कल कंठनि ! निज कलरव में भर
अपने कवि के गीत मनोहर
फैला आओ वन-वन, घर-घर,
नाचें तृण, तरु, पात !"[2]

'संध्या' को कवि ने एक अप्सरा के रूप में देखा है, जो व्योम से मंथरगति से चुपचाप अपने सुनहले केशों को फैलाए हुए उतर रही है। अनिल से पुलकित संध्या का लाल स्वर्णांचल, खग-कुल 'रोल' के रूप में उसकी नूपुर ध्वनि, जलदों के सीप के समान खुले उसके पंख, आदि का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया गया है। 'चाँदनी' में पंत ने ज्योत्स्ना के विविध रूपों का वर्णन किया है। कभी वह सरिता के कूल पर सोई नारी के रूप में है—स्तब्ध समीरण उसकी साँसें और लघु-लघु लहरों की गति उसका उर-स्पंदन है; कभी वह अपने ही सौंदर्य में छिपी हुई शिखर पर खड़ी है और उसकी सुन्दर छवि सागर की लहर-लहर पर नाच रही है।

'अनंग' कविता में पंत जी ने प्रकृति में मादकता और वासनाजन्य भावों का अवलोकन किया है। नववसंत के स्पर्श करते ही चिरयौवन से विकसित वसुधा पुलकित होती है। कलिका के हृदय से उद्‌गार फूट पड़ते हैं और प्रकृति पारस्परिक आकर्षणवश आलिंगन तथा चुम्बन में व्यस्त हो जाती है।

"अगणित बाँहें बढ़ा उदधि ने
इन्दु करों से कर आलिंगन,
बदले, विपुल चटुल लहरों ने
तारों से फेनिल चुम्बन।"[3]

कवि ने प्रकृति को माँ के समान ममतामयी और सखी के समान स्नेहशीला पाया है। 'चाँदनी' कविता में चाँदनी प्रकृति की क्रन्दनशीलता, मृदुलता, कोमलता और भावुकतापूर्ण है। वह जग के साथ जागती है और आँसू की नीरव धारा बहाती है :—

"जग के दुख दैन्य शयन पर
यह रुग्णा जीवन बाला

---

१. पल्लव, पृ० ८०
२. वीणा, पृ० ३६
३. पल्लव, पृ० ८३-८४

रे कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला !
पीली पड़, दुर्बल, कोमल
कृश देह लता कुम्हलाई,
विवसना, लाज से लिपटी
साँसों में शून्य समाई !"[1]

स्नेहमयी जननी की भाँति प्रकृति मानव का शीश सहलाती हुई उसे सदैव प्रफुल्लित रहने का आशीर्वाद देती है और अपने अनन्त उल्लास तथा शाश्वत सुख की ओर संकेत करती है :—

"रवि शशि ग्रह चिर हर्षित
जल स्थल दिशि, समुल्लसित,
निखिल कुसुम कलि सस्मित,
मुदित सकल हो मानव !"[2]

कवि अपनी शिशु भावनाओं में ही भौरों से 'भेद भरे सन्देश' पाता है और पत्रों के गूढ़ सन्देशों में कुछ अस्फुट बातें सुनता है। उज्ज्वल तन और उज्ज्वल मन वाली कलकल, छलछल करती हुई सरिता मानव को अन्तर्बाह्य से एक रूप होने का आदेश देती है और अपने ऊँचे-नीचे पथ पर अविरल प्रवाह द्वारा सत्य और सरल स्नेह की प्रेरणा देती है :—

"कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा!"[3]

पुष्प क्षणिक जीवन पाने पर भी प्रफुल्लित रहते हैं परन्तु मानव के मलिन अधरों पर स्मिति की रेखा नहीं रहती। प्रकृति मानव को पुष्पों से प्रेरणा लेकर प्रफुलित रहने का उपदेश देती है। क्योंकि जीवन तभी सार्थक है जब उसका अभिवादन मधुर मुस्कान से हो :—

"आँसू की आँखों से मिल
भर ही आते हैं लोचन,
हँसमुख ही से जीवन का
पर हो सकता अभिवादन !"[4]

कलिका शुष्क वृक्ष पर मुरझाती है और खिलती है। वह मानव को निराशावादी नहीं देखना चाहती और मानव को उपदेश देती है कि दुःख को भी हँसकर सहन करना चाहिए। मानव प्रयास करके भी प्रकृति के इस आदेश के प्रतिपालन में सफल नहीं हो पाता, वह अत्यन्त विवश भाव से कहता है :—

'वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना

---

१. पल्लविनी, पृ० २४३
२. वही, पृ० २८२
३. गुंजन, पृ० २१
४. गुंजन, पृ० १६

मै सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना !"[1]

ओस बिन्दु मानव को जीवन की क्षण-भंगुरता का दिग्दर्शन कराते है, 'जीवन हिम जल लघु पल' प्रकृति को सेवारत और आत्मबलिदान करते देखकर मानव हृदय मे बल का सचार होता है। छाया पथिको की श्रांति का हरण करती है और कुसुम अपनी प्रफुल्लता फलो को समर्पित करते है। कवि विस्मित होता है और आश्चर्य चकित भाव मे—'महत है, अरे, आत्म बलिदान' कह उठता है। हसमुख प्रसून अपनी सुरभि को विकीर्ण कर दान-शीलता का पाठ पढाते है। लहरे बार-बार उठ उठ, गिर-गिर कर मानव को जीवन पथ पर अग्रसर होने का पाठ पढाती है।

इस प्रकार प्रकृति से ममत्व, स्नेह, उत्साह और उपदेश पाकर मानव और प्रकृति का सबध दृढतर होता जाता है। मानव भी प्रकृति को हर्षित देखकर हस पडता है और दु खित देखकर द्रवित होकर आँसू बहाने लगता है। विहग बाला के स्वर मे वह अपना स्वर मिला देता है और कोकिल की कल कूजन पर उसके गान मुग्ध हो जाते है :—

"कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
भर गये गन्ध से मुग्ध प्राण !"[2]

प्रकृति का मधुर रूप कवि के हृदय को प्रफुल्लित कर भावो को उद्दीप्त करने का माध्यम हो जाता है। मानव की सुप्त भावनाएँ जागृत हो जाती है। किंतु प्रकृति उद्दीपन का कार्य ही नही करती अपितु अज्ञात प्रिय के साक्षात्कार होने पर उसके सम्पूर्ण रहस्यो का उद्घाटन भी कर देती है। प्रकृति का दूती का रूप कवि की अपनी मौलिक कल्पना है:—

"खोल कलियों के उर के द्वार
दे दिया उसको छवि का देश
बजा भौरों ने मधु के तार
कह दिए भेद भरे सदेश।"[3]

प्रकृति के अनुकूल वातावरण मे उसे अपनी प्रेमिका के प्रति अधिकाधिक अनुराग होता है और प्रेमातिरेक में उसे प्रिया की ही छवि प्रकृति मे दृष्टिगोचर होती है। प्रिय का वियोग, जीवन का विषाद, उसकी समस्त सरसता का अपहरण कर लेता है। कोकिल वियोग-दग्ध हृदय में वेदना को तीव्र करती है और वसन्त उत्तप्त करता है :—

"काली कोकिल !—सुलगा उर में।
स्वरमयी वेदना का अंगार,
आया वसन्त, घोषित दिगन्त
करती, भर पावक की पुकार !"[4]

अपने आँगन में केकी की मृदु केका ध्वनि सुनकर तथा उसके नृत्य को देखकर वियोगिनी कराह सी उठती है—उसका विरहानल धधक उठता है। स्मृति की वक्र रेखा उसके मस्तिष्क पर खिंच जाती है।

१. गुंजन, पृ० २२
२. पल्लविनी, पृ० ११२
३. युगान्त, ८
४. युगपथ, पृ० १७

"जिसे देख वह नाच रही थी
मैं वह सब थी समझ गई,
आह! वह वर्षाऋतु ! वे वारिद।
वह मेरा अविरल दृग जल।"[1]

विरहिणी वर्षा ऋतु में केकी की प्रसन्नता का अनुभव करती है और अपनी मनोदशा को अव्यवस्थित जानकर दुःखी होती है, उसे पीडा होती है कि वर्षा के आगमन पर जब सर्वत्र उल्लास छाया हुआ है, तब भी उसके नेत्रों में अविरल अश्रुवर्षा होती है। उसके अतिरिक्त हृदय की भावुकता के समन्वय में प्रकृति के साथ सानुकूलता और वैपरीत्य का दिग्दर्शन कराया है।

कष्ट की समानता मानव और प्रकृति में एकात्म्य स्थापित करती है। दोनों एक ही व्यथा के भोगी है :—

"आह! अभागिन हो तुम मुझसी
सजनि ध्यान में अब आया
तुम इस तरुवर की छाया हो
मैं उनके पद की छाया।"[2]

चकोर, चन्द्र, कोकिल का आहत कण्ठ, कुसुम कंटकों से विदग्ध भ्रमर की वेदना तथा प्रेम आहों को देखकर मानव को आत्मतुष्टि होती है। संसार कष्टों का अथाह सागर है—जीवन में रोना ही रोना तो है:—

"वह मधुप बिंध कर तड़फता है, उधर।
नियम है यह; रो, अभागे हृदय ! रो !!"[3]

आत्मतुष्टि के बाद उसमें नैतिक बल का संचार होता है वह समस्त जगत् के दुःख को सुख और पाप को पुण्य में देखना चाहता है और 'शुक्र' से विनीत भाव से प्रार्थना करता है कि वह दिव्य दूत की भाँति अपना स्वर्गिक प्रकाश पृथ्वीतल में फैला दे। कवि मेघदूत से अत्यन्त ओजपूर्ण वाणी में कहता है—

"गरज गगन के गान ! गरज गंभीर स्वरों में,
भर अपना संदेश उरों में, औ अधरों में;
बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में,
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में !"[4]

प्रकृति की अपरिमेय अनुपम शक्ति और प्रलय के महत् कार्य को देखकर विस्मय विभोर होकर शिशुभाव से पूछता है—

"माँ ! यह तेरी न्यारी रीति
तेरी सुखमय सत्ता जग को
कहीं नहीं जतलाती है।"[5]

---

१. वीणा, पृ० ५७
२. पल्लविनी, पृ० २५
३. ग्रन्थि, पृ० १३१
४. पल्लविनी, पृ० १२४
५. वीणा, पृ० २६

कवि प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु में प्रवेश करता है और समस्त सृष्टि को एक ही सूत्र में गुम्फित पाता है। सर्व व्याप्त सत्ता एक ही तो है—

"एक छवि के असंख्य उड़ान
एक ही सबमें स्पन्दन।"[1]

प्रकृति के विराट चेतन की अभिव्यक्ति पंत जी को नक्षत्रों, लहरों, जुगनुओं, ओसकणों तथा प्रकृति के कण-कण में सर्वत्र उसी विराट चेतन की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। प्रकृति के सारे उत्पादन—मधुवन, वीचि लहर, प्रात, उषा सभी उसी के आभास से युक्त प्रतीत होते हैं। कवि ने ऐसे स्थलों पर प्रकृति का सर्ववादात्मक चित्रण किया है जिसमें प्रकृति सप्राण चेतन सत्ता स्वीकार की जाती है—

"देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन।"[2]

सर्ववाद की इस भावना की विज्ञप्ति होने पर कवि का भावुक हृदय परम तत्व के दर्शन के लिए विकल हो जाता है। वह उस दिन की प्रतीक्षा करता है जब ज्योतिर्मयी शक्ति साकार होकर अपनी प्रेम वृष्टि करेगी। अत्यन्त मनन और चिन्तन के बाद वह उस चिन्मय प्रकाश और अपने लघु अस्तित्व में महान् अन्तर देखता है। उसके हृदय में ज्ञान का उदय होता है और वह विनम्र भाव से उस विश्वात्मा की प्रार्थना करता है। ज्ञान का प्रकाश होते ही विश्वात्मा की सम्मोहिनी छवि के दर्शन होते हैं। हृदय की नीरसता विलुप्त होकर मंगल-गान करने लगती है, संसार सुखमय हो जाता है, कवि उस महामिलन का वर्णन करता है—

"कितने मधुर स्वरों में गाये
विहगों ने गुण गौरव गीत,
तब कैसा खिल गया अखिल जग
नवल कमल का सा कानन!"[3]

कवि तो प्रेम, श्रद्धा और आनन्द की अतिशयता में विश्वात्मा के साथ एकात्म हो जाता है, वह आत्मा परमात्मा के एकात्म्य बोध की रसमग्नता से आप्लावित हो कह उठता है :—

"एक हूँ मैं तुम से एक भाँति
जलद हूँ मैं यदि तुम हो स्वाति।"

कवि ने प्रकृति के असीम कार्य व्यापारों में जिज्ञासा प्रगट की है। उन पर दार्शनिक दृष्टि से चिन्तन किया है और प्रकृति में असीम और ससीम (जीव और ब्रह्म) के बीच प्रणय सम्बन्ध भी देखा है।

---

१. पल्लविनी, पृ० ७४
२. आधुनिक कवि, पृ० ३०
३. वीणा, पृ० ६७

पंत जी ने प्रकृति का प्रतीकात्मक प्रयोग दिया है। उषा पवित्रता का, मुकुल अबोधता का, चाँदनी आल्हादक शक्ति का प्रतीक है। इसी प्रकार प्रकृति के अनेकों रूपों के प्रतीकात्मक प्रयोग मिलते हैं—

'उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के साँस

प्राचीन काल और रीतिकाल में प्रकृति का अलंकृत चित्रण प्रचुर मात्रा मे मिलता है। पंत जी ने भी उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों के रूप मे प्रकृति का प्रचुर प्रयोग किया है :—

"नील कमल सी है वे आँख
डूबे जिनके मधु में पाँख
मन के मन मधुकर के पाँख
नील जलज सी है वे आँख।"

परन्तु पंत जी ने प्रकृति का इस रूप में प्रयोग बहुत कम किया है। उन्होंने अलंकारों के रूप में प्रकृति का मौलिक प्रयोग किया है। इतना अधिक मौलिक प्रयोग अन्य छायावादी कवियों ने नहीं किया :—

"तुम्हारी आँखों का आकाश
सरल आँखों का नीलाकाश
खो गया इनमें खग अनजान
मृगेक्षिणि ! इनमें खग अनजान।"

"नारी रूप" तथा "भावी पत्नी के प्रति" कविताओं में मानवीयता का सुन्दर दिग्दर्शन किया गया है। मानव के विविध अंगों के सौन्दर्य की अभिव्यंजना के लिए इन्होंने प्रकृति को माध्यम बनाया है। प्रकृति के विभिन्न दृश्यों का साम्य [illegible] अवयवों से प्रगट किया है। सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक अनुराग होने के कारण ही उन्होंने प्रकृति के क्षेत्र से अनेक नवीन उपमान ढूंढे हैं। मानव के बाह्य सौन्दर्य के चित्रण में उन्होंने परम्परागत उपमानों को भी अपनाया है। किन्तु उनके प्रयोगों में अनूठी लाक्षणिकता का समन्वय कर एक प्रकार को नवीनता उत्पन्न कर दी है। अन्योक्ति द्वारा नारी के नयनों का चित्रण देखिए :—

"कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते
चपल चोखी चोट कर अब पंख को
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।"[1]

बाल्यकाल से कुछ दिवस पूर्व यह सरला यौवनागमन से अनभिज्ञ थी उसके नेत्रों में शिशु सुलभ सारल्य था, किन्तु अब वह कटाक्ष आदि से प्रेमी के हृदय को विकल करने लगी है। कवि ने अपने इस आशय को खंजन की चोट और भ्रमर की विकलता द्वारा व्यक्त किया है. कमल मुख और खंजन नेत्रों के परम्परामुक्त उपमान हैं। उपमान के लाक्षणिक प्रयोग मे सबसे अधिक विशिष्टता यह है कि कवि ने चित्रमयता की कला को भव्यता प्रदान की है,

१. ग्रन्थि, पृष्ठ १४

उपमान प्राचीन होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की लेखनी और चित्रकार की तूलिका साथ-साथ चल रही है।

उपमा और रूपक पंत जी के प्रिय अलंकार हैं। अपने हृदय की भावुकता और मधुरता द्वारा प्रकृति के मूर्त आधारों को कहीं तो अपूर्व रूप का उपमान माना है और कहीं मनोगत भावों को व्यक्त करने का अलंकृत उपकरण प्रकृति के मानवीकरण की स्थापना करके वह "चाँदनी", "छाया" आदि कविताओं को उपमा, रूपक आदि अलंकारों में गुम्फित करते चले गए हैं। प्राकृतिक आधारों को प्रस्तुत रूप में प्रकट कर उनके लिए नवीन उपमा की योजना करके कवि ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। उपमाएँ सभी नवीन हैं। "पवनगीत" में पवन को मूर्तरूप प्रदान करते हुए उपमा और रूपक की व्यंजना का सुन्दर उदाहरण है। ग्राम्या में कवि प्रकृति के शोभन प्रदेश और कल्पना के स्वप्निल क्षेत्र से उतर कर आज असुन्दर भी लगते सुन्दर के अनुसार ग्राम के ऊँचे-नीचे खेत, कंकरीले टीले और बगिया के छोटे पेड़ों का चित्रण करता है:—

"गंजी को मार गया पाला, अरहर के फूलों को झुलसा,
हाँका करती दिन भर बन्दर अब मालिन की लड़की तुलसा।"[1]

× × ×

"बिरहा गाते गाड़ी वाले, भूँक-भूँक कर लड़ते कूकर
हुआ-हुआ करते सियार देते विषण्ण निशि बेला को स्वर।"[2]

स्वर्ण-किरण में प्रकृति के प्रति लिखी गई 'हिमालय', 'समुद्र', 'सूर्य', 'कौआ' आदि रचनाएँ हैं। हिमालय में व्यक्तिगत सम्पर्क, व्यक्तिगत अनुराग और व्यक्तिगत सम्बन्ध की अधिक झलक है। इन रचनाओं पर कालिदास का प्रभाव दिखाई देता है। इस कृति में कवि इस आशय पर पहुँचा है कि प्रकृति और व्यक्ति एक ही हैं।

स्वर्ण-धूलि में प्रकृति-सम्बन्धी रचनाएँ बहुत कम हैं। वर्षा पर कई कविताएँ हैं जिनमें वर्षा ऋतु का चित्रण ध्वनि और वर्ण की दृष्टि से सराहनीय है। उत्तरा में शरद् चाँदनी का चित्रण स्वर्ण-धूलि की वर्षा के समान हुआ है। शरद का मानवीकरण के रूप में पूर्ण नारी चित्र अत्यन्त सुन्दर है—

"शरद चाँदनी !
विहँस उठी अतल मौन
नीलिमा उदासिनी !
....
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति
जागी हृदयाल्हादिनी
शरद चाँदनी !"[3]

'अतिमा' में कई प्रकार का प्रकृति वर्णन है। इसमें मधुर कल्पनाओं के सूक्ष्मतर विवरण है। मानवीकरण की प्रवृत्ति इसमें भी दिखाई देती है।

---

१. ग्राम्या, पृ० ३६
२. ग्राम्या, पृ० ६४
३. स्वर्ण धूलि, पृ० १३०

प्रकृति के आकर्षण और स्नेह-सूत्र में ग्रसित प्रेयसी की कल्पना, कल्पित सुन्दरी की विरह-गाथा, ग्रन्थि विरह काव्य, पल्लव, गुजन और युगान्त मे कवि का भावुक हृदय, शिशु-सुलभ सरलता से दूर हो जाता है। इसमें प्रकृति-प्रेम अधिक गम्भीर रूप में निखरता है और कवि प्रकृति मे उपदेश, महान् सन्देश तथा अज्ञात प्रियतम का प्रतिबिम्ब देखता है।

पंत ने प्रकृति में जीवन-स्पन्दन की अनुभूति पाई है। उसे हर्ष, विषाद, क्षोभ मे अनुगामिनी और उसमे अपने भावो का प्रतिबिम्ब पाया है। कवि ने प्रकृति मे चेतना का अनुभव तथा उसे मधुर कोमल सुकुमार भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। संघर्षरत जीवन मे मन के लिए प्रकृति कवि की शरणभूमि बनी और उसे प्रकृति सहचरी के साहचर्य में सुख और शाति मिली। कवि ने प्रकृति को सौन्दर्य का उपमान बनाया और अलंकार के रूप में प्रकृति के सुन्दर दृश्यों का चयन किया। पत जी ने प्रकृति में मानव रूप का आरोप कर परमतत्व के दर्शन भी किए हैं।

पंत : प्रेम भावना

प्रेम की अनुभूति अत्यन्त व्यापक और गम्भीर है। व्यापकता और गम्भीरता के कारण ही प्रेम की अनुभूति केवल स्थूल इन्द्रियों तक ही सीमित नहीं है, अपितु वह मन के सूक्ष्माति सूक्ष्म की भावना के रूप मे जानी जाती है। प्रेम शब्द अपने आप में अत्यन्त सूक्ष्मभावो का वाहक है। शब्दकोष के अनुसार प्रेम का अर्थ होता है—स्नेह, सौहार्द-प्रियता।[1] मानव की अत्यन्त कोमल भावना प्रेम ही है और यही भावना उसे लोक के अनेक कार्यों में संलग्न करती है। प्रेम का स्वरूप अत्यन्त भावात्मक और अनिर्वचनीय है। वह मूक के आस्वादन के समान, गुण और कामना रहित है और अत्यन्त सूक्ष्म अनुभव है।

आजकल प्रायः प्रेम और वासना का एक ही अर्थ लगाया जाता है। सम्भवतः दोनों का मूल एक ही है और वह है आकर्षण। परन्तु प्रेम की अनुभूति पवित्र है और इसमें आत्मसमर्पण की भावना सात्विक है, किन्तु वासना में केवल क्षणिक ऐहिक कामना की तुष्टि रहती है। वासना में प्रेम की सात्विकता का अभाव और लम्पटता रहती है। प्रेम प्रदर्शन कविता की मुख्य प्रवृत्तियों में से एक है। विभिन्न लौकिक आधारों के अनुसार काव्यक्षेत्र में अनेक रूपों में प्रेमाभिव्यक्ति होती है। प्रेम का आधार सौन्दर्य माना जाता है। आजकल हमारी प्रचलित चिन्तनधारा में सौन्दर्य, मूलतः बाह्य और आन्तरिक—दोनों, आकर्षण के लिए प्रयुक्त होता है लेकिन हमारे प्राचीन साहित्य मे शोभन शब्द ही अमूर्त के लिए प्रयुक्त होता है।[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—जिस वस्तु की प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी वह वस्तु हमारे लिए सौन्दर्य कही जाएगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है, जो भीतर है वही बाहर है।[3] सौन्दर्य के विषय में पंत कहते हैं—"छायावादी काव्य ने एक साथ रीति काव्य की स्थूल वासनात्मक और द्विवेदी काल की इतिवृत्तात्मक नीति का विरोध किया। जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण को जन्म दिया। छायावादी कवि के प्रेम वर्णन में यही भावात्मक दृष्टिकोण मिलता है।"[4] छायावाद का मुख्य विषय प्रणय है। यह प्रणय किसी शास्त्रीय आधार पर विभाजित न होकर हृदय की सीधी अभिव्यक्ति के रूप में लिया गया है। इसमें शृंगार के ढांचे में परकीया, स्वकीया और ऋतु वर्णन आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। छायावादी प्रेमी की अभिव्यंजना आत्मपरक दृष्टिकोण के कारण अत्यन्त भावात्मक, स्वच्छन्दप्रियता के कारण अधिक उन्मुक्त और आवरण की वृत्ति के कारण लाक्षणिकता से युक्त है।"[5]

---

१. 'सौहार्द स्नेह हर्षो,' वाचस्पत्य कोष, पृ० ४५४
   प्रेमाना प्रियताहार्द प्रेमस्नेहोथवोहदम्, अमर कोष
२. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० १४१
३. चिंतामणि, पृ०२२४
४. पल्लव, पृ० ८७
५. युग कवि पंत जी की काव्य साधना, पृ० १५७

विभिन्न लौकिक सम्बन्धो के अनुसार काव्य क्षेत्र की प्रेमाभिव्यक्तियों को अनेक रूपों में विभाजित कर सकते हैं। प्रेम का आधार सौन्दर्य माना जाता है जो व्यक्तिगत तुष्टि के आधार पर होता है और जहाँ पर कर्म के आधार पर प्रेम होता है उसमें लोक मगल की भावना तथा समाज की तुष्टि के भाव विद्यमान होते है। इस प्रकार हम व्यक्ति तुष्टि पर आधारित प्रेम के अन्तर्गत दाम्पत्य प्रेम, प्रकृति प्रेम, मातृ-प्रेम, वात्सल्य आदि और लोकमंगल की भावना निहित प्रेम के अन्तर्गत मानव प्रेम, राष्ट्रप्रेम को विभाजित कर सकते है। ईश्वर के प्रति प्रेम को ईश्वरीय-प्रेम कह सकते हैं।

पन्त में प्रकृति प्रेम उत्कट रूप में मिलता है। उन्होंने प्रेम के सात्विक और पवित्र अनुभूति के आधार रूप नारी और प्रकृति सौन्दर्य को लिया। युग चेतना के साथ बदलती हुई विचारधारा के अनुसार कवि राष्ट्रप्रेम और अन्तत मानव प्रेम को वरण कर लेता है।

पंत जी की प्रेम भावना का विस्तृत परिचय ग्रन्थि में मिलता है। इस प्रणय-काव्य में कवि ने नायिका के सौन्दर्य और उसके उद्‌बुद्ध प्रेम के संयोग और वियोग दोनों रूपों का उन्मुक्त वर्णन किया है। किशोरावस्था के बाद कवि ने देखा कि हिमालय की अधीश्वरी पार्वती प्रकृति की शोभा केवल पंचभूतों में विकीर्ण नहीं है, बल्कि पंचभूतों से विनिर्मित किसी शैल-बाला की सुकुमार छवि में भी है। इसलिए कवि के जीवन में बालिका के प्रणय को स्थान मिल गया है।[1]

"उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
....
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों की साँस!
बिन्दु में थीं तुम सिंधु अनंत;
एक सुर में समस्त संगीत,
एक कलिका में अखिल वसंत,
धरा में थीं तुम स्वर्ग पुनीत!"[2]

ग्रन्थि भावात्मक प्रणय-काव्य है। इसकी प्रणय कथा कवि की सुकुमारता के अनुकूल ही है, वह लोले लहरों पर कलापति से लिखी हुई है, इसकी विशेषता कहानी की शैली में है। घटना की अपेक्षा इसमें नाटकीय संकेतों की सूक्ष्मता है ग्रन्थि के नायक-नायिका का प्रेम प्रथम दर्शन में हो जाता है। कवि की नौका डूबती है। बालिका कवि की प्राण-रक्षा करती है। कृतज्ञता ज्ञापन में प्रेम का भाव मिलता है। इसमें आत्म समर्पण आदि हृदय की अनुभूतियों का चित्रण अत्यन्त सफलता के साथ किया है। नायिका का सौन्दर्य कवि के दाम्पत्य प्रेम का आलम्बन है:—

"इन्दु पर, उस इंदुमुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से
लाज की रक्तिम हुए थे—पूर्व को
पूर्व था, पर वह अद्वितीय अपूर्व था!

---

१. ज्योति विहग, पृ० ७२
२. आधुनिक कवि, पृ० ११-१२

बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।"[1]

कवि के हृदय में बालिका के सौन्दर्य से प्रेम का आविर्भाव होता है। कवि ने नारी सौन्दर्य को अत्यन्त शान्त और समर्पणात्मक भावना से देखा है।

"एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दो दृष्टि मेरी दीप सी!"[2]

प्रेम संयोग के मधुर व्यापार ने कवि को रस-स्निग्ध कर दिया परन्तु संयोग के मधुर व्यापार की समाप्ति पर वियोग की कटु स्थिति आने पर मधुर भावनाओं का विकास अवरुद्ध हो गया। नायिका अपनी लज्जा सुलभ मर्यादा से मौनदृगी है और नायक अपनी अधीरता में मुखर। नायक और नायिका की अन्तर्वेदना एकान्त में भी मौन है। परन्तु दृष्टि की तरह उसके कंठ में भी संयम है और नायक तथा नायिका की प्राण प्रतिष्ठा होती है। उनका प्रेम करुणाजनक बन जाता है। कवि ने विरहानुभूति का वर्णन अत्यन्त ही कारुणिक एवं मार्मिकता से किया है। कवि प्रकृति के अन्य तत्वों को मधुर मिलन का आनन्द लेने को कहता है वह अपने हृदय को सब भाँति कंगाल मानता है :—

"शैवालिनि! जाओ, मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल, आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके! चूमो तरंगों के अधर
उडुगणों! गाओ पवन वीणा बजा!
पर हृदय! सब भाँति तू कंगाल है।"[3]

ग्रन्थि दुःखान्त खण्ड काव्य है। विरह में कवि का अन्तर्जगत् अधिक जागृत हो उठा है। सौन्दर्य और प्रेम की ऐहिक विफलता के बाद कवि के उद्‌गार विक्षिप्त हो गये हैं। इस विक्षिप्तता में सामाजिक और नैतिक विद्रोह है।[4]

"आज मैं सब भाँति सुख संपन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन में
विजय छाया में द्रुमों की, योग सी
विचरती है आज मेरी वेदना!
विपुल कुंजों की सघनता में छिपी
ऊँघती है नींद सी मेरी स्पृहा;
ललित लतिका के विकम्पित अधर में
काँपती है आज मेरी कल्पना
शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह! अहह कराहते इस शून्य को

१. ग्रन्थि, पृ० ६६
२. ग्रन्थि, पृ० १०३
३. वीणा ग्रन्थि, पृ० १२५
४. ज्योति-विहग, पृ० ७६-८०

किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा।"[1]

ग्रन्थि के अंतिम अंश में मनोरागों का चित्रांकन है। सौन्दर्य, प्रेम, स्मृति, नियति, आशा, उन्माद, वेदना इत्यादि के संबंध में कवि की लेखनी किसी कुशल चित्रकार की तूलिका बन गई है। प्रत्येक भाव साकार बन गया है।

पंत जी का प्रेम वासना के पंक से मुक्त है, इसलिए वह अत्यन्त पवित्र है। पंत जी ने प्रेम की अनुभूति को अत्यन्त पावन, मधुर और वीणा की झंकार की भाँति हृदय को वश में करने वाला सौन्दर्य का प्रेरक माना है—

"एक वीणा की मृदु झंकार! कहाँ है सुन्दरता का पार!
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि!
दिखाऊँ मैं साकार?
तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान!"[2]

युगान्त में यह शारीरिक रूप ग्रहण कर लेता है। इसकी नायिका भी मुग्धा है। उसके यौवन का पूरा अल्हड़पन इसमें चित्रित है। उसके उरोज अभी उकसे ही हैं—अबियों से। दोनों आम्रवन में ही मिलते हैं। इस रचना में कवि कुछ अधिक कह गया है। इसमें आलिंगन, चुम्बन और आत्म-समर्पण या एकाकार तक आ गए हैं:—

"तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्मसमर्पण सरल मधुर,
मिल गए सहज मारुतामोद!"[3]

युगवाणी में कवि का आकर्षण प्रकृति के प्रति कम हो जाता है। उसके चिन्तन और प्रेम का विषय समाज और लोक होता है। इसी प्रकार ग्राम्या में भी केवल 'याद'[4] रचना में प्रेमत्व के लक्षण दृष्टिगत होते हैं। परन्तु इस रचना में पूर्ववर्ती रचनाओं के रचना भाव नहीं हैं। इसमें कवि जीवन की प्रौढ़ावस्था में है, उसका जीवन बदल चुका है। मन, परिस्थिति सभी में परिवर्तन आ चुका है। सम्भवतः भावों में भी अब प्रेम हिलोरे नहीं मारता। कवि ने आषाढ़ के मेघों से भरी संध्या का चित्रण किया है। कवि रोग-शय्या पर एकाकी पड़ा है। चारों ओर विषाद और एकान्तिकता का वातावरण छाया हुआ है। ऐसे नैराश्यपूर्ण वातावरण में कवि के स्मृति पटल में एक विद्युत की सी चमक आती है:—

'एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत सी जलकर उज्ज्वल
याद दिलाती मुझे हृदय में रहती जो तुम निश्चल!"[5]

---

१. ग्रन्थि—पृ० १३७
२. पल्लव, पृ० ७२
३. युगान्त, पृ० ४०
४. ग्राम्या, पृ० १०६
५. ग्राम्या, पृ० १०६

यहाँ न मधुमास है, न झूमते मधुपदल, न खिलती चाँदनी, न जलाशय के दर्पण में मुख देखने वाला गिरिवर, न नसों को उत्तेजित करने वाले निर्झर, न फूलों के प्यालों में रस पीने वाले मधुकर, न सौरभ श्लथ वातास, न स्वर्णमय प्रभात। आषाढ़ की अंधकारपूर्ण संध्या है, बादलों से विषाद बरस रहा है। गम्भीर ध्वनि छाई हुई है। बिजली चमक उठती है।

ग्राम्या के बाद स्वर्णकिरण प्रकाश मे आई। अवगुंठिता में एक लघु प्रणय कथा सी है, जिसमें नायिका प्रणय के विषय में कवि से पूछती है—

"क्या है प्रणय ? एक दिन बोली, उसका वास कहाँ है ?
इस समाज में ? देश मोह का,
देह द्रोह का त्रास जहाँ है ?
देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की;
हृदय तुम्हें देती हूँ, प्रियतम,
देह नहीं दे सकती,
जिसे देह दूँगी अब निश्चित
स्नेह नहीं दे सकती।"[1]

अवगुंठिता प्रणय जीवन से सम्बन्धित कुछ अत्यन्त कोमल भावगीत हैं। अनुभव और अवस्था के साथ मनुष्य गम्भीर होता चला जाता है। प्रणय की अभिव्यक्ति जब गम्भीर व्यक्तित्व द्वारा होती है तो वह और भी निखर उठती है। स्वर्णधूलि की रचनाएँ स्मृति रूप में आई हैं।

प्रकृति के प्रति अनुराग कवि का मूलराग है। या यों कहें कि पंत का प्रकृति प्रेम बाल संस्कारगत है। प्रकृति ने ही अपने कोमल, शान्त, स्निग्ध तथा सुन्दर गोद में मातृहीन बालक का पालन-पोषण किया। इसमें कवि के शब्द दृष्टव्य हैं।

'वह जैसे प्रकृति का रम्य शृंगार-गृह है, जहाँ कूर्मांचल की पर्वतश्री एकान्त में बैठकर अपना पल-पल परिवर्तित वेश सँवारती है। आज से चालीस साल पहले की बात कहता हूँ तब मैं छोटा-सा चंचल, भावुक किशोर था। मेरा काव्य कंठ अभी तक फूटा नहीं था। पर प्रकृति मुझ मातृहीन बालक को कवि जीवन के लिए मेरे बिना जाने ही जैसे तैयार करने लगी थी। मेरे हृदय में वह अपनी मीठी स्वप्नों से भरी हुई, चुप्पी अंकित कर चुकी थी जो पीछे मेरे भीतर अस्फुट तुतले स्वरों में बज उठी। पहाड़ी पेड़ों का क्षितिज न जाने कितने ही गहरे हल्के रंगों के फूलों और कोंपलों में मर्मर ध्वनि मेरे भीतर अपनी सुन्दरता की रंगीन सुगंधित तहें जमा चुका था। 'मधुबाला की मृदु बोली-सी' अपनी उस हृदय की गुंजार को मैंने अपने वीणा नामक संग्रह में "यह तो तुतली बोली में है एक बालिका का उपहार !" कहा है। पर्वत प्रदेश के निर्मल चंचल सौन्दर्य ने मेरे जीवन के चारों ओर अपने नीरव सौन्दर्य का जाल बुनना शुरू कर दिया था। मेरे मन के भीतर बरफ की ऊँची चमकीली चोटियाँ रहस्य भरे शिखरों की तरह उठने लगी थी, जिन पर खड़ा हुआ नीला आकाश रेशमी चंदोवे की तरह आँखों के सामने फहराया करता था। कितने ही इन्द्रधनुष मेरे कल्पना के पट पर रंगीन रेखाएँ खींच चुके थे, बिजलियाँ बचपन की आँखों को चकाचौंध

---

१ स्वर्णकिरण, पृष्ठ ३८

कर चुकी थीं, फेनों के झरने मेरे मन को फुसलाकर अपने साथ गाने के लिए बहा ले जाते और सर्वोपरि हिमालय का आकाशचुम्बी सौन्दर्य मेरे हृदय पर एक महान् संदेश की तरह, एक स्वर्गोन्मुखी आदर्श की तरह तथा एक विराट् व्यापक आनन्द सौन्दर्य तथा तपःपूत पवित्रता की तरह प्रतिष्ठित हो चुका था। मैं छुटपन में जनभीरु और शर्मीला था। उधर हिमप्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता मुझ पर अपना जादू चला चुकी थी।"[1]

"बालकाल में जिसे जलद से
कुमुद कला ने किलकाया,
तारावलि ने जिसे रिझाया,
मृदु स्वप्नों ने सुहलाया;
मारुत ने जिसकी अलकों में
चंचल-चुम्बन उलझाया,
उसे आज अपनी ही छवि में
केवल बाले ! न लुभा ले,—
उनका भी तो है कुछ भाग ?"[2]

"वीणा काल में मैंने प्रकृति की छोटी-मोटी वस्तुओं को अपनी कल्पना की तूली से रंगकर काव्य की सामग्री इकट्ठा की है। फूल, पत्ते और चिड़ियाँ, बादल, इन्द्रधनुष, ओस, तारे, नदी-झरने, उषा-संध्या, कलरव, मर्मर और टलमल जैसे गुड़ियों और खिलौनों की तरह मेरी बाल कल्पना की पिटारी को सजाए हुए है।"[3]

कवि को मानव-जगत् तनिक भी रुचिकर नहीं। उसके लिए नायिका की सुन्दरता तनिक भी आकर्षक नहीं। प्रकृति के अतिरिक्त कवि के लोचनों को उलझाने योग्य अन्य कोई वस्तु नहीं। कवि का उत्कट प्रकृति प्रेम परिलक्षित होता है। कवि ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है—

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ? तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?"[4]

"कवि जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्य-पट चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था।"[5]

प्रकृति का रूप कवि को हर प्रकार से लुभाता रहा है। उसके मोहक रूप के प्रति कवि के मन में एक जिज्ञासा की भावना बनी रही। उसे प्रकृति की हरियाली में कोई बालिका क्रीड़ा करती हुई दिखाई देती है जिसकी क्रीड़ा में कौतूहलता, कोमलता और

१. गद्यपथ, पृ० ११५-११६
२. वीणा, पृ० १४
३. गद्यपथ, पृ० ११६
४. पल्लव, पृ० ८६
५. आधुनिक कवि, भाग २, पृ० ७

मधुरहास विलास दिखाई देता है—

"उस फैली हरियाली में,
कौन अकेली खेल रही माँ !
सजा हृदय की थाली में।
क्रीड़ा, कौतूहल, कोमलता,
मोह, मधुरिमा, हास, विलास,
लीला, विस्मय, अस्फुटता, भय,
स्नेह, पुलक, सुख, सरल हुलास,
ऊषा की मृदु लाली में।"[1]

"इन पंक्तियों में चित्रित प्रकृति का रूप ही तब मेरे हृदय को लुभाता रहा है। उस समय का मेरा सौन्दर्य ज्ञान उस ओसों के हँसमुख वन-सा था, जिस पर स्वच्छ निर्मल स्वप्नों से भरी चाँदनी चुपचाप सोयी हुई हो। उस शीतल वन में जैसे अभी प्रभात की सुनहली ज्वाला नहीं प्रवेश कर पाई थी। स्निग्ध सुन्दर मधुर प्रकृति की गोद माँ की तरह मेरे किशोर जीवन का पालन एवं परिचालन करती थी।"[2]

प्रकृति में कवि को मधुर हास-विलासमय बालिका ही नहीं दिखाई देती अपितु उसे प्रकृति में एक अनन्त चेतन सत्ता का दर्शन भी होता है, जिसे कवि ने माँ के रूप में चित्रित किया है। प्रकृति का यह सौन्दर्य चित्रण बाह्यात्मक होते हुए भी कवि की अन्तर्वृत्ति का परिचायक है। कवि को यह प्रकृति जगत् इसलिए लुभाता है, क्योंकि राशि राशि में आनन्द और सौन्दर्य विद्यमान है—

"राशि-राशि सौन्दर्य, प्रेम आनन्द गुणों का द्वार,
मुझे लुभाता रूप, रंग रेखा का यह संसार !"[3]

प्रारम्भ में कवि को प्रकृति के सुन्दरतम तत्व ही आकर्षित करते हैं। प्रकृति के नव-नव सुमनों, धूलि, सुरभि, मधुरस, हिमकण से कवि अपने उर की मृदु कलिका भर कर मन को विकसित करता है परन्तु ज्यों-ज्यों कवि की चिन्तन धारा में परिवर्तन आने लगा, कवि के आकर्षण तत्वों में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था। अब कवि के लिए प्रकृति की रंगस्थली ही आकर्षक नहीं है—अपितु धरती के रोम-रोम, कूड़ा-करकट, कंकड़-पत्थर सब कुछ जो भी भू पर है, सभी सुन्दर लगते हैं—

"इस धरती के रोम रोम में भरी सहज सुन्दरता।
इसकी रज को छू प्रकाश बन मधुर विनम्र निखरता॥
पीले पत्ते, टूटी टहनी, छिलके, कंकर-पत्थर।
कूड़ा-करकट, सब कुछ भू पर लगता सार्थक सुन्दर॥"[4]

व्यक्तिगत भावना से उठकर जब व्यक्ति देश की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति का ह्रास देखता है तो उसका हृदय विषाद से भर जाता है और विषाद की प्रतिक्रियास्वरूप मानव के अन्तर्गत इस ह्रास के उन्मूलन के प्रति जो जाग्रत की प्रेरणा होती है वही राष्ट्रीय भावना कहलाती है। यही भावना अगर मानव के उत्थान या कल्याण की होगी तो मानव प्रेम कहलाएगा। पन्त जी के काव्य काल के प्रथम चरण में हम प्रकृति

१. पल्लव, पृ० ६३
२. गद्यपद्य, पृ० ११७
३. युगवाणी, पृ० ८२
४. युगवाणी, पृ० २६

प्रेम व व्यक्तिगत प्रेम की भावनाएँ पाते हैं। परन्तु समय के अन्तराल और परिस्थिति व विचारधारा के प्रवाह के साथ-साथ जीवन की व्यापकता और यथार्थता तथा देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों की प्रबद्धता के साथ उनके हृदय में देश और मानव ने भी स्थान पाया—

"दूर, उन खेतों के उस पार
जहाँ तक गई नील झंकार
छिपा हुआ वन में सुकुमार
स्वर्ग की परियों का संसार।"

"विचारधारा के प्रवाह के साथ-साथ पंत जी के काव्य जगत् में भी हम राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना पाते हैं और सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता की भावना पाते हैं। कवि भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों का प्रेमी है और आदर्श के प्रति उसकी पूर्ण निष्ठा है—

"मैं प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष—विमर्षों का;"[1]

युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या की रचनाओं में मानव प्रेम और राष्ट्र-प्रेम की भावना निहित है। देश के स्वतन्त्रता संग्राम में अपने जीवन को न्योछावर करने वाले तथा स्वतन्त्रता संग्राम के उन्नायकों की प्रशंसा के गीत कवि ने मुक्त कण्ठ से गाये है। इनके अतिरिक्त कवि अपने जीवन में जिन महान् व्यक्तियों से प्रभावित हुआ है उनके भी प्रशंसा के गीत गाये है।—पौराणिक महापुरुषों में कवि ने मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति,[2] राजनीतिज्ञों में गाँधी और नेहरू, दार्शनिकों में श्री अरविंद और मार्क्स, कलाकारों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर और कवियों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, निराला और साहित्यिक सुधारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रशंसा के गीत गाए हैं।

गाँधी—युगान्तर काल में गाँधी जी को अपनी भावनाओं का सबसे अधिक आधार बनाया। गाँधी जी को कवि ने विलक्षण व्यक्ति, लोक हितकारक और नवीन संस्कृति के संस्थापक के रूप में देखा है—

"किन तत्वों से गढ़ जाओगे तुम भावी मानव को?
किस प्रकाश से भर जाओगे इस समरोन्मुख भव को?
सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन?
... ...
नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय,
पर, मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय!
नव संस्कृति के दूत! देवताओं का करने कार्य
मानव आत्मा को उबारने आये तुम अनिवार्य!"[3]

१. गुंजन, पृ० २६
२. युगान्तर, पृ० १२४-१२७
३. रश्मिबंध, पृ० ६६

गाँधी जी की हत्या के अवसर पर कवि अपने श्रद्धा पुष्प में गाँधी जी के विराट् व्यक्तित्व के उठ जाने से भारत माता को विषादमना शीश झुकाए वर्णित करता है—

"अन्तर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर
स्वर्ग रुधिर से मृत्युलोक की रज को रंगकर
... ...
हिम किरीटनी मौन आज तुम शीश झुकाए।"[1]

नेहरू—'अतिमा' में कवि ने भारत के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू जी को "मानवता के रथ सारथि" तथा "पचशील का ले ध्रुव सबल" धीरोदात्त कह कर अभिवादन किया है—

"अभिवादन,
हे नेहरू युग के नए संचरण,
शत् अभिवादन!
... ...
शुभ्र अहिंसा अश्व सौम्य कर रहा दिग्विजय,
नेहरू का मन ही नव युग का मन निःसंशय!"[2]

और नेहरू की तटस्थता की नीति की प्रशंसा करते हुए कवि ने कहा है—

"जय मध्यम पथ!
जय तृतीय बल!
शांति क्षेत्र होता दिग् विस्तृत,
सम्भव भू पर सहस्थिति, निश्चित,
देखो, बढ़ता मानवता का रथ
धीरोद्धत—
पंचशील का ले ध्रुव संबल!"[3]
"शत् अभिवादन करता मन, भारत के नायक,
तन के मन के भूखों के नव भाग्य विधायक।"

युगवाणी में कार्ल मार्क्स के प्रति कवि की श्रद्धा, निष्ठा मिलती है— कार्ल मार्क्स को कवि ने शंकर का प्रलंयकारी ज्ञान-चक्षु बताया है—

"साक्षी है इतिहास, आज होने को पुनः युगान्तर,
श्रमिकों का अब शासन होगा उत्पादन यंत्रों पर!
... ...
धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर!"[4]

अरविन्द के प्रति आस्था—१९४७ के बाद पंत जी की रचनाओं में योगिराज अरविन्द

---

१. युगान्तर, पृ० ७१
२. अतिमा, पृ० १२६
३. अतिमा, पृ० १२६
४. युगवाणी, पृ० ४४

का प्रभाव सबसे अधिक है। ज्योत्स्ना काल में ही चेतना के विकास का धुँधला स्वप्न और पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की जो चिन्मयी कल्पना कवि कर रहा था, अरविन्द के अध्ययन के पश्चात् कवि की इस विचारधारा के अनुकूल ग्रहण कर मुक्त कण्ठ से अरविन्द से प्रभावित होकर —स्वर्णधूलि, स्वर्ण-किरण, युगान्तर की कई रचनाओं में अरविन्द के प्रति भक्ति भावना प्रदर्शित की। अरविन्द के लिए उन्होंने योगेश्वर, चेतना का दिव्य उत्पल, अतिमानव, मानव, ईश्वर, कवि ऋषि और दिव्य जीवन दूत कहा है। उत्तरा की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है :—

"श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे दूसरा कोई कहीं देखने को नहीं मिलता। विश्वकल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उनके दान के बिना शायद भूत विज्ञान का बड़े से बड़ा दान भी जीव-मृत मानव जाति के भविष्य के लिए आत्म पराजय तथा अशान्ति का ही वाहक बन जाता है। मैं नहीं कह सकता संसार के मनीषी तथा लोकनायक भी अरविन्द की इस विशाल आध्यात्मिक जीवन दृष्टि का उपयोग किस प्रकार करेंगे अथवा भगवान् उनके लिए कब क्षेत्र बनाएँगे।"[1]

"श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम !
स्वर्मानस के ज्योतित सरसिज,
दिव्य जगत् जीवन के वर द्विज,
चिदानन्द के स्वर्णिम मनसिज,
ज्योतिधाम
सज्ञानप्रणाम !"[2]

रवीन्द्रनाथ टैगोर—रवीन्द्र नाथ पहले व्यक्ति हैं जिनसे कवि अपने जीवन में प्रभावित हुआ। रवि बाबू के श्राद्ध दिवस पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कवि पहले जगत् की वर्तमान स्थिति से उन्हें परिचित कराता है—

"श्रद्धांजलि स्वीकार करें गुरुदेव शिष्य की
आज श्राद्ध वासर के वाष्प नयन अवसर पर
पुण्य स्मृति से मेघ सजल लोचन बरसाते
स्नेह द्रवित आनन्द अश्रु पावन चरणों पर
मौन, स्वप्न पथ से बढ़ते जो चरण हृदय में !"[3]

गुंजन में कवि की भावना बदलकर कहना चाहती है कि प्रकृति ने मानव से ही हँसना, रोना, मिलना आदि सीखा है :—

"तुम मेरे मन के मानव,
मेरे गानों के गाने;

---

१. उत्तरा की भूमिका, पृ० ६३
२. स्वर्णधूलि, पृ० ४६
३. युगान्तर, पृ० १०८

मेरे मानस के स्पंदन,
प्राणों के चिर पहचाने ।
... ...
सीखा तुमसे फूलों ने
मुख देख मन्द मुसकाना,
तारों ने सजल नयन हो
करुणा किरण बरसाना !"[1]

युगान्त मे आकर कवि तो सृष्टि में मानव को ही सुन्दरतम स्वीकार करता है । उसके सद्‌गुणों की प्रशंसा करता है तथा मानव को बताता है कि उसे प्रभु के अनन्त वरदान मिले हुए है । त्रिभुवन में उसके लिए किसी भी वस्तु की कमी नहीं है--वह प्रतिक्षण नए-नए उपभोग कर सकता है—

"सुन्दर हैं विहग सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम !"[2]

शोषित पीड़ित के प्रति प्रेम—कवि अब जीवन जगत् की ओर खिंच-सा आता है। पुष्पों, तितलियों में सौन्दर्य देखने वाली आँखों को अब—

आज असुन्दर लगते सुन्दर प्रिय पीड़ित ।
शोषित जन सुन्दर लगते हैं ।

शोषितों का समाज में कोई प्रयोजन नही । ग्रामीण जनता के जीवन को देख कर कवि को घोर निराशा होती है तथा उसकी हृदयतंत्री झंकृत होकर आर्तनाद फूट पड़ता है । देश के स्वर्णिम अतीत और विषम वर्तमान पर कवि आँसू बहाता है—"कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन वह सुवर्ण का काल ?" कवि की ग्रामीण श्रमजीवी जनता के प्रति सहानुभूति व प्रेम भावना उमड़ पड़ती है—

"ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी डगमग डग
भारी है जीवन ! भारी पग ।।
... ...
जो दीन हीन पीड़ित निर्बल
मैं हूँ उनका जीवन संबल ।।"

इसलिए कवि रूढ़ि रीतियों का विनाश कर अखिल विश्व के लिए नवयुग की नई मानव सभ्यता का नव निर्माण चाहता है । इसलिए उसे सृष्टि के रोम-रोम से प्रेम है—

"इस धरती के रोम रोम में
भरी सहज सुन्दरता,
... ...
कूड़ा करकट सब कुछ भू पर
लगता सार्थक सुन्दर ।"

---

१. गुंजन, पृ० ३५
२. युगान्त, पृ० ५०

और इस सृष्टि में सबसे सुन्दर मनुष्य है। मनुष्य में सबसे सुन्दर मानवपन है। मानव उसी मिट्टी का बना हुआ है जिसकी पृथ्वी बनी हुई है। इसलिये कवि को मानवता प्रेम के लिए धरती की प्रत्येक सुन्दर व असुन्दर वस्तु से प्रेम है, सहानुभूति है—

"जीवों की यह धात्री, इसकी
मिट्टी का उनका तन,
इस संस्कृत रज का हो प्रतिनिधि
हो सकता मानवपन।"

अपने मानव प्रेम में उल्लसित होकर कवि आह्वान करता है। वह इस कुरूप एवं कुत्सित जगती में भावी मानव हित के लिए नव संस्कृति का निर्माण करना चाहता है। कवि का मानवता प्रेम अपनी चरम सीमा पर व्यक्त है—

"इस कुरूप जगती में कुत्सित
अन्तर बाह्य प्रकृति पर पा जय
नव विज्ञान ज्ञान कर संचय
मानव! भावी मानव के हित
नव संस्कृति कर जाओ निर्मित।"

मानव की निर्दोष मूर्ति के विषय में कवि काल के विराट् पट को आँखों के सामने फैलाकर विचार करता है कि न जाने कब से दार्शनिक, राजनीतिक, अर्थशास्त्री, संगीतज्ञ, चित्रकार और शिल्पकार सभी मानव की एक पूर्ण मूर्ति गढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु अभी तक वह मूर्ति पूर्ण नहीं हुई है—कवि अपने इच्छानुकूल व सर्वगुणयुक्त मानव का अभी आविर्भाव नहीं पाता। इसका अंकन कवि ने युगवाणी के 'खोज और द्वन्द्व' में किया है कि मानव के बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है। जातिभेद, वर्णभेद, भाषा भेद, धनी, निर्धन, आदि का आमूल परिवर्तन आवश्यक है—

"आज मनुज को खोज निकालो
जाति वर्ण संस्कृति समाज से
मूल व्यक्ति को फिर से पालो।
देश राष्ट्र के विविध भेद हर
धर्म नीतियों में समत्व भर,
रूढ़ि रीति गत विश्वासों की
अंध यवनिका आज उठा लो।"[1]

राष्ट्र गौरव वर्णन—राष्ट्र गौरव वर्णन में कवि की राष्ट्रीय प्रेममूलक अनुभूति है। युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण, युगान्तर, अतिमा में देश-प्रेम से ओतप्रोत कई रचनाएँ हैं। राष्ट्र के गौरव वर्णन में कवि के राष्ट्रीय प्रेम, देश-प्रेम की

भावना को तुष्टि पहुँचती है। स्वतन्त्रता जागरण[1] में भारत के अतीत गौरव का वर्णन करते हुए बापू के सत्य, अहिंसा और प्रेम द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति तक का चित्रण किया है। प्रथम स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर कवि ने "१५ अगस्त, १९४७" नाम की रचना द्वारा भारत के स्वातन्त्र्य-सेनानियों को श्रद्धा-पुष्प अर्पित किए हैं तथा नव भारत निर्माण के लिए जनजागरण के गीत गाए है। जन जागरण के गीत हमें युगान्तर (पृ०-१०१) में 'जागरण' नामक कविता में भी मिलते हैं। स्वतन्त्रता दिवस पर कवि के देश-प्रेम की भावना चरम सीमा पर है। वह हर्षोल्लसित होकर गाता है—लोक चेतना के प्रतीक तिरंगे ध्वज को फहराने का आह्वान करता है—

"फहराओ, तिरंग, फहराओ !
लोक चेतना के जाग्रत ध्वज,
ज्योति तरंगों में लहराओ !
इंद्र धनुष से घन गर्जन में,
पौरुष से जग जीवन रण में,
जन स्वतन्त्रता के प्रांगण में
विजय शिखा से उठ छहराओ।"[2]

ज्योति भारत, अभिवादन, ध्वजावंदना, भारत गीत, स्वतन्त्रता दिवस, स्वाधीन दिवस, जय गान, स्वाधीन चेतना—युगान्तर में देश-प्रेम, राष्ट्रप्रेम, विजयोल्लास की रचनाएँ हैं।

कवि की काव्यधारा में अनेकों मोड़ आए। कवि ने समाज की विचारधारा के अनुकूल अपनी चिन्तन धारा को भी मोड़ा जिससे उनके काव्य में युग चेतना की भावना मिलती है। कवि ने राष्ट्रप्रेम, मानव प्रेम, देश-प्रेम की भावनाएँ व्यक्त कीं, परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी कवि को अपनी जन्म भूमि कूर्मांचल के प्रति अगाध प्रेम, श्रद्धा है। कबीर जिस प्रकार 'गुरु बलिहारी आपकी जिन गोबिन्द दिया बताय' को महत्ता देते हैं। उसी प्रकार पंत जी ने भी कूर्मांचल को प्रिय मातृभूमि का शीर्ष रत्न कहकर गौरवान्वित किया है—

"जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि का शीर्ष रत्न, शत स्वागत !
हिम सौंदर्य किरीटित जिसका शारद मस्तक उन्नत।
उषा रश्मि स्मित, स्फटिक शुभ्र, स्वर्णिम शिखरों में उठकर
पुण्यधरा के स्वर्गोन्मुख सोपान पंथ सा विस्तृत
निज प्रवाक् गरिमा से करता नर अमरों को मोहित,
निखिल विश्व को दिग् विराट् भौगोलिक विस्मय से भर।"[3]

१. रश्मिबंध, पृ० १२४
२. स्वर्णधूलि, पृ० १२१
३. अतिमा, पृ० १४३

पंत : नारी

विधाता की नर-नारीमय सृष्टि में नर नारी का तथा नारी नर की पूरक है। कवि भी अपने काव्य-जगत् मे किसी न किसी काल्पनिक रूप में नारी-भावना की प्रतिष्ठा करता है। विश्व की सभी भाषाओं मे तथा सभी युगों में नारी-भावना ने किसी न किसी रूप मे अपना स्थान बनाए रखा है। काव्य-जगत् में किसान व नागरिक के बिना काम चल-सकता है, परन्तु नारी हटा देने मे वह नष्ट हो जाता है।"[1] काव्य-जगत् मे कवि की नारी के प्रति रागात्मक, विरागात्मक भावनाएँ तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा आर्थिक परिस्थिति के आधार पर निर्मित होती हैं। यहाँ तक कि कवि की भावनाओं का प्रतिबिम्ब भी नारी-भावना मे प्रगट होता है।

वीरगाथा काल में नारी का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व न था। वह तलवार के बल पर अधिकार कर लेने की पुरुष की एक सचल सम्पत्ति मात्र थी। भक्तिकाल में भी नारी केवल माया के रूप में प्रगट हुई। कृष्ण भक्ति-शाखा में राधा और गोपियों के रूप में तो नारी कुछ पूज्य अवश्य हुई, किन्तु वह उसका अबला रूप ही था, जो विरह के आँसू बहाती रही। राम-भक्ति शाखा में भी उसे कोई उच्च स्थान नहीं मिला।

रीतिकाल में वह वासना की पुतली से अधिक कुछ न थी और कविता शृंगारिकता के स्तर पर उतर आई। द्विवेदी-काल में भी सुधारवादी दृष्टिकोण से नारी का रूप विकसित न हो सका, परन्तु छायावाद ने नारी को नई आँखों से देखा और इस युग की नारी पूर्व-युगीन नारी से भिन्न है। वह स्वतन्त्र सत्ता रखनेवाली है।

१९वीं शताब्दी में मानवतावादी सिद्धांतों का भली-भाँति विकास हुआ। प्रत्येक व्यक्ति की स्वाधीनता और अधिकार की भावना ने नारी-आंदोलन को जन्म दिया। मानवतावाद से प्रेरित होकर जब देश के दीन-दलितों की ओर कवि की दृष्टि गई तो वह भारत की शताब्दियों से पीड़ित मानवी को न भुला सका। पंत ने नारी की स्वतंत्रता की आवाज प्रतिध्वनित की—

"मुक्त करो नारी को मानव,
चिर बंदिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से
जननी, सखी, प्यारी को!"

रोमांटिसिज्म के प्रभाव से आधुनिक हिन्दी काव्य की रूढ़िवादिता, इतिवृत्तात्मकता, भावशून्यता सीमित कल्पना तथा संकुचित सौंदर्यानुभूति के प्रति विद्रोह हुआ और नारी-सौंदर्य की भावना निखर पड़ी तथा उसके मानवी रूप को पहचाना। युग-युग की बन्दिनी नारी में जाग्रति का नव-संचार हुआ।

---

१. सेक्सुअल लाइफ इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ० ६, जिल्द १.
२. युगवाणी, पृ० ५४

भक्तिकाल और रीतिकाल के कवियों की अपेक्षाकृत आधुनिक-युग के कवियों की नारी-भावना स्वस्थ रही है। नारी अब पुरुष की छायामात्र नहीं, अपितु उसके समकक्षी है। अतः, स्पष्ट है कि भक्ति और रीतिकालीन नारी-भावना के प्रति एक विद्रोह की भावना रही है, क्योंकि पश्चिमी विचारधाराओं के प्रभाव और आधुनिक शिक्षा के प्रसार से संसार और जीवन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में प्रचुर परिवर्तन हुआ। स्वर्ग और मुक्ति की कल्पना भी मनुष्य को मोहित करने में अधिक सफल नहीं रही। माया के प्रति कवियों का दृष्टिकोण बदल गया, अंध-विश्वासों के प्रति उनके मन में अब आस्था न रही, वैराग्य के बदले अनुराग की भावना ने कवि के मन में सुख, सुगंध और रूप भरे जीवन के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर दिया। पंत जी की दृष्टि में जीवन की सार्थकता माया अथवा तत्प्रसूत जगत् के त्याग मे नहीं अपितु उसके आलिंगन करने में है—

"न्यौछावर स्वर्ग इसी भू पर,
देवता यही मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाँहों में
है मुक्ति यही जीवन बंधन।"[1]

वास्तव में यह सभी प्रकार के प्रेम को संसार का भव्य आभूषण मानते हुए भी कवि प्रेम के मूल आलंबन, जीवन के केन्द्र, नारी से विरक्त हो, यह असंभव है। पंत की नारी केवल 'एक सुर में समस्त संगीत' तथा 'एक कलिका में अखिल बसंत' ही नहीं है, बल्कि 'धरा में स्वर्ग पुनीत' भी है और उसमें असीम सौंदर्य के साथ-साथ पवित्रता के भी दर्शन होते हैं।

पंत जी के छायावादी काव्य में नारी-सौंदर्य उत्कृष्ट कोटि का है। कवि के नारी-चित्रण से प्रतीत होता है कि उन्हें नारी के स्थूल रूप का यथार्थ चित्रण रुचिकर नहीं। वह नारी-रूप की सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति को अभिव्यक्त करता है और यह प्रवृत्ति उसके नारी-रूप के वर्णन में एक अस्पष्टता का भाव उत्पन्न कर देती है। ऐसी प्रवृत्ति अंग्रेजी काव्य के कवि शैली की रचनाओं में भी मिलती है और यह प्रवृत्ति हिन्दी की अन्य छायावादी कविताओं में अनेक स्थलों पर उद्भासित हुई है।

छायावादी कवियों ने नारी-रूप की इस भावना की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में की है। कुछ कवि तो प्रकृति के विभिन्न रूपों में नारी-सौंदर्य का दर्शन करते हैं और कुछ नारी-रूप का चित्रण ऐसी कोमल और सरस रूपरेखाओं मे करते हैं कि वह इस संसार की प्राणी न प्रतीत होकर परम दिव्यरूपा प्रतीत होने लगती है।

सुमित्रानंदन पंत तो नारी-रूप से इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि उन्होंने अपनी प्रारम्भिक काल की कविताएँ 'नंदिनी' नाम से की हैं।

"बढ़ा और भी पर अन्तर
सुखद सुरभि दी जिसको तूने
सखि, जिनको छवि दी सुन्दर
मैं उनके छिन गई व्यग्र हो

---

१. ज्योत्स्ना, पृ० ६०।

तुझे ढूंढने को सत्वर ॥१॥
भँवरी बन उनके ढिग मैंने
गाने गाये श्रुति सुखकर
मैंने अपने को आह तुझसे
अधिक दूर सखि ! पाया पर ॥[1]"

उन्हें नारी के सौंदर्य ने इस सीमा तक सम्मोहित कर दिया था कि वे उससे अपना तादात्म्य तक स्थापित करने लगे। नरेन्द्र शर्मा जी ने इस भावना का अत्यंत सुन्दर विश्लेषण किया है—

'नारी स्वर के प्रति पंत जी का यह आकर्षण धीरे-धीरे नारी रूप के प्रति बढ़ता गया। बहुधा हम उस वस्तु के सदृश बन जाना चाहते है, जिस वस्तु के प्रति हमें अनुराग हो। संभव है इस मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार नवयुवक पंत ने भी नारीत्व के प्रति अपना मनोगत आकर्षण प्रगट किया हो।'[2] वास्तव में पंत का आत्मप्रेम उनकी इसी भावना के कारण है। वे स्वयं अपने रूप पर इसलिए आसक्त हैं, क्योंकि वे अपने में नारी का ही सौंदर्य देखते हैं—

"घने लहरें रेशम से बाल
धरा है सिर पर मैंने देवि
तुम्हारा यह स्वर्गिक शृंगार
स्वर्ण का सुरभित भार।"[3]

नारी-भावना पंत जी की 'वीणा', 'ग्रंथि' और 'पल्लव' के रचना-काल की भावधारा में स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। नारी-सौंदर्य के चित्रण में पंत जी पर 'शैली' और 'कीट्स' का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है। शचीरानी गुर्टू को उनकी 'ग्रंथि' नामक कविता, जिसमें नारी-सौंदर्य के अनेक चित्र हैं, शैली की 'एपिपसाइकिडियन' के बहुत अनुरूप प्रतीत होती है।[4]

'स्वर्णकिरण' के 'नारी पथ' में नारी की सुन्दरता का वर्णन करते हुए सृष्टि में उसकी महत्ता और उसकी स्थिति का चित्रण किया गया है। कवि का कथन है कि प्राणि-जगत् नारी के कारण ही सुन्दर लगता है—

"कितनी वेणियाँ लोल
लोटतीं पीठों पर
× × ×
एक अंगना से सुभग
लगता अंगों का जग।"[5]

---

१. शक्ति, अलमोड़ा, १८ फरवरी १९१९
२. आलोचना, अक्टूबर, १९५१
३. पल्लविनी, पृ० ५७
४. साहित्य-दर्शन, पृ० १६१-६३
५. स्वर्णकिरण, पृ० ९३

नारी का रूप कवि के लिए वासना और पतन का संदर्भ लेकर नहीं आता। इसके विपरीत यह जीवन की प्रेरणा है। कर्मपथ पर अग्रसर होने का सन्देश है। अनिंद्य सुन्दरी ऊषा के सम्बन्ध मे कवि कहता है—

"तुम जग की स्वप्न शिराओं में
नव जीवन रुधिर सदृश छाईं,
मानस में सोईं, भावों की
लो, अखिल कमल कलि मुस्काईं!
आशाऽकांक्षा के कुसुमों से
जीवन की डाली भर लाईं,
जग के प्रदीप में जीवन की
लौ सी उठ, नव छबि फैलाईं।"[1]

कवि इस विश्वास को लेकर नारी की बाह्य-आकृति पर ही नहीं रुक जाता वरन् उसके भाव-सौंदर्य का भी पूर्ण रूप से अवगाहन करता है। वह शरीर और हृदय को पृथक्-पृथक् नहीं, वरन् एक साथ रख कर देखता है—

"प्रिये, मुकुलित मधु-प्राल
मुक्त नभ वेणी में सोभार
सुहाती रक्त पलाश समान;
आज मधुवन मुकुलों में झुक साभार
तुम्हें करता निज विभव प्रदान!"[2]

कवि नारी के हृदय की शुचिता, सरलता, मृदुलता, आदि में भाव-सौंदर्य मानता है और प्रगल्भ नायिका की चतुरता और प्रौढ़ता की अपेक्षा उसके भोलेपन, अकृत्रिमता और सदृश बर्ताव से अधिक आकृष्ट है। वह नारी के कोमल हृदय में उसके मधुर भावों का भंडार पाता है। नारी का हृदय ही कवि के लिए स्वर्गागार है। उसके लिए नारी हृदय कोमलता, सहृदयता, भावुकता और ममता का द्योतक है। कवि का कथन है कि नारी हृदय के अमर प्रणय के शतदल पर प्राणिमात्र को स्थान मिलता है।

"यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर,
तो वह नारी उर के भीतर
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर।"[3]

नारी के इन गुणों को देखकर कवि ने नारी को भूतल पर स्वर्गीय किरण माना है। उसका रूप लघु ससीम होने पर भी वह अनंत है—

"बिन्दु में भी तुम सिंधु अनंत
एक सुर में समस्त संगीत;

---

१. पल्लविनी, पृ० २८७
२. गुंजन, पृ० ५४,
३. ग्राम्या, पृ० ८२

एक कलिका में अखिल बसन्त,
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत !"[1]

कवि के हृदय मे व्यथा का भार है वह ऐसे प्राणी की चाह करता है, जो उसके हृदय भार को कम कर सके और कवि सपने की ऐसी प्रतिमा का निर्माण कर अपने अभावों की काल्पनिक पूर्ति करना चाहता है, जिसके जीवन में अपने हृदय का भार उतार सके और ऐसी प्रतिमा उसे नारी मे ही मिलती है —

"हाय, किसके उर में उतारूँ अपने उर का भार !
किसे अब दूँ उपहार गूँथ यह अश्रुकणों का हार !!"[2]

पंत की 'अनग' कविता में पढते समय हमें कीट्स की 'ओड टु साइके' का स्मरण हो आता है। कीट्स ने अपनी कविता में प्रेम के देवता 'क्यूपिड' और मानवात्मा 'साइके' के प्रेम का वर्णन किया है। पंत की कविता में भी हम प्रेम के देवता अनंग अथवा कामदेव का वर्णन पाते हैं। पंत अनंग का अस्तित्व सृष्टि के प्रत्येक कण में पाते है। वे इस अत्यंत सुन्दर निराकार देवता को अपने प्राणों मे साकार बनाना चाहते है—

"ऐ असीम सौन्दर्य सिंधु की
विपुल वीचियों का शृंगार।
मेरे मानस की तरंग में
पुन: अनंग ! बनो साकार।"[3]

इस संबोधन गीत में पंत की अनंग से यही प्रार्थना है कि वह उसे विश्वकामिनी की सुन्दर छवि का दर्शन करा दे :

"विश्व-कामिनी की पावन छबि
मुझे दिखाओ करुणावान ।"[4]

उच्छ्वास कविता में एक युवक और युवती की प्रेम-कथा है। संदेह के कारण इन दोनों के प्रेम का शीघ्र ही अंत हो जाता है। कवि की यह प्रेयसी पूर्ण युवती न होकर एक बालिका अथवा किशोरी है। पंत ने उसके सरलपन, निरालेपन, उसके नेत्रों और रूप की प्रशंसा की है—

"सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन !"[5]

पंत जी ने 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में 'अपनी भावी पत्नी' के काल्पनिक सौंदर्य का वर्णन किया है। इस कविता में प्रकृति-सौंदर्य और नारी-सौदर्य दोनों का कहीं-कहीं पूर्ण संयोग है। कवि कभी वर्ड्स्वर्थ की भाँति 'थ्री ईयर्स शी ग्यू' के प्रकृति सौंदर्य का अपनी पत्नी के सौंदर्य में प्रतिबिम्ब देखता है—

---

१. पल्लव, पृ० ७३
२. पल्लव, पृ० ६५
३. पल्लविनी, पृ० १६४
४. पल्लविनी, पृ० १६१
५. पल्लव, पृ० ५६

"अरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों सा हिलता हिम हास;"[1]

और कभी-कभी वह प्रकृति को स्वयं अपनी भावी पत्नी से सौंदर्य लेते हुए देखता है। अनिल उसके केशों से सौरभ लेता है और विहग-वृन्द उससे अपना 'कलरव केलि विनोद' सीखते हैं—

"खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूँघता होगा अनिल समोद"
"सीखते होंगे उड़ खग बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद,"[2]

पंत का नारी-रूप के प्रति प्रेम उनकी अन्य कविताओं 'मधुस्मिति', 'मन-विहग', 'प्रथम मिलन' आदि में मिलता है। उनके कुछ चित्रों में ऐन्द्रियता भी है, उदाहरणार्थ 'प्रथम मिलन' में—

"तुम मुग्धा थी अति भाव-प्रवण
उकसे थे अंबियों से उरोज।"[3]

कवि नारी के निर्माण का चिरंतन आनंद मार्ग में बाधा नहीं वरन् साधिका के रूप में देखता है। 'अवगुन आठ सदा उर रहहिं' कहने के स्थान पर नारी को सद्गुणों की खानि के रूप मे देखा है—

"तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुला, दुर्बलता औ ध्यान।"[4]

प्रेयसी के सौंदर्य की छटा को कवि ने प्रकृति में मुकुलित और कुसुमित पाया है—

"आज मुकुलित चहुँ ओर तुम्हारी छटा अपार;
फिर रहे उन्मत्त मधु प्रिय नयन पलकों में पंख पसार।"[5]

जब कवि को सर्वगुण सम्पन्ना प्रेयसी मिलती है, तो प्रकृति में द्वेष-भावना उत्पन्न होती है और कवि की कल्पना में 'प्रिया की मंजुल मूर्ति को देखकर मधुवन की ईर्ष्याग्नि किंशुक अनार और कचनार में फूट पड़ती है, कपोलों की मंद श्री का पान करके गुलाब रक्तिम हो उठे है। नासिका को देख शुक लज्जित हैं, और पलाश पुष्प झुक गए हैं, चंचल चरणों के स्पर्श से अशोक मजरित है और प्रियंगु स्पर्श से पुलकित चम्पक ने प्रिया की सुबास को चुरा लिया है और वह गर्वित हो भ्रमर को पास नहीं आने देती।'[6]

---

१. पल्लविनी, पृ० १६७
२. पल्लविनी, पृ० १६८
३. पल्लविनी, पृ० १७०
४. पल्लविनी, पृ० १३७
५. गुंजन, पृ० ५६
६. गुंजन, पृ० ५३

प्रिया-भावना तथा मातृ-भावना संबंधी भावों में पंत जी पर रवीन्द्र ठाकुर का प्रभाव पाया जाता है जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है—

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकंपित उर, मृदु पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्सना सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित पलक दृग पात,
पास जब आ न सकोगी, प्राण !"[1]

(भावी पत्नी के प्रति)

द्विधाय जड़ित पदे
कम्प वक्षे, नम्र नेत्र पाते,
स्मित हास्ये नाहि चल,
सलान्जीत वासर
शययाते स्तब्धराते ।

—रवीन्द्र ।

कवि ने अपनी प्रेयसी के असीम सौंदर्य का चित्रण किया है, ज्योत्स्ना से छनती हुई शशि मुख की सुन्दरता का सुधापान किया है । पंत जी ने नारी के नखशिख चित्रण में संयम से कार्य लिया है । रीतिकालीन कवियों की भाँति अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नहीं किया है और न ही नग्न—

"छनती थी ज्योत्सना शशि मुख पर
मैं करता था मुख सुधा पान ।
× × ×
था आत्म समर्पण सरल, मधुर
मिल गए सहज मारुता मोह ।
"उभरे उरोज कुंतल खोले
एकाकिन कोई क्या बोले
वह सुन्दर है साँवली सही
तरुणी है, हो षोडशी रही ।"

शारीरिक सौन्दर्य-चित्रण के साथ-साथ कवि ने नारी का भाव चित्रण भी सुन्दर ढंग से किया है । बिहारी की नायिका के समान भरे भौन में नयन से नयन की बात नहीं करती बल्कि उसमें लज्जा का भाव है। मुस्कराने तक में वह लज्जा का अनुभव करती है—

"कहेंगे क्या मुझसे सब लोग
कभी आता है इसका ध्यान !
रोकने पर भी तो सखि, हाय
नहीं रुकती है यह मुस्कान ।"[2]

अप्सरा, ग्राम्या, आधुनिका आदि विविध रूपों में नारी का जो चित्रण किया गया है, वह द्विवेदी युग की उपेक्षित नारी कवि की प्रमुख आकर्षण रही है ।

---

१. पल्लविनी, पृ० १६६
२. पल्लविनी, पृ० १४५

छायावादी कवि पंत सौन्दर्य के लिए एक ओर तो प्रकृति की ओर गए तो दूसरी ओर 'निखिल छवि की छवि' नारी की ओर।

"तुम्हारे रोम रोम से नारी! मुझे है स्नेह अपार।
तुम्हारा मृदु उर ही, सुकुमारि! मुझे है स्वर्गागार!"[1]

छायावादी-युगीन नारियाँ रीतिकालीन नारियों की भाँति केवल कामिनी ही नहीं अपितु वे शक्ति, जीवन सहचरी, अबोध बालिका और मर्यादापूर्ण कुलवधू भी हैं और इन सभी रूपों में पत जी ने नारी के शारीरिक और भाव-सौन्दर्य चित्र सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किए हैं।

पंत जी के छायावादी काव्य में नारी प्रकृति दिव्य शक्तियों के प्रतीक और सजीव जीवन सहचरी के रूप में आई है, वैदिक कवियों की ऊषा, उर्वशी, पृथ्वी, शचि आदि नारी रूप में कल्पना कवि की प्रेरणा है। आधुनिक परिस्थितियों में वैदिक भावना का अनुकरण मात्र नही अपितु कवि ने प्रकृति मे चेतन नारीत्व का आरोप किया है, तथा उसमें वही बाह्य और आंतरिक सौन्दर्य देखा जो उसने नारी में पाया है और इस प्रकार हिन्दी साहित्य में एक नवीनता की सृष्टि की है।

पंत जी की नारी कल्पना ही नैसर्गिक है। कवि की प्रेयसी स्थूल पार्थिव रूप की राशि नहीं है वरन् प्रकृति के संचित कोष से निर्मित सौन्दर्य की प्रतिमा है।

पंत जी भक्तिकाल की वैराग्यमयी घृणात्मक इस नारी-पूजा को इस युग में लगभग लुप्त देखकर कहते हैं—

"यदि कहीं नरक है इस भू पर, तो वह नारी के अन्दर,
वासना गर्त में डाल प्रखर
वह अन्ध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर।"[2]

परन्तु साथ ही यह भी कहा है —

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर,
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर!"[3]

मार्क्सवाद के अनुसार पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के दो वर्ग हैं : शोषक और शोषित। पंत जी ने जहाँ मजदूरों और किसानों के प्रति शोषण का चित्रण किया है वहाँ वे नारी को नहीं भूले। पंत जी ने नारी को भी शोषित वर्ग के ही अन्तर्गत माना है जो पुरुष की पाशविकता से दलित है और जो पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती है।

सामन्तवादी आदर्शों के कारण नारी नर की छाया मात्र रह गई थी और उसकी सम्पत्ति के समान हो गई थी और जो घर के कोने में पड़ी संसार से विमुख होकर पशु की भाँति पलित होकर जीवन-यापन कर रही थी, आज कवि की सहनशीलता, कुल गौरव,

---

१. पल्लव, पृ० ११८
२. ग्राम्या, पृ० ८३
३. वही,

लज्जा, कोमलता आदि गुणों के सम्पन्न आदर्श न होकर गहन चिन्ता का विषय है। वह अपने समाज को समझाने का प्रयत्न करता है कि—

"योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।"[1]

इसका निराकरण कवि क्रांति के द्वारा नहीं चाहता। बल्कि वह अपने समाज को समझाने का प्रयत्न करता है।

"सामूहिक जन भाव स्वास्थ्य से जीवन हो मर्यादित,
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो संस्कृत।"[2]

युग-युग से नारी का मन, शरीर, भावना, दासता के जिन बन्धनों से जकड़ा हुआ है, कवि उन बन्धनों से मुक्ति दिलाना चाहता है।

कवि को नारी के स्वर्णिम आभूषण उसी दासता की बेड़ियाँ दिखाई देती हैं क्योंकि इन्हें देकर पुरुष इन्हीं से बाँधता है। उसकी स्वतंत्र गति को अवरुद्ध कर देता है। उसे सजी हुई गुड़िया बना कर उसके अधिकार छीन लेता है। समाज में नारी और नर की स्थिति में अन्तर है। कवि उस अन्तर को दूर करके मानव के साथ मानवी का भी जीवित और स्वतन्त्र अस्तित्व देखना चाहता है। जो नारी अभी तक योनि मात्र रह गई है, जिसकी आत्मा का प्रकाश पुरुष की वासना ने नष्ट कर दिया है, जो पशु के समान गृह के बन्धनों में जीवित है उसे पूर्ण सामाजिक स्थिति प्रदान करके कवि मानव की वास्तविक जीवन संगिनी के रूप में देखना चाहता है और इस प्रकार प्रेम के आदान-प्रदान को एक शुचिपावन रूप में देखना चाहता है। जिससे वह एक ओर तो पुरुष की ऐन्द्रिक तृप्ति मात्र का साधन न रह जाए और दूसरे स्वयं भी प्रेम को प्रकट करने का अधिकार रखे। इन विचारों को लेकर कवि नारी की मुक्ति का आदेश देता है—

"मुक्त करो नारी को, मानव !
चिर बंदिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से
जननि, सखी, प्यारी को !"[3]

भारत में नारी जागृति का आन्दोलन चला, जिसका उद्देश्य नारी स्वतन्त्रता व नारी के प्रति समान भाव था। पंत जी पर इस आन्दोलन का प्रभाव पाया जाता है। पंत जी नारी को उल्लसित, प्रसन्न, अधिकारयुक्त और मुक्त देखना चाहते हैं—

"योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।
द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित।
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हो विकसित।"[4]

नारी के प्रति कांग्रेस के रुख और राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी के भाग लेने का प्रभाव आधुनिक काव्य पर पड़ा। कवि ने नारी को 'सबला' के रूप में देखा और उसे राष्ट्र के उद्धार के लिए पुकारा।

---

१. ग्राम्या, पृ० ८५
२. वही,
३. युगवाणी, पृ० ६५
४. ग्राम्या, पृ० ८५

आज का कवि सौन्दर्य और पीड़ा के संयोग को कविता की प्रेरणा मानता है, 'सौन्दर्य के उद्दीपन से जब जीवन के संचित अभाव अभिव्यक्ति के लिए फूट पड़ते है तभी तो कविता का जन्म होता है। कविता के उद्रेक के लिए सौन्दर्य का उद्दीपन अर्थात् आनन्द और अभाव की पीड़ा दोनों का संयोग अनिवार्य है।'

"हाय ! मेरा जीवन,
प्रेम औ आँसू के कन !
आह मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुन्दरता औ मन !
विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव शृंगार
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि !
मूंद दुहरे दृग द्वार,
अचल पलकों में मूर्ति सँवार
पान करता हूँ रूप अपार,
पिघल पड़ते हैं प्राण,
उबल चलती है दृग जल धार !"[1]

× × ×

"तुम चन्द्रवदनि, तुम कुंद दशनि
तुम शशि प्रेयसि, प्रिय परछाँई।
श्री, सुख, सुषमा की कलि चुन चुन
जग के हित आँचल भर लाई।"[2]

वे न केवल नारी की बाह्य स्तुति से मुग्ध हैं, वरन् उसकी आन्तरिक विभूतियों से भी प्रभावित हैं। वास्तव में मन की ही छवि तन पर भी छाई हुई है।

"स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि !
तुम्हारे रोम रोम से, नारि !
तुम्हारा मृदु उर ही, सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार !"[3]

रीतिकाल में नारी केवल अभिसारिका, वासक सज्जा, परकीया आदि की रूपरेखाओं में बंधी रही है और केलिगृह के द्वार के अन्दर योनिमात्र रह गई। उसने अपना व्यक्तित्व खो दिया। कवि नारी को वासना के गर्त से ऊपर उठा कर आदर्श मानवी के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है—

"योनि मात्र रह गई मानवी
निज आत्म का कर अर्पण।"[4]

---

१. पल्लव, पृ० ७१-७३
२. ज्योत्स्ना, पृ० ३८-३९
३. पल्लव, पृ० ११८
४. युगवाणी, पृ० ६४

वह 'काम-कारा की बन्दिनी' के रूप में नारी को नही देख सकता । इसलिए नारी को उसके गुणों के प्रति जागरूक होने का आह्वान करता है। नारी के लिए समता और स्वतन्त्रता ही उसे प्रोत्साहित करते हैं—

"तुम में सब गुण हैं ; तोड़ो अपने भय कल्पित बन्धन'
जड़ समाज के कर्दम में से उठकर सरोज सी ऊपर
अपने अन्तर के विकास से जीवन के दल दो भर।"[1]

वह नारी को सौन्दर्य चेतना का वरदान मानते हुए वाह्य सौन्दर्य के स्थान पर भाव सौन्दर्य की ओर झुका है। उसके सौन्दर्य प्रेम और कला बुद्धि में रीतिकालीन कवियों की तद्वस्तु से बहुत अन्तर है।

पंत जी ने रीतिकालीन कवियों की भाँति नारी को केवल प्रेमिका के रूप में ही नहीं देखा, वरन् नारी रूप का अन्तःकरण से आदर किया है। 'भावी पत्नी के प्रति' में भारतीय अर्द्धांगिनी और गृहलक्ष्मी की गरिमा ने उसकी कल्पना को अत्यन्त परिष्कृत, सुरुचिपूर्ण तथा गौरवमय बना दिया है। पौराणिक काल की तरह स्त्री प्रेम को अस्थिर और मिथ्या ऐन्द्रिक तृप्ति का साधन भर नहीं बताया है। उस पर पति भक्ति के क्रूर नियमों को लाद कर निर्जीव छाया बना कर उसके व्यक्तित्व और स्वातन्त्र्य का हरण नहीं किया है।

इस युग में कवियों ने यशोधरा और उर्मिला, सीता और दमयन्ती, मांडवी और श्रद्धा आदि नारी पात्रों को लेकर पत्नी रूप में नारी को उच्च स्थान प्रदान किया है।

पंत जी के काव्य में भारतीय नारी को हम पत्नी के एकांत, स्थिर, वासनाहीन, त्यागमयी, कर्त्तव्यमयी, धर्मनिष्ठ और आदर्श गृहिणी के रूप में पाते है—

"सतीत्व सती शक्ति,
अर्द्धांगिनी तथा सहचरी रूप,
शक्ति रूपी प्रेरणा तथा सत्पथ प्रदर्शन"

इन विशेषताओं से कवि के हृदय में नारी के प्रति आदर व श्रद्धा का भाव स्पष्ट दिखाई देता है।

ग्राम्या में नारी के विभिन्न रूपों—स्त्री[2], ग्राम चित्र[3], ग्राम युवती[4], ग्राम वधू,[5] भारत माता[6], स्वीट पी[7], आधुनिका[8], मजदूरनी[9], नारी[10] आदि का चित्रण किया गया। कवि नर और नारी की पृथक् सत्ता स्वीकार नही करता। वह दोनों को एक ही रचना के दो

---

१. ग्राम्या, पृ० ८१
२. ,, पृ० ८२
३. ,, पृ० १६
४. ,, पृ० १७
५. ,, पृ० ३३
६. ,, पृ० ४८
७. ,, पृ० ७८
८. ,, पृ० ८३
९. ,, पृ० ८४
१०. ,, पृ० ८५

भेद मानता है। वह नारी की वर्तमान स्थिति अर्थात् 'नर की छाया' के प्रति आश्चर्य प्रकट करता है।

नारी अपने वास्तविक स्वरूप को यदि प्राप्त करेगी तो क्या होगा ? इस पर कवि कहता है—

"सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित,
× × ×
सामूहिक-जन-भाव स्वास्थ्य से जीवन हो मर्यादित,
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो संस्कृत।"[1]

कवि नारी के परम्परागत रूप को स्मरण करता है उसके परम्परागत स्वभाव, आदर्श की ओर संकेत करता है जिसके परिणामस्वरूप नारी पुरुष की दासी बनी।

"मैं चिर श्रद्धा लेकर आई
वह साध बनी प्रिय परिचय में
पथ भूल विहँस मृदु फल बने
मैं विजयी प्रिय, तेरी जय में।"

वर्तमान युग की नारी के प्रति कवि वास्तव में संतोष प्रकट करता है। उसने दासत्व की शृंखलाओं को तोड़कर स्वतन्त्रता प्राप्त की है, वह अब असहाय निरीह अबला मात्र नहीं रह गई है, स्वाभाविक वृत्तियों का सहज विकास करती हुई पुरुष की सहचरी है। मानवी में इस सत्यस्वरूप को पंत ने 'मजदूरिन' ग्राम नारी में देखा है। स्वस्थ और स्वतन्त्र मजदूरिन [illegible] को त्याग कर, द्वन्द्व प्रतिष्ठा को भूल कर पुरुषों के साथ समान रूप [illegible] है, वह कुलवधू के समान पराश्रिता होकर गृह में नहीं रहती, वरन् एक मुक्त स्वस्थ जीवन व्यतीत करती है—

"नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
जो बांट रही तुम जग जीवन का काम काज,
तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज।
सर का आँचल खिसका है—धूल भरा जूड़ा,
अधखुला वक्ष,—ढोती तुम सिर पर धरे कूड़ा,
हँसती, बतलाती सहोदरा सी जन जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से।
कुलवधू सुलभ संरक्षणता से ही वंचित
निज बन्धन खो, स्वतन्त्रता की अर्जित।
स्त्री नहीं, आज मानवी बन गई तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अंगों को छू अनिलातप पुलकित!
निज द्वन्द्व प्रतिष्ठा भूल जनों के बैठ साथ,
जो बांट रही तुम काम काज में मधुर हाथ,
तुमने निज तन की तुच्छ कंचुकी को उतार,
जग के हित खोल दिए नारी के हृदय द्वार।"[2]

---

१. ग्राम्या, पृ० ८५
२. वही, पृ० ८४

'मानवी' की आदर्श प्रतिमा ग्राम नारी है उसने नर का सहचरत्व स्वीकार करके श्रम के द्वारा क्षुधा और काम को मर्यादित कर लिया है। वह कोमलांगी हो कर भी शोभा-पात्र मात्र नही है। वह यथार्थ और जीवन के संघर्षों से परिचित है। वह सहज स्नेह से युक्त होकर द्वन्द्व मुक्त है। वह दैन्य और अविद्या मे पीडित होकर भी स्नेह, शील, सेवा और ममता की मूर्ति है। इस मानवी को कवि कृत्रिम और विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली द्वन्द्व पीड़ित नागरी और वर्ग नारी से बहुत दूर रखता है।[1]

कवि पंत शिक्षित और संस्कृत होते हुए भी, नारी की सौन्दर्य मधुरिमा और महिमा से मंडित होने पर भी, नर की समकक्ष होने पर भी आधुनिका को नारी-हृदय की विभूति और सत्य से वंचित होने के कारण तथा कृत्रिम और आडम्बरपूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी, आदि विशेषण प्रदान करते हैं। उसे नारी कहने में कवि को संकोच है—

"पशुओं के मृदु चर्म, पक्षियों से ले प्रिय रोमिल पर,
ऋतु कुसुमों से सुरंग सुरुचिमय चित्र वस्त्र ले सुन्दर,
सुभग रूज, लिपस्टिक, बोस्टिक, पौडर से कर मुख रंजित
अंगराग क्यूटेक्स अलक्तक से बन नखशित शोभित

× × ×

मार्जारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्म समर्पण,
तुम्हें सुहाता रंग प्रणय, धन-पद-मद, आत्म प्रदर्शन!
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी।
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी!"[2]

इससे प्रतीत होता है कि जिन भारतीय नारियों ने पश्चिम की वेश-भूषा, शिक्षा, संस्कृति, स्वातंत्र्य भावनाओं को ग्रहण किया और भारतीय नारी के शील, सौम्यता, शालीनता और सलज्जता को त्याग दिया, ऐसी नारियों के प्रति कवि के हृदय में सम्मान नहीं है।

समाजवाद से प्रभावित होकर कवि ने नारी को मानव के समकक्ष मानवीरूप में देखा है, जो अपने शारीरिक और मानसिक विकास में स्वतन्त्र होकर जगत् का विकास करती है। आर्थिक दृष्टि से पुरुष के आश्रित नहीं रहती अपितु श्रम के क्षेत्र में समान अधिकार रखती है।

पंत जी के सम्मुख नारी एक पहेली-सी भी बनी रही है जिससे उसके विषय में कौतूहल बना रहा है—

"कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार
प्राण सत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार?"[3]

नारी इस प्रकार इतनी अमूर्त हो गई है कि वह कल्पनामात्र बन गई—

---

१. ग्राम्या, पृ० २०-२१

२. वही, पृ० ८३

३. वही, पृ० २०-२१

"निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि।
अखिल विस्मयाकार।
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर,
भावों की आधार।"

और उसका कोई रूप नहीं, वह केवल अनुभूतिमात्र बन गई है—

"वह खड़ी दृगों के सम्मुख
सब रूप, रेख, रंग ओझल
अनुभूति मात्र सी उर में
आभास शांत, शुचि उज्ज्वल!"

नारी का चित्रण उससे शारीरिक सौन्दर्य चित्रण और उसके भाव-चित्रण— प्रेम लज्जा—में उत्कृष्ट कोटि के बन पड़े हैं।

ग्रंथि की नायिका चित्रण में[1] कवि दार्शनिकता को छोड़कर नव सहज अनुभूति के स्तर पर उतर आता है, तो उसकी मधुर कोमल सरल और निश्चल प्रिया को हम निसर्ग कन्या शकुन्तला की सीमा में पाते हैं।

'नारी के नारीत्व (हृदय) की तथा कल्याणी रूप की रक्षा करते हुए कवि ने मुक्त प्रेम के मार्ग को स्वीकार किया है। यहाँ पर पंत की ज्योत्स्ना का उल्लेख करना सम्भवतः अनुचित न होगा, जिसमें कवि ने मनुष्य जाति की सभ्यता में नवीन स्वर्णयुग का समारम्भ करने के लिए जाति वर्ग की सीमाओं को तोड़ प्रेम के लिए एक स्वच्छ और प्रशस्त मार्ग निर्मित किया है।

वीणा का समर्पण-पत्र ही वीणावादिनी के नाम है, पंत जी ने वीणा में ब्रह्म की कल्पना माँ रूप में की है और वीणा की अधिकांश रचनाएँ माँ को ही निवेदित की गई हैं।

"जननि, सुना दे मृदु झंकार!
मधुबाला की मृदु बोली—सी
तेरी वीणा की गुंजार
खिला कई कवि कुल कमलों को
सुरभि कर चुकी है संचार।"[2]

कवि को देवी और माँ का एक ही रूप दिखाई देता है। वीणा में कई ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें माँ-बेटे या बेटे-माँ का दुलार भरा, ममतायुक्त सम्भाषण है—

"माँ, अल्मोड़े में आए थे
जब राजर्षि विवेकानन्द;
तब मग में मखमल बिछवाया।"[3]

---

१. ग्रन्थि, १४-१५
२. वीणा—उत्सर्ग
३. वीणा, पृ० १४२

नारी : अलौकिक माँ या मातृशक्ति

पंत की प्रारम्भिक कविताओं मे नारी का मातृत्व रूप वर्णित है और वह लौकिक रूप है। अरविन्द दर्शन के प्रभाव के बाद 'स्वर्ण धूलि' मे 'मातृशक्ति' और 'मातृचेतना' दोनों आलौकिक माँ से सम्बन्ध रखती हैं। 'युगवाणी', 'ग्राम्या' मे कवि नारी-मुक्ति का आह्वान करता है परन्तु अब, 'मनुष्यत्व' में कवि ने वर्गभेद और वर्णभेद से उत्पन्न भयंकर हानियों का दिग्दर्शन, नारी के प्रति नर की दृष्टि में दोष को देखा है। कवि नारी के प्रति उचित दृष्टिकोण रखने की ओर संकेत करता है तथा नारी को नर के समान स्वतन्त्र होने का आह्वान करता है—

> **"छोड़ नही सकते हैं यदि जन**
> **नारी मोह पुरुप की दासी उसे बनाना,**
> × × ×
> **नारी को स्वतन्त्र जैसे नर**
> **देव द्वार हो मातृ कलेवर।"**

पंत जी ने नारी को विभिन्न रूपों—नन्हीं अबोध बालिका, प्रेयसी, रूपसी, माँ सहचरी के रूप में पाया है।

इलाचन्द्र जोशी

इलाचन्द्र जोशी मुख्य रूप से कथाकार हैं। कथा साहित्य क्षेत्र मे उनका नाम अग्रणीय है। 'विजनवती' उनका एकमात्र कविता-सग्रह है। यद्यपि प्रस्तुत कृति का हिन्दी काव्य क्षेत्र में अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रहा है, फिर भी यह कृति उनके साहित्यिक विकास एवं कथा साहित्य में प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक मानदंडों के विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसलिए 'विजनवती' की कविताएँ उनकी समस्त साहित्यिक चेतना को समझने के लिए आवश्यक है। प्रस्तुत सग्रह मे जोशी जी की १९२७-३२ ई० तक की लिखी गई १६ कविताएँ सग्रहीत हैं। इस समय छायावाद अपने यौवनकाल में था। इसलिए इन पर भी छायावाद का प्रभाव दिखाई देता है और इस तथ्य की पुष्टि कवि के निम्न-लिखित कथन द्वारा भी स्पष्ट हो जाती है।

'मैं अब अपने सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि मेरी अधिकांश कविताओं में भी कल्पना के इन्द्रजाल की झूठी चमक, दमक, निष्प्राण आत्म-विलास तथा निःशक्त अहंमन्यता का पोलापन वर्तमान है, जो अन्य छायावादी कवियों की कविता में।'[1] परंतु सूक्ष्मता से परखने पर इन रचनाओं को शुद्ध छायावादी कविताओं के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। संग्रह के निवेदन में कवि कहता है...'मेरी विजनवती अभी दशवर्षीय कुमारी है तथापि वह ऐसी अनुभूति प्रवण है कि इस सुकुमार अवस्था में भी वह आवश्यकता से अधिक संकोचशील जान पड़ती है और अत्यंत शंकित तथा कंपित पगों से काव्य साहित्य के प्रांगण में आई है।'[2] दशवर्षीय से संभवतः कवि का अभिप्राय यह है कि कविताओं की रचना १९२७ ई० से प्रारम्भ हुई थी और १९३७ ई० में यह प्रकाशित हुई। कवि के शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि उसने काव्य क्षेत्र में कुछ डरते-डरते पदार्पण किया है और उनके इस हीनता भाव के फलस्वरूप उनकी कविताओं में छायावादी कविता के सभी गुणों का समावेश न हो सका। तत्कालीन छायावादी वातावरण के अतिरिक्त कवि ने अपनी रचनाओं में मनोविज्ञान का आश्रय भी लिया है। यद्यपि भूमिका भाग में कवि ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि उनकी कविताओं में छायावादी काव्य के गुण विद्यमान हैं—'कवि की अन्तरात्मा नहीं चाहती कि वह अपनी अज्ञात आकांक्षाओं को नग्नरूप में, लज्जारहित अवस्था में अभिव्यंजित करे। इसलिए वह नाना रंगीन आवरणों, नाना रूपकों का सृजन करके इन्द्रजालमय बाने से ढककर उन्हें हमारे सामने रखता है। ....उसकी अज्ञात चेतना जानती है कि नग्नता और स्पष्टता सौंदर्य के मूल रस को नष्ट कर देती है। इस कारण उसे मनोमोहक बनाने के लिए छायामय

---

१. विवेचना, पृ० ५०

२. विजनवती, निवेदन

माया के रंगीन जाल का आवरण निर्मित करना पड़ता है।'[1] परन्तु कवि की यह उक्ति इस कृति पर नहीं घटती है। क्योंकि जोशी जी अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही मनोविज्ञान से प्रभावित रहे हैं, इसलिए यह स्वाभाविक है कि काव्य क्षेत्र में भी उनकी यह प्रवृत्ति कार्यशील रही हो। इसीलिए जोशी जी फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त से प्रभावित होकर कविता को भी अतश्चेतना के स्वप्न की अभिव्यक्ति मानते हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह की 'राजकुमार' कविता कवि की इन मान्यताओं के अनुसार एक मनोवैज्ञानिक रूपक है, जिसमें एक निर्मल, निष्कलुष तथा निर्लिप्त, आत्मा के उन्मेष, विकास तथा ह्रास का मनोवैज्ञानिक वर्णन रूपक रस की दृष्टि से किया गया है। अपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की पुष्टि करते हुए कवि स्वीकार करता है कि......'विजनवती में मैंने विजन की अमूर्त प्रतिमा का ट्रेजिक गीत गाया है। जिसमें मैंने अपने मानस की मूर्तिमयी जीवित प्रतिमा का प्रतिरूप पाया है।'[2] और 'नरक निवासी' में मैंने अपनी उस मनोवैज्ञानिक अवस्था का वीभत्स वर्णन किया है जबकि मेरा समस्त अन्तर्चेतन घोर अंधकारमय गहन-गह्वर की आतंकप्रद विभीषिका में परिपूर्ण रूप से निमज्जित था।'[3]

विजनवती की अनेक कविताएँ प्रणय निराशा के गरल तरलमय की अभिव्यंजना करती हैं। 'छायावादी कविता का विनाश क्यों हुआ ?' शीर्षक निबन्ध में आलोचना करते हुए इलाचन्द्र जोशी लिखते हैं,...'छायावादी कवियों ने हमें क्या दिया ? केवल अपने रुग्ण हृदयों की अल्प रसावेशमयी भावनाओं के वासनोद्गारों से सारे साहित्यिक वातावरण को विस्मय करने के अतिरिक्त उन्होंने और क्या किया ? तिस पर मजा यह है कि अनन्त और असीम की प्राप्ति की आकांक्षा 'परमात्मा से आत्मा के मिलन के नाम पर मधुर कोमल कान्त पदावली के माध्यम से ये सब आत्मघाती और क्षयरोग के कीटाणुओं की तरह विनाशकारी तरल गरलमय भाव हिन्दी जगत् की जनता के मर्मस्थल पर इन्जेक्ट किए जाते रहे। फल यह हुआ कि धीरे-धीरे क्षय रोग ग्रस्त सुवृहत् कवि समाज उस घातक अफीम के रस से मद विभोर हो उठा और चारों ओर से एक अस्वस्थकर मीठी और झूठी वेदना की बाढ़ ने समस्त साहित्य को आप्लुत कर लिया। परन्तु आज उस बाढ़ में छायावादी कविता स्वयं डूब गई है।'[4] परन्तु इस सब के बावजूद जोशी जी विजनवती में छायावाद के उपर्युक्त दोषों से मुक्त नहीं रह सके हैं। संभवतः इसीलिए उन्होंने आगे इस दिशा में प्रयास करना छोड़ दिया। जोशी जी की अधिकांश कविताओं में भी नैराश्यपूर्ण प्रेमानुभूति की ही अभिव्यक्ति हुई है—

**"कभी नहीं सोचा पर मैंने
होगा यह निर्जन—निर्वास—
मुझे करेगा मुग्ध विधुर उस
अधिरा का क्रन्दन—उल्लास।"[5]**

---

१. विजनवती, भूमिका पृ० १२

२. वही, पृ० २२

३. वही, पृ० २२

४. विवेचना, पृ० ४१-४२

५. विजनवती, पृ० ७

कवि ने प्रकृति का ह्रास क्रंदनमय द्वन्द्व चित्रण किया है, जो कवि के लिए मानव द्वन्द्व का ही प्रतिबिम्ब है। 'मायावती' कविता में प्रकृति का यही रूप कवि ने ग्रहण किया और 'राजकुमार' कविता की प्रकृति भी उद्दीपन का कार्य करती है—

"हुआ हाथ, वह शरत-हंस सा चंचल,
पंख सुकोमल लगे फड़कने फिर फिर,
तज तुषार बालाओं का हिम अंचल,
हुआ रत्न छाया के हित अस्थिर।"[1]

राजकुमार की प्रेयसी का चित्रण तो भाव और भाषा दोनों दृष्टि से उत्कृष्ट है—

"चली कुँवर की ओर विवश गज गमनी,
मणि नुपूर बजते थे रुनझुन-रुनझुन—
चली वेग से उस कुमार की धमनी—
वह झंकृत ललकार मदन की सुन-सुन।"[2]

जोशी जी ने 'नारी जीवन' यौवन, पत्नीत्व और मातृत्व को विकासशील इतिहास के रूप में देखा है। यौवन की उच्छृंखलता और उन्माद पत्नीत्व में स्वच्छ शुभ्र प्रफुल्लता में परिणत हो जाता है और मातृत्व में समस्त भाव उदास होकर अपनी स्निग्ध सान्ध्य छाया में शुक्र सा शिशु पाते हैं—

"नव बसंत के मृदु हिलोल से ही विलोल उच्छृंखल,
तुम यौवन के गहन विजन में भटक रही थी चंचल
करती थी तुम सब सखियाँ मिल सुरभि रभस से व्याकुल मायाच्छन्न विपन को
सहसा हुआ शरत् का आगम
बिन वर्षा पक्व शस्य से लहराया रण विभ्रम
धरणी के हृततल में प्रप्लुत सरित सीमांतर में,
शुभ्राकाश वन हुआ प्रफुल्लित पुलक विकल निर्झर में
किलक उठा कल क्रंदन ! पल में स्तब्ध हुआ पिक कूजन;
देखा तुमने हृदय गगन जब अपना
झूल रहा था स्निग्ध सांध्य छाया में सुमधुर सपना
स्वच्छ नीलिमा में सोया था अलसित वेदन न्यारा;
पाया तुमने विह्वल हिय में उज्ज्वल संध्या तारा।"[3]

कवि ने समाज सुधार की भावना से नारी को एक नवीन मानवी के रूप में भी देखा है। कालीदास ने बहुपत्नीक राजा दुष्यन्त को आदर्श-चरित्र नायक बनाने के लिए बहुत कुछ किया। यहाँ तक की दुर्वासा के शाप की भी कल्पना कर ली, किन्तु आधुनिक कवि दुष्यन्त को वंचक मानते हैं और उसे पुरुष की कृतघ्नता और भोली प्रेममयी नारी

---

१. विजनवती, पृ० १
२. वही, पृ० २८
३. वही, पृ० ९३

के प्रति दुष्टता के रूप मे देखते है। सरल कोमल शकुन्तला के प्रशान्त जीवन में उद्धत दुष्यन्त आकर आग बिखेर देता है और उसके सुख का अन्त कर देता है।

"अभी अभी तो थी वह निपट अयानी
सरल बालिका खिली कली यौवन की, फिर भी रानी
करती थी कुछ दिन पहले तक शैशव की मृदु क्रीड़ा
अन्तस्थल के निभृत विजन मे नवयौवन की व्रीड़ा
छू न गई थी उसको हा! दुष्यन्त कहाँ से आए
चिर प्रशान्त आश्रम में! अपने साथ कहाँ से लाए
नवोन्मत वैशाख मास प्रथम तामसी झटिका!?
निर्मल पुण्य तपोवन में फैलाई क्या कुंज्झरिया
विकल मोह की! आग लगाई क्यों शीतल बन में।"[1]

और सहानुभूतिवश अपना कर उस दुखिता के लिए बढ़ा देता है—

"आओ, प्यारी आओ मुझको अपने गले लगाओ
शोभित होओगी मेरे संग निखिल जगत की वंद्या
स्वच्छ, शुभचिर मेघ विमुक्ता शरत्काल की संध्या।[2]"

इसी प्रकार परित्यक्ता दुखिता दमयन्ती को देखकर कवि चाहता है कि वह अपने स्वप्नों में विहार करके पुनर्जीवन का निर्माण करे। उसे अत्यन्त दुःख है कि भोली बालिका नल के प्रपंचपूर्ण फंदे में पड़कर पीड़ित हुई।

"अपने रंग में विभोर हो, थी तुम मदन ताप से हीन
हाय अचानक मर्म सुकोमल कैसे तब हो पड़ा विलीन
कैसे नल के मदनानल से गलित हुआ सब कोमल प्राण
क्यों चिर निर्दय पुरुष जाति से तुम भी नहीं पा सकी त्राण।"[3]

शांतिप्रिय द्विवेदी ने जोशी जी की भाषा को 'परुष कुमार कहा' है।[4] जोशी जी को स्वयं इस संज्ञा से प्रसन्नता है, क्योंकि उन्हें कविता में न तो स्त्रैणभाव का समावेश ही प्रिय है और न काठिन्य, कठोरता और परुषता का अतिरेक। उनकी भाषा का यह गुण तो सर्वत्र ही दिखाई देता है किन्तु ऐसे स्थान भी अनेक हैं जहाँ शब्द योजना में शब्द स्पर्श रूप रस आदि की मानसिक अनुभूति ऐन्द्रिक अनुभूति भी हो जाती है। जैसे—

"मरकत मंडित स्वर्णिम पर्वत स्तन पर
संध्या का स्वर्णांचल लोट रहा था;
मुक्ता जल के कांचन पद सिंचन कर
गिरि गह्वर से निर्झर फूट रहा था।"[5]

१. विजनवती, पृ० ८५
२. वही, पृ० ७०-७१
३. वही, पृ० ८४
४. वही, भूमिका पृ० २५
५. वही, पृ० १३

तारा पांडे

श्रीमती तारा पांडे की कविता का प्रारम्भ छायावाद के यौवन-काल में हुआ, किन्तु उनकी कविता किसी वाद के बन्धन में नहीं जकड़ी है। इनकी रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति का स्थान गौण और व्यक्तिगत निराशावाद एवं दु:खवाद का स्थान प्रमुख है।[1] कारण सम्भवत: यह रहा है कि इनका जीवन भी साहित्य की सामूहिक गतिविधियों से दूर एकांत में रहा। उनकी कविता एकांकी जीवन की साधना है। कवयित्री के गीतों में 'उस पार' पहुँचने की व्याकुलता और आत्मविसर्जन की जो उत्कंठा है उसमें प्रणय-निराशा, जीवन की व्यर्थता आदि विषम परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण हाथ है। इसी प्रकार दु:ख की उपासना और पीड़ा मे कोई उपादेयता खोजना भी व्यक्तिगत अभावों और दुखों से प्रेरित है।[2] इसके प्रेरक तत्त्व धन अथवा यश न होकर एकमात्र जीवन की अभिव्यक्ति है। अथवा यदि यह कहा जाय कि तारा पांडे की कविता उनका जीवन है और उनका जीवन उनकी कविता है तो अभिप्राय अच्छी तरह स्पष्ट होगा।

तारा पांडे की जीवन-कथा छोटी-सी किन्तु अपने में एक विशिष्टता लिए हुए है। ढाई वर्ष की आयु में माँ के स्नेह से वंचित होना, विवाह के दो वर्ष पश्चात् अर्थात् सोलह वर्ष की आयु में ही भयंकर क्षयरोग से ग्रस्त होना, तदुपरान्त जीवन-मृत्यु, आशा-निराशा के बीच झूलते रहना और मानव-जीवन की भीषण वेदनाओं और पीड़ाओं का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करना इत्यादि सामग्री से निर्मित यह 'लघु जीवन' स्वयं एक काव्य स्रोत है।

'सीकर' उनकी सर्वप्रथम कविता-पुस्तक है। उसकी भूमिका में कवयित्री के ज्येष्ठ भाई श्री मोहन वल्लभ पंत ने बताया है कि उनकी प्रथम कविता बीमारी की हालत में लिखी गई थी और इस प्रथम संग्रह की कविताएँ ४-५ वर्ष की बीमारी की अवस्था में लिखी गई हैं। यह संग्रह १९३४ में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था, अत: इनके कवि-जीवन का प्रारम्भ सन् १९३० के आस-पास मान सकते हैं।

'सीकर', जैसा कि नाम से प्रकट है, अश्रुमयी कवयित्री के जीवन की अभिव्यक्ति है। कविवर श्री सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में: 'प्रत्येक कवि की कृति में उसके मनोगत भावों, आशाभिलाषाओं का न्यूनाधिक मात्रा में व्यक्त-अव्यक्त रूप से समावेश मिलता है......।'[3] ट्यूबरक्लोसिस जैसे सांघातिक रोग से पीड़ित नवयुवती तारा इस 'सीकर' में अश्रुमयी होकर बरस पड़ी है—

---

१. हिन्दी काव्य में निराशावाद, पृ० ११२,

२. वही, पृ० ११६

३. सीकर, भूमिका

"खिलने से पहले ही मेरी मृदुल पंखड़ी सूख चली
परिमल और परागहीन मैं मुरझायी हूँ एक कली
उस झिलमिल से अजब जगत में उलझी पड़ती है पीड़ा
खेल-खेल कर तारों से ही आँसू करते हैं क्रीड़ा।"[1]

स्वाभाविक है कि जो कवि हृदय इस स्थिति में है उसे सारा संसार प्रकृति और उसके विविध कार्य-कलाप अपने जीवन की ही अभिव्यक्ति लगेंगे। यदि सूखे पत्तों की मरमराहट होती है तो कवयित्री को लगता है कि वे उसी से रोना सीख रहे हैं। नीरव नभ से ओस बिन्दु झरते हैं तो वह उसे सुन्दर मोती बरसता हुआ न दिखाई देकर आँसू बरसता हुआ दिखाई पड़ता है और वह परिणाम निकालती है कि रोने से ही एकमात्र सुख इस ससार में मिलता है —

"नीरव नभ भी है रोता,
रोने से ही अखिल विश्व में
एकमात्र सुख होता है।"[2]

इसीलिए तो वह सुख-समृद्धि, प्रेम का उल्लास विलास आदि न माँगकर आँसू माँगती है —

"मुझे देना आँसू का दान
इसी से करती हूँ आह्वान।"[3]

दुःख स्थायी होकर बैठ जाता है तो विषाद का रूप धारण कर लेता है। यह जड़ता लाने वाला भाव है क्योंकि यह स्वयं अपरिवर्तनीय-सा, सृष्टि नियमों की तरह निश्चित-सा लगता है। 'विषाद' नाम की कविता में विषाद को संसार में व्याप्त रूप में देखा गया है —

"छिप जाता उषा अँचल में,
रजनी का जगमग व्यापार।
खिल जाने पर ही मुरझाता,
कोमल कुसुम का संसार।"[4]

उषा के आँचल में रजनी का जगमग व्यापार विलुप्त हो जाता है। फूल खिलते ही मुरझा जाते हैं। वारिवीचियाँ उठते ही गिर पड़ती हैं और हँसते, रोते, टकराते हुए मिट जाते हैं। किन्तु यह विषाद केवल प्रकृति में ही नहीं, हमारे जीवन में भी ओतप्रोत है :—

"इस दुनियाँ में निशिदिन कोई
क्यों रहता है आनन्दित।
और किसी दुखिया का दुःख से
हृदय हो रहा क्यों स्पंदित ?

१. सीकर, पृ० ११
२. वही, पृ० ५४
३. वही, पृ० १६
४. वही, पृ० २५

आते ही छिन जाता क्यों,
माता की गोदी का लाल ?
किसी बालिका का सहसा ही,
हो जाता क्यों रीता भाल ?"[1]

'ऐसा क्यों होता है, ऐसा क्यों होता है।' कवयित्री का भावुक हृदय विगलित होकर पूछ उठता है :—

"क्या रहस्य है इस जगती का
मुझे बताएगा अब कौन ?"[2]

श्रीमती तारा पांडे की यह वेदनाभिव्यक्ति फ़ैशन के रूप में नहीं हुई है। यद्यपि इस युग की अधिकांश कविताओं में अश्रु, वेदना, विरह आदि की अभिव्यक्ति पिष्ट-पेषण के रूप में हुई है, किन्तु तारा पांडे की अनुभूति काल्पनिक न होकर यथार्थ है और इसीलिए कभी-कभी यह अनुभूति काव्य-धरातल से उठकर भक्ति-धरातल पर पहुँच जाती है —"इन रचनाओं को रहस्यवाद की कोटि में केवल इसलिए सन्निहित किया जा सकता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में कवयित्री का आत्मविश्वास नष्ट नहीं हुआ है।"[3]

"पूर्व जन्म कृत पाप कर्म का,
नाथ मुझे यह दंड दिया,
अथवा हेतु परीक्षा के यह
तुमने है नव खेल किया।
हुआ अंत या अभी और है
मुझे बता दो हे करुणेश
सत्य बताना, सत्यसिंधु ! अब,
कितना शेष रहा है क्लेश ?"[4]

श्रीमती तारा पांडे की कविता का क्षेत्र सीमित है इस बात को स्वयं कवयित्री ने 'उद्गार' कविता में स्वीकार किया है —

"तुम कहते हो, नभ के तारों—
और उपवन के फूलों पर,
मेरी कविता होती है बस,
जीवन की कुछ सूलों पर
सत्य कथन है किन्तु सोच कर
देखो भी कुछ मेरी ओर।
कैसा वातावरण बना है,
मुझे सूझता ओर न छोर।"[5]

---

१. सीकर, पृ० २६
२. वही, पृ० २६
३. आधुनिक काव्य में निराशावाद, पृ० २००
४. सीकर, पृ० ८१
५. वही, पृ० ७८

और उसकी ओर देखने के बाद उसके कविता के सीमित क्षेत्र पर कौन आपत्ति कर सकता है।

कवयित्री के जीवन में करुणा के बाद जो भाव मुखर हो पाया है, वह है प्रेम का भाव, किन्तु प्रेम की मादक या उल्लासपूर्ण अनुभूति से वंचित रहने के कारण उसकी कविता में विरह-पक्ष की ही अधिक अभिव्यक्ति हुई है। 'चकोर के प्रति' कविता में कवयित्री के विरह-व्याकुल हृदय का दर्शन होता है —

"नहीं कर सकोगे, ये पागल
चन्द्र देव का आलिंगन
व्यर्थ चाह क्यों उठती मन में
कौन मिलन का है साधन ?
देख तुम्हारा यह भोलापन
वे निष्ठुर करते उपहास।
दूर-दूर वे बहुत दूर हैं
तज दो प्यारे उनकी आस।"[1]

और 'याचना' में कवयित्री कह उठती है —

"बिना प्रेम के अपना जीवन भार
दे दो, दे दो अपना प्यार।"[2]

किन्तु इस भारमय जीवन का कारण है कुटिल भाग्य की ठिठोली जिसने वीणा की झंकार को बहुत शीघ्र ही छीन लिया —

"जो टटोल कर देखा तो हा।
वीणा थी पर तार नहीं
मंडराया था राग किन्तु अब,
पहली सी झंकार नहीं।
छिन्न हृदय तंत्र को लेकर
मैं सूने पथ पर आई।"[3]

अपने प्यार का कवयित्री ने स्वयं ही विश्लेषण किया है—अर्थात् वह हिमगिरि-सा उज्ज्वल एवं उन्नत, सागर सा गंभीर और नीले अंबर सा अनन्त है। यहाँ ऐसा लगता है कि 'जीवन की कुछ भूलों' के यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कवयित्री ने काफी संवार-निखार लिया था—

"दुखियों के क्रंदन में पीड़ा
करती है जब हाहाकार।
आँसू बन कर बह जाता है
मेरे कोमल उर का प्यार"[4]

---

१. सीकर, पृ० १
२. वही, पृ० ६४
३. वही, पृ० ५०
४. वही, पृ० ८५

अब उसे निखिल विश्व-व्यापार में यही व्यापार अच्छा लगता है कि—

"सबसे प्रेम करूँ और ले लूँ
सबके उर का सरल दुलार।"[1]

किन्तु यह बात नहीं है कि करुणा, वेदना, विरह के अतिरिक्त तारा पांडे की कविता में और कुछ नहीं है, यह कहना कवयित्री के प्रति अन्याय करना है। कहीं-कहीं पर प्रकृति का चित्रण बहुत सुन्दर है। विशेषकर, नक्षत्र, चाँदनी, संध्या आदि का। यह बात भी नहीं कि कवयित्री ने प्रकृति के सुन्दर रूप की अनुभूति कभी की ही नहीं है। 'छवि' कविता में कवयित्री प्रकृति की छवि को देख कर आह्लादमयी हो गई है —

"तारक-फूलों का बिखरा दल
नभ-सीपी के हैं मुक्ता फल।
कितने सुन्दर झलमल झलमल,
उज्ज्वल छवि से कितने कोमल
कहती हैं कलियाँ हँस-हँस कर
'यह जीवन है कितना मधुमय'
नव मधुकर के कल गुंजन में
मिलता है जीवन का अभिनय
सखि, जीवन है कितना सुखमय।"[2]

चाँदनी रात में तो कवयित्री आनन्दविभोर होकर गा उठती है—

"स्वप्न-सी आलोकित अज्ञात
चाँदनी रात, चाँदनी रात।"[3]

'ज्योत्स्ना' कविता में प्रकृति के मधुमय रूप का चित्रण हुआ है—

"फैली हैं सखि, किस सुख से
यह रजत किरण वसुधा में
कलियों की प्याली होती,
सुन्दर मधुमयी सुधा में।"[4]

कहने का तात्पर्य यह है कि 'प्रकृति के सुगम सौरभमय प्यारे बाग' के प्रति कवयित्री के अनुराग की सुन्दर अभिव्यक्ति भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। इसीलिए तो उसके हृदय में कभी-कभी यह अनोखी चाह भी उत्पन्न हो जाती है—

"मैं होती नभ की तारा
मुग्ध दृष्टि से देखा करती यह वसुधा तल सारा।"[5]

'सीकर' में कवयित्री का कवि-रूप सुस्पष्ट हो जाता है। बहुधा ऐसा होता है कि कवयित्री को अपना रूप स्थिर करने में काफी समय लग जाता है। अपने भीतर की आकुलताओं का विश्लेशण और अभिव्यक्तिकरण करने से पहले कवयित्री को इधर-उधर बहुत सी टक्करें मारनी पड़ती हैं। वह कई विषयों के माध्यम से अपनी छटपटाहट को व्यक्त करने का प्रयास करती है, अनेक द्वन्द्वों पर बारी-बारी प्रयोग करती है, अनेक भावभूमियों में अस्पष्ट और धुँधले लक्ष्य को लेकर भटकती है, फिर विविध संघर्षों के बाद वह उस भाव-भूमि पर पहुँचती है जहाँ उसकी अकुलाहट में शांति, उलझे हुए विचारों में एक सामंजस्य और भाषा एवं शैली में स्थिरता आ जाती है।

१. सीकर, पृ० ८५
२. वही, पृ० ११
३. वही, पृ० १६
४. वही, पृ० १५
५. वही, पृ० ७५

'सीकर' मे तारा पांडे के काव्य की जो रूप-रेखा स्थिर हुई उसी पर आगे चल कर उनकी काव्य-प्रतिभा का विकास होता गया। प्रकृति के कोमल मधुर और करुण रूप से तादात्म्य, दु:खों, निराशाओं की प्रत्यक्ष एवं तीव्र अनुभूति के कारण वेदनाओं, निराशाओं और सूनेपन की अभिव्यक्ति, गीत-प्रधान शैली आदि का जो स्वरूप 'सीकर' मे स्थिर हुआ, आगे चलकर उसी में धीरे-धीरे विकास होता गया। जिस प्रकार छायावाद अरूपता, अस्पष्टता, विलासिता आदि से वह अप्रभावित रही उसी तरह आगे चलकर प्रगतिवाद अथवा प्रयोगवाद से भी अप्रभावित रह कर उसकी कविता उसके जीवन के अनुरूप सहज विकसित होती गई।

१९३७ में 'शुक पिक' प्रकाशित हुआ। अब तक कवयित्री सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं के कारण और 'सीकर' के कारण साहित्य के क्षेत्र में सुपरिचित हो चुकी थी। भूमिका में महाकवि 'निराला' की ये पंक्तियाँ इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं—

"तारा देवी ललित रचनाओं के कारण हिन्दी की प्रमुख कवयित्रियों में गण्य है। साहित्यिकों में उनकी चर्चा रहती है। वे आदरपूर्वक उन्हें याद करते हैं।...प्राथमिक विकास की, हिन्दी की अनेक वर्ण छटाएँ हिमालय पर अंकित है जिनमें तारा भी एक दीप्ति है। उत्कर्ष के अनुरूप, आजकल देवियों के प्राणों से मिलने वाली हिन्दी-संस्कृति की, तारा की जैसी रागिनी अन्य की नहीं, अन्य विषयों की विशिष्ट है, घरेलू सांस्कृतिक कोमल विशेषता तारा की सिद्ध विभूति है।"[1]

'सीकर' में कवयित्री की अधिकांशत: वे कविताएँ संग्रहीत हैं जो भयंकर रोग के कारण जीवन के प्रति घोर निराशा की अवस्था में लिखी गई हैं किन्तु 'शुक पिक' की कविताएँ कवयित्री के जीवन में नई आशा के संचार की कहानी कहती हैं। 'सीकर' में कवयित्री को विश्वास हो चुका था कि 'उसे चिर विश्राम करना है, जग में उसका कोई काम शेष नहीं रहा है।' किन्तु 'शुक पिक' में वह प्रिय से अनुरोध कर उठती है कि वह उसका शृंगार करे—

"अब करो प्रियतम तुम मेरा, फूलों से शृंगार,
धन से क्या होगा जीवन में
सुख तो दो देहों के मन में
आज बंद कर दो क्षण भर प्रिय
निज दैनिक व्यवहार।"[3]

नव आशा के स्वर 'शुक पिक' संग्रह की जान है किन्तु इनका पूर्ण आस्वादन करने के लिए 'सीकर' में डुबकी लगाना अनिवार्य है। जिसे आँखें खोलते ही सुख, प्रेम, शृंगार, मादकता चारों ओर बिखरी दिखाई दे उसके लिए इन चीजों में कोई विशेष आकर्षण नहीं होगा। किन्तु जो मृत्यु से जूझकर निकला हो, जो दु:खों एवं निराशाओं के घोर अंधकार में मति भ्रांत रह चुका हो, उसके लिए मुस्कराते हुए फूलों-कलियों, कल-कल करते हुए झरनों और अनन्त दूरी पर मुस्कराते हुए तारों की बहुत महत्ता है। उसके लिए एक-एक क्षण कीमती है, वह प्रत्येक प्रत्यक्ष क्षण का उपयोग अपने प्यासे हृदय को तृप्त करने में करेगा, कल की सारी चिन्ताओं को भूल कर। इसीलिए तो कवयित्री प्रिय से अनुरोध करती है कि वे अपनी दिनचर्या को क्षण भर के लिए भूल कर उसका फूलों से शृंगार कर

१. शुक पिक, प्राथमिकता
२. सीकर, पृ० ८१
३. वही, वही

दें और इस नए जीवन की तैयारी के लिए कवयित्री अपनी सोई हुई अथवा मृतप्राय शक्तियों को जगाने के लिए आह्वान करती है—

> "जाग। मेरे जीवन की ज्योति
> जाग री, जाग न कर अभिमान
> मिलेगा जिसे चाहते प्राण
> मिलेगा री वह खोया गान।"[1]

कवयित्री नए जीवन का, नए विकास का फिर से अनुभव प्राप्त करती हुई 'शुक पिक' के गीत गाती है। उसके ये गीत ही 'शुक पिक' हैं जो जग के उपवन में कलरव करते हैं और तब जीवन की सुख-दुःख की स्मृतियाँ जाग पड़ती है। उसके बाद सुख, निराशा के बाद आशा, आशा के बाद निर्माण की सुन्दर अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है —

> "ओ कवि ऐसा गीत बनाना
> जीवन की सच्ची सुन्दरता उसमें दुःख दिखलाना।
> सुन्दर ही सुन्दर हो मेरा रोना अथवा गाना।"[2]

रोने का भी सुन्दर होना अतिशयोक्तिमात्र नहीं है। यह काव्य का सत्य है। काव्य में करुण भाव को शाश्वत आनंददायक माना गया है। इसलिए कि वह सुन्दर, रसात्मक, रमणीय होता है क्योंकि यह सुन्दरम्, शिवम् से अभिन्न नहीं होता —

> "यह नैराश्य-तिमिर भग जावे
> सोई उर उमंग जग जावे
> धुंधली आशाओं का फिर से उज्ज्वल चित्र दिखाना।"[3]

किन्तु ऐसी बात नहीं है कि कवयित्री की तमाम निराशाएँ और वेदनाएँ सर्वथा लुप्त हो गई हों। जीवन में ऐसा होता ही नहीं है। इन दोनों का सम्मिश्रण ही जीवन की गुत्थी है। इससे कौन बच सकता है? शत-शत आशाओं-आकांक्षाओं वाला मानव तृप्ति और अतृप्ति के झूले में निरंतर झूलता ही रहता है। एक साध पूरी होती है तो दूसरी का अभाव काँटा बनकर खटकने लगता है। इसके अतिरिक्त दुःखों का साहचर्य काफी लम्बे समय तक मिलने के बाद दुःखों से भी प्यार होने लगता है कवयित्री को भी दुःख साहचर्य के कारण उनसे प्यार हो गया है। वह कहती है —

> "मैं दुःख से शृंगार करूँगी।
> जीवन में जो थोड़ा सुख है
> मृगजल है उसमें भी दुःख है।"[4]

जो थोड़ा सुख कवयित्री को अब मिला है उसे वह क्षणिक ही समझती है। उसका निश्चय है कि अपने हिस्से के सुख को संसार में बाँट देगी और दुःख के सुत को प्यार करेगी।

'शुक पिक' के गीतों में भी दुःख, तड़पन, निराशा एवं वेदना है किन्तु वह आत्म-परक से अधिक जग-परक है। संसार में दुःख का अस्तित्व है और उसके किसी भी भुलावे में आकर सुख नहीं माना जा सकता।

---

१. 'शुक पिक' पृ० ३
२. वही, पृ० ५
३. वही, वही
४. वही, पृ० १०

'शुक पिक' में कवयित्री के प्यार का स्वाभाविक क्रम से विकास हुआ दीखता है। 'सीकर' में व्यक्त प्यार पार्थिव है। उसमे ईश्वरोन्मुखता अथवा रहस्यवाद आदि का समावेश केवल बीज रूप में ही विद्यमान है। उदाहरण के लिए 'उनकेप्रति'[1], 'आग्रह'[2] और 'अपरिचित'[3] कविताओं तथा अन्य स्थलों में विरहभाव भरे गीतों मे उसका पार्थिव प्यार ही प्रकट हुआ है। 'शुक पिक' में ईश्वरोन्मुखता विशेष रूप से दिखाई देती है। हो सकता है छायावाद और रहस्यवाद के कुछ अग्रणी कवियों से प्रभावित होकर कवयित्री अपने काव्य में यह परिवर्तन लायी हो। आखिर युग की साहित्यिक गतिविधियों से बिलकुल अछूता रह कर तो कोई साहित्यकार आगे नही बढ़ सकता। अन्य कवियो का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था यद्यपि जहाँ-जहाँ उस प्रभाव की अनुभूति-शून्य अभिव्यक्ति हुई है वहाँ कविता खटकने लगती है। महाकवि 'निराला' ने भी भूमिका में इस ओर संकेत किया है। किन्तु कवयित्री की रहस्यवाद की ओर जो उन्मुखता 'शुक पिक' मे दिखाई देती है, वह निरा अनुकरण नहीं है। यह तो 'सीकर' में व्यक्त मर्यादित प्रेम का स्वाभाविक परिणाम है जिसे कवयित्री ने स्वयं अनुभव किया है—

"इन्द्र चाप सा देखा था प्रिय
पुलकित हुआ मृदुल मेरा हिय
यह अपनी अनुभूति सुनहली।
कैसे तुम्हें बतलाऊँ मैं।"[4]

लेकिन अनुभूति तो उसे बतानी ही पड़ी क्योंकि सहृदय-पाठकों के लिए इन अनुभूतियों का बड़ा मूल्य होता है। कबीर के 'गूंगे के गुड़' की तरह इसके आस्वाद में भी विशेष आकर्षण है। इस अनुभूति का सजीव-वर्णन इस प्रकार है—

"सुरभि सा कुछ, स्वप्न सा आया न जाने पास क्या
तिमिर-सा आलोक सा छाया न जाने आज क्या
स्वर्ग लोक विभूति है यह
कौन सी अनुभूति है यह ?"[5]

अनुभूति के प्रिय का आभास होता है और फिर प्रिय का आह्वान किया जाता है।

"चारों ओर अंधेरा छाया
मधुर स्पर्श ने मुझे जगाया;
रोम-रोम खिल उठा हर्ष से
करती हूँ, आह्वान, आओ हे अनजान!"[6]

फिर यह प्रिय एक दिन पास भी आता है लेकिन इस तरह से कि कवयित्री जान नहीं पाती है—

"बादलों के पर लगाकर मृदुल गति से पास आया
मुस्कराया एक क्षण मानो, कुसुम का हास छाया।
चाँदनी-सा स्निग्ध औ' नक्षत्र सा-चुपचाप था वह
कौन सी उपमा उसे दूँ आप ही सा आप था वह
इन्द्रियाँ सोई हुई थीं, जग उठी मृदु स्पर्श से.

१. सीकर, पृ० ६१
२. वही, पृ० ६०
३. वही, पृ० ८३
४. 'शुक पिक', पृ० ६
५. वही, पृ० ७
६. वही, पृ० १३

रोम-रोम पुलक उठा री सहज नव उत्कर्ष से
चिर अमर उल्लास उसका आज होकर मौन आया
सखि, न जाने कौन आया ?"[1]

इन पंक्तियों को किसी भी उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि की कविता के समक्ष रखा जा सकता है। किन्तु प्रिय के रहस्यमय ढंग से आने तक बात समाप्त नहीं होती। उसके बाद प्रिय से मिलन होता है। दोनों में प्राण और देह का नाता स्थापित होता है—

"मैंने अब प्रिय तुमको पाया
तुम प्राण तुम्हारी मैं काया।"[2]

इस सुखद अनुभूति के बाद कौन से बन्धन टिके रह सकते हैं ? इस स्थिति में न तो ममता रहती है, न बंधन रहते है और न जग के कोई प्रलोभन ही शेष रहते हैं। आराधक को बांधने वाली कोई शक्ति और उसके मार्ग पर काँटा बोनेवाला कोई शत्रु नहीं होता। जन्म, मृत्यु, रुदन और उल्लास का रहस्य तब स्पष्ट हो जाता है। मोक्ष अथवा मुक्ति की अवस्था यही है या अन्य कोई इसके सम्बन्ध में तो योगीजन ही अपना निर्णय दे सकेंगे। किन्तु कवयित्री ने इस अवस्था में पहुँचकर अनुभव किया है कि वह मुक्त है।[3]

लेकिन कवयित्री की मुक्ति योगियों की मुक्ति से कुछ भिन्न अवश्य होती होगी तभी तो वेदना कवयित्री का पल्ला इस मुक्त अवस्था में भी नहीं छोड़ती—

"पा न सकते सहज जिसको उसे मैं पा चुकी
कह नहीं सकते जिसे मैं गान उसका गा चुकी
रुद्ध थे जो सहज ही अब खुल गए वे द्वार क्यों
वेदना का भार क्यों ?"[4]

श्रीमती तारा पांडे का रहस्यवाद एक ओर तो मीरा के रहस्यवाद को स्पर्श करता है और दूसरी ओर महादेवी के रहस्यवाद के समकक्ष है। पहले रहस्यवाद में भक्ति और विश्वास की प्रधानता है, तो दूसरे में शैली एवं कल्पना की। महादेवी वर्मा का स्थान आधुनिक रहस्यवाद में बहुत ऊँचा है किन्तु उसे कवि के साथ-साथ भक्त कोई नहीं कह सकता। किन्तु तारा पांडे के कुछ गीतों को भक्ति गीतों में भी रखा जा सकता है। हिंदी साहित्य के अनेक कवियों के जीवन इसके साक्षी हैं कि पार्थिव-प्रेम की भावभूमि को पार करने के बाद कवि भक्ति के धरातल पर पहुँच जाता है। तारा पांडे भी पार्थिव-प्रेम के धरातल से ऊपर उठ गई थीं। घोर मृत्यु के साक्षात्कार के बाद, कवयित्री ने स्वयं अपने प्रिय के स्वरूप को स्पष्ट कर दिया है —

"जिसको कहते हैं निराकार
योगीजन का जो चिराधार
री वह असीम मेरा प्रियतम।
है शून्य नहीं सरबस दानी।"[5]

आधुनिक रहस्यवादी कवियों की तरह अपने प्रियतम को अरूप और अस्पष्ट नहीं

---

१. शुक पिक, पृ० ३३
२. वही, पृ० १८
३. वही, पृ० २१
४. वही, पृ० ३०
५. वही, पृ० ३२

रख सकी है। उसे सीधे प्रभु को सबोधन करने मे संकोच नही है —

"प्रभु ! मैं कैसे तुमको पाऊँ
तू महान मैं लघु रज कण हूँ, कैसे प्रेम दिखाऊं ?"[1]

किंतु इस प्रभु के साथ कवयित्री का मीरा की तरह का सम्बन्ध है क्योकि उसके लिए कवयित्री की विरह-व्याकुलता यत्र-तत्र दिखाई देती है—

"क्यों तुम मुझे सताते
कोटि यत्न कर हार गई मै
फिर भी पास न आते।"[2]

'शुक पिक' में कुछ पुरानी कविताएँ भी संग्रहीत हैं। यदि उन्हें छोड़कर अन्य कविताओं पर विचार करके देखा जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि "सीकर" से "शुक पिक" तक आते-आते कवयित्री ने अपनी भाषा, शैली, अभिव्यक्ति की कुशलता आदि में काफी प्रौढ़ता प्राप्त की है। इस संग्रह के कुछ गीतों की शब्द-योजना तो इतनी अच्छी हुई है कि उन्हें हिंदी के श्रेष्ठ गीतों मे गिना जा सकता है; उदाहरण के लिए

"मन ! तू मधुर-मधुर बन।
किसलय-सा कोमल बन।
फूलों-सा मोहक बन,
सागर-सा गम्भीर
प्राण सा सरल-सरल बन...
जननी की ममता बन
योगी की क्षमता बन
साधक सा त्यागी
भक्तों सा करुण-करुण बन...।"[3]

इसके अतिरिक्त—

"चारों ओर तिमिर भर-भर कर
आई है रजनी !
सिहर-सिहर उठता मेरा उर
आती कैसी याद फिर, मधुर
अमिट वेदना प्राणों में भर
हँसती हूँ सजनी...
मैं दुःख से शृंगार करूँगी।
जीवन में जो थोड़ा सुख है,
मृग-जल है उसमें भी दुःख है
छली हुई बहु बन जगत में
फिर क्यों अपनी हार कहूँगी,
मैं दुःख से शृंगार करूँगी।"[4]

---

१. शुक पिक, पृ० २१
२. वही, पृ० ३४
३. वही, पृ० १७
४. वही, पृ० २६

इन अन्तिम दो गीतों के सम्बन्ध मे महाकवि "निराला" से ये उद्‌गार निकले थे। "क्या भाव, क्या भाषा, यह तारा का सच्चा कवि बोल रहा है। इन पंक्तियों को हम हिंदी की किन्ही श्रेष्ठ पंक्तियो के समकक्ष रख सकते हैं। न यहाँ हार है, न वहाँ होगी। कारण यह मौलिकता है, मौलिकता हारना नहीं जानती। वह जीतना भी नहीं जानती पर उसकी जीत होती है। बड़े-बड़े विजयी उसकी विजय स्वीकार करते हैं।"[1]

"सीकर" में घोर निराशा से परावृत्त तथा डगमगाती आस्थाओं से युक्त जीवन की अभिव्यक्ति हुई थी। "शुक पिक" में आशा का नवोन्मेष हुआ। "वेणुकी" में उस नवोन्मेष के मधुर स्वर की प्रतिध्वनि कुछ समय तक सुनाई देती है और फिर निराशा के बादल पुनः घिर आते हैं। कवयित्री की जीवन मृत्यु के बीच झूलती हुई यह जिन्दगी उसके काव्य का श्रृंगार बन पाई है।

"शुक पिक" में कवयित्री प्रिय से अनुरोध करती है कि वह उसका फूलों से श्रृंगार करे। वही चाह "वेणुकी" में कुछ स्पष्ट हो जाती है। कवयित्री के नारी रूप में विस्तार होता है। अब यह केवल प्रेयसी ही नही माँ भी है। कुटुम्ब की कल्पना मे मुग्ध और नारी के माया रूप मे उपासक, आधुनिक कवि के लिए माता रूप में नारी की कल्पना अत्यन्त आकर्षक हो गई है। आधुनिक कवि के मस्तिष्क में पुत्र की वर्तमानता तथा तर्पण आदि के लिए पुत्र की अनिवार्यता (पुन्नाम् नरकात् त्रायत इति पुत्रः) ही नारी के मातृरूप के आदर का कारण नहीं है वरन् नारी की स्वभावज ममता, स्नेह, वात्सल्य, सेवाभाव आदि अपना चरम उत्कर्ष माता मे ही पाते हैं। नारी का मातृरूप लोक कल्याण की क्षमता रखता है। इन भावों से प्रेरित होकर इस युग के लगभग समस्त कवियों ने शाश्वत मातृत्व की उपासना की है।

आधुनिक कवि ने नारी से एक जन्मजात मातृत्व पाया है। स्वभावज मातृत्व के कारण नारी "जीवन के शैशव प्रभात मे" गुड़िया बनाती है। उसी को नवयौवन में गोदी की शोभा के रूप मे पाकर जीवन सार्थक करती है। मातृत्व नारी की व्याकुल साध है। शिशु विह्वल अभिलाषा विहगों के नीड़ को देखकर फूट पड़ती है—

"ओ मेरी गोदी के धन...
जीवन के शैशव प्रभात में जब से अपना ज्ञान हुआ
× × ×
नारी का जीवन है सार्थक गोद की इस शोभा से।"[2]

जीवन की यह उपलब्धि कम से कम भारतीय नारी के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यह जीवन की पूर्णता है। उसकी सार्थकता है। भारतीय नारी निर्धनता की चक्की में पिसते हुए भी मातृत्व के गौरव का तिरस्कार नहीं करती है। वैज्ञानिक और आर्थिक जीवन की यथार्थताओं के प्रति जागरुक आधुनिक नारी भले ही इस भावना को पिछड़ेपन या नारी की दुर्बलता कहे किंतु विज्ञान के समस्त चमत्कार और अर्थशास्त्र के सहस्त्रों साक्ष्य भी सामान्य भारतीय जीवन से इस भावना को नहीं निकाल सकेंगे। कुछ बड़े-बड़े नगरों के कृत्रिम वातावरण में रहकर और पश्चिम के अनास्थापूर्ण जीवन-दर्शन और दुर्बलताओं की क्रीत-दासी बौद्धिकता का अन्धानुकरण करने वाले साहित्यकार, आलोचक अथवा पाठक भले ही इसे प्रगतिशील का तमगा न दें किंतु इस बात को अस्वीकार करना कठिन होगा कि

१. शुक पिक, प्राथमिकता
२. वेणुकी, पृ० ४७

सामान्य जीवन की सरल अभिव्यक्ति होने के कारण तारा पांडे की इन कविताओं में हृदय को स्पंदित करने की क्षमता है और इसलिए वे अच्छी कविताओ मे सम्मिलित किए जाने के योग्य हैं।

"लाल की मुस्कान, मेरे लाल की मुस्कान।"[1]

में यशोदा की स्मृति ताजी हो जाती है। वास्तव में "वेणुकी" में जितने भी मधुर स्वर गूंजे हैं उनकी प्रेरणा लाल की इस मुस्कान से ही मिली दीखती है —

"स्वप्न सी सुन्दर सजीली
हँसी कैसी प्रिय रंगीली
हो गई बलिहार मैं तो
देख यह मुस्कान ......
बिसर पहिले दुःख गए अब
आज के ये सुख नये सब
कौन सी अनुभूति होती
हे प्रफुल्लित प्राण......
हो उठे मधुमय सुरीले
आज मेरे गान...।"[2]

नारी को मृत्यु के मुख-विवर तक ले जाने वाला यह प्रसव, उसके स्वास्थ्य, सौंदर्य और विलास क्षणों को छीन लेनेवाला नारी के जीवन की सार्थकता है—

"नारी का जीवन है सार्थक,
गोदी की इस शोभा से
अपने को खोकर फिर पाया
मैंने सुन्दर नव जीवन...
मैं आज बनी माता महान्,
है धन्य जन्म, हैं धन्य प्राण
शिशु के सुख-दुःख से सुखी-दुःखी
मेरे प्राणों के तार-तार।"[3]

गोद भरने से जैसे सृष्टि की सारी समृद्धियाँ नारी की गोद में सिमट आती हैं और उसके तमाम दुःखों का अन्त हो जाता है। इस समृद्धि के बल पर ही तो वह पति से कुछ अधिकारपूर्वक प्यार की माँग करती है —

"मैं दुःख बहुत पा चुकी प्रिय
अब करो तुम प्यार मेरा...
ज्योति जीवन की जगी अब।
मिल गया आधार मुझको
दो यही आशीष स्वामी
अमर हो संसार मेरा।"[4]

---

१. वेणुकी, पृ० ४६
२. वही, पृ० ४६
३. वही, पृ० ४७
४. वही, पृ० १८

किंतु इस महान् सुख की उपलब्धि भी कवयित्री के जीवन की व्यथा-वेदना को दूर नही कर सकी। जीवन की एक अवस्था तक ही खुलकर हँसा जा सकता है। उस अवस्था को पार करने के बाद हँसने पर बहुत से संयम और नियत्रण लग जाते हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि हँसने के लिए गम्भीरता का अभाव अनिवार्य शर्त है। आयु व्यतीत होने के साथ-साथ गम्भीरता का आना भी स्वाभाविक है और फिर जिसके जीवन के वे क्षण जिनमें हँसा जा सकता हो, भयकर दुःखों मे बीते हो उसे तो बाद में मिलने वाला महान् सुख भी नही हँसा सकता। इसी भाव को कवयित्री ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"दुःख में रोई सिसकी भर कर
अब हँसने का अवसर आया"

या

इस असमय की वर्षा से कैसे होता रस का सिंचन..."[1]

'हँसने के समय' के व्यतीत होने की अनुभूति जीवन में बड़ी कष्टदायक होती है। यह मानव-जीवन का सत्य है। फिर यदि हँसने का समय बिना हँसे चला गया हो तब तो दुःख और भी असह्य हो जाता है। यह अनुभूति 'वेणुकी' के निराश-स्वरों का एक कारण है —

"बीत गया दुःखमय क्रंदन शेष रहा केवल उच्छ्वास
कब आया, कब चला गया प्रिय मेरे जीवन का मधुमास।"[2]

छायावादी कविता की तरह तारा पांडे की कविता काल्पनिक अनुभूतियों पर खड़ी नहीं है। कवयित्री को इस बात का भली-भाँति बोध है। इसीलिए तो वह छाया का मनुहार न करके कवि जीवन के सत्य की खोज में प्रवृत्त होती है—

"सपनों से मत करो दुलार
कवि जीवन का सत्य खोज लो।
करो न छाया का मनुहार।"[3]

कवि जीवन का सत्य अनुभूति ही है। बिना अनुभूति की कविता शब्दजाल मात्र है। कवयित्री को अपने गीतों में विश्वास है क्योंकि वे जीवन की अनुभूति के स्वर हैं —

"मैं अमर हूँ विश्व में होंगे अमर ये गीत मेरे।"

किंतु कवयित्री यह भी जानती है कि उसकी अनुभूति का क्षेत्र सीमित है और इसीलिए उसकी कविता का क्षेत्र भी सीमित है—

"नहीं मिलेगी यहाँ इन्हें जग की व्यापकता
मेरा स्वर सीमित है ले उर में आकुलता
जल-जल कर नित ज्वाला में ही गाना गाए।"[4]

किंतु सीमितता तो मानव-जीवन में अवश्यंभावी है। मानव की शक्ति सीमित है, उसके समस्त कार्य सीमित है और उसकी उपलब्धियाँ भी सीमित है। यदि कवयित्री के गीत सीमित हैं तो उन गीतों का आस्वादन करने वाले सहृदय-व्यक्तियों की अपेक्षायें भी तो सीमित हैं क्योंकि वे भी मानव ही हैं। यही कारण है कि कवयित्री के ये सीमित गीत भी

१. वेणुकी, पृ० ४८
२. वही, पृ० ३
३. वही, पृ० ४४
४. वही, पृ० ९६

खूब लोकप्रिय हुए है। कवयित्री भी इस तथ्य मे अनभिज्ञ नही है —

"सजनि तेरे गीत सुन्दर
फैलते जाते अवनि पर
भर रही तू क्यों हृदय में आँसुओं का हार।"

इन 'आँसुओं' का कारण कवयित्री के लिए भी अस्पष्ट है। किन्तु मानव जीवन की अनुभूतियों के कारण प्रायः अस्पष्ट ही रहते हैं। कम से कम साधारण मानव के लिए। अनुभूतियों की चीर-फाड़ कर उनका विश्लेषण करना और इस तरह उनके मूल कारण का पता लगाना योगी का काम है। कवि के लिए अनुभूति ही काफी है। इससे परे वह नही जाना चाहता क्योंकि इसके परे जाते ही उसकी कविता का अंत हो जाता है। यही कारण है कि आत्मपरक करुण गीतो के कवि अक्सर वेदना से प्यार करने लगते है, उन्हें अपनी निराशाओं से, अपने आँसुओ से मोह हो जाता है। आँसू उनके जीवन के बहुमूल्य मोती बन जाते है, क्योंकि इनसे उनकी कविता को रस मिलता है। संभवतः इसीलिए कवयित्री तारा पांडे भी 'शुक पिक' में दुःख से शृंगार करने का निश्चय प्रकट करती है और 'वेणुकी' में 'आँसुओं के हार' के 'क्यों' का उत्तर भी संभवतः यही है। इसीलिए कवयित्री को जलना ही अच्छा लगता है—

"मैं जलती हूँ सखि, मुझको जलना ही केवल भाता
जीवन में है पल-पल जलना
आँखों के पथ गल-गल बहना
नहीं जानती चुपके से आ मुझे कौन समझाता।"[1]

यदि जीवनाकाश से दुःख के बादल छँट भी जाते हैं तो भी दुःख उनकी स्मृति बनकर कवि के हृदय में बना रहता है—

"सजनी उन बीते दिनों की याद अब मुझको रुलाती
भूल जाना चाहती हूँ बन-बन मुझे बताती।"[2]

दुःखों के अभाव में भी दुःखों की अनुभूति क्यों होती है इसका रहस्य यही तो है। कवयित्री अपने दुःखों को प्यारे कहती है—

"तुम कैसे जान सकोगे प्रिय
मेरे उर के दुःख प्यारे हैं।
तुम कहते कैसा रोना
मैं रोती कोने में छिपकर
सागर को तुम क्या पहचानो
मेरे ही आँसू खारे हैं।"[3]

किन्तु उस स्मृतिजन्य निराशा के अतिरिक्त वेणुकी में व्यक्त पीड़ा का एक कारण और है। एक बार कवयित्री फिर मृत्यु का सामना करती है और अपने 'अंचल' के लिए वह उसकी उपेक्षा करना चाहती है। सावित्री और यम के संघर्ष की तरह वेणुकी के यह गीत भी मानव-हृदय में चिरकाल तक स्पंदन भर सकते है—

"कौन तू मुझको बुलाती
आ रहा बचपन नवल तू देखने दे हास शिशु का
हो रही ममता निराली आज तू मुझको न भाती।"[4]

---

१. वेणुकी, पृ० ५
२. वही, पृ० ६
३. वही, पृ० २०
४. वही, पृ० २८

और

"मत बुला उस पार
चाहती थी पार जाना
दे रही अब क्यों मुझे तू वेदना का भार।"[1]

'शुक पिक' में कवयित्री का प्रेम ईश्वर की ओर उन्मुख होता दिखाई दिया था। 'वेणुकी' में इसकी और भी अभिव्यक्ति हुई है।

"तुम दीपक हो मैं लघु पतंग।"[2]
"मैं अभिशाप प्रिय
तुम हो मेरे वरदान।"[3]
"वर नहीं देते प्रभु
शाप भी नहीं लूँगी।"[4]

आदि गीतों में 'प्रिय' के सम्बन्ध में किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता। इनमें प्रेम और भक्ति को पृथक् करना असम्भव है और कभी-कभी तो हताश कवयित्री सूरदास की तरह जिद भी करने लगती है—

"क्यों बिखर गया संगीत स्वर जीवन का
मैं धरना दूँगी प्रभु के ही मंदिर पर
क्या मुझे मिलेगा नहीं ध्येय निज मन का?"[5]

भूमिका में महाकवि 'हरिऔध' ने कुछ शब्दों में कवयित्री के सम्बन्ध में बहुत सी बातें कह दी हैं। वे लिखते हैं : 'उनमें भावुकता है, और है सहृदयता की वेदनामय झंकार।' आगे चलकर छायावाद के कुछ दोषों को गिनाने के बाद आप लिखते हैं : 'उनकी कविता में निराशावाद की झलक अवश्य है पर उसमें कवि और मर्म स्पर्श है। विषय का सहृदयता से चित्रण है। जटिलता दिखलाई नहीं पड़ती, प्रसाद गुण ही सर्वत्र दिखाई पड़ता है और यह प्रशंसा की बात है।"[6]

'वेणुकी' के लगभग दो वर्ष पश्चात् 'आभा' का प्रकाशन हुआ। 'वेणुकी' की कुछ कविताओं में कवयित्री ने प्रतिपल निकट आती हुई मृत्यु का और उससे पूरी शक्ति के साथ जूझने का चित्रण किया है। इस शारीरिक स्थिति के कारण और व्यक्तगत मधुर जीवन की स्मृतियों के कारण कवयित्री के जीवन में एक बार पुनः निराशा की बाढ़ आई दिखाई देती है। 'आभा' में उस निराशा का प्रवाह प्रबल वेग से बहता हुआ दिखाई देता है। यद्यपि सांसारिक सुख नाम की चीजों से जीवन वंचित नहीं है, फिर भी रहस्यमयी निराशा बढ़ती ही जाती है—

"कौन कारण है सजनि जो बढ़ रही मेरी निराशा?
देवता उर में बसे हैं, गोद में बचपन खिलाती
पर न जाने कौन करता भंग मेरी मधुर आशा
समझती हूँ सत्य है दुःख अमर है मेरी निराशा।"[7]

---

१. वेणुकी, पृ० ३६
२. वही, पृ० १६
३. वही, पृ० २८
४. वही, पृ० २६
५. वही, पृ० ५३
६. वही, प्राक्कथन
७. आभा, पृ० ११

इस निराशा के पुनः-पुनः लौट आने से जीवन विफल-सा लगता है—

"विफल है जीवन की बात ।
अमर प्रेम की अभिलाषा थी केवल
जग को स्वर्ग बनाना चाहा प्रतिपल
हारी मैं देखे सब प्रयत्न निष्फल
घिर आई चहुँ दिशि रात ।"[१]

"छिप गया हृदय में आसमान
मेरी सुति तारों के समान
व्याकुल हैं मेरे व्यथित प्राण
अपने ही प्राणों से जल-जल
मेरे प्राणों की नव-हलचल ।"[२]

इस धनी निराशा और उदासी को कवयित्री प्रकृति में व्याप्त देखते ही संध्याकाल उसे अपने हृदय का चित्र लगता है—

"पश्चिम में डूब रहा दिनकर ।
जल उठे श्वेत ये बादल
हो गईं दिशायें लाल-लाल
आ गई उदासी और शांति
हो गया रक्त-रंजित अम्बर ।"[३]

किन्तु जीवन के इस अंधेरे पहलू के साथ आभायुक्त पहलू भी रहता ही है। दुःखों की रात चाहे कितनी भी लम्बी क्यों न हो आखिर उसका अंत तो होता ही है—

"बीती दुःख की रैन प्रियतम
आज मधुर प्रभात
चूमते भौंरे कुसुम को
गा रहे साह्लाद
'मधुर है मधु, मधुर जीवन ।'
मिट गया अवसाद ।"[४]

व्यक्तिगत जीवन के इस स्वर्ण-विहान के साथ-साथ एक और स्वर्ण-विहान देश के नवोत्थान और नवजागरण के साथ-साथ चलने की कवयित्री की यह उत्सुकता उसका ध्यान अपने चिर-परिचित विषय आशा-निराशा की आँख-मिचौली से हटाकर दूसरी ओर भी ले जाती है। वह नवयुग का स्वागत करने के लिए तैयार हो जाती है। उसके कविता के मानदण्डों में भी किंचित् परिवर्तन होता है—

"कवि की वाणी हो अमृतमय
मृतकों में दे जीवन भर ।"[५]

व्यक्तिगत जीवन की उलझनों को एक ओर रखकर कवयित्री सामाजिक समस्याओं

---

१. आभा, पृ० १६
२. वही, पृ० २६
३. वही, पृ० २५
४. वही, पृ० ३६
५. वही, पृ० ६६

की ओर उन्मुख होती है—

"चलो चलें गाँव की ओर
वे जिनको हमने छोड़ दिया
वे जिनसे है मुख मोड़ लिया
सच्चे बंधन को तोड़ दिया
बीती है उनकी अमा निशा।"[1]

इस सामाजिकता के अतिरिक्त 'आभा' की कविताओं मे एक और नवीनता दिखाई पड़ती है। यह है प्रकृति का विषयी प्रधान दृष्टि से यथातथ्य चित्रण यद्यपि देखने को मिलता है—

"किसका वरदान अमर
शव में प्राण रहा भर।
सुन पड़ता चहुँ दिशि में शोर
बीती रात हुआ अब भोर,
नव-युग बन नव-दिन हैं सब ओर
गाते हैं नभ में सुर
मुखित आज मानव उर
हँसे पूर्व में दिनकर
कण-कण में जीवन भर।"[2]

इस द्विधा आनंद से प्रेरित होकर कवयित्री के मन में जीवन के प्रति आस्था पुनः जाग उठती है। उसे लगता है कि निराशाओं में घुटकर, दु:खों में आँसू बहा-बहाकर जीवन को नष्ट करना उचित नहीं है—

"ऐसा भी क्या रोना
रोने के कारण ही अपना
सारा जीवन खोना।"[3]

उसकी आशाएँ-आस्थाएँ किसी के अमर-करों का स्पर्श पाकर जाग उठती हैं। वह नए उत्साह के साथ अपने कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने का संकल्प करती है—

"उठो फिर जीवन में इस बार
झेल कर जग के दुःख महान्
मिला है अब सुख का वरदान।"[4]

और

"गाऊँ मैं इस बार
नाच उठें जल, थल, नभ, गिरिवर
नाचे यह संसार।"

कवयित्री विषयी-प्रधान दृष्टि को पूरी तरह नहीं छोड़ पाई है, फिर भी कुछ कविताओं में प्रकृति का यथातथ्या चित्रण सुन्दर हुआ है—

"धीरे धीरे सरिता बहती।
उठती गिरती चंचल लहरें

१. आभा, पृ० ३६
२. वही, पृ० ५१
३. वही, पृ० १६
४. वही, पृ० ४६

एक दूसरे से कुछ कहती
सांझ हुई चमके जब तारे
एक नाव आ लगी किनारे
निर्जन पथ में खड़ी अकेली
किसका मार्ग देखती रहती
धीरे धीरे सरिता बहती ।"[1]

इसी प्रकार 'पावस धन सखि प्यारे प्यारे'[2] और 'कैसी सूनी आज दुपहरी'[3] आदि कविताएँ भी इस संबंध में उल्लेखनीय है।

'आभा' में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति को अधिक स्थान नही मिला है। कुछ कविताएँ निश्चय ही सुन्दर बन पड़ी हैं जिनमे असीम के प्रति केवल औत्सुक्य भाव ही व्यक्त हुआ है—

"न जाने कब से रही पुकार
कौन तू कह जग के पार ।"[4]

और

"कहता वह मुझसे कौन
सखि मौन रह तू मौन ।"[5]

'आभा' की कविताओं के संबंध में तथा तारा पांडे की सामान्य काव्य-क्षमता के संबंध में भूमिका में दी गई राय कृष्णदास की सम्मति भी उल्लेखनीय है—

"नारी-हृदय की वेदना और सुकुमारता की अभिव्यक्ति वे बहुत ही सरलतापूर्वक कर पाई हैं। फलतः हमारी कवयित्रियों में उनका एक अपना स्थान है।"[6]

'काकली' और 'विपंची' दोनों काव्य-संग्रह एक ही वर्ष (१९५३ ई०) में भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए। इनके गीतों का रचना-काल संभवतः पाँच-छः वर्षों में बिखरा हुआ है। विषय में कोई नवीनता नहीं है। दुःखद जीवन का दाह और विगत यौवन की आह और इन सबमें शांति, सुख ढूंढने के लिए ईश्वरोन्मुखता। इससे अधिक के लिए न तो कवयित्री के जीवन में स्थान था न उनकी कविताओं में। बार-बार उन्हीं पीड़ाओं की अभिव्यक्ति करने के बाद भी वैसे वे समाप्त होना नहीं चाहती हैं। आँखों से जितने आँसू बहते हैं उतने ही और कहीं से आ जाते हैं। यह अश्रुमयी भावुकता कवयित्री के जीवन का मुख्य उपलब्धि है—

"फूलों के संग खेल खेल कर
प्राणों में भर ली भावुकता
पाया अपने को तब केवल
छुई मुई की एक लता सी।
दुःख सुख की कटु मृदु स्मृतियों में
आँखों ने पानी बरसाया ।

१. आभा, पृ० २७
२. वही, पृ० ४०
३. वही, पृ० ७२
४. वही, पृ० ३५
५. वही, पृ० १७
६. वही, स्वागत.

भरे अमित सरिता सर सागर
किन्तु रह गई हूँ मैं प्यासी
जीवन में भर गई उदासी।"[1]

और 'काकली' में भी वह स्वीकार करती है कि 'प्राणों की पीर' अमर है—

"गा रही हूँ इस व्यथा में मधुर-से गीत
कर चुकी हूँ वेदना से ही सदा की प्रीत
कहु भला कैसे छिपाऊँ
नयन का यह नीर
अमर है प्राण की चिर पीर।"[2]

यह पीर, यह आँसू, यह नयनों का नीर ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जीवन आँसुओं का ही नाम है—

"दिन के हँसते फूल सखी
चुपके रजनी में रोते हैं।"[3]

किन्तु जिसका हास से परिचय ही नहीं हुआ हो, जिसके प्राणों का परिचय एकमात्र रुदन से हो रहा है वह यदि आँसू बहाना और आँसू बहते देखना न चाहेगा तो और क्या करेगा ? कवि को जीवन और संसार से जो अनुभूतियाँ मिलती हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति वह अपने गीतों में करता है। जिस संसार ने कवयित्री को वरदान के स्थान पर अभिशाप दिए उसे बदले में और क्या मिलेगा ?

इन दो संग्रहों में आशा का स्फुरण बहुत कम दिखाई पड़ता है। बीच-बीच में कवयित्री ने अपने करुण गीतों को सुख के गीतों का रूप देने का प्रयास करना चाहा है, किन्तु वह अपनी सीमाओं के कारण ऐसा करने में असमर्थ रही है—

"मेरे प्राणों के मधुर हास
तुम जागो फिर से जागो
वेदना दूर हो जावे
कण-कण मुखरित हो गावे
मोती का कोष लुटाया
अब जीवन के दुःख त्यागो।"[4]

इसके अतिरिक्त कवयित्री के मन में राष्ट्रीय भावना भरे निर्माण-गीत गाने की भी इच्छा हुई लेकिन उसने इसमें भी अपने को असमर्थ पाया—

"मैं संघर्षों से क्लांत हुई
अपने दुःख-सुख से भ्रांत हुई
सुनकर जागृति का स्वर नवीन
संभव हैं जागें सुप्त प्राण
नवयुग के कवि और भाग्यवान।"[5]

---

१. विपंची, पृ० २३
२. काकली, पृ० ७८
३. विपंची, पृ० २१
४. काकली, पृ० २८
५. वही, पृ० ३१

अपनी सीमाओं से वह परिचित है। उस युग के अनेक कवि निराशा और पलायन के गीत छोड़कर निर्माण, प्रगति और यथार्थ के गीत गाने लगे किन्तु संभवतः वे ऐसा इसीलिए कर सके कि उनके पहले वेदनाएँ अधिकांश कल्पित थी अथवा वे जीवन में इतनी ओत-प्रोत नही थी। तारा पाडे की स्थिति इन सबसे भिन्न थी—

"कैसे वह नव निर्माण करे
कैसे शव में फिर प्राण भरे
जब अपना ही उर भग्न हुआ
कैसे भावों के फूल खिलें ?
प्राणों के ही ये दीप जलें।"[1]

और इस विवशता के एहसास के साथ वह नवयुग का आह्वान करने वाले कवियों के आगे नत-शिर हो जाती हैं—

"जो नवयुग का आह्वान करें
जो जागृति का गुणगान करें
उनको मेरा शत्-शत् प्रणाम।"[2]

वैसे उसने जागृति के गीत भी कभी-कभी गाए हैं किन्तु उनमें कवयित्री जम नहीं पाई। उदाहरण के लिए—'विपंची' में वह देश की स्वतंत्रता के लिए बंदी वीरों की याद करके कोयल से अनुरोध करती है कि अब अधिक न बोले। बापू के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए 'तुम हो महान्' (विपची) और 'आओ तुम्हें सुनाऊँ गान' (काकली) आदि गीत भी लिखे हैं लेकिन ये पद्यबद्ध विचार मात्र ही हैं।

प्रेम और रहस्यवाद के क्षेत्र में कवयित्री के लिए पर्याप्त अवसर थे। उनका उपयोग भी किया गया है। आरंभ की कविताओं में प्रेम की छटपटाहट का सुन्दर चित्रण हुआ है। बाद में वह प्रेम इश्वरोन्मुख होकर रहस्यवाद की सीमा में प्रवेश कर गया है किन्तु आगे चलकर कवयित्री ने अपने संतप्त जीवन के लिए शांति के कुछ क्षणों की खोज भी रहस्यवाद में करनी चाही इससे वह रहस्यवाद की सीमा को भी पार करके भक्ति की सीमा में पहुँच गई है। 'काकली' और 'विपंची' के कुछ गीत 'रहस्यवाद' के अच्छे उदाहरण हैं—

"कौन प्राणों की मधुर वंशी बजाता
दूर निर्जन में कहीं यह कौन गाता
आज किसकी सुधि-जगी अलि मधुर उर में
विकल होकर गा उठी मैं करुण स्वर में
जुड़ गया है आज किससे अमर नाता
कौन प्राणों की मधुर वंशी बजाता।"[1]

1 'चाहती होना तुम्हारे गीत की झंकार में', 'चिर व्यथा की रागिनी भर दी तुम्हीं ने बीन में', 'तुम आओ मेरी कुटिया में', 'जीवन दीप जलाओ' आदि कविताएँ 'काकली' में और 'तुम भूल न जाना करुणामय मेरे जीवन की अमर व्यथा' आदि गीत 'विपंची' में इस दृष्टि से काफी सुन्दर बन पड़े हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी है जिन्हें भक्तिपरक

---

१. काकली, पृ० ३२
२. वही, पृ० ३२
३. वही, पृ० ७८

भजन मात्र कहा जा सकता है। जैसे 'विपंची' में—

"प्रभु सुनते दुखियों की पुकार
निश्चय ही वे आये होंगे
जब द्रुपद-सुता ने किया रुदन
दे चीर-दान रख ली लज्जा
प्रभु की महिमा का है न पार।"[1]

और काकली मे—

"श्याम-घन मुझको सुहाते है गगन में।
मैं पुकार रही सखी घनश्याम को।
सुनाती हूँ दुःख कथा सुख धाम को।
दूर हैं घनश्याम मुझसे श्याम घन छाये गगन में।"[2]

और

"प्रभु तेरे ही द्वार
भीर हुई भक्तों की
आए ले नाना उपहार।"[3]

आदि गीत भजन-कोटि के ही है।

'रेखाएँ' १९४१ ई० में प्रकाशित तारा पाडे के गद्य-गीतों का संग्रह है। इसमें कुल बावन गीत है। यद्यपि गद्य-गीतों मे उसका यह पहला और अन्तिम प्रयास है फिर भी इनमें अधिकांश सुन्दर है। 'वेदना', 'अभाव की पूजा', 'मैं समाधि हूँ', 'मुस्कान', 'काव्य की रचना', 'किसके लिए क्यों' आदि अनेक गीत न केवल मर्मस्पर्शी हैं अपितु कवयित्री के जीवन और उनके काव्य पर भी पर्याप्त प्रकाश डालने वाले हैं। 'मुस्कान' में उनके जीवन की सिद्धि साकार होती है—

"क्षितिज के उस पार से एक संकेत भरी मुस्कान मुझे रिझा रही है।
मैं उसे प्यार करती हूँ। वह ऐसा ही मोहिनी शक्ति रखती है।
सखी मैं जाऊँगी !...
मेरी आँखों के आँसू आँचल भिगा देंगे, क्षुब्ध न होना।
आँखों का जल बहकर गालों को श्याम वर्ण कर देगा—उसका रंग भी
ऐसा ही है।"
वह मृत्यु की मुस्कान मुझे अति प्रिय है।"[4]

तारा पांडे की कविता का आधार वेदना, अभाव, निराशा, पलायन, सूनेपन आदि के भाव हैं। कवयित्री की वेदना, निराशा के विषय में महाकवि 'निराला' के शब्द उल्लेख-नीय हैं: 'तारा ने घड़ी के तारों मे व्यथा की कुल गाथा गा दी है। भाषा और भाव दोनों आदर्श हैं।' लगभग यही आधार उस समय के उच्च छायावादी अथवा रहस्यवादी कवियों की कविता के थे। दूसरे शब्दों में ये नकारात्मक भावनाएँ उस काल की देन हैं। इनका कारण राष्ट्रीय अथवा सामाजिक परिस्थितियाँ थीं अथवा पश्चिम का अनुकरण। इस प्रश्न पर विभिन्न दृष्टियों से पर्याप्त विचार किया गया है। यदि छायावाद पश्चिम का अनुकरण भी है तो भी यह ऐसा अनुकरण है जो देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ

१. विपंची, पृ० १४
२. काकली, पृ० ८३
३. वही, पृ० ८३
४. रेखाएँ, पृ० २७

के अनुकूल था। इसीलिए तो छायावादी कविताएँ इतनी लोकप्रिय हुईं। छायावादी काव्य हिंदी साहित्य के लिए गर्व करने की वस्तु है—भले ही उसकी प्रेरणा कहीं से भी मिली हो।

तात्पर्य यह कि अभाव, निराशा, पलायन आदि की नकारात्मक भावनाएँ उस युग की (जिसमें तारा पांडे ने काव्य-सृष्टि की) सामान्य प्रवृत्तियाँ है और तारा पांडे की कविता में उनका उपस्थित होना कोई नवीन बात नहीं है। किंतु छायावाद की इन विशेषताओं को अपनाने के बाद भी तारा पांडे की कविता को छायावादी कहना अनुचित होगा। यद्यपि उनके कुछ गीतों को छायावादी अथवा रहस्यवादी अच्छे गीतों में निःसंकोच रखा जा सकता है किंतु कुल मिलाकर तारा पांडे न छायावादी कवयित्री बन पाई हैं और न ही रहस्यवादी।

उनकी छायावाद और रहस्यवाद की कविता में कल्पना एवं शैली प्रधान है। उसमें व्यक्त निराशा एवं वेदना को कवियों के जीवन में नहीं ढूँढा जा सकता है। इसी तरह रहस्यवाद में असीम के लिए जो तड़पन दिखाई पड़ती है वह भी कल्पना-प्रसूत ही है। प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप जो छायावाद और रहस्यवाद की जान है, भी कल्पना का ही काम है। अनुभूति यदि कहीं है भी तो उसे कल्पना से इतना अधिक सँवारा गया है कि उसे पहचान पाना कठिन है।

इन सबके विपरीत तारा पांडे की कविता का जन्म अनुभूति से हुआ है। उसकी कविता का क्षेत्र काफी सीमित है जिसे कवयित्री स्वयं स्वीकार करती है—

"मेरा स्वर सीमित है ले उर में आकुलता
जल जल कर नित ज्वाला में हो गाने गाए···"[1]

और

"सकुचाई-सी नवल कली है, छुई मुई सी सलज लता
दग्ध दुःखी मन को है मोहक यह मेरी छोटी कविता।"[2]

"तुम कहते हो, नभ के तारों
औ' उपवन के फूलों पर,
मेरी कविता होती है
जीवन की कुछ भूलों पर।
सत्य कथन है..."[3]

किंतु इस सीमित क्षेत्र का कारण यह है कि उसके लघु जीवन में पीड़ाएँ, दुःख, दर्द, निराशाएँ निरन्तर डेरा डाले रहीं। कवयित्री के वैयक्तिक जीवन और काव्य जीवन के आधार पर कवयित्री की वेदनापूर्ण भावना के विषय में महाकवि 'निराला' के शब्द उल्लेखनीय हैं: "तारा सुख में पली हैं। वे पतिगृह में भी सम्पन्न हैं। उनके पति उच्च शिक्षित डॉक्टर हैं। पर उनका कवि-हृदय सन्तप्त रहा। वर्षों व्याधि से ग्रस्त रहने के कारण शैया-शरण रहीं। वह व्याधि हृदय की थी।" उसने अपने कविता के क्षेत्र की सृष्टि कल्पना से नहीं की। दुर्भाग्य अथवा भाग्य उसे जीवन में जो-जो देता गया उसी को उसने कविता-बद्ध

१. वेणुकी, पृ० ३६
२. शुक पिक, पृ० ४५
३. सीकर, पृ० ७८

किया। उसने वेदना भरे गीत गाए इसलिए कि वेदना उसके प्राणों में बस गई थी—

"अमर है प्राणों की चिर पीर
कर चुकी हूँ वेदना से ही सदा की प्रीत।"[1]

बचपन में माँ के विछोह की वेदना, यौवन में मृत्यु के पल-पल पर साक्षात्कार की वेदना और तदुपरांत यौवन के अकार्थ बीत जाने की वेदना ने तारा के जीवन में तीव्र विषाद व निराशा के भाव पैदा किए—

"किसने मुझको रोते देखा ?
शैशव में माता का वियोग सहकर चुपके-चुपके रोई,
पर सच कहती हूँ, बाहर से सबने मुझको हँसते देखा।"

× × ×

"अपने भविष्य का चित्र बना, आशा का उसमें रंग भरा।
सोचा था न तनिक मन में मैंने, क्या है मेरी ललाट रेखा!
वह रंग मिटा, मिट गया चित्र, मैं भी उसमें मिट जाऊँगी,
पर मिटा नहीं सकती हूँ क्या मैं विधि! तेरा निर्मम लेखा!"[2]

जीवन को असफल बनाने वाली परिस्थितियों को कवयित्री ने स्पष्टता से व्यक्त किया है। शैशव और बाल्यकाल को माता के वियोग ने निष्फल कर दिया और यौवन के प्रभात में कवयित्री ने प्रणय के जो सुनहले स्वप्न बनाए थे वे असाध्य रोग की निष्ठुरता ने मिटा दिए जिससे कवयित्री ने शेष जीवन को व्यर्थ समझ लिया। यौवन व सम्पन्न गृहस्थ के सुख का उपभोग कवयित्री स्वस्थ बनकर न कर सकी। यही भाव उसके भावुक हृदय पर गहन एवं तीव्र विषाद बनकर उत्पन्न हुआ और इसी को उसने अधिकांश गीतों में अभिव्यक्ति की है।

जीवन की नीरसता, उदासीनता आदि निराशावादी मनःस्थिति से ऊबकर तारा पांडे साध्य में व्यक्तिगत जीवन के अभावों की पूर्ति प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में करना चाहती हैं—

"मेरी साध निराली सजनी!
विहग बनूँ, नभ में उड़ जाऊँ
मुक्त कंठ से गाना गाऊँ
नीड़ रचूँ पेड़ों पर सुख के,
मुखरित हो गीतों से अपनी।"[3]

इसी तरह कवयित्री का अभाव काल्पनिक नहीं है। वह उसके जीवन की कथा है। "रेखाएँ" पुस्तक के गद्य-गीतों में एक गीत है 'अभाव की पूजा' जिसमें कवयित्री ने अपने अभाव की आद्यांत कथा कही है—

"जब होश संभाला तो मैंने जाना कि मुझे
दुनिया में बहुत अभाव है......
मैंने सोचा था कब मिटेगा?
संभव है बड़ी होने पर।
मैं बड़ी होने लगी किन्तु अभाव न गया।..."

इत्यादि शब्दों में कवयित्री ने बताया है कि अभाव ने हमेशा उसका पल्ला पकड़े रखा और इसीलिए वह उसके प्राणों में समा कर अमर हो गया है।

---

१. काकली, पृ० ७८
२. शुक पिक, पृ० ६
३. वेणुकी, पृ० १४

'आँसुओं' में तो तारा पांडे की कविता-लता पल्लवित हुई है। जब वे यह कहती हैं कि मेरे रोने से ही सूखे पत्तों ने रोना सीखा' अथवा 'दिन के हँसते फूल सखी चुपके रजनी में रोते हैं' (विपची) तो उन जग-व्यापी आँसुओं का कारण कवयित्री के जीवन में ढूँढ़ा जा सकता है। ये डबडबाई आँखों के आँसू हैं जो प्रतिबिम्बित होकर चराचर में व्याप्त दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह यदि कवयित्री नाविक से अनुरोध करती है कि 'मेरी तरणी उस ओर ले जाओ जहाँ फूलों का संसार है' (वेणुकी) तो उसके लिए पर्याप्त कारण मौजूद है जिसे इस संसार में काँटे ही काँटे मिले हैं। जिसका जीवन-कुसुम असमय में ही कुम्हला गया है उसके लिए किसी अनजान फूलों के देश की चाह करना स्वाभाविक ही है।

सम्भवतः इस तीव्र अनुभूति अथवा रागतत्व के कारण ही तारा पांडे की कविता छायावादी अथवा रहस्यवादी नहीं हो सकी, क्योंकि कल्पना का अधिक आश्रय वहाँ लिया जाता है जहाँ अनुभूति उथली होती है। सीधी-सादी अभिव्यक्ति के कारण उसकी कविता में न तो दुरूहता आ पाई है और न रहस्य।

किन्तु कवयित्री ने छायावादी अथवा रहस्यवादी कविताएँ लिखने का प्रयास अवश्य किया है। कुछ कवियों से वह काफी प्रभावित दिखाई देती है। "शुक पिक" की भूमिका में महाकवि "निराला" के निम्नलिखित शब्द उल्लेखनीय है—

"तारा पर जहाँ दूसरे कवियों का प्रभाव पड़ा है, वहाँ उसकी कविता ऐसी नहीं चमकी। वह एक ही शब्द पूरा बयान देने लगता है। कविता के शब्द हृदय से बंध कर ही निकलते हैं। शब्द पर किसी का अधिकार नहीं ; पर प्रयुक्त शब्द जब तक भाव में बंधकर कवि के व्यक्तिकरण के अनुरूप नहीं होता वह यहाँ के भाव से पहले दूसरी जगह के भाव बतलाता है जहाँ से वह आया है। छन्द के सम्बन्ध में भी ऐसे ही हुआ है। वे स्वयं मौलिक हैं। उनकी एक धारा, व्यक्तिकरण की भाषा सम्बन्ध की है।"

जहाँ तक कविता में विचार-पक्ष का प्रश्न है कवयित्री ने कहीं भी गम्भीर दर्शन सिद्धांत प्रस्तुत करने का न तो प्रयास किया है न उसका दावा किया है। जीवन की कुछ भूलों में भला क्या दर्शन हो सकता है। फिर भी उनकी कविता में भारतीय संस्कृति और भारतीय विचार-पद्धति की छाप दिखाई देती है। जीवन के प्रति वह निराश अवश्य हो चुकी है किन्तु वह आस्था से नहीं डगमगाती। जब दुर्भाग्य से जूझते-जूझते वह बिल्कुल क्लांत हो जाती है तो अन्तिम सहारे के रूप में भगवान् के चरणों को पकड़ लेती है। छायावाद और रहस्यवाद के अधिकांश कवियों की रचनाओं में परकीया प्रेम का ही अधिकतर चित्रण हुआ है। किन्तु तारा पांडे इस सम्बन्ध में बहुत सावधान दिखाई पड़ती हैं। 'आभा' की भूमिका में राय कृष्णदास जी ने लिखा है कि "तारादेवी की पद्य रचना को हम स्वकीया कुल-लक्ष्मी के रूप में पाते हैं, जो—

"सद की धोई धोवती चटकीली मुख जोति
लसति रसोई के बगर जगर-मगर द्युति होति।"

रहस्यवाद में असीम के साथ प्रेम-सम्बन्ध की कल्पना की जाती है। स्वाभाविक है कि असीम अरूप के माध्यम से परकीया-प्रेम की ही अभिव्यक्ति हो सकती है। सम्भवतः इसीलिए तारा जी रहस्यवाद के क्षेत्र में काफी आगे नहीं बढ़ पाई हैं। भारतीय परम्पराओं के वातावरण में पली हुई होने के कारण और पश्चिमी सभ्यता एवं रहन-सहन से अप्रभावित रहने के कारण वे असीम के साथ अपनी प्रेमाभिव्यक्ति में सफल नहीं हो सकीं और

इसीलिए रहस्यवाद को छोड़कर भक्ति की ओर मुड़ना पड़ा। उनकी कविताओं में रहस्यवाद का स्थान उत्तरोत्तर भक्ति ने ले लिया है।

छायावाद अथवा रहस्यवाद की कविता न लिखने से किसी कवि की असफलता प्रमाणित नहीं होती। यह एक दिलचस्प बात है कि इस काल के कई उच्च कवि भी प्रयास करने पर भी छायावादी कविता लिखने में असमर्थ रहे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, दिनकर आदि कई महान् कवियों के उदाहरण इस सम्बन्ध में दिखलाए जा सकते हैं। मैथिलीशरण गुप्त जी ने छायावादी ढंग के प्रकृति चित्रण तो अपने काव्यों में खपा लिए, किन्तु उनकी हर रचना छायावाद से अलग पहचानी जा सकती है। उनके रहस्यवादी गीत (झंकार) महादेवी वर्मा के गीतों से अथवा अन्य रहस्यवादी कवियों के गीतों से स्पष्टतः भिन्न है। जैनेन्द्र जी ने उनकी कविता के सम्बन्ध में एक पुराने लेख में लिखा है : "उनकी कविता भक्ति की प्रेरणा में से आकर भी रहस्यवादी नहीं है, उपासना-मयी है। न उसमें चहुं ओर के दबाव की पीड़ा है। समस्या के भार से भरी हुई भी वह नहीं है। उसमें आवेदन और निवेदन का स्वर मध्यम है।"[1]

कुछ इसी तरह की बात तारा पांडे की कविता के विषय में भी कही जा सकती है। प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों हुआ है? क्यों ये कवि अपनी कविताओं में असीम के लिए प्रेम विह्वलता की अभिव्यक्ति (जो रहस्यवाद की अनिवार्य शर्त है) नहीं कर सके हैं? अथवा भारतीय परम्पराओं में पले ये श्रेष्ठ कवि छायावादी भारतीय काव्य परम्परा के स्वाभाविक विकास का परिणाम नहीं हैं। इसके अतिरिक्त असीम की प्रेम-विह्वलता के लिए ईश्वर पर आस्था बाधक होती है। (ब्रह्म पर आस्था भले ही न हो) ईश्वर के स्वरूप में आस्था होने की स्थिति में जीव में लघुता का बोध विद्यमान रहता है और तब असीम के प्रति प्रेम से अधिक दास भाव ही रहता है।

तारा पांडे को इन कवियों के वर्ग में रखा जा सकता है जिनकी कविता भारतीय काव्य परम्परा की एक कड़ी के रूप में है। यद्यपि इनके कुछ गीत छायावाद एवं रहस्यवाद दोनों के सुन्दर उदाहरण हैं। किन्तु इनके काव्य की मूल प्रकृति यह नहीं है।

शैली को कविता का परिधान कहा जाता है। कुछ लोग इसे त्वचा कहना अधिक समीचीन समझते हैं क्योंकि इसको कविता से अलग नहीं किया जा सकता। एक पक्ष यह भी है कि कविता में जो कुछ कहा जाता है वह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कहने का ढंग। प्राचीन काव्य-शास्त्र में रीति सम्प्रदाय और अलंकार सम्प्रदायों की कुछ ऐसी ही मान्यता थी। किसी भाव अथवा अनुभूति को सीधे-सादे बोलचाल के शब्दों में रख दिया जाता है तो वह कविता नहीं कहलाती है, किन्तु जब उसी बात को छंद-अलंकार आदि से सुसज्जित करके कहा जाता है, तो वह कविता के नाम से पुकारी जाती है।

शैली के तुलनात्मक महत्त्व के सम्बन्ध में चाहे कितने भी विवाद हों उसके स्वरूप के सम्बन्ध में बहुत कुछ मतैक्य है। यदि किसी बात को कहने का ढंग उसकी शैली है तो हर कवि की अपनी निजी शैली का होना अनिवार्य है। शैली वस्तुतः कवि के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है। विभिन्न कवियों की पंक्तियों को पढ़ते ही हम जिस वस्तु के आधार पर अनुमान लगा सकते हैं कि यह अमुक कवि की रचना है वह शैली है।

तारा पांडे की कविता, जैसा कहा जा चुका है, अनुभूति प्रधान है और जहाँ अनुभूतियों का जमघट होता है वहाँ शैली की ओर अधिक ध्यान नहीं जाता है। फिर भी

---

१. जैनेन्द्र जी पर मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखा गया एक लेख, 'सारिका' १९६३, अगस्त अंक.

तारा पांडे की अपनी निजी शैली स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, यद्यपि शुरू-शुरू में उन पर कई उच्च कवियों की शैली का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है किन्तु धीरे-धीरे उनकी काव्य-प्रतिभा के साथ-साथ शैली का भी विकास होता गया है। उनकी शैली की विशेषताएं हैं प्रसाद गुण, सीधी-सादी अभिव्यक्ति, अलंकारों आदि की समुचित योजना और गीतात्मकता। कविता के प्रसाद गुण के ही कारण वे छायावादी और रहस्यवादी कवियों से अलग दिखाई देती हैं।

रहस्यवाद की कविताओं में भी, जहाँ भाषा विषय की रहस्यात्मकता के कारण दुरूह हो जाती है, तारा पांडे का प्रसाद गुण श्लाघ्य है। विशेषकर जब उससे अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं आती है। उदाहरणार्थ—

"मैं अभिशाप तुम्हारी प्रिय तुम हो मेरे वरदान !
तुम उज्ज्वल से दीप
शलभ सी मैं तुम पर मंडराई
देते जग को ज्योति
जल मैं हाय ! भस्म बन आई
तुम को होता संताप किन्तु मुझको तुम पर अभिमान।"[1]

अपनी निराशा और शोक को वे सीधे-सादे शब्दों में कह सकती हैं—

"क्या बिखर गया संगीत स्वप्न जीवन का
रह गई सोचती हाथ नहीं कुछ आया
मैंने समझा कुछ पर न देख कुछ पाया ;
मैं धरना दूँगी प्रभु के ही मन्दिर पर
क्या मुझे मिलेगा ध्येय नहीं निज मन का।"

शब्द-योजना और गीतात्मकतामय-सामान्य रूप से कवयित्री को सफलता मिली है। कुछ गीत तो बहुत ही सुन्दर बन पड़े है। "मन तू मधुर-मधुर बन" (शुक पिक), "तिमिर भर-भर कर आई है रजनी" और "मै दुःख से शृंगार करूँगी" (वेणुकी), "आज मेरे प्राण में स्वर भर गया कोई मनोहर" (आभा), "कौन सी अनुभूति है यह" आदि अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। "शुक पिक" के निम्नलिखित लघुगीत के शब्द और लय-सौंदर्य को देखिए—

"मन तू मधुर-मधुर बन
किसलय सा कोमल बन
फूलों सा मोहक बन
सागर सा गम्भीर...
प्राण सा सरल-सरल बन...
जननी की ममता बन
योगी की क्षमता बन
साधक सा त्यागी
भक्तों सा करुण-करुण बन

१. वेणुकी, पृ० २४

दुःखियों का पालक बन
सुख का संचालक बन
आत्मा सा निर्लेप
प्रेममय मृदुल-मृदुल बन।"

'काकली' और 'विपंची' तक पहुँचते-पहुँचते कवयित्री में शब्दों की वह मितव्ययिता आ गई है जिसका अभाव उसकी आरंभिक रचनाओं में खटकता है। छायावाद की हिन्दी साहित्य को जो शैलीगत एक महान् देन है वह शब्दों की मितव्ययिता ही है। मितव्ययिता से भाषा में लक्षणा आती है और लक्षणा से भाषा की प्रभावोत्पादकता बढ़ती है। 'काकली' में से एक उदाहरण लीजिए—

"मैं विकल हूँ आज—
ज्यों विकल है सागर
बरसते हैं नयन—
जैसे भरे जलधर।
ढूँढ़ने जाऊँ कहाँ पाऊँ अमरता
जान पाए तुम नहीं उर की विकलता।"

भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से तारा पांडे की कविता को हिन्दी साहित्य में अच्छा स्थान प्राप्त हो चुका है। उनका काव्य एक तालाब की तरह है जिसमें सुख-दुःख के गर्म-गर्म आँसुओं का जल लघु जीवन की सीमाओं में बंधकर लहराता रहता है। इसमें न तो सागर की तरह तूफान उठता है न सरिता का सा अजस्र प्रभाव बहता है। इसमें तो केवल हिलोरें उठती हैं जो स्पंदन-सा भरती हुई कुछ दूर तक जाती है फिर अपनी सीमाओं से टकरा कर विलीन हो जाती हैं।

जीवन प्रकाश जोशी

जीवन प्रकाश जोशी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न एक तरुण साहित्यकार हैं। इंटर तक कालेज में नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त करने के बाद स्वतंत्र रूप से अध्ययन करते हुए इन्होंने साहित्य-रत्न तथा हिंदी ऑनर्स आदि उपाधियां प्राप्त कीं। संघर्षों में पलने और जीवन के झाड़-झंखाड़ों के बीच अपने लिए स्वयं मार्ग तैयार करने के कारण उनका दृष्टिकोण सर्वत्र ही यथार्थ सुलझा हुआ दिखाई पड़ता है। 'हिन्दी साहित्य मञ्जूषा' उनकी सुलझी हुई समीक्षक प्रतिभा का प्रमाण है। उन्होंने कहानियां, गद्य-गीत आदि भी लिखे हैं।

जोशी जी मूलतः कवि हैं और कवि से भी अधिक एक गीतकार भी हैं। 'हृदयावेश' 'माला' तथा 'दिल और दर्पण' उनके ऐसे गीतों के संग्रह हैं जिनमें हृदय की कसक, जीवन की पुकार और कोमल भावनाओं की विविध रंग-रूप युक्त झांकियाँ व्यक्त हुई हैं। धरती आकाश और मनुष्य', जीवन-संग्रह (सभवत. जीवन सूत्रों का संग्रह) है। किन्तु इसकी अनेक रचनाओं को गद्य-गीत माना जा सकता है। अभिव्यक्ति की तीव्रता और शब्दों की अभिव्यक्तिता से ये गद्य-गीत कविता के काफी निकट आ जाते हैं। माला की भूमिका में कवि ने अपना दृष्टिकोण उपस्थित करते हुए कहा है कि "मैंने इन रचनाओं में वह बात स्पष्ट करने की कोशिश की है जो कि हमारे आत्म पीड़न, समाज और जीवन इनसे विशेष, इनको एक सामंजस्य में जोड़ने वाली किसी व्यापक चेतना से सम्बन्धित है। उसे नियति, ईश्वर, जीव, प्रकृति अथवा अन्य किसी और गहरे नाम से पुकारा जाए यह तो हमारी अपनी आस्था और विश्वास की बात है। इसके अतिरिक्त माला में मैंने कुछ अन्य गीत विशेषतः अपने मित्रों के आग्रह पर जोड़ दिए हैं। जिससे उनकी "दर्द न पाने वाली" शिकायत मेरे ऊपर उधार न रहे।"[1]

"दिल और दर्पण" में भी जोशी जी के व्यक्तित्व के किसी कोमलतम पहलू की सीधी और सच्ची आवाज़ है। "और यह संग्रह उन लोगों को सप्रेम समर्पित किया गया है जो जीवन में कहीं पर हँस-हँस कर लुटे हैं......कहीं पर चुपचाप रोए हैं।" स्पष्ट है कि जोशी जी की कविता का विषय मुख्यतः प्रेम ही है। समाज और जीवन को एक सामंजस्य में जोड़ने वाली व्यापक चेतना वस्तुतः प्रेम ही है। प्रेम परिस्थितियों के अनुसार नाना रूप धारण करता है। इसके इस रूप वैविध्य के कारण ही यह आदि काल से लेकर कविता का मुख्य विषय रहा है। प्रेम भोग की लालसा मात्र नहीं है। यह नारी शरीर की दीप्ति से स्पंदित मानस का वीचि विलास मात्र नहीं है। जोशी जी जिस प्रेम के गायक रहे हैं उसका स्वरूप बहुत व्यापक है। वह प्रभु का ही रूपाकार है—

"प्रेम प्रभु की रचना का सार
प्रेम प्रभु का रूपाकार।"[2]

---

१. माला की भूमिका, पृ० क-ख
२. दिल और दर्पण, पृ० २

और जीवन में प्रेम हा एक अमर आख्यान है—

"यहाँ संघर्ष ज्ञान विज्ञान
यहाँ दुर्धर्ष पतन उत्थान
समस्या गूढ़ सत्य पहचान
प्रेम ही एक अमर आख्यान।"[1]

इस प्रेम की आराधना करने वाला ही सच्चा भगत है—

"तपा कर अपने तन का रक्त
जलाकर उर-पाटल आरक्त
प्रिया की छवि करता अभिव्यक्त
एक प्रेमी ही सच्चा भक्त।"[2]

इस प्रेम की तृप्ति यदि एक क्षण भर के लिए मिल जाए तो वह जीवन की महान् उपलब्धि होगी और इस प्रेम की अभिव्यक्ति जिन गीतों में हो उनको आराध्य की माला बनने का पूरा अधिकार प्राप्त है—

"मधुरतम वह जीवन अभिव्यक्ति
मुखर हो जिसमें प्रिय-असक्ति।"[3]

प्रेम का आदर्शीकरण छायावादी कवियों ने भी किया है किन्तु छायावादी कवियों का प्रेम एक काल्पनिक सृष्टि है क्योंकि उसमे प्रेयसी प्रकृति है अथवा प्रकृति को माध्यम बनाकर ही प्रेमानुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टि से जोशी जी का प्रेम सूफी प्रेम से अधिक मिलता है जो नारी की शारीरिक दीप्ति को पाकर प्रारंभ होता है और विरह की ज्वाला में तपता हुआ एक परम सत्ता की ओर संकेत करता हुआ दिखाई पड़ता है।

'दिल और दर्पण' की 'न रूठो, आज की यह रात जीवन भर न आएगी' कविता में जोशी जी दर्पण की तरह प्रेम को भी इस क्षणिक जीवन की एकमात्र उपलब्धि कहते है—

"तो भी दो चार घड़ियों को
प्रथम उन्माद जगता है।
प्रथम अभिसार में ही
स्वच्छ दर्पण चाँद लगता है।
बड़ी मदहोश करती है।
तुम्हारे होंठ की लाली
बड़ी मदहोश करती है
तुम्हारी ये लटें काली
यही वह रात जब तुम
रूप-रानी और मैं राजा।
न रूठो, आज की यह रात जीवन भर न आएगी।"[4]

---

१. दिल और दर्पण, पृ० ३
२. वही, पृ० ५
३. वही, पृ० १०
४. वही, पृ० १

इस उन्माद की स्थिति में मधु-चुम्बन और आलिंगन ही शाश्वत सत्य दिखाई देता है—

"अधर पर मधु चुम्बन की प्यास
अजर हैं आलिंगन के पाश
बिगड़ते बनते रहते विश्व
अमर है प्रकृति पुरुष-का लास।"[1]

किन्तु उन्माद के क्षण टिकते कहाँ हैं ? ये तो स्वप्न की तरह से ओझल हो जाते है और अपने पीछे विरह की आग, आँसुओं के निर्झर और शून्य का आलाप छोड़ जाते है और तब यह जानकर कि 'प्यार पत्थर मे किया गया था' वेदना पारावार बन कर उमड़ती है। प्रेमी का दर्द हृदय के प्राचीरो मे निकल-निकल कर चराचर में व्याप्त होने लगता है। उसकी आहें गीत बन जाती है, उसके आँसू नभ-मंडल में तारो के रूप में छिटक जाते है—

"किन्तु बादलों से व्यापक है
मेरे उच्छ्‌वासों का गायन
अगणित बूँदों से उर्वर है
मेरा दृग-कन-नीरव रोदन
मेरे मिटने पर भी मुखरित होगी आकुल वाणी।"[2]

विरह की आकुलता में निमज्जित इस मन.स्थिति के कारण जोशी जी की कविता में यत्र-तत्र नश्वरता का एहसास, क्रंदन और निराशा की भावनाएँ व्यक्त हुई है—

"काल के पट पर बना चित्र जीवन—
इसलिए क्रन्दन, निवर्त्तन औ मरण है।"[3]

× × ×

"जानता हूँ जो न मिलती चाह है वह
जो न मंजिल तक पहुँचती राह है वह
जो हृदय की पीर बनी वह भावना है
जो अधूरी रह गई वह साधना है।"[4]

× × ×

"क्या पता है कब कहाँ दम छूट जाएगा अचानक
छूट जाएगा कहाँ पर कारवाँ सुधि का अचानक।"[5]

किन्तु इतना सहने पर भी प्रेमी-हृदय अपनी हार नही मानता है क्योंकि सच्चे प्यार में हार का प्रश्न ही नहीं उठता है—

"प्राण जिसने प्रणय दाँव पर धर दिए
हारना वह कहाँ जिन्दगी का जुआ
मत-भरो वासना की शिथिल गोद तुम
दाँव ही में हार किसी का हो गया।"[6]

सुरा की मस्ती और साकी की दीप्ति का मदहोश प्यार आहों और आँसुओं में परिवर्तित होने के बाद यहाँ पर स्थिर नहीं हो जाता है। यह अनुभूति तो धीरे-धीरे सूक्ष्म, व्याप्त

१. दिल और दर्पण, पृ० १७
२. वही, पृ० १७
३. वही, पृ० ६२
४. वही, पृ० ५२
५. वही, पृ० ५७
६. वही, पृ० ५२

होती जाती है और एक समय ऐसा आता है जब प्रेयसि विश्व की समस्त सुन्दरता का प्रतीक, समस्त उपलब्धियों का सारमात्र रह जाती है। सूफी प्रेम-साधको के लिए यह स्थिति परम साध्य है। जोशी जी भी इस स्थिति में प्रवेश करते हुए दिखाई पड़ते है।

'माला' की कविताएँ "निर्निमेष आँखों से तुमको देखा पर पहचान न पाया" और "नही जानता मैं ठिकाना तुम्हारा, निरंतर मगर ये चरण चल रहे है" आदि इस दिशा की ओर संकेत करती हैं। "रूप-सागर" कविता मे प्रिया का आकर्षण उदात्त होकर ब्रह्म का आकर्षण बन जाता है—

"आह ! यह कैसा आकर्षण
विवशता से जिसकी प्रति क्षण
विकलता से जिसकी तन मन
खोजता जिसको निशि-वासर
तुम्हारा अगम रूप सागर।"[१]

"धरती, आकाश और मनुष्य" में "प्रियतमा" शीर्षक के जीवन सूत्र में प्रेमानुभूति के इस विकास को बहुत सीधी और सुघर भाषा में कहा गया है—

"मैने अपनी प्रियतमा को सुन्दर समझा,
तो वासना का उफान उठता गया।
मैने उसे कोमल समझा,
तो भावना का गान बनता गया।
मैंने उसे निष्ठुर समझा,
तो साधना का वरदान निकलता गया।
जब वासना, भावना और साधना से अलग—
मैंने उसे ईश्वर की एक सर्वश्रेष्ठ रचना—कृति समझा
तो उस दिन,
वह पूजा बनकर मेरे चरणों पर गिर गई।
और उसे समेटते रहना ही मेरे जीवन का ध्येय बन गया।"[२]

जोशी जी का शैली पक्ष भी पर्याप्त मजबूत है। यद्यपि उन्होंने कहीं-कहीं रुबाईयों और प्राचीन छंदों का प्रयोग भी किया है किन्तु मुख्यतः उन्होंने गीतों की शैली को ही चुना है। "माला" की भूमिका में गीतों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—

"किसी अवस्था विशेष के भावात्मक विस्फोट में हम आत्म-विस्मृत से होकर ऐसे टकनिकल शब्दों की शृंखला जोड़ देते है जिनमे राग युक्त महाप्राण चेतना की दृढ़ बंदिशें होती है। इन बंदिशों में हमारी आत्मा हजार-हजार बार बंध कर एक बार भी खुलना नहीं चाहती है—यही बंदिशें—शब्दों की शृंखला—भीतरी जीवन की व्यापक पुकार है; मैं समझता हूं गीत की अंतरचेतना है—उसका स्वरूप है।"[३]

गीत काव्य की ऐसी शैली है जिसमे कवि को छंदमयता तथा संगीत के बंधनों में बंधा रहना पड़ता है किन्तु ये बंधन उस कवि के लिए बंधन नहीं रहते जिसकी अनुभूतियों में प्रबलता होती है क्योंकि तीव्र अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति स्वतः ही छंदमय अथवा

१. माला, पृ० ६५
२. धरती, आकाश और मनुष्य, पृ० २६
३. माला, भूमिका

संगीतमय होती है। शुरू-शुरू में कवि को शब्दों की आवृत्ति आदि से गेयता पैदा करनी पड़ती है जैसा कि लोक गीतों में होता है, उदाहरण के लिए नीचे लिखी पंक्तियों में शब्दों की आवृत्ति द्वारा संगीतात्मकता लाई गई है—

"आज पीला पीला सा चाँद
आज नीला नीला सा चाँद
यही क्या सुन्दरता का गीत
यही क्या परवशता की जीत
यही क्या भावुकता का गीत
यही क्या मादक मन का मीत।"[1]
× × ×
"दोनों की बाहों में भगवान।"[2]

किन्तु "दिल और दर्पण" की कई कविताओं में यही गेयता सहजरूप से आ गई है जैसे—

"सबको मधु की प्यास अमर है
मधुर मिलन सहवास मधुर है
बुरा यहीं! सब मौन मगर मैंने उसका आलाप किया है
मैंने क्या यह पाप किया है?"[3]

अथवा—

"तरसने दो मुझे जग में लिए चिर प्यास चातक की
लिए मधुमास का संदेश बन महमान मत आओ
मत गाओ, मिलन के गान मत गाओ।"[4]

भाषा की सरलता एवं प्रवाहमयता जोशी जी की कविता के मुख्य विशेष गुण हैं। कहने के लिए गाँठ में कोई बात हो तो कवि भाषा की अथवा विचित्र शब्द प्रयोगों की भूलभुलैयों का निर्माण करने का प्रयास नहीं करता है। जोशी जी की हर कविता हृदय की किसी बात को कहती है इसलिए उसे आवश्यक क्लिष्ट प्रयोगों का आश्रय लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी है। पंक्तियों का अर्थ लगाने के लिए कहीं भी रुक कर माथापच्ची नहीं करनी पड़ती है। सम्भवतः इसीलिए जोशी जी के ये गीत साधारण पाठक द्वारा भी सहज आस्वाद्य है।

कुल मिला कर, जोशी जी एक समर्थ गीतकार है। उनके पास दर्द भरा दिल भी है और दर्द को गा सकने वाली भाषा भी। किन्तु इससे बड़ी बात यह कि उनमें अपने दर्द से ऊपर उठकर विश्व के दर्द में लीन होने की चाह भी है, जो उनके उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करती है। निम्नलिखित पंक्तियों में कवि इस चाह को साकार करने में प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है—

"क्षमता दो पत्थर को दूँ वाणी ममता की
क्षमता दो पुष्कर को दूँ वाणी समता की
क्षमता दो कर सकूँ प्रेम से घृणा उजागर
उचित न दो है देव
नव कर्मणा लहर दो।
मुक्ति न दो हे देव।
विश्व-साधना अमर दो।"[5]

---

१. माला, पृ० ८
२. वही, पृ० ६
३ दिल और दर्पण, पृ० ४२
४. वही, पृ० ३२
५. माला, पृ० ६१

अन्य कवि

कान्ति त्रिपाठी के गद्य गीतो का संग्रह 'जीवन दीप' और 'उष्मा' है। कवयित्री के कथनानुसार उसने काव्य प्रेरणा अपनी 'गौरवमयी जननी' मे ग्रहण की है। उसके गीतो में विरह की भावना प्रबल है और यह भावना हृदय की एक स्वाभाविक गति सी प्रतीत होती है जिसमे कवयित्री को आत्मसंतोष सा मिलता हुआ प्रतीत होता है।

कवि पुरुषोत्तम जुखंडिया ने समसामयिक विषयो पर अनेक कविताएँ लिखी हैं, जो कूर्मांचल मे निकलने वाली विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। कवि आश्चर्य प्रकट करता है कि यह कौन सी नई क्रान्ति आई कि अशिक्षित, शिक्षित सभी व्यक्ति अपने ग्रामों, घरों, परिजनो को छोड़कर शहरो में आ रहे है।

> "उदित हो क्रान्ति क्या आई, नया इक रंग लाई है
> बहाया बाढ़ से हमको, नगर की ओर लाई है।
>
> ... ...
>
> तजा वह ग्राम है हमने, जहाँ जन्मे औ' खेले थे
> तजी वह क्यारियाँ जिनकी, धूलि सिर में लगाई थी।"[1]

वस्तुतः यह बाढ उस वर्ग की है जिसकी आजीविका का साधन ग्रामों में उपलब्ध नही है अथवा जो ग्रामों अथवा पर्वतीय क्षेत्रों का कष्टमय जीवन व्यतीत नही करना चाहते हैं।

विनोदचन्द्र पांडेय कूर्मांचल के नयी पीढ़ी के कवि हैं। उनकी कविताओं के दो संग्रह हैं—'बसन्त और पतझर' तथा 'सफेद चिड़िया'। उनकी कविताएँ शैली की दृष्टि से नई कविता कही जा सकती है परन्तु उनकी कविताओं में आजकल की नई कविताओं के मुख्य विषय कवि की अपनी कुण्ठाग्रस्तता, उसकी अपनी खीझ, असंतृप्ति, स्खलन का आग्रह नही है। आजकल की नयी धारा की कविताओं को पढ़ने से प्रतीत होता है कि आज के काव्य में जीवन का कोमल पक्ष या प्रेम की निर्मलता एवं जीवन में संजोई जा सकने वाली कोमल अनुभूतियों का कोई स्थान नही है। पांडेय जी की कविताओं में सरलता एवं सहज अनुभूतियों का समावेश है—

> "बरस रही है चाँदनी
> फूलों सी तुम पर,
> खोलो साँवला तन
> लगा दूँ उबटन।"[2]

अन्य कवियो मे विपिन चन्द्र, गिरीशचन्द्र जोशी, जगदीशचन्द्र जोशी, प्रदीप सटियाली, देवेश ठाकुर, देवकी नन्दन 'विकल', मनोहरश्याम जोशी, कुतुबचन्द्र 'भारती', गोवर्धन भारती, पूर्णानन्द भट्ट, 'कवि घुसेल्या', मोहनचन्द्र जोशी 'सुधाकर', मथुरादत्त जोशी, प्रदीप पंत, विनोद पंत के नाम उल्लेखनीय हैं। महिलाओं में कुमारी उमा जोशी ने अपनी रचनाओं में विरह के गीत गाए हैं तो चन्द्रा जोशी जीवन के गीत गाती हैं, गंगोत्री गर्ब्याल भी विरह भावना को ही लेकर चलती हैं। यह महान् श्रेय की बात है कि बीसवी शती के उत्तरार्द्ध मे कूर्मांचल ने काव्य जगत् को पर्याप्त संख्या में कवि एवं कवयित्रियां दी है।

---

१. सनता, अगस्त, १९४८
२. बसन्त और पतझर

खण्ड २

(क) कूर्मांचल के उपन्यासकार

१. गोविन्दवल्लभ पन्त

गोविन्दवल्लभ पन्त जी १६ उपन्यासों के रचयिता है परन्तु प्रमुख रूप से ये नाटककार ही माने जाते है। उपन्यास क्षेत्र मे पन्त जी की उपलब्धि हर दिशा मे रही है। उन्होने अपने उपन्यासों[1] की सामग्री समाज के विभिन्न क्षेत्रों से ग्रहण की है। विषयवस्तु के दृष्टिकोण से इनके उपन्यासो का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

१. **सामाजिक**—

(१) तारिका, (२) अनुरागिनी, (३) प्रगति की राह, (४) यामिनी, (५) नौजवान, (६) तारों के सपने, (७) कागज की नाव

२. **कूर्माचल की पृष्ठभूमि पर आधारित सामाजिक उपन्यास**—

(१) मदारी, (२) जूनिया, (३) जलसमाधि, (४) मुक्ति के बन्धन, (५) फारगेट मी नाट

३. **इतिहासमूलक कल्पनात्मक**—

(१) प्रतिमा, (२) पर्णा, (३) मैत्रेय

४. **ऐतिहासिक**—

(१) एक सूत्र, (२) अमिताभ, (३) नूरजहाँ

५. **प्रतीकात्मक**—

(१) चक्रकान्त

सामाजिक उपन्यासो में 'प्रगति की राह' और 'नौजवान' उपन्यासों के कथा-नायक सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करने का प्रयत्न करते है। सामाजिक जातिगत भेदभाव के प्रति उन्हें बहुत बड़ा आक्रोश है। 'तारिका' और 'तारों के सपने' उपन्यासों में पन्त जी ने फिल्म उद्योग में व्याप्त अव्यवस्था, गुटबन्दी आदि का चित्रण किया है। 'तारिका' में लेखक की प्रारम्भिक अवस्था है इसलिए इसमें फिल्म उद्योग की समस्याओं का केवल स्पर्शमात्र ही हो सका है। परन्तु 'तारों के सपने' में लेखक अधिक गहराई तक गया है। 'यामिनी' उपन्यास को लेखक ने यद्यपि वैज्ञानिकता का रंग देने का प्रयास किया परन्तु ऐसा न बन पाया। इसलिए इसे वैज्ञानिक उपन्यास की कोटि मे पूर्णतः नही रखा जा सकता।

'मदारी' और 'जूनिया' की कथा कूर्माचल के डूमों के जीवन पर आधारित है। 'जलसमाधि' एक बाल विधवा की अश्रुपूर्ण जीवन गाथा है। 'मुक्ति के बन्धन' कूर्माचल के स्वतन्त्रता आन्दोलन पर आधारित उपन्यास है।

'प्रतिमा' और 'पर्णा' दोनो उपन्यासो की कथा हिन्दमहासागर के द्वीप समूहों पर आधारित है। यद्यपि इनकी कथा ऐतिहासिक-सी प्रतीत होती है परन्तु ये उपन्यास कोई ऐतिहासिक घटना न होकर विशुद्धत: लेखक की कल्पना के चमत्कार है। 'मैत्रेय' उपन्यास में तिब्बती वातावरण का सुन्दर परिपाक हुआ है।

'अमिताभ' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमे गौतम बुद्ध की जीवन गाथा वर्णित है,

---

१. श्री पन्त के उपन्यासों को रचनाकाल क्रमानुसार हम इस क्रम में रख सकते हैं: (१) प्रतिमा, (२) मदारी, (३) जूनिया, (४) तारिका, (५) अनुरागिनी, (६) एक सूत्र, (७) अमिताभ, (८) नूरजहाँ, (९) चक्रकान्त, (१०) मुक्ति के बन्धन, (११) प्रगति की राह, (१२) यामिनी, (१३) नौजवान, (१४) जल समाधि, (१५) फारगेट मी नाट, (१६) पर्णा, (१७) मैत्रेय, (१८) तारों के सपने और (१९) कागज की नाव।

एवं एक 'सूत्र' में मुगलकाल के सम्राट् अकबर के एकता के प्रयत्नों का वर्णन है और 'नूरजहाँ' में कथानायिका की ही जीवन गाथा है।

पन्त जी की कथावस्तु एवं घटनाओं पर बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। उनके पात्रों की महात्मा बुद्ध के प्रति आस्था है। वे भारत से बौद्ध धर्म की दीक्षा के लिए तिब्बत के मठों में भी जाते है। यही कारण है कि लेखक ने अपने उपन्यासों में युद्ध, मार-काट, हिंसावृत्ति प्रधान पात्रों को स्थान नहीं दिया है।

पन्त जी चित्रकार और कलाकार भी है। उनका यह व्यक्तित्व उनके पात्रों में भी यत्र-तत्र मिलता है। उनके पात्र किसी-न-किसी कला के प्रकाण्ड पंडित है। 'प्रतिमा' का नायक एक सुन्दर मूर्तिकार है। 'मदारी' का नायक नवाब गीतकार, बांसुरी वादक है। इसी प्रकार प्रत्येक उपन्यास में कोई-न-कोई पात्र कलाकार है।

पन्त जी के उपन्यासों मे आदर्शवादिता का स्वर भी मिला है। बौद्ध धर्म एव गाँधी के अहिंसावाद से प्रभावित होकर उन्होंने अपने उपन्यासों में सदाचार को प्रधानता दी। इनके अतिरिक्त लेखक के संस्कारगत भावों का सबसे अधिक हाथ रहा है। कूर्मांचल के उच्च एवं सर्वप्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार के सस्कार लेखक की लेखनी को सदैव आदर्श की ही ओर ले गए। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में हमें कोई गति नही दिखाई देती। समय के अनुसार वे अपने पात्रों को नही ढाल सके।

पन्त जी के सभी पात्र मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं परन्तु वे सदैव संघर्ष से दूर रहते हैं। सघर्ष का सामना करते समय वे उससे बचने के लिए कोई-न-कोई युक्ति निकाल आगे बढ़ जाते हैं।

पन्त जी नाटककार हैं इसलिए उनके उपन्यासों के कथोपकथन भी छोटे-छोटे, ओजस्वी और प्रभावोत्पादक है। भाषा सरल, बड़ी ही कोमल एवं काव्यमय है। इनके सभी उपन्यासों का विशद विवेचन आगे प्रस्तुत किया गया है।

प्रतिमा (१६३३)

कल्पना की आधार-भूमि पर, कहीं-कहीं भारत, यूनान और रोम का ऐतिहासिक स्पर्श देकर, गोविन्दवल्लभ पन्त ने अपने इस प्रथम उपन्यास 'प्रतिमा' का सृजन किया है। प्रस्तुत उपन्यास की आधिकारिक कथा का उद्गम स्रोत हिन्द महासागर और गौण कथा का भूमध्य सागर है। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए दस भिक्षुओं और दस भिक्षुणियों का एक दल सिंहलद्वीप के लिए हिन्दमहासागर में उतरता है परन्तु अगाध सागर में महायान के नाविक पथ भूल कर भटक जाते हैं जिससे सभी यात्री हताश और व्यग्र हो उठते हैं। पन्द्रह दिन की विकट यात्रा के पश्चात् उन्हे प्रातःकाल की रक्तिम हेमाभा से रंजित सागर की लहरों के मध्य एक जनविहीन अज्ञात द्वीप दृष्टिगोचर होता है। वृद्ध श्रमण कनकपद्म के समान रंजित इस द्वीप को पद्म-पराग की संज्ञा देता है। द्वीप पर उतरने के बाद नाविक के हृदय में द्वीप की श्री, उर्वरता, अतुल भूमि एवं वन सम्पदा को देखकर राजत्व की लालसा अकुरित हो उठती है और वह स्वदेश लौटकर अपने कुटुम्बियों को राजसुख की आशा, सम्बन्धियों को धन एव प्रभुता का प्रलोभन, दीन एवं निम्नवर्ग के लोगों को नौकरी और भूमि का लोभ देकर शिल्पियों और सेना सहित एक सशक्त राजा के रूप मे आता है। मयक मित्र, प्रमुख भिक्षु भी वैराग्य को त्याग कर मन्त्री पद स्वीकार कर लेता है।

पद्मपराग ३०० वर्ष की अवधि के पश्चात् एक समृद्धिशाली स्वतंत्र देश के रूप में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। इस समय मयंक मित्र, मंत्री की पाँचवीं पीढ़ी में सुभद्र

और राजवंश में राजकुमारी शची हमारे सम्मुख आते है। उपन्यास की वास्तविक कथा का आरम्भ यही से माना जा सकता है। सुभद्र के पिता का बाल्यकाल में ही देहान्त हो चुका था। तत्कालीन राजा ही उसकी शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण की व्यवस्था स्वयं करता है और राजीव, एक वृद्ध सेवक को उसकी सेवा-शुश्रूषा एवं पैतृक सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए नियुक्त करता है। सुभद्र और शची बचपन के साथी थे, राजमहल, रनिवास आदि के द्वार उसके लिए उन्मुक्त थे, परन्तु जब एक दिन सुभद्र और शची के साथ मिलने में प्रतिबन्ध लगवा दिया जाता है, तो सुभद्र के भावुक हृदय को ठेस पहुँचती है और उसमें विराग उत्पन्न हो जाता है। परिणामस्वरूप एकान्तवास एवं मूर्तिकला की साधना के लिए वह पद्मप-राग बोधि शिखर पर चला जाता है।

इधर भूमध्यसागर में हैराउन, समुद्री डाकू ने रोम, यूनान राज्यों में आतंक मचा रखा था। रोम राज्य उसके दमन के लिए सशक्त सैन्यबल का प्रयोग करने की सोच रहा था। जब हैराउन को रोम राज्य की गतिविधियाँ ज्ञात हुई तो वह अपनी रक्षा के लिए हिन्द महासागर की ओर आता है और पद्मप-राग के राजा के सम्मुख जादू के खेल दिखाने के बहाने से राजा, मंत्री तथा उपस्थित सभी पदाधिकारियों और प्रमुख नागरिकों को बंदी बना लेता है और सुदक्ष शासक, निर्भीक सेनापति के रूप में राज्य संचालन करता है।

सुभद्र कई मास से बोधि शिखर में रहते हुए एकान्तवास से ऊब सा जाता है। वह समुद्रतट की ओर घूमने जाता है। वहाँ उसका जूलिया से साक्षात्कार होता है। हैराउन के राजा बनने के बाद जूलिया पुनः अपनी सहेली शची और राजीव सहित बोधि शिखर की चित्रकला देखने जाती है तो राजीव द्वीप की सारी स्थिति सुभद्र को बताता है। सुभद्र तत्काल मातृभूमि की मुक्ति के लिए उन्हीं के साथ वापस चला आता है। उसके हृदय में अपने राजा के प्रति, राष्ट्र के प्रति अपार श्रद्धा व प्रेम जाग्रत होता है। जूलिया, हैराउन की एकमात्र कन्या थी। उसे मूर्तिकला का शौक था और सुभद्र मूर्तिकार था। इसलिए सुभद्र को यूनानी देवता हर्मीज की मूर्ति बनाने का भार सौंपा जाता है तथा उसे राजभवन में ही रहने की हर प्रकार की सुविधा भी दी जाती है। सुभद्र को राजभवन के सभी गुप्त मार्ग ज्ञात थे। वह राजा को वहाँ से निकालकर पहले से तैयार किये हुये व्यापारी जहाजों से भारत की ओर भागता है। हैराउन कुछ सिपाहियों को लेकर उनका पीछा करता है, परन्तु सुभद्र अपनी दिशा बदलकर हैराउन को भ्रम में डाल देता है। वह एक व्यापारी जहाज के सैनिकों द्वारा मार डाला जाता है। सुभद्र को उस व्यापारी जहाज से हैराउन की मृत्यु का समाचार मिलता है और वह राजा सहित पुनः पद्म-पराग द्वीप में आता है और हैराउन के सेनापति ननेरस से युद्ध करता है। ननेरस भी मारा जाता है। राजा अपने पुराने वचन का स्मरण कर तथा सुभद्र की प्रतिभा, साहस, नीतिपटुता तथा राष्ट्रप्रेम पर प्रसन्न होकर उससे शची का विवाह कर देता है। शची, सुभद्र और जूलिया एक संध्या को जब नौका विहार के लिए जाते हैं तो नौका में पानी भरने से शची डूबने लगती है। जूलिया अपने प्राणों की आहुति देकर उसकी प्राणरक्षा करती है।

प्रस्तुत उपन्यास में पन्त जी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। उपन्यास का आरम्भ भारत के भिक्षुओं से होता है, जो पद्म-पराग द्वीप में स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लेते हैं और यही उपन्यास की आधिकारिक कथा है। हैराउन की कथा प्रासंगिक कथा है। उपन्यास का नायक सुभद्र भावुक, कलाकार, मूर्तिकार और दार्शनिक ही नहीं है अपितु उसके रग-रग में मातृभूमि प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई है।

"उसमें दर्शन और कला का सुन्दर योग है ।"[1] "पद्म-पराग के नए महाराज यह तुमने अद्भुत शब्द सुनाए" इतना ही उसे अपनी मातृभूमि की मुक्ति की ओर प्रेरित करते हैं । वह गुप्त रूप से किसी से परामर्श किए बिना ही अपनी मातृभूमि की मुक्ति का जाल बुनता है जिसमें वह पूर्णतया सफल भी होता है । हैराउन एक कुख्यात डाकू ही नहीं, बहुभाषा-भाषी और कूटनीतिज्ञ भी है । उसकी छलनीति का ज्वलंत उदाहरण पद्म-पराग के राज्य की प्राप्ति है, जिसे उसने बिना लड़े-भिड़े सहज ही में प्राप्त कर लिया । राजीव भी हमारे सम्मुख एक आदर्श सेवक के रूप में आता है । जो अपने स्वामी, सुभद्र के हित के लिए सब कुछ करता है । वह स्वामी रूप में ही उसका मान नहीं करता अपितु पुत्र के रूप में उससे स्नेह भी करता है ।

नारी पात्रों में शची और जूलिया प्रमुख हैं । जूलिया—हैराउन की एकमात्र कन्या है जिसके पास मानव का हृदय है । अपने पिता के कुकृत्यों पर उसे क्षोभ होता है । वह राजकुमारी बनकर रहना नहीं चाहती । हैराउन के राजा बन जाने पर वह राजकुमारी शची को और उसकी माँ को रानी और राजकुमारी के रूप में ही अपने साथ ही रखती है । उनके दुःख-सुख का ख्याल रखती है । यहाँ तक कि शची के सुख के लिए अन्त में अपने प्राणों की बलि भी दे देती है । जब वह ननेरस से हैराउन की मृत्यु का समाचार सुनती है तो केवल इतना भर कहती है—"चुप रह चिल्ला मत—अनर्थ कौन-सा हो गया ? अपनी स्वतन्त्रता किसे प्रिय नहीं ?"[2] सुभद्र भी उससे स्नेहिल मानवतापूर्ण व्यवहार पाकर कहता है— "यह शत्रु कन्या मुझे स्वर्गच्युत विभूति के समान दिखाई देने लगी है ।"[3]

पन्त जी ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में नाटकीय शैली का ही प्रयोग किया है जिससे पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं कथोपकथन में सजीवता, सबलता आ गई है । पन्त जी के इस उपन्यास से ज्ञात होता है कि लेखक पर तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव पड़े बिना न रहा । सुभद्र राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रतीक है, जो अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए अपनी अटूट साधना को भी त्याग कर तत्क्षण नगर में आ जाता है । उसे भली-भाँति ज्ञात हो जाता है कि जन आन्दोलन से राष्ट्र शीघ्र मुक्त नहीं हो सकेगा । इसलिए वह जासूस की भाँति अपनी सम्पूर्ण योजना बनाता है और केवल उसे कार्यान्वित करने के लिए अपने विश्वसनीय सेवक राजीव की सहायता लेता है । उसे यूनानी सिपाहियों से लड़ना भी पड़ता है । अन्त में वह अपने लक्ष्य में सफल होता है । सुभद्र के मौन आन्दोलन से प्रतीत होता है कि उस समय लेखक पर राष्ट्रवादियों की अपेक्षा आतंकवादियों का अधिक प्रभाव रहा । इसीलिए उन्होंने अपने नायक के कार्यकलापों का अंकन उसी प्रकार किया और सफलता से किया ।

मदारी (१६३३)

'मदारी' गोविन्दबल्लभ पन्त का कुमाऊँ के अंचल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया दूसरा उपन्यास है । उपन्यास का नायक नवाब अछूत जाति के भुलुवा का बेटा है । भुलुवा वहाँ के उस भूमिहीन अछूत वर्ग का प्रतीक है जो दिन रात गुसाईं के खेतों में अपना खून-पसीना बहाते हैं, परन्तु दाने-दाने के लिए तरसते हैं, गुसाईं के जूठे अन्न पर ही जीवित रहते हैं ।

---

१. प्रतिमा, पृ० १०३
२. वही, पृ० १५६
३. वही, पृ० १६०

वे कई बीघे खेतों को आबाद करते है परन्तु उनकी अपनी एक झोंपड़ी तक नहीं। गुसाईं की दया पर ही कई पीढ़ियों से जीते आए है परन्तु उसका बेटा नवाब किसी की इच्छा के अधीन नहीं है, सब कुछ अपनी ही इच्छा के अनुसार करता है। उसे साँप पकड़ने और पालने तथा तल्ली गाँव के किसान लोहार की पुत्री तितली के साथ बनों, पर्वतों, दुर्गम्य शिखरों में लोकगीत-द्वन्द्व करने का शौक है। गीतों के ही माध्यम से उन दोनों में आकर्षण भी है। भूलुवा अपने बेटे की इस नवाबी चाल से तथा उसके अद्भुत शौक से तंग आकर उसके साँपो के सन्दूक को नदी में फेंक देता है तथा उसे घर से निकाल देता है।

नवाब अपना फटा बिस्तर और बाँसुरी लेकर मण्डी पहुँचता है, वहाँ अपनी बुआ के लड़के के साथ रहने लगता है और दिन भर एक सपेरे के पीछे छाया के समान घूमता रहता है। कुछ दिन बाद उसे जंगल से बाँस काटने का काम मिलता है। उस गहन वन में उसे एक दिन सुमधुर, परिचित ध्वनि सुनाई देती है और फिर वेदनापूर्ण चीत्कार। नवाब उस ओर जाता है, तो देखता है जिस मदारी के पीछे वह छाया के समान फिरा करता था उसे एक काले विषधर ने डंस डाला है। मदारी अपने अन्तिम समय को निकट समझकर उसे अपना शिष्यत्व प्रदान करता है और साथ ही अपनी सम्पूर्ण जादू की पिटारी का स्वामित्व भी। नवाब मदारी की पिटारी और पगड़ी को पाकर इतना प्रसन्न होता है कि जैसे उसे विश्व का राज्य मिल गया हो। दूसरे दिन से वह अपना खेल दिखाना आरम्भ करता है। परन्तु कुछ दिनों के बाद जब वह सन्ध्या के समय अपने डेरे को लौटता है, तो एक अपरिचित व्यक्ति उस पर मदारी की हत्या का आरोप लगाते हुए कहता है—"रोजाना की कमाई में कुछ हिस्सा करो तो तुम पर भी छिपी बात को जाहिर न करूंगा, वरन समझ जाओ। मैं मदारी की प्रत्येक वस्तु को पहचानता हूँ, मुझसे तुम्हारी करतूत छिपी नहीं है। मैं मुखबिर बन कर पुलिस के सामने तेरी काली करतूत का भण्डा फोड़ करता हूँ।"[1] नवाब इस घटना से सशंकित होकर मदारी का काम छोड़कर कलक्टर का बैरा बन जाता है और घर पर ही अपना अभ्यास जारी रखता है। कुछ दिन बाद वहाँ से भी नौकरी छोड़कर अपनी पिटारी सहित अपने गाँव वापस चला जाता है। गाँव के लोग उसके जादू की सराहना करते हैं परन्तु माता-पिता उसके सर्प-स्नेह को देखकर चिंतित एवं व्याकुल होते हैं। भुलुवा अपने बेटे के लिए तितली की सगाई ५०० रु० में करता है। नवाब अपनी चिर परिचिता से विवाह की बात सुनकर ५०० रुपए कमाने के लिए अल्मोड़ा चला जाता है। वहाँ अपनी पिटारी एक दुकान में रखकर वह नौकरी ढूंढने चला जाता है। वहाँ रात को चोर दूकान की चोरी करते हैं। उसका सन्दूक तोड़ते हैं जिससे सभी साँप भाग जाते है। अब नवाब के पास जादू की सामग्री के नाम पर बीन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह जाता है। इसलिए वह वनौषधि बेचकर धन कमाने का इरादा करता है और दूसरे दिन ही वन से विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियाँ, पत्ते लाकर तेल, रामबाण बारूद और पतह का बीज तीन औषधियाँ बनाकर पुनः मण्डी को रवाना होता है। मण्डी में उसे एक जिप्सी लड़की ताइजो मिलती है, जो उससे सान्निध्य स्थापित करना चाहती है। परन्तु नवाब से अपेक्षित व्यवहार न पाकर वह उस पर चोरी का आरोप लगाती है। नवाब उस आरोप से तो बरी हो जाता है किन्तु ताइजो उसे चाकू से घायल कर भाग जाती है। नवाब अस्पताल में ठीक होने पर पुनः कुछ दिन के लिए पुराने

---

१. [illegible]

कलक्टर साहब के यहाँ नौकरी करता है। फिर वह तोष बाबू के साथ एक ड्रामा कम्पनी 'दी ग्रेट ईस्टर्न मैजिक कम्पनी' खोलता है और कुम्भ मेले में जाता है। परन्तु वहाँ प्रथम दिन का कार्यक्रम समाप्त करने के बाद आग लग जाती है। नवाब पुनः अपनी दवाई बेचकर २०० रुपया इकट्ठा करता है और १५० रुपए तोष बाबू देते है। नवाब प्रसन्न होकर घर वापस आता है और तितली से विवाह कर आनन्दित हो उठता है।

लेखक ने कुमाऊँ के भूमिहीन डूमों की शाश्वत समस्या का चित्रण करने का प्रयास किया है। परन्तु नवाब की नवाबी शान के चित्रण में इस शाश्वत समस्या का केवल स्पर्श मात्र ही हो सका है। कथावस्तु के दृष्टिकोण से यह उपन्यास आंचलिक उपन्यासों के समीप ठहरता है। इसमें कूर्मांचल की समस्या—भूमिहीन किसान, कन्या विक्रय, आदि समस्याओं को उठाया गया है, परन्तु विवेचना नहीं की गई है। नवाब और तितली के गीत संग्राम लोकगीतों के ही हिंदी रूपान्तर हैं। वन-पर्वत शिखरों का वर्णन सुन्दर चित्रात्मक ढंग से हुआ है। वनस्पति आदि के नाम में प्रचलित आँचलिक शब्दों का ही प्रयोग किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, जिससे कथा प्रवाह में सम्बद्धता, रोचकता एवं सत्यता है। सम्पूर्ण कथा नायक के ही चारों ओर घूमती है। वह किसी की इच्छा के अधीन नहीं रहता, सब कुछ अपने मन से करता है। उसकी इसी प्रवृत्ति को देखकर उसे लोग नवाब कहते है। नवाब अक्खड़ प्रकृति का युवक है। जाति-पाँति के भेदभाव को वह ढोंग समझता है। वह मानता है कि यह बड़ा-छोटा दर्जा मनुष्य का बनाया हुआ है।

लेखक ने उपन्यास के नायक को सदैव संघर्षों से दूर रखने का प्रयत्न किया है। उसे भटकने नहीं दिया। उसके सामने विकट परिस्थितियाँ आने नहीं दीं। मदारी की हत्या का आरोप लगाने वाले व्यक्ति से बचने के लिए नवाब कलक्टर के यहाँ नौकरी कर लेता है। जिप्सी लड़की उस पर चोरी का अभियोग लगाती है तो वह उससे बदला लेना छोड़कर स्वयं ही धर्मशाला छोड़ देता है। कुम्भ मेले में उनकी थियेटर कम्पनी पर आग लगने से वहाँ दवाई का काम आरम्भ करता है जिससे नायक का चरित्र दुर्बल हो गया है। फिर भी नवाब एक सच्चे प्रेमी, कुशल मदारी और कुशाग्रबुद्धि व्यवसायी के रूप में हमारे सम्मुख आता है। वह अपनी धुन का पक्का है। अपनी धुन के पीछे वह किसी की भी परवाह नहीं करता। किसी-न-किसी प्रकार अपना रास्ता निकाल ही लेता है।

मुखिया पुरानी लकीर का फकीर है। जमींदार वर्ग का प्रतिनिधि है। भुलुवा उसका दास है। वह जाति-पाँति का कट्टर समर्थक है परन्तु उसके पूजा गृह में साँप के घुस जाने पर उस कट्टरपंथी की नींव भी हिल जाती है। नवाब को अपने पूजागृह में जाने देता है केवल इतना भर कहता है—"यह मेरा पूजाघर है। ठाकुर जी की ओर मत बढ़ना, किसी चीज को मत छूना।"[1]

उपन्यास में समाज का चित्रण अधिक नहीं हो पाया। केवल स्पर्श मात्र ही किया गया है। पन्त जी ने भूमिहीन डूमों का उल्लेख मात्र किया है और कन्या विक्रय की चर्चा मात्र की है। पर्वतीय क्षेत्रों की ये शाश्वत समस्याएँ काले विषधर के समान आज भी अपना फन उठाए हुए मध्यम एवं निम्नवर्ग के समाज को डंस रही हैं।

---

१. मदारी, पृ० ३०

जूनिया (१६४०)

गोविन्दवल्लभ पन्त का तीसरा उपन्यास जूनिया कुमाऊँ में ईसाई मिशनरी के धर्म प्रचार की कथा पर आधारित है। इसमें डूम (अछूत) जाति के एक ऐसे भूमिहीन किसान की जीवनगाथा है जो कई एकड़ भूमि में अन्न पैदा करता है अपना सा समझकर, परन्तु उसके पास रहने के लिए अपना मकान तक नहीं। केवल गुसाईं के जूठन और उतरन पर ही अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह करता है। गुसाईं ही उसका स्वामी, दाता, विधाता सब कुछ है। इसी जाति के जूनिया को यह ऊँच-नीच की भावना असह्य है। उसके मन में बाल्यकाल से ही गुसाईं वर्ग के प्रति विरोध की भावना उत्पन्न होती है और यह भावना उस समय और भी अधिक उग्र रूप धारण कर लेती है, जब जेठ की कड़ी धूप में प्यास से तडपता हुआ गुसाईं की बावड़ी से एक अंजली पानी पीने पर फटकार ही नही पाता, अपितु उस पर बुरी तरह से मार भी पड़ती है। जूनिया गुसाईं का काम करना बन्द कर देता है और चौमुखिया के लोहार के पास मिस्त्री और लोहार का काम सीखने चला जाता है, परन्तु भाग्य की विडम्बना और परिस्थिति की विवशता के कारण एक साल बाद पिता के देहान्त होने पर गुसाईं के सम्पूर्ण कार्य का दायित्व उसे ही सम्भालना पड़ता है। इसी बीच एक बार कैप्टेन हावर्ड उधर नरभक्षी शेर का शिकार करने आते है। हाँका मारने वालों में जूनिया भी जाता है परन्तु रात के समय जब जूनिया शेर को अपनी ओर आता हुआ देखता है तब अपनी प्राण रक्षा के लिए शिव मन्दिर में घुस जाता है। दूसरे दिन सारे गाँव में, सारे क्षेत्र मे, जूनिया के शिव मन्दिर में घुसने की बात दावानल की भाँति फैल जाती है। गुसाईं जी के क्रोध का पारावार नहीं रहता। यह बात सुनकर वह अपने सेवक को आज्ञा देता है —"ले आ मेरी लाठी। ले आ। मैं इस चंडाल को जीता नहीं छोड़ूँगा।"[1] इन सारी बातों को जानकर जूनिया बेबसी, असहाय, निराश्रित स्वर से अपनी स्त्री सानी से कहता है—"सानी! इस गाँव से अब हमारा अन्न जल उठ गया है। मैं चौमुखिया जा कर गुसाईं की तलाश करता हूँ। तुम मेरे आने तक लोटा, तवा, नोन, तेल, कपड़ा, कम्मल आदि बाँध कर रख लेना।"[2]

जूनिया अब इस बात का दृढ़ निश्चय कर लेता है कि वह चाहे भूखा ही मर जाए पर किसी का हल नही जोतेगा। अपने लिए खेती लगान पर लेगा, या कारीगर का काम करेगा। इस दृढ़ निश्चय के ही अनुसार जूनिया चौमुखिया आ जाता है। वहाँ अपने नए गुसाईं को साफ़-साफ़ शब्दों में कहता है—"सरकार, मै हल अब नहीं चलाऊँगा। राज-मजदूर का काम करूँगा। बढ़ई का काम सीखा है मैंने।...उधर झरने के पास ही जो आपका खेत है उसमें एक झोंपड़ी खड़ी करने की आज्ञा दीजिए।"[3] कुछ दिन बाद चौमुखिया में ही अपनी जाति के चाचा परभू (पीटरलाल) से उसकी भेंट होती है। पादरी स्टेनली की कृपा से प्रभावित होकर परभू ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था और अब धर्म प्रचारक के रूप मे पर्वतीय क्षेत्र के भोले भाले समाज-शोषित व्यक्तियों को धर्म परिवर्तन कराने में लगा था। जूनिया की करुण कथा सुन कर वह कहता है—"जूनिया, मैं तुझे मार्ग बताऊँगा। मैं तुझे ऐसे स्वामी के निकट ले चलूँगा जिसके सामने धनी-निर्धन, गोरा-काला, ऊँच-नीच सब समान

---

१. जूनिया, पृ० २८
२. वही, पृ० २६
३. वही, पृ० ३३

हैं। जो सबको सम भाव से अपने प्रकाश मे तेजवान बनाता है। उसकी दया का अन्त नही, उसकी प्रभुता का अनुमान नही हो सकता, तुम उसी की शरण लो, तुम्हारे सारे दुख-द्वन्द्व छूट जाएँगे। वह परमेश्वर का एकमात्र पुत्र प्रभु ईसा मसीह है।"[1] परन्तु जूनिया में परम्परागत रूढ़ियों के बन्धन तोड़ने का साहस नहीं होता और कहता है कि—"अपने बाप-दादो का धर्म बदल दिया तो लोग क्या कहेंगे।"[2] और उसकी पत्नी धर्म परिवर्तन की बात सुनकर हक्की-बक्की सी रह जाती है और आश्चर्यपूर्वक—"ई-मा-ई हो जाएं ? धर्म परिवर्तन कर लें ?"[3] जूनिया चौमुखिया में राज-कारीगर का काम करता है। उसकी पत्नी साग-सब्जियाँ पैदा करती है। परन्तु इतना करने पर भी वह गुसाईं की जमीन का लगान नहीं दे सकता। विवशतापूर्वक उसे अपनी पत्नी के हाथो के चाँदी के कड़े निकालने पड़ते है ताकि वह उन्हे बेचकर लगान दे सके। अपने एक मित्र के साथ वह मेले में जाता है, और वहाँ जुए मे दोनो कड़े हार जाता है। अब अपनी स्थिति को खाई और कुएँ के बीच मे देख कर उसे एकमात्र सहारा अपने परभू चाचा पर ही होता है। वह अल्मोड़ा जाता है परभू से ईसाई बन जाने की इच्छा प्रकट करता है और उसका बपतिस्मा होता है। उसका नाम मिस्टर जान रखा जाता है। अल्मोड़े के पादरी, मिशन स्कूल के हेडमास्टर दत्ता सभी से सद्-व्यवहार मिलता है और अपने चाचा से २० रुपए तथा पादरी साहब से अंग्रेजी वर्णमाला और बाइबिल लेकर वापस चला आता है। अपने घर, चौमुखिया वापस आने पर जूनिया मे बड़ा परिवर्तन हो जाता है। वह अपने लिए निम्नलिखित पाँच आदर्श निश्चित करता है—

(१) तू जूठा न खाएगा, न उतरन पहनेगा ;
(२) तू हल न चलावेगा ;
(३) तू सिर पर बोझ न रखेगा ;
(४) तू अंग्रेजी पढ़ेगा ; और
(५) तू सानी से नहीं लड़ेगा।

इन्हीं पाँचों आदर्शों के अनुसार वह चलता रहता है। वह दिन-रात अंग्रेजी का अध्ययन करता है। परन्तु आखिरकार कब तक ऐसे निभ सकता ? चौमुखिया में उसे कुछ भी काम नहीं मिला। अन्त में उसे फिर अल्मोड़ा जाना पड़ा। वहाँ पादरी साहब और मिस्टर दत्ता ने उसे स्कूल में चौकीदार रख लिया। जूनिया ने अपना अध्ययन जारी रखा। उसे कुछ दिन बाद हिन्दी टीचर नियुक्त किया गया। एक बार इन्सपेक्टर स्कूल के निरीक्षण पर आए। जूनिया के सिड़ी व्यवहार को देखकर उसके प्रतिकूल रिपोर्ट लिख गए। पादरी साहब और मिस्टर दत्ता इस बात पर क्रुद्ध हो गये और उसे अध्यापक पद से मुक्त कर, पीटरलाल की मृत्यु के बाद धर्म-प्रचारक पद पर नियुक्त कर दिया। उसकी पत्नी भी धर्म-प्रचारिका नियुक्त की जाती है। पुत्र जेम्स की भी शिक्षा का प्रबन्ध ईसाई मिशनरी की ओर से किया जाता है। जूनिया जी-जान से धर्म-प्रचार के कार्य के लिए गाँव-गाँव में जाता है। दुर्गम पर्वतों को लाँघकर, विकट पथ पर गुजरता हुआ ईसा मसीह के सन्देश को पहुँचाता है। एक बार उसे रेणुगंगा के तट पर महान् मेले में धर्म प्रचार के लिए 'मैजिक लैंटर्न आदि' सामान सहित भेजा जाता है। पादरी साहब मेला अधिकारी को उसकी यथा-सम्भव सहायता करने के लिए पत्र देते हैं। जेम्स के जिद करने पर वह रात को सरकस देखने चले

१. जूनिया, पृ० ४५.
२. वही, पृ० ४६
३. वही, पृ० ४६

जाते है और चोर चौकीदार को नशीली वस्तु पिलाकर उसका सारा सामान चुरा लेते है। जूनिया बिना [illegible] के ही अपना कार्यक्रम पूरा करने पर ही अल्मोड़ा वापस आता है। जूनिया के अल्मोड़ा पहुंचने से पूर्व ही मेला अधिकारी उसके विषय में पादरी साहब के पास अनुचित रिपोर्ट भेज देता है। इस पर पादरी साहब जूनिया पर बहुत क्रुद्ध होते है। इस प्रकार के अपमान से जूनिया की आत्मा तिलमिला उठती है और वह त्यागपत्र देकर चौमुखिया वापस चला जाता है। उसकी पत्नी और पुत्र दोनों अल्मोड़े ही रहते हैं। वह नए गुसाईं की दूकान के पास एक स्कूल खोल लेता है। वह बड़ी तन्मयता के साथ शिक्षा प्रचार का कार्य करता है। वहाँ पर भी अन्य दूकानदारो के अभद्र व्यवहार से खीझ कर और पुराने गुसाईं के आग्रह पर अपने मूल ग्राम में आ जाता है। उधर पादरी साहब को यथार्थ स्थिति का ज्ञान होता है तो वह जूनिया को वापस बुलाता है परन्तु जूनिया नही जाता। इन्हीं दिनो वह बीमार पड़ जाता है और बढ़ती हुई बीमारी की दशा में उसकी पत्नी, पुत्र और पादरी बुलाए जाते हैं। उनके पहुँचने के दूसरे दिन उसका देहान्त हो जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में आंचलिक वातावरण की सृष्टि करने में लेखक 'मदारी' की अपेक्षा अधिक सफल हुआ है। कुमाऊँ के दीन, भूमिहीन, समाज द्वारा शोषित डूमों की दयनीय दशा का चित्रण जूनिया की आत्मकथा के माध्यम से सुन्दर बन पड़ा है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा जूनिया के ही चारों ओर घूमती है। मदारी के नवाब की तरह जूनिया चालाक चुस्त नहीं है। वह एक भोला-भाला, परिस्थितियों का दास, अपनी जिद्द का पक्का है। परन्तु मदारी के नवाब की भाँति जूनिया भी संघर्ष का सामना करने की अपेक्षा दूसरा रास्ता अपना लेता है जिससे उसके चरित्र मे दुर्बलता आ गई है। जूनिया के अन्दर गुसाईं (जमींदार) वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना है जिसे वह दबा नही सकता। कुछ समय तक उनके अत्याचारों को सहता रहता है। परन्तु पराकाष्ठा में पहुँचने पर वह निस्सहाय स्वर से अपनी पत्नी से कहता है—"सानी! इस गाँव से अब हमारा अन्न जल उठ गया है।"[1] और वह गाँव छोड़ने के अतिरिक्त मुक्ति का कोई मार्ग नहीं पाता। इसी प्रकार मेला अधिकारी के झूठी रिपोर्ट देने पर पादरी जूनिया को भला-बुरा कहता है और जूनिया स्थिति का सामना नहीं करता, अपितु त्यागपत्र देकर पुनः चौमुखिया आ जाता है। वहाँ भी लोगों के तंग करने पर उनका सामना नहीं करता, बल्कि चौमुखिया भी छोड़ देता है। फिर भी जूनिया के चरित्र मे यह दुर्बलता नगण्य है। जब हम देखते हैं, वह अपने निश्चय पर दृढ रहता है और अपने कर्त्तव्य का पालन पूर्ण रूप से करता है। चौमुखिया आने पर उसने बोझ न उठाने और हल न चलाने की प्रतिज्ञा की थी जिसका पालन उसने अन्त तक किया। पददलित डूम जूनिया में महत्वाकांक्षा की भावना भी विद्यमान है। वह जीवन में प्रगति चाहता है। गिरजाघर में चौकीदारी का काम करते समय वह अँग्रेजी का अध्ययन करता है। अपने परिश्रम से मिशन स्कूल में हिन्दी टीचर बन जाता है और फिर प्रीचर। ईसाई धर्म उसने बेबसी की दशा मे ग्रहण किया था। वह अपने बाप-दादों का धर्म नहीं छोड़ना चाहता था। ईसाई धर्म ग्रहण करने के बाद उसने अपने प्रभु ईसा की ओर से जो पांच आज्ञाएँ लिखीं, उनका पालन पूर्णरूप से किया। उसें धर्म प्रचार का काम दिया गया, उसे उसने जिस तन्मयता और लगन के साथ किया वह कर्त्तव्यपरायणता का सुन्दर उदाहरण है। पादरी के शब्दों मे वह एक सच्चा ईसाई था।

---

१. जूनिया, पृ० ४५

पुरुष पात्रों में पादरी, मिस्टर दत्ता और पीटरलाल प्रमुख है जो दीनों पर दया और उनकी सहायता करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते है, यदि वे दीन, गरीब ईसाई धर्म ग्रहण करना स्वीकार करते हो। नारी पात्रो मे सानी (मिसेज जान) प्रमुख है जो स्थिति के अनुसार बदलती है, महत्त्वाकांक्षिणी है। अपने सुख का ध्यान अधिक रखती है। इसीलिए वह अन्तिम समय में भी जूनिया के साथ नही जाती, अल्मोड़े मे ही रहना पसन्द करती है।

सम्पूर्ण उपन्यास को पढ़ने से यही प्रतीत होता है कि लेखक ईसाई मिशनरियों से पर्याप्त प्रभावित हुआ है और उनका धर्म-प्रचार तथा धर्म-परिवर्तन का कार्य उचित मानता है। सम्पूर्ण उपन्यास मे ईसाई धर्म-प्रचारकों के कार्य का ही विवरण दिया गया है जिससे कुछ स्थल बोझिल एवं नीरस हो गए है। उपन्यास में वातावरण और देशकाल का ध्यान उचित रूप से रखा गया है। उसकी कथावस्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व की है। धर्म प्रचार कार्य में शासनवर्ग का कितना अधिक हाथ होता था, इस उपन्यास में स्पष्ट है। विशेषतया पीटरलाल के धर्म प्रचार का ढग बहुत ही रोचक शैली में चित्रित है। वह दीन, दुःखी, भोले-भाले किसानो को धर्म परिवर्तन के लिए तैयार करता है और ईसाई धर्म और उसके धार्मिक तत्त्वों का विवेचन बड़े सुन्दर ढंग से समझाता है। वह एक सफल धर्म प्रचारक है। जिस समय पीटरलाल कहता है—"मैं तुम्हे ऐसे स्वामी के निकट ले चलूँगा, जिसके सामने धनी-निर्धन, गोरा-काला, ऊँच-नीच एक समान हैं, उसकी दया का अन्त नही। उसी की शरण लोगे तो तुम्हारे सारे दुःख-द्वन्द्व छूट जायेंगे।"[1] इन बातों को सुनकर कौन भोला-भाला दुःखी प्रभावित नहीं होगा।

अन्ततः कथावस्तु वर्णनात्मक ढंग से कही गई है। उसमें सम्बद्धता, रोचकता, सत्यता और मौलिकता है। कथावस्तु में वस्तुविधान सुगठित है। उपन्यास चरित्र प्रधान है। पात्रों का चरित्र-चित्रण नाटकीय ढंग से हुआ है। कथोपकथन पात्रानुकूल, स्वाभाविक, और सप्राण है। कथोपकथन कथा के विकास, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। शैली सरल है।

मुक्ति के बंधन (१९४८)

कूर्मांचल में राष्ट्रीय आन्दोलन को आधार मान कर लिखा गया 'मुक्ति के बंधन' गोविन्दवल्लभ पन्त जी का दसवाँ उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में काल्पनिक पात्रों के माध्यम से कुमाऊँ में विशेष कर अल्मोड़ा, रानीखेत, ताड़ीखेत, द्वाराहाट आदि स्थानों में १९वीं शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक के स्वतंत्रता संग्राम का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में कुमाऊँ के स्वतंत्रता आन्दोलन का जनक स्वामी सत्यदेव को माना गया है। स्वामी जी जन-जन में स्वतंत्रता का प्रचार करते थे। उनके ओजस्वी एवं प्रभावशाली भाषणों से नगर में दिन-प्रति-दिन उनकी ख्याति बढ़ने लगी। नगर के एक नेता विशाल जी ने राष्ट्रीयता की उमंग में सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। वे स्वामी जी से द्वेष रखने लगे। अतः तुरन्त ही डिप्टी कमिश्नर से मिले और स्वामी जी को ब्रिटिश राज्य का द्रोही बताया। इन्हीं दिनों द्वाराहाट के एक दीन ब्राह्मण का पुत्र, अल्मोड़ा के गवर्नमेंट हाई स्कूल का छात्र, किशोर स्वामी जी के संपर्क में आता है। स्वामी जी के भाषणों एवं

१. जूनिया, पृ० ४५

राष्ट्रीयता से प्रभावित होकर वह भी देश की मुक्ति के लिए स्वामी जी का पथानुगामी बन जाता है। स्वामी जी भाई सम्प्रदाय की स्थापना करते हैं। स्वामी जी की कुटिया में भाई सम्प्रदाय की बैठक होती है। विशाल जी की रिपोर्ट पर पुलिस वहाँ छापा मारती है। कुमार और स्वामी जी के अतिरिक्त भाई सम्प्रदाय के सभी सदस्य भाग जाते हैं। स्वामी जी किशोर की इस निर्भीकता पर अत्यन्त प्रसन्न होते है। हाई स्कूल की परीक्षा देने के बाद कुमार अपने पिता को सूचना दिये बिना ही देश सेवा का व्रत लेकर आगरा के निकट सोनिया आश्रम मे पहुँचता है। वहाँ आश्रम में सभी प्रकार की बुनियादी शिक्षा ग्रहण करता है, परन्तु वह स्वभावत: नारी जाति से घृणा करने लगता है। उस आश्रम में भारत के विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों के अलावा एक विदेशी महिला भी कार्य करती है जो कुमार के इस प्रकार के अवांछित व्यवहार से अचम्भित होकर उससे घनिष्ठता बढ़ाने का प्रयत्न करती है। उसके इस लज्जालु स्वभाव के निराकरण के लिए उसके साथ बातचीत का अवसर ढूँढती रहती है। एक बार अर्द्ध रात्रि के समय वह कुमार के पास आती है। बस इस घटना के बाद कुमार के लिए उस आश्रम में रहना दुष्कर हो जाता है और वह आश्रम से भी भागकर पुन: अपनी जन्म-भूमि द्वाराहाट को वापस आता है। उधर विशाल जी और उनकी लड़की लक्ष्मी देश की स्वाधीनता के लिए गाँव-गाँव में आजादी का डंका बजाते हैं और रानीखेत के समीप ही एक आश्रम भी स्थापित करते हैं। कुमार को समानधर्मी पाकर विशाल जी उसे आश्रम के पुरुष विभाग का प्रधान नियुक्त करते हैं और महिला विभाग की प्रधान कार्यकर्त् स्वयं उन्हीं की पुत्री लक्ष्मी होती है। आश्रम के संचालक विशाल जी आश्रम की प्रगति तथा देश की स्वतंत्रता के प्रचार में रत रहते हैं। एक बार अल्मोड़े में कुमार के ओजस्वी भाषणों के कारण उसे बन्दी बना लिया जाता है और उसे ३ वर्ष के कारावास का दण्ड दिया जाता है। शासकवर्ग द्वारा सम्पूर्ण आश्रम नष्ट कर दिया जाता है। जेल-यात्रा से लौटने के बाद कुमार आश्रम की दशा पर द्रवित हो उठता है और शासक वर्ग की कटु आलोचना करता है। उसे गिरफ्तार करने के लिए पुलिस उसका पीछा करती है परन्तु वह गाँव-गाँव में आजादी की ध्वनि फूंकते हुए सुदूर तिब्बत क्षेत्र में चला जाता है। वहाँ आत्मशक्ति के लिए बौद्ध मठ में बौद्ध-धर्म एवं बौद्ध-दर्शन का अध्ययन करता है। परन्तु उसे वहाँ भी शान्ति नहीं मिलती और पुन: स्वदेश लौटता है। ठीक उसी दिन अपनी जन्म-भूमि मे पहुँचता है जिस दिन देश में स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता है। उसका बाल साथी 'भाई सम्प्रदाय' का सहकार्यकर्ता हयग्रीव उसे भारत के स्वतंत्र होने की शुभ सूचना देता है और आश्रम में कुमार भारत का तिरंगा झंडा लहराता है और वहीं पर विशाल जी अपनी लड़की लक्ष्मी का हाथ कुमार के हाथों पकड़ाते हुए कहते हैं—"तुम मुक्त हो गए कुमार, तुम्हें बधाई! लो मैं तुम्हे मुक्ति के बंधन पहनाता हूँ—अब तुम्हारी सन्तान दास न होगी।"[१]

प्रस्तुत उपन्यास कुमाऊँ के स्वतंत्रता आन्दोलन को आधार मान कर लिखा गया है। उपन्यास के स्वामी सत्यदेव को स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रचारक चित्रित किया गया है। वे एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। अल्मोड़ा, ताड़ीखेत, रानीखेत आदि स्थानों की परिधियों में ही सम्पूर्ण कथावस्तु को रखा गया है। कथा २०वीं शती के दूसरे दशक से आरम्भ होती है और स्वतंत्रता दिवस पर समाप्त होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक की घटनाएँ मुख्य कथा की पृष्ठभूमि निर्मित करती है और उसके पश्चात् ही मूल कथा

१. मुक्ति के बन्धन, पृ० ३४६

में गति आती है। घटनाओं का क्रम एवं पात्रों के चरित्र में निखार आता है। कथावस्तु में वहाँ की सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण यथार्थ ढंग से किया गया है। विशेषकर विशाल जी द्वारा ग्राम-ग्राम मे स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रचार, विशाल जी द्वारा समाज का चित्रण एवं रानीखेत के समीप आश्रम की स्थापना आदि घटनाएं यथार्थ एवं ऐतिहासिक हैं। विशाल जी, हयग्रीव, किशोर आदि ऐतिहासिक पात्र न हो कर किसी-न-किसी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की कथा नायक कुमार के चारों ओर घूमती है। कथा की प्रायः सभी घटनाएँ नायक से ही सम्बद्ध हैं। स्वामी सत्यदेव नायक के चरित्र को उभारने तथा उसके अन्दर राष्ट्रीय भावना भरने में सहायक होते हैं। कुमार बाल्यकाल से ही भारत माता का उपासक चित्रित किया गया है। पाण्डवों की नगरी द्वाराहाट मे अनेकों मंदिर विद्यमान हैं, वहाँ किशोर, ब्राह्मण का बेटा मूर्ति-पूजा का समर्थक न बन कर देवदारु के वृक्ष को ही भारतमाता का प्रतीक मान कर नियमित रूप से प्रातःकाल उसकी परिक्रमा करता है। अल्मोड़ा पहुँचकर स्वामी सत्यदेव के ओजस्वी, क्रांतिकारी एवं देश-प्रेम से परिपूर्ण व्याख्यान उसकी इस भावना को और भी सबल बना देते हैं। देश-प्रेम की दृढतम भावनाएँ ही उसे सोनिया आश्रम ले जाती हैं तथा अल्मोड़ा के समीपस्थ आश्रम के पुरुष विभाग के एक सफल अधिष्ठाता के रूप में कार्य कराती हैं। इन्हीं भावनाओं के कारण वह पराधीनता से मुक्ति के लिए देशवासियों का आह्वान करता है, जिसके कारण शासक वर्ग की कुटिल-दृष्टि का शिकार हो कर उसे जेल-यात्रा करनी पड़ती है और उसके दिन-रात के परिश्रम से निर्मित आश्रम को भी नष्ट किया जाता है। कुमार एक सच्चा देश-भक्त, स्वतंत्रता-प्रेमी एवं प्रगतिशील युवक है, परन्तु उपन्यासकार के अन्य उपन्यासों के नायकों के समान ही कुमार के अंतर्गत भी कुछ अवांछनीय दुर्बलताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। स्वतंत्रता-संग्राम में भारतीय वीरांगनाओं ने पुरुषों के कंधे से कंधा मिला कर कार्य किया। वे पुरुषों से किसी भी क्षेत्र में पीछे न रहीं। परन्तु कुमार का नारी जाति से अलगाव तथा घृणा आपत्तिजनक नहीं तो उपेक्षणीय अवश्य है। यह उसके चरित्र का सबसे बड़ा दुर्बल पहलू है। सोनिया आश्रम से रातों-रात भागने का एक मात्र कारण नारी ही है। लक्ष्मी उससे कंधा से कंधा मिला कर आश्रम का संचालन करती है। वह उससे भी सदैव अलग रहने का प्रयत्न करता है, जो व्यक्ति—"भर्ती राष्ट्र की है, पुकार भारत माता की, गुरु महात्मा जी हैं और वेतन में मिलेगी कष्ट सहिष्णुता।"[1] कहता हो उसका सोनिया आश्रम से भाग जाना तथा जेल-यात्रा से छूटने के बाद पुनः गिरफ्तारी के भय से सुदूर तिब्बत के बौद्ध मठ में आश्रय लेना उसकी निर्भीकता पर कलंक है। और वह सहिष्णुता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। कुमार जैसे स्वतंत्रता-प्रेमी देशभक्त के लिए तो संघर्षों से जूझना ही सर्वोचित था, परन्तु ऐसा न हो पाया।

स्वामी सत्यदेव उपन्यास के आदर्श एवं निर्भीक पात्र हैं। उसमें "आतंकवाद, महर्षि दयानन्द का सुधारवाद, विवेकानन्द और रामतीर्थ का आशावाद, लोकमान्य तिलक के अभय चेतनावाद की त्रिवेणी का संगम है।"[2] स्वामी जी एक भाषा, एक संस्कृति के समर्थक, साहित्य और संयम के प्रचारक हे। वे पुस्तकें भी लिखते हैं जिनमें चरित्र निर्माण, स्वावलम्बन, स्वास्थ्यसुधार, देशप्रेम, समता, स्वतन्त्रता के भाव निहित रहते हैं:—"वे अपने

---

१. मुक्ति के बन्धन, पृ० ८७
२. वही, पृ० १५

शिष्यों से प्रतिज्ञा करवाते है—"दास सन्तान पैदा नहीं करूंगा।"[1] और स्वयं इसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते है। स्वामी जी के ओजस्वी भाषण श्रोतागणों पर अपना पूरा प्रभाव डालते है। कुमार पर तो उनके भाषणों का इतना अधिक प्रभाव होता है कि वह अपनी शिक्षा भी छोड़कर सोनिया आश्रम में चला जाता है। स्वामी जी भारत की अखण्डता एव एकता के व्याख्याता है। विशाल जी जब उनका विरोध करता है तो वे उसे समझाते हुए कहते हैं—"राष्ट्रीय साधना में हम सबका योग है आपसी भेदों को भुलाकर हम सबको एक होना चाहिए।"[2] वे साम्राज्यवाद को "एक अक्षम्य अपराध" मानते हैं। जब वे भाई-सम्प्रदाय की स्थापना करते है तो उनके अनुयायी केवल दस ही होते है परन्तु वे इससे तनिक भी चिन्तित नहीं होते। वे भाई-सम्प्रदाय को सत्य, अहिंसा और प्रेम के मार्ग पर ले जाना चाहते है। "भाई-सम्प्रदाय का जन्म साम्प्रदायिकता की निकृष्टता वहाँ पर समझता हूँ जहाँ किसी विचार या आदर्श की शैली बलपूर्वक खड्ग और विधान के बल से जनता पर लाद दी जाती है।"[3] "मुझे सख्या का कोई भी लालच नहीं, प्रारम्भ मे बुद्ध के चार और ईसा मसीह के बारह साथी थे। आप जो दस युवक यहाँ पर बैठे है यदि मन प्राणों की एकता साथ ले चाहे तो फिर भारतवर्ष की दशों दिशाओं मे एक नवीन चेतना जगा सकते है।"[4] "भाई-सम्प्रदाय का मुख्य उद्देश्य भारत माता को विदेशी बन्धन से मुक्त करना है।"[5]

स्वामी जी वस्तुतः अल्मोड़ा के स्वतन्त्रता आन्दोलन के जनक वर्णित हैं परन्तु कथा के मध्य से सहसा उनका लोप हो जाना खटकता है। विशाल जी मिलिटरी दफ्तर में क्लर्क है। सरकारी नौकरी को वे दासता का प्रतीक मानते हैं इसलिए उसे छोड़कर अब इन्शोरेन्स कम्पनी के एजेण्ट है। वे मानते हैं कि "देश प्रेम अपना पुरस्कार आप ही है, विदेशी सरकार की नौकरी उसके पाठ को दृढ़तर करना है और अपने राष्ट्र के साथ विश्वासघात है।"[6] वस्तुतः विशाल जी के अन्तर्गत स्वतन्त्रता प्रेम की भावना भी स्वामी जी की ख्याति की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुई। वह अपने क्षेत्र में किसी परदेसी की ख्याति को बढता हुआ देखकर जल उठता है और कमिश्नर के पास उस पर राजद्रोह का अपराध लगाता है। स्वामी जी के चले जाने के बाद उसकी निर्भीक एवं निर्मल राष्ट्रीयता निखरती है। वह ग्राम ग्राम में देश-प्रेम की दुन्दुभी बजाता है। इतना ही नहीं वह एक आश्रम भी खोलता है। उस समय के समाज का वास्तविक चित्रण भी हमें विशाल जी द्वारा ही मिलता है—"गोरे की ठोकर से अगर काला मर जाता है तो वह अपराध गोरे का नहीं होता, अभागे भारतीय की ही दुर्बल तिल्ली का होता है।"[7] कुमार के सुदूर तिब्बत में चले जाने के बाद वह दिन रात उसकी खोज में लगा रहता है और उसके मिलने पर अपनी एक मात्र कन्या लक्ष्मी को उसे सौंप देता है।

लक्ष्मी उन भारतीय वीरांगनाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिला कर देशभक्ति का व्रत लिया।

---

१. मुक्ति के बन्धन, पृ० १९
२. वही, पृ० ४१
३. वही, पृ० ६१
४. वही, पृ० ६१-६२
५. वही, पृ० ६३
६. वही, पृ० ३५-३६
७. वही, पृ० ३७

तारिका (१९३४)

आज सिने जगत् की कथा पर आधारित उपन्यासों की बरसाती कीड़ों की तरह धूम मच गई है। फिल्म कम्पनियों के उद्भव और पतन का चित्रण गोविन्दवल्लभ पन्त जी ने अपने चौथे उपन्यास 'तारिका' में किया है। रबिन एक होटल में वेटर है। अपनी ईमानदारी, परिश्रम और सफल व्यवसायी बुद्धि के बल पर वह पहले उसी होटल का बैरा होता है, क्रमशः गाइड और मैनेजर बन जाता है। होटल के मालिक को रेस की लत है, जिससे वह ऋणग्रस्त हो जाता है और अपना होटल रबिन को बेचकर शहर छोड़कर चला जाता है। 'ईस्टर्न शू फैक्टरी' के स्वामी की पुत्री डोरा की रबिन से घनिष्ठता हो जाती है। वे एक-दूसरे पर आकर्षित होते हैं और यही आकर्षण अन्त में सगाई का रूप धारण कर लेता है। रबिन की स्वीकृति से डोरा के सम्पूर्ण कार्य चलते है। उसके भविष्य के लिए भी रबिन की ही सहमति उसके पिता के लिए आवश्यक होती है। रबिन के होटल में 'दे मार फिल्म कम्पनी' का एक साधारण एक्टर, मदन रहता है, जो अनेकों फिल्म कहानियों को अपनी लिखी हुई बताता है, और हालीवुड की बातें इस प्रकार करता है मानो कल ही वहाँ से लौटा हो। वह अक्सर कहा करता है—"मदन के पास पैसा नहीं, अगर होता तो भारतीय सिनेमा के टिकटघरों के लिए सिक्के और भीड़ दोनों सम्भालना दुष्कर हो जाता।"[1] वह फिल्म निर्माण के आशय से एक पूँजीपति के पुत्र कानजी के पास जाता है और फिल्म कम्पनी खोलने का सुझाव रखते हुए कहता है—"आप सिर्फ 'हाँ' कह दीजिए, मैं 'दे मार कम्पनी' की नौकरी आज ही छोड़ देता हूँ। देखिए बिल्कुल नई लाइन में काम करेंगे। पब्लिक की रुचि बिगाड़कर उसका पैसा खसोट लेना कितनी गन्दी बात है। हम धार्मिक फिल्में तैयार करेंगे, जिनसे जनता को नसीहत मिले, लोगों में शिक्षा फैले और हमें भी रुपया मिले।" कानजी, पहले से ही फिल्म का शौकीन था। अतः वह अपनी स्वकृति दे देता है और वे दोनों रबिन के होटल में आकर उसकी भी सहमति लेते हैं। उसी होटल में कानजी का परिचय डोरा से भी होता है। रबिन की आज्ञा से वह भी अभिनेत्री बनने की इच्छा प्रगट करती है। कानजी अपने पिता से धन के लिए प्रार्थना करता है। बार-बार के अनुनय-विनय के बाद वह भी अपनी स्वीकृति दे देता है। एक फोक्स फिल्म कम्पनी, पारस्परिक द्वेष के कारण फेल हो गई थी। उसके कैमरा सेट, रिकार्डिंग मशीन आदि का सौदा ६० लाख रुपए में हो जाता है। मशीनों के परीक्षण के रूप में 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' की शूटिंग होती है और बाद में उसका शो भी दिखाया जाता है। कानजी का पिता भी इस शो से प्रभावित होकर अपने बड़े महल 'गोल्डन पम्पास' को स्टुडियो के लिए देता है। 'दे मार कम्पनी' से मदन भी निकाला जाता है। वह फिर अपने नए फिल्म निर्माण के लिए 'अन्तर्विवाह' लिखता है। रबिन, कानजी, मदन और डोरा पात्रों के रूप में कार्य करना आरम्भ करते हैं। परन्तु पात्रों के कार्य विभाजन पर मतभेद हो जाता है। इसी मतभेद के कारण रबिन शूटिंग पर केवल एक ही दिन जाता है और दो-तीन दिन के बाद जहर खाकर आत्महत्या का भय दिखाकर डोरा को भी रोक देता है। उधर कानजी और मदन एक रात नशे में चूर होकर बिलियर्ड खेलते हैं। कानजी मदन को नशे में बुरा-भला कहता है। इसी पर दोनों में द्वन्द्व हो जाता है। कानजी अपनी पिस्तौल निकालता है और गोली दागता है—मदन नीचे गिर पड़ता है। कानजी खून-हत्या के भय से रात को ही अपने घर चला जाता है। उसी रात सारे स्टुडियो में आग लग जाती

---

1. तारिका, पृ० १२

है। सब कुछ राख हो जाता है। इस घटना के दूसरे दिन रबिन और डोरा के विवाह निमन्त्रण पर चर्च में जाते हुए कानजी को मदन मिलता है और फिर उन चारों का मिलन बड़े नाटकीय ढंग से होता है।

नवयुवकों में सिनेमा प्रेम और एक्टर बनने की लालसा एक संक्रामक रोग के समान फैल गयी है। प्रस्तुत उपन्यास मे इसका चित्रण सुन्दर ढंग से किया गया है। अप्रौढ़ मस्तिष्क और अनुभवहीन हाथों के कारण ही फिल्म उद्योग का ह्रास हो रहा है। फिल्म निर्माताओं की धन लिप्सा समाज की रुचि को दूषित कर रही है और इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप युवक वर्ग का नैतिक स्तर भी गिरता जा रहा है। पारस्परिक द्वेष तथा उचित रूप से आयोजित तथा योजनाबद्ध कार्यक्रम के अभाव के कारण ही दिन-प्रतिदिन अनेको फिल्म कम्पनियाँ बनती और बिगड़ती हैं। इन सभी बातों का उद्‌घाटन लेखक ने 'तारिका' में किया है।

प्रस्तुत उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। मदन, रबिन, कानजी और डोरा—चार पात्रों के फिल्म निर्माण की कथा है। सभी पात्र मदन के व्यक्तित्व के सम्मुख उसके हाथ की कठपुतली के समान कार्य करते हुए प्रतीत होते हैं। मदन बड़ा चालाक, और तिकड़मी है। आडम्बरपूर्ण व्यक्तित्व ही उसका सबसे अधिक आकर्षण एव प्रभावशाली है। कानजी जैसे पूँजीपति को अपने प्रभाव में लेना उसकी सबसे बड़ी चाल है। कानजी को वह किसी न किसी प्रकार तैयार करता है और कहता है—"पहली फिल्म पास हो गयी तो रुपयों का ढेर लग जाएगा और तमाम अखबारों में आपका सचित्र जीवन चरित्र निकल जाएगा।" महत्त्वाकांक्षी भावना व्यक्ति का स्वाभाविक गुण है। कानजी के इस प्रकार के भावों को बढ़ावा देकर मदन उसे अपने ही रंग में रंग लेता है। सिनेमा फौटोग्राफी की ट्रिक्स उसे भली-भाँति आती हैं। 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' के कुछ दृश्यों पर ही वह कानजी के पिता को भी प्रभावित कर अपना सारा मार्ग, सुगम एवं निष्कण्टक बना लेता है। स्टुडियो में कानजी और मदन में द्वन्द्व युद्ध होने पर फुर्ती के साथ गोली से बच जाता है। यह एक नाटकीय ढंग सा प्रतीत होता है। बेकारी से बचने के लिए किसी अन्य फिल्म कम्पनी में काण्ट्रैक्ट लेकर चला जाता है।

रबिन अपने परिश्रम के ही बल पर होटल में वेटर से स्वामी बन जाता है। वह शंकालु और अन्धविश्वासी प्रकृति का युवक है। डोरा से उसकी सगाई हुई है। उसका अहं और शंकालु स्वभाव उसे कदम-कदम पर रोकता है। यहाँ तक कि मित्र मण्डली से परिचय कराने में भी वह डरता है। डोरा को फिल्म में काम करने की आज्ञा तभी देता है, जब उसे भी पार्ट दिया जाता है। परन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि फिल्म की कहानी में डोरा का विवाह दूसरे पात्र के साथ होगा तो वह स्वयं ही फिल्म में काम करना बन्द नही करता, अपितु डोरा को भी मना कर देता है। जब वह नहीं मानती तो उससे आत्महत्या की धमकी देते हुए कहता है—"मेरी बात मान लेने का अभी विश्वास दिलाओ डोरा। नहीं तो यह देखो, यह पोटेशियम साइनाइड की शीशी है। अगर कल सुबह तुमने 'गोल्डन पम्पास' की ओर पैर बढ़ाए तो रबिन इस शीशी का विष खाकर अपने प्राण त्याग कर देगा।"[१] डोरा को विवश होकर शूटिंग पर जाना बन्द करना पड़ता है।

कानजी का अपना स्वयं का व्यक्तित्व न होकर मदन के ही हाथ के खिलौने के रूप में वह काम करता है।

डोरा 'ईस्टर्न शू फैक्टरी' के मालिक की कन्या है, जिसका अपना व्यक्तित्व है, वह कला

१. तारिका, पृ० २९

और सुन्दरता की साक्षात् मूर्ति है। मदन, कानजी उसकी सुन्दरता पर मुग्ध है। मदन फिल्म अभिनेत्री बनने की डोरा की इच्छा को जान लेता है, पर रबिन का शंकालु हृदय उसे आज्ञा नहीं देता। वह कह उठती है— "मैं सिनेमा की एक्ट्रेस बनने का निश्चय कर चुकी हूं।" डोरा फिल्म से नियमपूर्वक कार्य करती है। रबिन तथा अपने पिता के मना करने पर भी अपनी नौकरानी को साथ लेकर नियमित रूप से शूटिंग पर जाती है और अपने कर्त्तव्य पर अडिग रहती है। परन्तु जब रबिन डोरा से अपनी सगाई की अँगूठी माँग लेता है और आत्महत्या का भय दिखाता है तो विवश होकर उसे शूटिंग के लिए जाना बन्द करना पड़ता है।

लेखक ने सिने जगत् मे व्याप्त अव्यवस्था, अर्थ लिप्सा एवं पारस्परिक द्वेष का अंकन करना तथा उनके दुष्परिणामों का चित्रण करना अपना लक्ष्य रखा है जिनमे वह सफल हुआ है।

अनुरागिनी (१९४२)

'अनुरागिनी' पन्त जी का पाँचवाँ उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने समाज की परम्परा से चली आई हुई रूढ़ियों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। उपन्यास के प्रथम परिच्छेद से प्रतीत होता है कि उपन्यास की कथा १८५७ के विद्रोह के कुछ साल बाद की है, परन्तु उसके अन्तर्गत वर्णित वस्तुओं से प्रतीत होता है कि कथा २०वी शती के पूर्वार्द्ध की है। कथा के प्रारम्भ में कथाकार ने लखनऊ के सिपाही विद्रोह का सामना करने वाले नवविवाहित कैप्टेन को मरते समय लखनऊ रेजीडेंसी की दीवार पर अपनी पत्नी ऐलीस का नाम तलवार की नोक से लिखते हुए दिखाया है और कुछ समय पश्चात् उसी नाम के समीप उपन्यास का नायक बसंत भी अपनी दिवंगता प्रेयसी, लीला का नाम लिखता है। बसंत, अवकाश प्राप्त स्टेशन मास्टर का पुत्र है। बसंत के पिता विनायक शर्मा पुरानी रूढ़िवादी एवं जाति-पाँति के कट्टर समर्थक है। उपन्यास की नायिका लीला के पिता गोपाल बाबू भी इन्हीं के समान कट्टर रूढ़िवादी परिवार के हैं। परन्तु गोपाल बाबू बचपन से ही अपने इन्जीनियर मामा के पास आगरा मे पढ़ने चले गए थे। इसलिए उनके पिता जी का प्रभाव उनके मन पर शनैः-शनैः क्षीण हो जाता है। गोपाल बाबू पढ़ने लिखने में पूर्ण असफल रहे हैं अतः उनके मामा जी उन्हें मकान बनाने का ठेका दिलवा देते है। इस व्यवसाय में उसे पर्याप्त सफलता मिलती है। अब वे धनाढ्यों में गिने जाने लगते हैं और पूजा-पाठ, जप-तप आदि को ढोंग समझने लगते हैं। कुछ समय बाद गोपाल बाबू को लखनऊ में रेलवे का बहुत बड़ा ठेका मिल जाता है और वे स्थायी रूप से लखनऊ में ही रहने लगते हैं और वहाँ वे विनायक शर्मा के पड़ोस में ही एक कोठी खरीद लेते हैं। गोपाल बाबू की पत्नी देवकी और शर्मा जी की पत्नी सुन्दरी में बहुत घनिष्टता है। वे अपनी अमीरी-गरीबी को भूलकर एक-दूसरे के पास घंटों तक बातचीत करती हैं। बसंत और लीला बाल साथी बनकर खेलते हैं। गुड्डा-गुड्डी की शादी करते हैं। इधर दोनों की माताएँ भी पुत्र-पुत्री के विवाह का वायदा करती है। अनुकूल आयु होने पर यह बात दोनों के पिताओं तक पहुँचती है। दोनों सहमत हो जाते हैं परन्तु छात्रों की हड़ताल में सक्रिय भाग लेने के कारण बसंत कालिज से निकाला जाता है। उसके अन्तर्गत में एकता के बदले वैमनस्य का पाठ पढ़ाने वाली वर्तमान शिक्षा पद्धति के प्रति विद्रोह की ज्वाला धधक उठती है। उसके पिता, गोपाल बाबू तथा प्रोफेसर आदि सभी उसे समझाते हैं परन्तु वह क्षमायाचना नहीं करता और कालेज छोड़ देता है। पिता भी उसे घर से

निकाल देते है और वह गणेशगंज (लखनऊ) में एक दूकान किराये पर लेकर जीवन यापन के लिए पालिश का काम शुरू करता है। थोड़े दिनों बाद वह जूतों की मरम्मत का भी काम आरम्भ कर देता है। भीखू उसी शहर का मोची है। उसे ताड़ी, गाँजा, चरस आदि की लत है। वह ब्राह्मण के पढ़े-लिखे बेटे बसंत को ही अपनी गरीबी का कारण मानता है। बसंत उसे समझाने के कई विफल प्रयत्न करता है। ठीक उसी रात को गोपाल बाबू अपनी कन्या लीला का ब्याह जबलपुर के एक धनी परिवार में कर देते हैं। भीखू ताड़ी के नशे में बसंत के सिर पर शराब की बोतल से प्रहार कर उसे घायल कर देता है। बसंत ठीक होने पर भीखू के पास जाता है, उसे हर प्रकार से समझाने का प्रयत्न करता है कि "मैं तुम्हें उठाने के लिए ही गिरा हूँ, समझो भाई।" परन्तु वह मूढ़ एक ही रट लगाए रहता है। बसंत जूते मरम्मत करने का काम छोड़ने की प्रतिज्ञा कर अपना सामान उसी के पास छोड़कर चला जाता है, परन्तु पालिश का काम वह जारी रखता है। कुछ धन संग्रह होने पर वह रंगों के अनुसंधान का कार्य आरम्भ कर देता है। लीला का पति शराबी और उसी के शब्दों में "वह इन्द्रिय-लोलुप प्राणी है जो क्षयरोग ग्रस्त भी है।" विवाह के कुछ माह पश्चात् ही उसका देहान्त हो जाता है। वैधव्य के शापित जीवन को लेकर लीला अपने पिता के ही पास रहने लगती है। उसकी मास्टरनी मिस जगदम्बिका इंगलिश की प्रोफेसर है। उसने समस्त यूरोप का भ्रमण किया है और वह यह मानती है कि उसके प्रेमी के साथ उसका मानसिक विवाह हुआ है। वह साइकिक सेण्टर (डेनमार्क) से लीला के पूर्व जीवन का पता लगाती है जिसके आधार पर बसंत ही लीला का पति ठहरता है। उसी के सुझाव पर लीला भी साइकिक सेण्टर को लिखती है और वहाँ से उत्तर आने पर वह भी बसंत में अपने पति की आत्मा देखती है।

लीला के पिता गोपाल बाबू अपनी कन्या के वैधव्य जीवन को पुनः सधवा जीवन मे बदलना चाहते हैं। लीला को राजी करने के लिए जगदम्बिका से प्रार्थना करते हैं। जिस बसंत को वे विक्षिप्त और मूर्ख कहा करते थे अब उसके आगे-पीछे फिरते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। बसंत भी लीला से शादी करने की सहमति दे देता है। शादी की तिथि निश्चित होती है। ठीक विवाह के मुहूर्त के अवसर पर बसंत नए रंगों के अनुसन्धान के लिए चला जाता है। चारों ओर उसकी खोज होती है, पर वह नहीं मिलता। और लीला निराश होकर अपने वस्त्रों में आग लगाकर आत्महत्या कर डालती है। इसी बीच जगदम्बिका भी बसंत को ढूँढ़ने उसकी दूकान पर जाती है और बसंत को अपने साथ लाती है। परन्तु दुर्घटना की खबर सुनकर बसंत की माँ उसे विवाह की साज-सज्जा उतारने के लिए कहती है। बीच में जगदम्बिका बोल उठती है—"माँ, यह सब साज-सज्जा उपयोग में लाई जा सकती है, मैं अविवाहिता हूँ अभी तक। मैं कुलीन घर की लड़की हूँ।"[1] परन्तु सोकर जागा हुआ उत्साव फिर सो गया और भी गहरी नींद में इसके बाद।

प्रस्तुत उपन्यास में पन्त जी ने भारत की शाश्वत समस्या को जिस प्रकार लिया है वैसा अन्य उपन्यासों में नहीं लिया। इससे पूर्व के उपन्यासों में वे केवल इस प्रकार की समस्या का स्पर्श मात्र ही कर सके हैं, परन्तु प्रस्तुत उपन्यास में जिस समस्या को लिया गया है उसकी इन्होंने विशद व्याख्या एवं विश्लेषण किया है। उदाहरण के लिए, बसंत के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के दोषों को व्यक्त कर वह कहता है—"इन्हीं को हम विद्यालय कहते हैं, जिन्होंने हमें एक-दूसरे का सान्निध्य प्राप्त करना नहीं बताया, इन्होंने हमारे टुकड़े

१. अनुरागिनी, पृ० ३८८

कर दिए। इन्होंने हमे अपनी जाति से घृणा करने की अव्यक्त शिक्षा दी। बड़े भाई ने पढ़ लिखकर छोटे भाई के अधिकारों का हरण किया, पिता और पुत्र के बीच मे वैमनस्य उपजाया।"[१] "इसलिए विद्यार्थी सब मिलकर कालेज बन्द कर दे तो अधिकारियों को बाध्य होकर गुलाम बनाने वाले ये कारखाने बन्द कर देने पड़ेगे।"[२] "और इसीलिए भाइयो, हमें इस पद्धति की जड़ें हिलाकर फेंक देनी चाहिएँ, अवश्य ही हमारा बलिदान हमे कदाचित् कुछ फल न दे सके, पर आगामी सन्तान हमारे उद्योग की स्तुति करेगी।"[३] अतः बसत भी निश्चयपूर्वक कहता है—"मैं भी उस कालेज को छोड़ चुका हूँ, जिसने हमारे विकास को कुचल कर हमें भय, संकोच और दासता सिखाई।"[४]

वस्तुतः आधुनिक शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। अफसरशाही की भावना इसकी ही देन है। हमारे नेतागण भी इसे क्लर्क पैदा करने वाले कारखानों की संज्ञा देते है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी इस विषय पर सक्रिय रूप से कार्य न हो सका। वही अफसरशाही और बाबूगिरी की हवा में फाइले इधर-उधर मँडरा रही है। लेखक ने हमारे सम्मुख विद्यालयों के प्रति आक्रोश के भाव उत्पन्न करने के वातावरण का सृजन किया है और इसमे वह सफल हुआ है। वर्तमान दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में कहे गये लेखक के विचारों से प्रायः सभी एकमत होंगे। बसंत से विद्यालय छुड़ाकर और मोची का काम करवा कर लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप में उस प्रकार की शिक्षा पर जोर दिया है जिसकी उपलब्धि के बाद दीन छात्र भी बहुत कम पूँजी लगा कर जीवन यापन कर सके—"कार्य की प्रतिष्ठा हो और सस्ते श्रम करने वाला तुच्छ न समझा जाए।"[५] बसंत के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है—"मैं पैसे या पेट के लिए यह काम नहीं कर रहा हूँ। समाज मे फैले पाखंड पर चोट करना चाहता हूं। ये जो भक्ति का शोर मचाते हैं, पर जिनके भाव अशुद्ध होते हैं उनको दिखाना चाहता हूँ कि मनुष्य नीच काम करके ही पवित्र हो सकता है।"[६]

"बसंत के इस कार्य की पहले निन्दा होती रही परन्तु कुछ समय पश्चात् समाचार-पत्रों द्वारा भी प्रशंसा की गई।"[७]

"रूढ़िग्रस्त हिन्दू परिवार के लिए विधवा जीवन बहुत बड़ा अभिशाप है, कलंक है। भगवान् कदाचित् इतने निर्दय नहीं हैं विधवा पर, जितना हमारा समाज, और हम स्वयं हैं।"[८] विधुर पुरुष को पुनः शादी करने का अधिकार है, सामाजिक समर्थन प्राप्त है, परन्तु अबला नारी के लिए ऐसा करना महान् पाप है। वस्तुतः, "वैधव्य का प्रश्न भारतवर्ष का सामाजिक कोढ़ है। उसकी औषधि देश के अनेक विचारशील सुधारकों ने ढूंढ निकाली है। केवल साहसी प्रयोजनों की आवश्यकता है।"[९] गोपाल बाबू अपनी विधवा कन्या लीला का पुनर्विवाह करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें भली-भाँति ज्ञात है कि "नैतिक साहस की कमी

---

१. अनुरागिनी, पृ० ८४-८५
२. वही, पृ० ७०
३. वही, पृ० ८५
४. वही, पृ० ७२
५. वही, पृ० १९६
६. वही, पृ० १९६-९७
७. वही, पृ० १९४
८. वही, पृ० ३३४
९. वही, पृ० ३३२

हमारी कई सामाजिक बुराइयों के लिए उत्तरदायी है।"[1] परन्तु उनकी रूढ़िग्रस्त पत्नी सुन्दरी अपनी बेटी को पुनर्विवाह के लिए पूछने के बदले गोमती में कूद कर प्राण त्यागना श्रेयस्कर समझती है। इस पर गोपाल बाबू दृढ़तापूर्वक कहते हैं—"मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं। एक सुन्दरी के खो जाने से यदि बीस विधवाओं के दु:ख दूर होंगे तो मुझे वह हानि नहीं व्यापेगी।"[2]

गोपाल बाबू में नैतिक साहस और बिरादरी के लांछन का सामना करने की शक्ति है। इसीलिए वे बसंत के साथ लीला का पुनर्विवाह निश्चित करते हैं। परन्तु भाग्य की विडम्बना या लेखक के संस्कारगत आदर्श के परिणामस्वरूप बसंत विवाह के समय गायब हो जाता है, भाग्य की दुहरी मार से आहत लीला आत्महत्या कर डालती है। सामाजिक कुरीतियों का सामना करने की यही लेखक की अपनी दुर्बलता है।

उपन्यास के पात्रों में बसन्त बी० एस-सी० का छात्र है। क्रान्तिकारी विचारधाराओं का युवक है। गाँधीवाद का उस पर पूर्ण प्रभाव है। आधुनिक शिक्षा पद्धति के विषय में उसके विचार प्रशंसनीय हैं, "यह शिक्षा पद्धति हमारे कन्धों पर जुआ रखती है। इससे हमारी बुद्धि का विकास नहीं होता। यह हमें पतित और दास बनाने के लिए है, इससे हमारा आत्मविश्वास नष्ट होता है और इसने हमें अपने पैरों पर खड़ा होना भुला दिया है।"[3] परिणामत: वह अपने विद्यालय में हड़ताल करवाता है, सभाओं का आयोजन करता है, ओजस्वी व्याख्यानों से इन गुलाम बनाने वाले कारखानों की नींव हिला देना चाहता है। परन्तु विद्यार्थियों के माता-पिताओं के हस्तक्षेप तथा अध्यापकवर्ग की नीति के फलस्वरूप हड़ताल असफल होती है। बसंत अपने भविष्य की और अपने माता-पिता की तनिक भी चिन्ता नहीं करता, और अपने प्रेम की भी बलि देकर विद्यालय छोड़ देता है और गणेशगंज में एक दूकान लेकर मोची का कार्य आरम्भ कर देता है। उसके इस कार्य को देखकर उससे एक बंगाली महोदय कहते हैं, "कलियुग के ब्राह्मण, तू आर्य संस्कृति का मस्तक था। तू ज्ञान से श्रेष्ठ, तप से उज्ज्वल और त्याग से पवित्र था। आज तेरा पतन हुआ है कि तू आज दो पैसा के वास्ते लोगों का जूता रगड़ रहा है।"[4] परन्तु बसंत उसे अपना पतन नहीं समझता, क्योंकि उसका उद्देश्य है मजदूरी की प्रतिष्ठा हो, सस्ते श्रम को करने वाला तुच्छ न समझा जाय। और इस उद्देश्य में वह सफल होता है। समाचार-पत्र उसके इस महान् क्रान्तिकारी कार्य की प्रशंसा करते हैं और लोग इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि, "वह अपने पेशे को ऊँचा उठा गया है।"[5] तथा श्रम की प्रतिष्ठा होने लगी है। विधवा नारी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध की स्वीकृति बसंत का तीसरा क्रान्तिकारी एवं प्रशंसनीय कार्य है—यद्यपि कार्य सफल न हो सका। संक्षिप्तत: बसंत आधुनिक युग की प्रगतिशील भावनाओं का प्रतीक है जो ऊँच-नीच, छोटे-बड़े काम का भेदभाव त्यागकर श्रम की प्रतिष्ठा स्वीकार करता है और रूढ़िगत शिक्षा पद्धति को नई और सही दिशा देना चाहता है।

गोपाल बाबू रूढ़िग्रस्त ब्राह्मण परिवार के हैं जो समय एवं परिस्थिति के अनुसार

---

१. अनुरागिनी, पृ० ३३५
२. वही, पृ० ३३३
३. वही, पृ० ६१
४. वही, पृ० १२७
५. वही, पृ० १६६

अपने को ढालने में पूर्णतः समर्थ है। व्यवसायी वृत्ति के होते हुए भी उनमें सामाजिक कुरीतियों का सामना करने का नैतिक साहस है।

लीला हिन्दू परिवार की एक आदर्श कन्या है जो अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करने में कठपुतली के समान कार्य करती है। अपने बालसाथी बसंत के प्रणय की बलि देकर माता-पिता की आज्ञा से एक शराबी तथा क्षयरोगी से विवाह करती है, जिसका परिणाम दुःखद ही होता है। पुनः पिता के आग्रह पर वैधव्य के शापित जीवन को समाप्त करने के लिए बसंत के साथ विवाह करने को राजी होती है, परन्तु भाग्य विडम्बना से उसे अपनी आत्महत्या के अतिरिक्त हृदय के दुःखभार को कम करने का अन्य कोई मार्ग नहीं दिखाई देता।

सुन्दरी, देवकी और विनायक शर्मा तीनों पात्र रूढ़िग्रस्त हैं, जाति-पाँति के भेदभाव के कट्टर समर्थक हैं, परन्तु परिस्थितियों के वश में होकर उनकी कट्टरता की नींव भी हिल जाती है।

'अनुरागिनी' में पन्त जी ने समाज के जाति-पाँति के भेदभाव, वैधव्य जीवन तथा दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला है। बसंत के माध्यम से उन्होंने इन समस्याओं का विवेचन और विश्लेषण किया है और इनके दोष बताने के साथ समाधान भी पीछे प्रस्तुत किए हैं। शिक्षा प्रणाली के दोषों का अंकन सुन्दर एवं सफल ढंग से प्रस्तुत किया है। विधवा-विवाह के सम्बन्ध में सम्पूर्ण परिस्थितियों का निर्माण करने और गोपाल बाबू के नैतिक साहस प्रदर्शित करने पर भी उसे कार्य रूप में परिणत करने में लेखक को जो असफलता मिली है, वह सम्भवतः पन्त जी के अपने संस्कारगत विचारों का परिणाम है। रूढ़ियों को लाँघने के लिए जिस साहस की आवश्यकता होती है उसकी पन्त जी में कमी है।

अमिताभ

यह गोविन्दवल्लभ पन्त जी का सातवाँ उपन्यास है। इस उपन्यास में गौतम बुद्ध के जन्म से लेकर उनके निर्वाण प्राप्ति तक की घटनाओं का उल्लेख है। इस उपन्यास में गौतम बुद्ध की जीवन गाथा का अंकन किया गया है। अतः विषयवस्तु एवं घटना चित्रण के आधार पर इसे ऐतिहासिक उपन्यास स्वीकार किया जा सकता है। ऐतिहासिक उपन्यास की विशेषता ऐतिहासिक पात्र या घटना चयन में ही नहीं होती है, अपितु संबंधित पात्र के जीवन की घटनाओं के चित्रण में ऐतिहासिकता की रक्षा करनी भी होती है। ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना की अतिशयता उनके महत्त्व को क्षीण कर ऐतिहासिक सत्यता पर चोट पहुँचाती है।

'अमिताभ' में पन्त जी ने ऐतिहासिकता की रक्षा सफलतापूर्वक की है। बुद्ध के चरित्र-चित्रण का अंकन बहुत ही सुन्दर एवं स्वाभाविक ढंग से किया है। महात्मा बुद्ध बाल्यकाल से ही एकान्तप्रेमी एवं चिन्तनशील थे। उनकी इस प्रकृति को देख कर चारों निमित्त—बूढ़ा, रोगी, मृत एवं जोगी उनसे पृथक् रखे गए थे। इसका चित्रण पूर्णरूपेण ऐतिहासिक है। सिद्धार्थ के मन को राजसी एवं सांसारिक जाल में फँसाने के लिए उनका विवाह किया गया। पाँच कुमारियाँ—मैत्री, सुरुचि, कमलिनी, सुरभी, चित्रा अपने हाव-भाव एवं गीतों से कुमार सिद्धार्थ के मन में प्रेमांकुर उत्पन्न कर देती हैं। यह घटना यद्यपि ऐतिहासिक नहीं है, अपितु कुमार सिद्धार्थ की मनोदशा के परिवर्तन के लिए मनोवैज्ञानिक है। सिद्धार्थ का निष्क्रमण, उनको ज्ञान प्राप्त होना, धर्म प्रचार आदि ऐतिहासिक हैं। उपन्यास के

सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। तीन कथाएं व मार्ग में मिलने वाले पात्र काल्पनिक हैं, परन्तु इनकी कल्पना से कथा में किसी प्रकार की अनैतिहासिकता नहीं आती।

चक्रकान्त

यह पन्त जी का नवाँ उपन्यास है। इसे प्रतीकात्मक उपन्यास कहा जा सकता है। इसके प्रत्येक पात्र व घटना किसी-न-किसी वस्तु के प्रतीक हैं। काव्य क्षेत्र में अनेकों प्रतीकात्मक महाकाव्यों की रचना हुई है, परन्तु कथा में ऐसी कृतियों की रचना का अभाव ही रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में मानव-जाति के आखेट युग से लेकर आज तक की मानसिक, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रवृत्तियों के परिवर्तन का चित्रण है। इस चित्रण के लिए उपन्यासकार ने वज्रांक देश की कल्पना की है। मानव जाति के विकास को आखेट अवस्था से आरम्भ किया है। जैसा कि हमें राजनीतिक-शास्त्र द्वारा ज्ञात होता है कि राज्यों का उद्भव आखेट अवस्था में हुआ है। शक्तिशाली समूह ने अपनी शक्ति के बल पर राज्य की स्थापना की तथा इतिहास हमें बताता है कि पाषाण काल से शनैः-शनैः मानव सभ्यता के पथ पर आगे बढ़ा। ठीक इसी प्रकार वज्रांक देशवासी भी आरम्भ में आखेट अवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं। भूमि की उर्वरता उन्हें कृषि की ओर आकृष्ट करती है और इस प्रकार वहाँ चार वर्गों का उद्भव होता है। राजा, श्रमिक, श्रेष्ठी और गुरु।

चार वर्गों में वज्रांक देश की जनता विभक्त होती है। परन्तु इन चारों वर्गों के बीच सद्भावना एवं पारस्परिक स्नेह विद्यमान रहता है। विचार भिन्नता तथा आपसी मतभेद उनके जीवन की किसी भी दिशा में दिखाई नहीं देता है। जब उनके जीवन में भौतिकतावादी संस्कृति का उन्मेष होता है तो पारस्परिक स्नेह की शृंखला ढीली पड़ने लगती है और लेखक ने चक्र को भौतिकतावादी संस्कृति का प्रतीक माना है। चक्रकान्त और मेखला वज्रांक देश में भौतिक परिवर्तन लाते हैं। वस्तुतः भौतिकतावादी संस्कृति का उन्नायक चक्रकान्त ही है। वह जब वज्रांक के नगर में प्रवेश करता है तो उसे प्रतीत होता है कि "उस देश के उन नायकों के पास चक्र की कल्पना तो है, पर वे चक्रहीन हैं, शक्ति का रहस्य ज्ञात नहीं है इन्हें।"[1] चक्रकान्त चक्र के माध्यम से वहाँ के जन जीवन में नए यंत्रों का आविष्कार करता है। श्रेष्ठी वर्ग, जो उस देश के व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करते हैं, चक्रकान्त के अन्वेषण से लाभ उठाकर धन, सम्पत्ति में दिन प्रति दिन वृद्धि करते हैं और इस प्रकार भौतिकता के उद्भव से ग्राम और नगर के बीच एक दीवार खड़ी होती है। यह दीवार शनैः-शनैः गुरु और अन्य वर्ग के बीच भी खड़ी होती है। गुरु के मन्दिर में प्रतिदर्श उत्सव मनाया जाता है। किसान, व्यापारी तथा राजा सभी गुरु की हर प्रकार से सेवा करते हैं एवं श्रद्धाभाव रखते हैं। 'परन्तु वे भी क्षीण होने लगते हैं। यहां तक कि गुरु के आश्रमवासी ब्रह्मचारियों को भिक्षा भी नहीं मिलती। गुरु आश्रम के महोत्सव के बदले चक्रोत्सव होने लगता है। यहां तक कि 'गुरु के आश्रम की जय' का स्थान 'चक्र की जय' ले लेता है।

जनजीवन में पुनः एक मोड़ और आता है। सभ्यता का एक उन्नायक और आता है। वह है पिण्डकूट का परिवार। पिण्डकूट उबलरांती, पिण्डकूट आदि पदार्थों का प्रतीक है। उसकी पत्नी तरला उद्दीप्ति अर्थात् पेय पदार्थ और उसका पुत्र धूम्रशिख तम्बाकूगत पदार्थों को लेकर वज्रांक देश में प्रवेश करते हैं। समाज में इसके प्रचार के साथ में बहुवाद का प्रचार होता है। बहुवाद जनतंत्र का द्योतक है। जनतन्त्र की भावना उग्र रूप धारण करती है।

---

१. चक्रकान्त, पृ० २५

ग्राम, नगर, अरण्य (गुरु वास) और राजा चारो वर्गों मे तनाव उत्पन्न होता है। राजा हिमालय को चला जाता है और जनतन्त्र की स्थापना होती है। चारों वर्गो का प्रतिनिधि क्रमशः—शब्द मन्त्री, शक्ति मन्त्री, श्रमिक मंत्री और अर्थ मंत्री—करते हैं। परन्तु इस जनतन्त्र में भी प्रारम्भयुग के समान शान्ति सन्तोष नही होता। ग्रामो में नगर की अनुरूपता आ जाती है। अरण्य मे ग्राम बन जाते हैं। ग्राम नगरों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। बहुवादी ने उदीप्ति, धूम्रशिख और पिष्ठकूट को सुलभ कर जनता को विलासप्रिय बना दिया है। चक्रकान्त भाँति-भाँति के यंत्रो का निर्माण कर विलासिता को ओर बढ़ावा देता है। प्रारम्भ में नगर और अरण्य के बीच यह द्वेष उत्पन्न होता है। बाद में चारो विभागों के बीच तनाव उत्पन्न होता है। इतना ही नही घर-घर मे मनुष्य के मध्य में यह विद्रोह उग्र रूप मे फैलता है। इस विद्रोह को नष्ट करने के लिए लेखक ने समबुद्धि की कल्पना की है। वह वज्रांक देश के प्रत्येक व्यक्ति के इन्जेक्शन लगा कर उनकी बुद्धि एवं सम्पत्ति का समान बँटवरा कराता है। यह समबुद्धि साम्यवाद का प्रतीक है। लेखक इस समान स्वभाव को जनजीवन के शान्ति व सुख में बाधक स्वीकार करता है।

'चक्रकान्त' में लेखक ने इस तथ्य को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव जगत भौतिकतावादी संस्कृति के आधार पर जितना अधिक सभ्य कहलाने का अधिकारी होगा उतना ही अधिक पारस्परिक विद्रोह और अशान्ति बढ़ेगी। और यह एक कटु सत्य है कि वैज्ञानिक अनुसधान जैसे अणुबम, उद्जन बम आदि भयानक खोजों ने मानव जाति के अस्तित्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। इन अनुसंधानों के कारण सम्पूर्ण जगत् विनाश के कगार पर खड़ा है। यदि समबुद्धि से लेखक का अभिप्राय साम्यवाद से है, तो वर्तमान स्थिति को देखकर यह तथ्य भी निराधार सिद्ध होता है। अगर वर्तमान साम्यवाद से भिन्न कोई वाद लेखक के मस्तिष्क में हो तो कुछ नही कहा जा सकता। परन्तु आज तक जगत् मे ऐसा कोई मार्ग दिखाई नहीं देता जो मानव जाति में वास्तविक शान्ति ला सकता हो।

प्रगति की राह (१९४८)

'प्रगति की राह' गोविन्दवल्लभ पन्त जी का ग्यारहवाँ उपन्यास है। उपन्यास का नायक लछमिया एक दीन पहाड़ी किसान का बेटा है। वह बहुत ही चंचल, धूर्त, अनाड़ी तथा उपद्रवी है। सम्पूर्ण ग्राम उसके चंचल एवं उपद्रवी स्वभाव से तंग है। माता-पिता परेशान हैं। अन्त में लछमिया का पिता ग्रामवासियों के दिन-रात के झगड़े से बचने के लिए उसे स्कूल में भरती कर देता है। उस गाँव की पाठशाला का अध्यापक बाल मनोविज्ञान का ख्याति-लब्ध पंडित है। वह नवीन ढंग से तथा बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार ही बालकों को शिक्षा देता है। पंडित जी का एक ही नारा था, "बढ़े चलो, बढ़े चलो, नये जवान बढ़े चलो।" पंडित विद्यार्थियों की इच्छा पर ही सब कार्य करते हैं। बाल स्वभाव एवं इच्छाओं पर वे प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहते। परन्तु बाल मनोविज्ञान पर आधारित नवीन शिक्षा पद्धति लछमिया के चंचल एवं उपद्रवी स्वभाव में कुछ भी सुधार नहीं ला सकी। केवल पंडित जी के 'बढ़े चलो, बढ़े चलो' का स्वर अवश्य ही लछमिया के हृदय में गहरी छाप डाल देता है। लछमिया घर से पाठशाला—पाठशाला से घर के नित्य क्रम में "बढ़े चलो" की पूर्ति न पाकर, पाठशाला छोड़ देता है और अपनी प्रगति की राह स्वयं ढूंढ़ता हुआ तिमनियाँ चला जाता है। वहाँ मैदानी भाग से आए हुए

यात्रियों का बोझा ढोकर अपने जीवन में प्रगति लाने का निरन्तर प्रयास करता है। पंडित जी का 'बढे चलो, बढ़े चलो' का स्वर उसे हर समय आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है, उत्साहित करता है और आशान्वित करता है। कुछ दिन तिपनियाँ के वातावरण से परिचित होकर वह स्वयं एक कम्पनी खोलना चाहता है। पर्याप्त साधनों के अभाव में वह अपने मित्र मधुवा से साझीदारी के रूप में सहायता लेना चाहता है, लेकिन मित्र का उपेक्षाभाव पाकर अपनी इस आकांक्षा को छोड़ देता है। इसी बीच उसकी मित्रता हमदम से होती है जो एक यात्री मोटर का मालिक तथा ड्राइवर है। हमदम उसके उत्साह और प्रगतिशील भावनाओं से प्रभावित होकर उसे अपने साथ मोटर क्लीनर के रूप में रख लेता है और धीरे-धीरे उसे मोटर मैकेनिक का कार्य और ड्राइविंग भी सिखाता है। अब लछमिया का जीवन तिपनियाँ तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि काठगोदाम, हलद्वानी, मुरादाबाद आदि मैदानी क्षेत्रों तक बढ़ जाता है। अनेकों प्रकार के यात्रियों के सम्पर्क में आने से उसके भावों में भी प्रौढ़ता एवं कार्यनिपुणता दिन प्रतिदिन बढ़ने लगती है। कभी-कभी अपने घर जाकर वह अपने माता-पिता की सेवा करता है। उन्हें चाय, तम्बाकू भी देता रहता है। माता-पिता भी अब उससे प्रसन्न हैं। लछमिया अपनी तनख्वाह में से कुछ भी खर्च नहीं करता है। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए धन जमा करता है। तिपनियाँ में उसका सम्पर्क वेश्या परूली से होता है। उसकी प्रेरणा से वह थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना भी आरम्भ करता है। थोड़ी सी अवधि के पश्चात् हलद्वानी में वह एक सुन्दर मकान बना लेता है और मोटर भी खरीद लेता है। मकान में परूली को भी ले आता है और अपनी एक मोटर कम्पनी भी खोल लेता है। मोटर परिवहन कम्पनी के मैनेजर के रूप में हमदम को रखता है। लछमिया सामाजिक बदनामी की तनिक भी परवाह न कर परूली से विवाह करने को तैयार होता है। परन्तु परूली की इच्छापूर्ति के लिए वह उसे बम्बई फिल्म कम्पनी में तारिका बनाने के लिए ले जाता है। परूली के प्रथम चित्र इन्द्र सभा की आशातीत सफलता से उसकी माँग दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है और सिनेमा कम्पनी के निर्माता, निर्देशक उसके चारों ओर मँडराते रहते हैं। स्वार्थी परूली के लिए अब लछमिया के प्रति कोई आकर्षण न रहा। उसके लगातार उपेक्षा भाव के कारण लछमिया निराश होकर पुन: अपने जन्मस्थान को लौट जाता है और उसके साथ ही उसकी सम्पूर्ण महत्त्वाकांक्षा, उत्साह, आशा रेत की दीवार की तरह ढह जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथा के माध्यम से पन्त जी ने आधुनिक शिक्षा पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता व्यक्त करते हुए कहा है—"हमारा राष्ट्रीय शिक्षा-क्रम अभी प्रयोग की कड़ाही में पड़ा है। वह विदेशी शासन की मशीन के लिए चाहे उपयुक्त चालक बना सकता हो, आदर्श नागरिक नहीं। यह प्रकट सत्य सब पर विदित है।"[1]

वस्तुत: पाठशालाएँ ही राष्ट्र निर्माण की उद्योगशालाएँ हैं, देश का भविष्य बालकों की शिक्षा पर ही निर्भर रहता है। "राष्ट्र की जन्म-भूमि स्कूल है, समर क्षेत्र नहीं। उसका बल नैतिक बल है, पशु शक्ति नहीं। उसका उद्देश्य भी रोटी नहीं है। रोटी हमारी जीविका हो सकती है। वह हमारा जीवन नहीं है।"[2] वास्तविक जीवन हमारी शिक्षा है इसी से समाज और राष्ट्र का स्तर बनता और बिगड़ता है। अपने इसी प्रयोग के लिए पंडित जी ने सरकार से एक पाठशाला माँगी थी। सभी प्रकार की सुविधाएँ भी उपलब्ध की,

१. प्रगति की राह, पृ० १३
२. वही, पृ० १३

परन्तु अन्त में पंडित जी अपने प्रयोग की असफलता को स्वीकार करते हुए कहते है—"एक प्रयोग मैंने अपने हाथ में लिया था। वह विफल ही हो गया तो मैं क्या करूं ? मैं अधिकारियों के निकट जाकर स्पष्ट ही अपनी दुर्बलता स्वीकार कर लूँगा।"[1] वस्तुत. शिक्षापद्धति में सुधार की नितान्त आवश्यकता है जिसे भारत सरकार भी स्वीकार करती है। उपन्यासकार ने भी इस बात का समर्थन किया है। परन्तु अन्त में उसी की असफलता के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार परिवर्तन या सुधार लाने में हिचकता है। ऐसा करने का उसमें यथेष्ठ साहस नहीं। 'अनुरागिनी' में भी लेखक की इसी प्रकार की दुर्बलता मिलती है जहाँ उपन्यासकार 'विधवा समस्या' को सामाजिक कोढ़ स्वीकार करता है और विधवा विवाह के लिए परिस्थितियाँ भी उत्पन्न करता है, परन्तु अन्त में नायिका आत्महत्या कर लेती है। इन सब तथ्यों से प्रतीत होता है कि लेखक यदि साहस से कार्य लेता तो इस प्रकार की कृतियाँ सफल सिद्ध होतीं।

अन्य उपन्यासों की भाँति प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों की दुर्बलता यत्र-तत्र झलकती है। पंडित जी अपने प्रयोग को असफल पाकर आबादी को ही छोड़ देते हैं और हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों में तपस्या के लिए चले जाते हैं। यह अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। लछमिया अपने जीवन में निरन्तर बढ़ता जाता है। उसे कहीं भी असफलता या संघर्ष नहीं करना पड़ता। उसकी सफलता के लिए उपन्यासकार ने ठीक उसी प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं, जैसी उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास 'मदारी' के नायक नवाब के लिए की है। लछमिया भी ठीक नवाब के समान निरन्तर बढ़ता ही जाता है, परन्तु नवाब अपनी प्रेयसी तितली को पाने में सफल होता है जबकि लछमिया अपनी प्रेयसी पल्ली को बम्बई में गंवाकर हाथ मलते हुए अपने घर लौट आता है। उसे इतना साहस नहीं होता कि वह पल्ली को उचित मार्ग पर ला सके। कम-से-कम उसे कुछ कह तो सके। इसके बदले वह अपने चाचा से अपनी दुर्बलता को छिपाते हुए विरक्त भाव से कहता है—"त्याग ही जीवन है चाचा जी, महल से घर अच्छा है, घर से झोंपड़ी और झोंपड़ी से पेड़ तले और पेड़ तले से नक्षत्र खचित नीला आकाश...वह साक्षात् ब्रह्मा का आश्रय है।"[2]

जहाँ तक पन्त जी की अपनी कथावस्तु के विषय के चयन का प्रश्न है वह समसामयिक एवं मौलिक समस्या है। शिक्षा प्रणाली के सुधार का प्रश्न एक राष्ट्रीय प्रश्न है जिसका अंकन पन्त जी ने अपने उपन्यास के पूर्वार्द्ध में बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है, परन्तु उत्तरार्द्ध में उसकी असफलता दिखाकर विषय की गुरुता को नष्ट कर दिया है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में कथा प्रमुखतया नायक के ही चारों ओर मँडराती है। गौण पात्रों के रूप में पंडित जी, हमदम और पल्ली हैं। हमदम एक आदर्श पात्र है जो निःस्वार्थ भाव से लछमिया को आगे बढ़ाने में सदैव प्रयत्नशील रहता है। पल्ली का चरित्र यद्यपि आरम्भ में आदर्श है, वह लछमिया के जीवन में एक नई दिशा प्रदान करती है, परन्तु अन्त में वेश्या की स्वाभाविक स्वार्थवृत्ति के वशीभूत होकर लछमिया को त्याग देती है। पंडित जी का चरित्र आदर्श है—"बाल शिक्षा उनके जीवन की रुचि है—व्यवसाय नहीं।"[3] "भारतीयता के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा है। पश्चिम की रीति-नीति पर आंख बन्द कर चलना स्वीकार नहीं है उन्हें।"[4] उनके "शिक्षा प्रेम, जनता हित, सद्भाव, सच्ची लगन और निःस्वार्थ-

१. प्रगति की राह, पृ० ५२.
२. वही, पृ० १३६.
३. वही, पृ० १२.
४. वही, पृ० १२

परता" का प्रभाव था अधिकारियों पर। पंडित जी ने प्रयोग के लिए एक ग्राम पाठशाला माँगी। उन्हें दे दी गई। उसमें उन्होंने अपने ही नमूने, अपने ही क्रम और अपने ही अनुशासन का प्रचलन माँगा, वह भी उन्हें दे दिया गया—।"[1] परन्तु इस प्रकार के प्रगतिशील भावना प्रधान व्यक्तियों को असफलता से भयभीत होकर पुनः साहस से काम लेना नहीं दिखाया गया, बल्कि बस्ती से ही उसका निष्कासन दिखाकर उसके उज्ज्वल चरित्र को एकदम अन्धकारमय कर दिया गया।

सामाजिक चित्रण विशेषकर पुराने समय और आजकल के ग्रामों का चित्रण कुशल ढंग से किया गया है। ग्रामों में पहले के समान पारस्परिक स्नेह, निश्छल व्यवहार न रहा। नए-नए व्यसनों ने उन भोले-भाले निश्छल व्यक्तियों को अपना घर बना डाला। उपन्यासकार ने जहाँ भी इस प्रकार के स्थलों का वर्णन किया है वे सजीव बन पड़े हैं। जैसे—"कैसी रंग भरी चाल से चाय ग्रामों के भीतर घुस पड़ी थी। ये पहाड़ों के ग्राम, दूध-दही की नदियाँ बहती थीं यहाँ। वे स्रोत कहाँ सूख गए? वह श्री कहाँ विलीन हो गई? अधिक से अधिक पानी में कम-से-कम दूध मिलाकर कुछ चीनी और पत्ती के संयोग से हमने उसे यह नाम दिया है! जहाँ दूध-दही अतिथि सत्कार का प्रमुख साधन था, वहाँ आज चाय के गिलास पर गिलास बढ़े चले आते हैं। क्या यही हमारे बढ़ने का चिह्न है।"[2]

लछमिया का पिता काली कुमाऊँ से बाढ़ और अकाल से त्रस्त होकर आया था। गाँव के प्रधान ने उसे भूमि दी थी और जीने का ढाढ़स बंधाया था। लछमिया का पिता प्रधान के खेत जोतता था, जिन्हें अब लछमिया को जोतना चाहिए था। पिता लछमिया से प्रधान का हल जोतने को कहता है तो उस समय उसका क्रान्तिकारी रूप स्पष्ट दिखाई देता है। वह अपने पिता से कहता है, "तोड़ दो इस परम्परा को, यह सिक्का घिस गया। इसके अंक मिट गए, यह अब नहीं चल सकता। आशीर्वाद एक कोरी राख है। इतने वर्षों से उनके आशीर्वाद जमा करते जा रहे हो। उनसे क्या फल मिला है? वही टूटा तवा और फूटा तसला तुम्हारी सम्पत्ति है। ओढ़ने को फटा गूदड़ और बिछाने को पुआल। आपकी गुलामी अब आप ही तक समाप्त हो गई। आपकी सन्तान अब उसे जारी नहीं रख सकती।"[3]

नौजवान (१९५२)

भिक्षा वृत्ति की समस्या को लेकर लिखा गया 'नौजवान गोविन्दवल्लभ' पन्त जी का तेरहवाँ उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक 'नौजवान' भीख पर ही निर्भर है। वह फुटपाथों पर गाना गाता है। चम्पा एक भिखारिन लड़की है। जगराम, जयहिन्द बीड़ी कम्पनी के मालिक हैं। भूधर 'भूधर एण्ड कम्पनी', बाल मेकर्स का स्वामी, कर्मचारी सब कुछ स्वयं ही है। प्रो० जोश 'एण्टी निकोटीन सोसायटी और लेबोरेटरी' का संस्थापक एवं संचालक है, जिसका उद्देश्य धूम्रपान की बुरी आदतों और दुर्गुणों से लोगों को बचाना है और जयहिन्द बीड़ी कम्पनी का लक्ष्य अधिक-से-अधिक लोगों को धूम्रपान की आदत डालना है। इस प्रकार जयहिन्द बीड़ी कम्पनी और एण्टी निकोटीन सोसायटी में सैद्धान्तिक प्रतिस्पर्धा है और इसी प्रतिस्पर्धा को व्यक्त करने के लिए लेखक ने दुहरी कथा प्रणाली का प्रयोग किया है।

१. प्रगति की राह, पृ० १४
२. वहीं पृ० ४
३. वहीं, पृ० १३०

'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' का मालिक जयराम गान को फुटपाथों पर सोने वाले, अनिच्छा से दी हुई भीख पर जीने वाले उन अनाश्रितों को अपनी फैक्टरी में रखता है, जिन्हें अपने माता-पिता या अपना वास्तविक नाम तक ज्ञात नहीं है। सेठ जयराम का उद्देश्य उन अनाश्रितों को आश्रय देकर केवल अपना व्यवसाय ही बढ़ाना नहीं है, अपितु वह उनको एक नया प्रकाश देकर उनमें दिव्य आत्मा का संचार कर उनका शारीरिक, आत्मिक और मानसिक विकास भी करना चाहता है। १० बजे प्रातः से ५ बजे सायं तक काम के घंटे निश्चित हैं। उनका दैनिक कार्यक्रम—प्रातः प्रार्थना, स्कूल, भोजन, काम, खेल, पूजा, प्रार्थना आदि—घड़ी की सुइयों के साथ नियमित रूप से चलते हैं। फैक्टरी में अन्य लड़के-लड़कियों की तरह जयराम नौजवान और चम्पा को भी लाता है। चम्पा के फैक्टरी में प्रवेश करने पर भूधर के मन में 'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' के प्रति द्वेष भावना उत्पन्न होती है और वह सेठ को हानि पहुँचाने के निमित्त तथा उसकी प्रतिस्पर्धा के रूप में बीड़ी बनाने की मशीन का आविष्कार करने के लिए दिन-रात काम करता है। वस्तुतः वह चम्पा पर आकर्षित था। उसकी वासना वृत्ति के शिकार को सेठ जयराम ने नई दिशा, नया जीवन दिया था। सेठ जयराम की फैक्टरी में लड़की और लड़कों के अलग-अलग विभाग हैं। खान-पान, रहन-सहन आदि की व्यवस्था तथा अध्यापिका और अध्यापक भी पृथक्-पृथक् हैं। उन्हें एक-दूसरे को देखने तक की आज्ञा नहीं है। सन्ध्या समय निकोटीन देवी की सामूहिक प्रार्थना करते समय उनके तथा अध्यापक-अध्यापिका की आँखों पर पट्टी बँधी रहती है ताकि वे एक-दूसरे को न देख सकें। कुछ समय बाद उन लड़के-लड़कियों में प्रकृति के विरुद्ध इस नियम के प्रति विद्रोह की भावना उभर आती है। लड़कों का कमाण्डर नौजवान और लड़कियों की चम्पा बनती है। लड़के फुटबाल की किक के माध्यम से लड़कियों के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। दोनों पक्ष व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए सेठ जी से सामूहिक प्रार्थना करते हैं। सेठ जी उन्हें एक-दूसरे को स्पष्ट देखने के बदले आँखों में पट्टी बाँध कर अन्धा फुटबाल खेलने की आज्ञा देते हैं। अध्यापक और अध्यापिकायें अम्पायर बनते हैं। उनकी आँखों पर पट्टी बंधी हुई नहीं है। प्रत्येक लड़का प्रत्येक लड़की से परिचय लेता है हाथ मिलाकर। अम्पायर भी पहली बार एक-दूसरे को देखकर आकर्षित होते हैं और अपनी सी ही दशा देखकर लड़के-लड़कियों के पारस्परिक परिचय में बाधा नहीं देते हैं। इस पर भी जब उन्हें सन्तोष नहीं होता तो वे अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए हड़ताल करते हैं, सारे नगर में प्रदर्शन करते हैं। तब तक भूधर भी मशीन का आविष्कार कर लेता है। इसलिए भूधर भी आन्दोलनकारियों के रोष का शिकार होता है। भूधर की मशीन सेठ जयराम २० हजार रुपये में खरीदने के लिए अपने मुन्शी को भेजते हैं, परन्तु चम्पा, जिस पर भूधर आकर्षित था, उसके पास जाकर कहती है—"अगर मशीन तोड़ दो तो मैं अपना जीवन तुम्हें समर्पित कर दूँगी।" भूधर मशीन को तोड़ देता है। भूधर और चम्पा की शादी हो जाती है। नौजवान भी चम्पा पर मोहित था परन्तु वह चम्पा को न पा सका। इसलिए वह फैक्टरी छोड़कर अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाता है। सड़कों पर भीख माँगता हुआ, बीड़ी के टोटों से धुआँ निकालता हुआ दिखाई देता है और सेठ जयराम शेष ६ लड़के-लड़कियों और अध्यापक-अध्यापिका को विधिवत् वैवाहिक सूत्र में बाँध देता है।

उपन्यास की दूसरी कथा प्रो० जोश के एण्टी निकोटीन सोसायटी के कार्यकलाप तक ही सीमित है। प्रो० जोश सेठ जयराम का चचेरा भाई है। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को सेठ जयराम की बीड़ी के विरुद्ध प्रचार में समाप्त करता है। नं० गजानन, रामन वकील

और बसंत (वकील साहब का पुत्र) ही केवल प्रो० जोश की 'एण्टी निकोटीन सोसायटी' के सदस्य हैं जो कुछ समय तक धूम्रपान त्याग देते है. परन्तु बाद मे पुन. आरम्भ कर देते है। इस प्रकार प्रो० जोश के सम्पूर्ण प्रयास असफल ही रहते है।

प्रस्तुत उपन्यास में पन्त जी ने भिक्षावृत्ति के सामाजिक कोढ का चित्रण किया है। समस्या का सुन्दर समाधान भी प्रस्तुत किया है। 'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' के स्वामी जयराम का सड़कों के भिखमगों को इस प्रकार काम देना, उनके जीवन में नई चेतना प्रदान करना, महान् समाज सुधारक का कार्य है और इस समस्या का एक सुन्दर समाधान भी। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दुहरी प्रणाली का प्रयोग करने का प्रयत्न किया परन्तु दोनों कथाएँ अन्योन्याश्रित न होकर स्वतन्त्र हैं। 'जयहिन्द बीडी फैक्टरी' और 'एण्टी निकोटीन सोसायटी' में सैद्धान्तिक मतभेद है और प्रो० जोश जयराम का चचेरा भाई है। इतना ही सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त इन दोनो कथासूत्रो, पात्रो अथवा घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध नही है। दो स्वतन्त्र कहानियों को एक ही पुस्तक में कथा के अनुच्छेदों को एक-दूसरे के बाद लिखा गया है। 'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' की कथा प्रमुख है और 'एण्टी निकोटीन सोसायटी' की गौण। दोनों में सम्बद्धता नही है। पन्त जी दुहरी प्रणाली का प्रयोग करने में असफल रहे हैं।

पात्रों में सेठ जयराम मानवता का पुजारी, समाज सुधारक और परिश्रम का उपासक है। चम्पा को अपनी फैक्टरी में काम पर रखते समय स्पष्ट कहता है—"मैं मेहनत का पुजारी हूँ।"[१] समाज सुधारक के रूप में वह "उन रात को फुटपाथों पर सोने वालों और उन अनाश्रितों को रखता है, जिन्हें अपने माँ-बाप का नाम तक ज्ञात नहीं।"[२] तथापि वह उनकी असहाय अवस्था का उपयोग अपने स्वार्थ या धनलिप्सा मे नही करता। मानवता के सच्चे पुजारी के रूप में "उनके अन्तर्गत एक नया प्रकाश, दिव्य आत्मा का संचार और उनकी शारीरिक, आत्मिक और मानसिक प्रगति करना चाहता है। उनके नाम पर हर माह उनके वेतन को पोस्ट आफिस में जमा करता है ताकि वे अपने गृहस्थ जीवन में भी प्रवेश पा सकें।"[३] अन्त में उनका विवाह भी कर देता है। इस प्रकार सेठ जयराम हमारे सम्मुख एक आदर्श पात्र के रूप में आता है। लेखक ने उसके माध्यम से भिक्षावृत्ति के समाधान का उपाय सुझाया है तथा उसकी सफलता भी दिखाई है।

नौजवान उपन्यास का नायक है। "सारे दिन भीख माँगना फुटपाथों पर और वही उसका घर-द्वार है। उसकी सारी सम्पत्ति एक खोटी इकन्नी, तीन-चार दियासलाई की तीलियाँ, एक टूटी प्लास्टिक की कंघी और एक दो मूंगफली के दाने हैं।"[४] वह स्वतंत्र प्रकृति का युवक है। प्रो० जोश उसे नित्य एक रुपया देता है, बशर्ते कि वह बीड़ी पीना छोड़ दे, परन्तु "वह उनके उपदेशों और एक रुपये में अपनी स्वतंत्रता खोना नहीं चाहता।"[५] जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी में लड़कों के कमाण्डर के रूप में उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व स्वयं ही उभर आता है। वह प्रकृति के प्रतिकूल नियमों के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ करता है। यहाँ पर लेखक पर गाँधीवाद का प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है। अपनी स्वतन्त्र इच्छा के प्रतिकूल चम्पा के निर्णय पर वह अपनी पूर्व अवस्था में ही आ जाता है।

१. नौजवान, पृ० १३
२. वही, पृ० १४
३. वही, पृ० १५
४. वही, पृ० १
५. वही, पृ० ६

प्रो० बोस 'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' के स्वामी जयराम का चचेरा भाई और 'एण्टी निकोटीन सोसायटी' का संस्थापक एवं संचालक है। उसका उद्देश्य केवल द्वेष भावना के कारण 'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' को हानि पहुँचाना है। भूधर, गजानन और वकील रामधन अन्य पुरुष पात्र हैं। भूधर की जयराम से प्रतिद्वन्द्विता होते हुए भी सेठ जयराम उसकी दीन अवस्था को देखकर उसे गुप्त रूप से सहायता देते रहते हैं।

नारी पात्रों में केवल चम्पा ही प्रमुख पात्र है। उसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। वह आधुनिक जाग्रत नारी की प्रतीक है, जो दूसरों के हित के लिए अर्थात् अपने साथी मजदूरों के हित के लिए, उन्हें बेकारी से बचाने के लिए अपने आप को भूधर को सौंपते हुए कहती है—"अगर तुम मशीन तोड़ दो, तो मैं तुम्हें अपना जीवन अर्पित कर दूँगी।"[1] स्वतंत्रता के लिए भारत में नारियों ने पुरुषों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य किया। अपनी जाति और अपने देश के हित के लिए उन्होंने महान से महान् बलिदान दिया। अहिंसात्मक अस्त्रों—आन्दोलन, हड़ताल आदि का प्रभाव लेखक पर भी पड़ा है। चम्पा भारत की जाग्रत एवं प्रगतिशील नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं प्रकृति के प्रतिकूल नियमों के विरोध में वह 'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' की सभी लड़कियों को आन्दोलित करती है और लड़कों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर आन्दोलन में भाग लेती है। अन्त में अपने वर्ग के मजदूरों के हित के लिए जीवन तक का त्याग करती है।

'नौजवान' में पन्त जी ने भारत की शाश्वत समस्या, बेकारी, भिक्षावृत्ति को उठाया है और साथ ही साथ सुन्दर समाधान भी प्रस्तुत किया है। मानव जगत् में लत्ता-कपड़ा भोजन ही सब कुछ नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहता है, न मिलने पर उसकी प्राप्ति के उपायों को ढूँढ़ता है, जिसकी प्राप्ति के हिंसात्मक और अहिंसात्मक दोनों मार्ग हो सकते है परन्तु लेखक पर स्पष्ट रूप से गाँधीवाद का प्रभाव है। 'जयहिन्द बीड़ी फैक्टरी' के कर्मचारी अपनी स्वतंत्रता के लिए संगठन बनाते है। वे शांतिपूर्ण ढंग से सेठ से सामूहिक प्रार्थना करते हैं, परन्तु जब उन्हें सफलता नहीं मिलती तो उसे हानि नहीं पहुँचाते, जनभावना प्राप्त करने के लिए जलूस निकालते हैं और अन्त में हड़ताल भी करते हैं।

यामिनी (१९५२)

'यामिनी' गोविन्दवल्लभ पन्त जी का अर्द्ध वैज्ञानिक उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा 'यामिनी परफ्यूमरी वर्क्स' की प्रयोगशाला और विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में केदार के सुगन्धि अनुसन्धान कार्य पर आधारित है। उपन्यास का नायक केदार बी०-एस-सी० पास है जिसे 'यामिनी परफ्यूमरी वर्क्स' के स्वामी मदन ने पुष्पों के बदले कीचड़ से सुगन्धि निकालने की विधि पर अनुसन्धान करने के लिए नियुक्त किया है। केदार प्रातः-काल से सन्ध्याकाल तक अपने अनुसन्धान कार्य में रत रहता है। मदन अपने व्यवसाय की वृद्धि के लिए सुगन्ध की शीशियों पर आकर्षक चित्रों के लिए एक सुन्दर युवती को मॉडल बनाने के लिए तथा एक कलाकार (आर्टिस्ट) के पद के लिए विज्ञापन प्रकाशित करता है। मंगल को कलाकार के पद पर और केदार की पड़ोसिन एक दीन विधवा की पुत्री सुगन्धा मॉडल के लिए १० हजार रुपये में नियुक्त की जाती है। आर्ट स्टुडियो खुल जाने के बाद मदन अपने पुत्र शेखर और पत्नी संजरी पर प्रयोगशाला तथा आर्ट स्टुडियो

१. नौजवान, पृ० २६३

से जाने पर प्रतिबन्ध लगा देता है। मंगल विभिन्न पोजों में सुनन्दा के चित्र बनाता है। सुनन्दा के प्रति उसकी पाशविक वासना वृत्ति जाग्रत हो उठती है, जिसकी तृप्ति के लिए वह एक चित्र गुम हो जाने का बहाना बनाकर उसी प्रकार का चित्र एक रात में ही तैयार करने के लिए सुनन्दा को किसी-न-किसी प्रकार फुसला कर रात को अपने घर पर बुला लेता है। सुनन्दा रात्रि को अपनी माता को निद्रावस्था में छोड़कर मंगल के घर चली जाती है। केदार, सुनन्दा को सन्देहावस्था में जाता हुआ देखकर उसका पीछा करता है और जब मंगल सुनन्दा को अपने कमरे में ले जाकर चित्र बनाने के बदले उसके शील पर आक्रमण करता है, तो केदार सुनन्दा की चीत्कार को सुनकर उसकी सहायता के लिए ठीक समय पर पहुँच जाता है। इस घटना के बाद सुनन्दा यामिनी परफ्यूमरी में जाना बन्द कर देती है। और मंगल भी केदार के साथ शत्रु-भावना रखना आरम्भ कर देता है। मंगल केदार के चरित्र के सम्बन्ध में झूठी बातें गढ़कर मदन सेठ के मन को विषाक्त करना आरम्भ कर देता है। यहाँ तक कि उस पर शराबी और चोरी का भी आरोप लगाया जाता है। केदार के प्रति सेठ के भाव बदल जाते हैं। इसी बीच मिस्टर सी० बिन्नारा नाम का जापानी व्यक्ति कीचड़ से सुगन्धि बनाने की मशीन, उसकी रचना-क्रिया सहित बेचने के लिए सेठ के पास आता है। सेठ उस मशीन को दस हजार रुपये में खरीद लेता है और उस मशीन को तथा उसकी रचना क्रिया सम्बन्धी कागजातों को केदार की प्रयोगशाला में रख देता है। केदार अपने स्वामी के हित के लिए उस मशीन की परीक्षा करना चाहता है, अतः वह उस सेफ को खोलता है जिसमें मशीन रखी हुई है। ठीक उसी समय मंगल सेठ को यह कहकर बुलाकर लाता है कि केदार मशीन को चुराना चाहता है। सेठ जी उसे रंगे हाथों पकड़ते हैं। केदार अपनी ईमानदारी की सफाई देता है, परन्तु मंगल ने उसके प्रति सेठ के मन में इतना विष भर दिया है कि वह उसकी ईमानदारी तथा वफादारी पर विश्वास नहीं करता। अतः केदार को निकाल दिया जाता है। केदार की नौकरी छूटने पर वह विश्वविद्यालय में पार्ट टाइम काम करना आरम्भ करता है और शेष समय में अपना अनुसन्धान कार्य जारी रखता है। मंजरी केदार के प्रति पहले से ही कोमल भाव रखती थी, उससे स्नेह करती थी तथा उस पर आकृष्ट भी थी। शेखर ने भी एक बार सुनन्दा का चित्र देखा था जिसे चुरा कर वह अपने कमरे में ले गया था और उस पर मुग्ध हो गया था। मंजरी केदार को देखने के लिए छिप-छिप कर जाती है और शेखर योगी का भेष बनाकर सुनन्दा के दर्शन के लिए उसके घर पहुँचता है।

कुछ दिन बाद मंगल भी निकाला जाता है और उसकी बुरी आदतों के कारण उसकी दशा दिन प्रतिदिन गिरती जाती है। अन्त में वह अन्धा हो जाता है और सड़क के किनारे बैठ कर भीख माँग कर पेट पालता है। सेठ मदन को मिस्टर बिन्नारा के धोखे का पता चलता है तो उसे पश्चात्ताप होता है। वह केदार को फिर बुलाना चाहता है।

एक दिन मंजरी केदार के घर उसे बुलाने के लिए जाती है। केदार पुनः नियुक्त किया जाता है और उसका विवाह भी मंजरी से हो जाता है। सुनन्दा को भी १०,००० रुपये दिये जाते हैं जिन्हें वह उस अन्धे मंगल को देती है जिसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था। उसका विवाह शेखर से हो जाता है।

'यामिनी' के लेखक ने सेठ मदन के परफ्यूमरी वर्क्स की प्रयोगशाला में एक वैज्ञानिक अनुसन्धानकर्ता द्वारा फूलों के स्थान पर कीचड़ आदि दुर्गन्धपूर्ण पदार्थों से इत्र निकालने के कार्य का वर्णन किया है। केदार एक वैज्ञानिक है, जिसे अपने अनुसन्धान कार्य की सफलता

पर पूर्ण विश्वास है। यामिनी परफ्यूमरी वर्क्स में जाने के बाद भी वह अपने अनुसन्धान-कार्य में रत रहता है। उपन्यास में केदार के अनुसन्धान कार्य की कथा प्रमुख है। अन्य कथाओं या घटनाओं के वर्णन ने वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य के शुष्क चित्रण को सरस बनाने में योग दिया है। चूँकि पन्त जी ने वैज्ञानिक सिद्धान्तों का तथा उसके प्रयोग सम्बन्धी पदार्थों का चित्रण न कर केवल प्रयोगशालाओं का ही चित्रण किया, इसलिए हम इस उपन्यास को पूर्णतः वैज्ञानिक उपन्यास कहने में संकोच का अनुभव करते हैं। केदार उपन्यास का नायक है। उसका जीवन संघर्षमय रहा है। वह यामिनी परफ्यूमरी में जाता है। अपने प्रयोगों में व्यस्त रहता है। मंजरी के बार-बार अनुग्रह करने पर भी उसकी ओर तनिक भी आकर्षित नहीं होता। वह एक दीन परिवार का है, जिसके माता-पिता का देहान्त बचपन में ही हो गया था। अपने पड़ोस की लड़की सुनन्दा के शील की रक्षा करने का श्रेय उसी को है।

सुनन्दा एक दीन विधवा की कन्या है। अपनी दीनता से मुक्ति पाने के लिए वह मॉडल बनना स्वीकार करती है। मंगल जैसे व्यसनी, कामुक, पाशविक वृत्ति के सम्मुख मॉडल बन कर रहती है। वह भोली-भाली, सरल स्वभाव की कन्या है। इसलिए मंगल के बहकावे में आ कर रात्रि में उसके घर जाना स्वीकार करती है, परन्तु जब उसे मंगल की वास्तविकता का पता चलता है, तो १० हजार रुपयों पर थूक कर पृथक् हो जाती है। मंगल के अन्धा होने पर वह उसके कुकृत्यों को भूल कर उसकी दशा पर तरस खाकर उसे अपने वेतन के पूरे १० हजार रुपये दे देती है।

सेठ मदन व्यवसायी वृत्ति का एक व्यक्ति है। वह अपने व्यवसाय की वृद्धि के लिए हर प्रकार के दाँव खेलता है। उसकी स्त्री ने मरते समय १० हजार रुपये किसी गरीब कन्या के विवाह के लिए दान के रूप में रखे थे, परन्तु मदन की व्यवसायी बुद्धि उन दस हजार रुपयों को सुनन्दा जैसी गरीब लड़की को देना स्वीकार करती है, परन्तु उसे पहले परफ्यूमरी के लिए आकर्षक पोजों के मॉडल बनना पड़ता है। मिस्टर बिन्नारा से मशीन लेने पर वह वैज्ञानिक केदार को भी निकाल देता है।

सेठ मदन के पुत्र शेखर का आकर्षण सुनन्दा की ओर है और मंजरी का आकर्षण केदार पर चित्रित किया गया है। परन्तु जब सुनन्दा और केदार दोनों काम छोड़ देते हैं तो शेखर जोगी का वेष धारण कर उसके घर जाता है तथा मंजरी भी केदार से मिलने के लिए छिप-छिपकर जाती है। इन घटनाओं से प्रतीत होता है कि लेखक पर सिनेमा का भी प्रभाव स्पष्ट है। घटनाओं का क्रम वर्णन एवं वातावरण प्रायः उसी प्रकार का दिखाया है जैसा सिनेमा की कहानियों में प्रायः हुआ करता है।

अन्त में शेखर-सुनन्दा और केदार-मंजरी का विवाह भी नाटकीय ढंग से हुआ है। मंगल का अन्धा हो जाना तथा उसकी दशा को इतना गिरा देना कि उसके लिए सड़क के किनारे भीख माँगने के अतिरिक्त कोई अन्य साधन ही नहीं रहता—यह भावात्मक आदर्शवाद है।

पन्त जी के साहित्य में प्रायः भावात्मक आदर्शवाद ही सर्वाधिक अपनाया गया है। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि उसकी आत्मा निर्मल हो।

जलसमाधि (१६५३)

'जलसमाधि' गोविन्दवल्लभ पन्त जी का चौदहवाँ उपन्यास है। 'मदारी', 'जूनिया' और 'मुक्ति के बन्धन' के समान ही 'जलसमाधि' भी कुमाऊँ के अंचल की पृष्ठभूमि पर लिखा

गया है। 'जलसमाधि' उपन्यास की नायिका भागा के दुर्भाग्य की गाथा है। मल्ला देवल और तल्ला देवल दो ग्रामों के मध्य में शिव मन्दिर है, जिसके पुजारी एक गृहस्थी महात्मा देवगिरि है। विभास नदी इन ग्रामों और शिवमन्दिर के समीप बहती है। मल्ला देवल के ब्राह्मण तल्ला देवल के ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक कुलीन तथा उच्च जाति के समझे जाते है, इसीलिए मल्ला देवल के ब्राह्मण 'ठुल धोती' (लम्बी धोती पहनने वाले) ब्राह्मण और तल्ला देवल के 'नानि धोती' (छोटी धोती पहनने वाले) ब्राह्मण कहे जाते हैं। भागा मल्ला देवल के पं० ब्रह्मदत्त की कन्या है। विवाह के छः महीने बाद ही उसकी माँग का सिन्दूर मिट जाता है। अपने काल्पनिक सुखमय गृहस्थ जीवन के स्थान पर उसे वैधव्य का शापित जीवन ही मिलता है। तल्ला देवल का पं० जैकिशन, जिसके माता-पिता का बचपन में ही देहान्त हो गया था, पिता के समय से ही चले आये पन्द्रह बीस परिवारों की पुरोहिताई कर अपना जीवन यापन करता है। वह सुलफा, गाजा, चरस आदि का व्यसनी है और इन्हें सरस गीतों तथा प्रभु भजन के लिए आवश्यक समझता है। भागा जैकिशन के सरस गीतो को सुन कर आत्मविस्मृत-सी हो जाती है और जैकिशन के गीत उसके प्राणो में मछली के काँटे के समान चुभ जाते हैं। वह अपने वैधव्य जीवन को भूलकर जैकिशन के जाल में फँस जाती है और उसके गर्भ रह जाता है। माता-पिता उसके इस काले कर्म को देखकर उसकी बीमारी का बहाना बना कर उसे घर से बाहर नहीं निकलने देते हैं। प्रसव के दिन पूरे होने पर बालक पैदा होता है। उसकी माता ममता-हीन होकर उसे अन्धेरी रात्रि में ही घर से निकाल देती है। भागा प्रसव की पीड़ा में कराहती हुई उस अबोध बालक को अपनी छाती से चिपकाए हुए जैकिशन के द्वार पर पहुँचती है। जैकिशन उसकी बुरी तरह से भर्त्सना एवं अपमान करता है, परन्तु द्वार नहीं खोलता। भागा वहाँ पर खड़ी रहती है। जैकिशन अपनी बदनामी व उसके माता-पिता की बदनामी का भय दिखाकर उस अबोध निष्पाप प्राणी को विभास नदी के देवी रौ में डुबो देने की सलाह देता है। भोली-भाली और सहज स्वभाव की भागा अपने माता-पिता को बदनामी से बचाने के लिए विभास नदी की ओर दौड़ती है, [illegible] की बलि देने के लिए। देवी रौ के समीप पहुँचते ही [illegible] बड़ा ही पत्थर उठाती है, बालक जाग कर रोने लगता [illegible] मातृत्व जाग उठता है और पाषाण हृदय द्रवीभूत हो जाता है और उसकी आत्मा तिलमिला उठती है। उसके हृदय के अन्दर महान् क्रान्ति उत्पन्न होती है और वह कहती है— "धिक्कार है मेरे उस मातृत्व को। धिक्कार है, सौ बार धिक्कार। मेरे उस जीवन की लालसा पर धिक्कार है। तुम जियो मेरे लाल, तुम निष्पाप हो, देवता तुम्हारी रक्षा करें।"[1] और उसे कम्बल में लपेट कर जमीन पर रख देती है। स्वयं ही अपने पाप और प्राण की बलि देने के लिए देवी रौ में कूद पड़ती है। शिव मन्दिर के पुजारी बाबा देवगिरि इसी समय स्नान के लिए विभास नदी में आए होते हैं और उसको बचा लेते हैं तथा अपने साथ ही उसे गुप्त रूप से मन्दिर में ले जाते हैं। इधर तल्ला देवल के पानसिंह का पुत्र प्रसव होते ही मर जाता है। वह अपने मृत बालक को दफनाने के लिए विभास के तट पर आता है, तो उसे बालक के रोने की ध्वनि सुनाई देती है। पानसिंह अपने मृत बालक को दफना कर, भागा के बालक को उठा ले आता है और सारे गाँव में पुत्र के जिन्दा होने की खबर फैला देता है। भागा अपनी सम्पूर्ण करुण गाथा बाबा को सुनाती है और वह बालक ढूँढ़ने के लिए जाता है, बालक नहीं मिलता, परन्तु पानसिंह के बालक के जिन्दा होने की

१. जलसमाधि, पृ० १६

खबर सुनकर बाबा को भी कुछ सन्देह होता है। भागा की रक्षा के लिए वह उसका सिर मूँड कर असूर्यपश्या के व्रत का विधान करता है। भागा के हृदय मे मातृत्व की टीस बार-बार उठती है। बाबा उसे सान्त्वना देते है तथा भविष्य में उसके बच्चे को लाने का भी आश्वासन देते हैं।

जैकिशन को बार-बार बच्चे के रोने की आवाज सुनाई पड़ती है और उसकी मानसिक दशा भी दिन प्रतिदिन विक्षिप्त-सी होती जाती है। पानसिंह की स्त्री का स्वर्गवास हो जाता है। पानसिंह के बालक की देखभाल करने में जैकिशन भी हाथ बंटाता है। बालक सहज भाव से ही जैकिशन की गोदी में प्रसन्न रहता है। किलकारियाँ मारता है।

ब्रह्मदत्त शर्मा का पुत्र रघू बहन भागा को बहुत प्यार करता था। वह बहन के बारे में पूछता है, तो उसे बताया जाता है कि वह इलाज के लिए मामा के पास बनारस गई हुई है और तीन मास बाद उसके मरने की खबर फैला दी जाती है, परन्तु अबोध बालक रघू को फिर भी विश्वास नही होता।

बाबा ने एक गिरे हुए को पाप पंक से उठाने का प्रयास किया था। इसी प्रयास में "उसके कान चीर लिए व सिर का मुंडन कर दिया"[1] तथा सारे क्षेत्र मे खबर फैला दी कि कैलाश से माताजी आने वाली है जिन्होंने १२ वर्ष का मौनव्रत और असूर्यपश्या का व्रत लिया है। माता जी के आगमन की तिथि के अवसर पर पूजा, अखंड पाठ और कथा होने लगी। क्षेत्र के सभी भक्तजन भी अपनी-अपनी श्रद्धानुसार बाबा जी की तन-मन-धन से सहायता करते हैं। पानसिंह का पुत्र भी इन दिनों कुछ बीमार-सा रहने लगा था। बाबा उसके बालक को भी माता जी के दर्शन कराने और अप्रत्यक्ष रूप में माता के मातृत्व की प्यास को बुझाने के लिए ले जाते हैं। बाबा भागा को बालक सौंपकर उत्सव के प्रबन्ध के लिए चले जाते है। रघू भी बाबा की कुटिया की तरफ जाता है और वह बच्चे के रोने की आवाज के सहारे अन्दर चला जाता है और देखता है अपनी बहन भागा को, जिसके लिए वह दिन-रात मारा-मारा फिरता था। दीदी! दीदी!! कहते उसके पाँवों मे लिपट जाता है। भागा का भी मौन भंग होता है, "भैया तुम कैसे हो, ठहरो तुम यहीं, मै अभी आती हूँ।" कहकर बच्चे को गोद में लिए पागल की तरह भागती है देवी रौ की ओर। और पीछे मुड़कर देखती है कि बाबा देवगिरि, प० ब्रह्मदत्त और रघू भी उसकी ओर भाग रहे हैं। उन्हें दूर से ही प्रणाम कर देवी रौ की अतुल गहराई में अपने तथा बालक के प्राणों की बलि दे देती है।

विषय की दृष्टि से कुमाऊँ के अंचल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया पन्त जी का यह पाँचवाँ उपन्यास है। आंचलिकता का जितना स्पष्ट एवं परिमार्जित स्वरूप इस उपन्यास में हुआ है उतना इससे पहले के उपन्यासों—'मदारी', 'जूनिया' तथा 'मुक्ति के बन्धन'—में नहीं हो सका है। "वस्तुतः आंचलिक उपन्यासों का उद्देश्य अन्य उपन्यासों से भिन्न नहीं, पर आंचलिक उपन्यासकार अन्य उपन्यासकारों की भाँति समस्त मानव समाज एवं अखण्ड भूभाग को सामने रखकर अपनी रचना नही करता बल्कि वह उसके लिए एक समाज विशेष एवं भूखण्ड को ही आधार बनाकर चलता है जो मानव समाज और सम्पूर्ण भूखण्ड का अंग होते हुए भी अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण भिन्न जान पड़ता है।"[2] पन्त जी ने

१. उत्तरशती, पृ० ८७
२. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ३४६

प्रस्तुत उपन्यास में कूर्माचल के भूखण्ड तथा वहाँ के समाज को अपनी कथा का आधार बनाया है। कूर्माचल के उस क्षेत्र विशेष का चित्रण कर पाठकों के सम्मुख उसकी स्थिति को प्रस्तुत किया है कि "उस ग्राम का नाम था देवद। जिला अल्मोड़ा में विभास नदी की हरी भरी घाटी मे बसा हुआ था। तल्ला देवद से आधे मील नीचे एक शिवमन्दिर है विभास नदी के किनारे। उससे कुछ ऊपर घने चीड़ के वृक्षों से हरित एक विशाल पर्वत ने विभास की सहज गति को रोककर उसे एक मोड़ दे दिया है। दक्षिण को बहती हुई विभास वहाँ से पूर्व की दिशा पकड़ती है। जिस मोड़ पर विभास की धारा कुछ ऊँचाई पर से गिरती है, वह बहुत गहरा है। वह स्थान देवी रौ के नाम से प्रसिद्ध है।"[1] आंचलिक उपन्यासों के क्षेत्र में भाषा की समस्या सर्वथा जटिल है। आंचलिक उपन्यासकार आंचलिक वातावरण की सृष्टि के लिए पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग पर अधिक बल देते है। वस्तुतः भाषा का प्रयोग ही आंचलिक वातावरण की सृष्टि के लिए आवश्यक अंग है परन्तु ऐसे शब्दों का अत्यधिक प्रयोग होने पर रचना एक सीमित क्षेत्र के पाठकों के लिए ही बन जाती है। पन्त जी ने अपने उपन्यासों में केवल अपरिहार्य तथा हिन्दी भाषियों के सहज बोधगम्य शब्दों का ही प्रयोग कर अपनी रचना को इस दोष से मुक्त किया है। इनके अतिरिक्त आंचलिकता के वातावरण की सृष्टि के लिए वर्ण्य अंचल के लोकगीतों, लोक-कथाओं, विश्वासों तथा परिपाटियों का उल्लेख भी आवश्यक है। परन्तु इसके लिए भी लेखक को संयत ही रहना चाहिए। यदि वह अपनी रचना में उस क्षेत्र विशेष के लोक-गीतों, लोककथाओं तथा भूतप्रेतों आदि की कहानियों को कहने में लग जाएगा तो कथानक के प्रवाह में बाधा पहुँचेगी तथा कथा-सम्बद्धता की क्षति। पन्त जी ने 'जलसमाधि' में वहाँ की परिपाटी का चित्रण तथा अन्धविश्वासों के वर्णन पृथक् न कर उन्हें कथानक के साथ इस प्रकार से पिरोया है कि वे कथानक के अभिन्न अंग बन गये हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पन्त 'जलसमाधि' के कथानक को आंचलिक रूप देने में सफल हुए हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में बाबा देवगिरि आदर्श पात्र है। "उसकी आयु सत्तर वर्ष से अधिक है, हृष्ट-पुष्ट और हृदय में युवकों का सा उत्साह और शरीर मे वैसी ही ताकत रखता है,"[2] बाबा देवगिरि के लिए सभी व्यक्ति, सभी जातियाँ एक समान हैं। जब मल्ला देवद के लम्बी धोती वाले ब्राह्मण तल्ला देवद के छोटी धोती वाले ब्राह्मणों के पूजापाठ में व्याकरण और कर्मकाण्ड की भूलों का उल्लेख करते थे तो बाबा कहते थे—"भाई, इन बाहरी बातों का क्या मूल्य है अगर मन में श्रद्धा है तो...।"[3] बाबा के हृदय में दीन-दुखियों के प्रति अपार दया भी है और जो समाज से ठुकराए गए हैं तथा जिनके लिए समाज में कोई स्थान नहीं, उनके लिए आश्रय है। वे भागा की प्राण रक्षा ही नहीं करते अपितु धैर्य देते हुए कहते है—'नही बेटी! जल के सिवाय और भी आवरण हैं। मैं उनसे ढक दूँगा तुम्हें। यह बूढ़ा तुमसे झूठ नहीं बोल रहा है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे प्राय-श्चित्त के लिए उपाय बताऊँगा।"[4] भागा अपने को अछूत, पापिनी, कलंकिनी मानती है इस-लिए वह मन्दिर को अपवित्र नहीं करना चाहती, परन्तु बाबा उसे समझाते हुए कहते हैं,

---

१. जलसमाधि, पृ० ३५३
२. वही, पृ० ६
३. वही, पृ० १०
४. वही, पृ० २३-२४

कि "नहीं बेटी, देवता अपवित्र को पवित्र बनाता है यही तो उसका देवत्व है।"[१] भागा का मातृत्व जागता है। वह अपने पुत्र के लिए व्याकुल होती है, परन्तु बाबा उसका मन नही मारते, अपितु उसे वचन देते है पुत्र लाने का और उसे अन्त मे पूरा भी करते है। वे तल्ला देवद, मल्ला देवद के सभी निवासियो के सुख-दुःख के साथी है इसीलिए वे सभी की श्रद्धा के पात्र बन गए है। सभी का हृदय उनके लिए उन्मुक्त है। पानसिह का बेटा बीमार होने पर बाबा आधी रात को जा कर उस पर आई हुई भूतप्रेत छाया का निराकरण करते है। पानसिह की पत्नी का देहान्त होने पर वह बाबा से अपने दुर्भाग्य का रोना रोता है। बाबा उसके मृत पुत्र के जीवित होने की घटना पहले से ही सन्देह की दृष्टि मे देखते थे। इसलिए वे पानसिह से पूछते है और उन्हें जब वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता है तो पानसिह को समझाते हुए कहते है—"पानसिह, ईश्वर के विधान मे त्रुटि समझकर मनुष्य जो कार्य करता है उसका सदैव दुष्परिणाम ही निकलता है।"[२]

बाबा के चरित्र का विकास और उसके चरित्र के आदर्श का चित्रण करने मे लेखक पर्याप्त रूप से सफल हुआ है। बाबा देवगिरि के माध्यम से लेखक ने कूर्माचल की महान् संस्कृति का भी उद्घाटन किया है।

भागा ब्रह्मदत्त की कन्या है जिसकी माँग का सिन्दूर विवाह के छः माह बाद ही मिट गया। वह वैधव्य से शापित जीवन को व्यतीत करती है। यौवन की निविड निशा में उसका पाँव फिसल जाता है और जैकिशन की वासनावृत्ति का शिकार ही नहीं होती, अपितु उसका पुत्र भी उत्पन्न होता है। मल्ला देवद के [illegible] धोती वाले ब्राह्मण ब्रह्मदत्त तथा उनकी गृहिणी भागा की बीमारी का बहाना बनाकर उसे घर से बाहर नहीं जाने देते। प्रसव होने पर निर्दयतापूर्वक उसे घर से निकाल देते है। जैकिशन भी उसे फटकारता है तथा वह बालक की हत्या को ही सभी की प्रतिष्ठा की रक्षा का उपाय बताता है। भागा देवी रौ मे बालक को मारने के लिए जाती है परन्तु—"सन्तान प्रेम मानव चरित्र का एक व्यापक गुण है। ऐसा कौन प्राणी होगा जिसे अपनी सन्तान प्यारी न हो। लेकिन इस सन्तान प्रेम की मात्राएँ है, उनके भेद है, कोई उनके लिए मर-मिटता है, कोई उनके लिए कुछ छोड़ जाने के लिए नाना प्रकार के कष्ट झेलता है।"[३] इसलिए बालक के रोने की ध्वनि उसके मातृत्व को जगाने में समर्थ होती है। वह स्वयं से घृणा करती है तथा अपने को धिक्कारते हुए बालक को कम्बल में लपेटकर, स्वयं अपने प्राणो का अन्त करने के लिए देवी रौ मे कूद पड़ती है। बाबा देवगिरि के बचाने पर वह अपने पाप से डरती है, जीना नहीं चाहती। बाबा उसे अपनी कुटिया मे ले जाते हैं। असूर्यपश्या का व्रत उसे दिलाते हैं। परन्तु सूखे पत्तों में कब तक आग छिपी रह सकती है। भागा का भाई रघू उसका पता लगा लेता है, भागा अपने बालक सहित देवी रौ में प्राणों की आहुति दे देती है।

जैकिशन मल्ला देवद का ब्राह्मण है। मातृ-पितृहीन व्यसनी, व्यभिचारी, विषय-वासनासक्त युवक, समाज का कोढ़ है। सम्पूर्ण दुर्गुण उसमें घर बनाए हुए हैं। उसका नियमित पूजापाठ तथा उसकी पुरोहिताई उन दुर्गुणों को छिपाए हुए हैं। भागा के जीवन के दुःखद अन्त के लिए वही उत्तरदायी है।

'जलसमाधि' में विशेष सामाजिक समस्या को नहीं उठाया गया है। प्रमुखतः भागा और जैकिशन के माध्यम से विधवा जीवन और अनैतिक गर्भ की अवस्था में उसके विषम

१. जलसमाधि, पृ० २८
२. वही, पृ० १७७
३. वही, पृ० [illegible]

जीवन का अकन किया है, परन्तु लेखक जैकिशन जैसे दुराचारी के लिए कोई स्पष्ट तथा सुनिश्चित समाधान प्रस्तुत करने में सर्वथा असफल रहा है। केवल लेखक ने अपने परम्परागत भावात्मक आदर्शवाद के ही माध्यम से जैकिशन की विक्षिप्त अवस्था दिखाई है। इसके अतिरिक्त वहाँ की जातीय कट्टरता, जाति-पाँति के भेदभाव का भी यत्र-तत्र दिग्दर्शन कराया है।

फारगेट मी नॉट (१९५६)

गोविन्दवल्लभ पन्त जी का पन्द्रहवाँ उपन्यास 'फारगेट मी नॉट' कुमाऊँ की आंचलिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इस उपन्यास की नायिका मिस नोरा युद्ध-क्षेत्र में जाते समय अपने प्रेमी कप्तान मार्टिन को 'फारगेट मी नॉट' का फूल भेंट करती है। उसी फूल के नाम पर इस उपन्यास का नामकरण किया गया है। मिस नोरा एक विदेशी 'टी प्लांटर' (चाय उगाने वाले) की कन्या है। पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी माता नैनीताल में स्थायी रूप से बसने की इच्छा से चाय के बगीचे को बेच देती है। गफूर एक पर्वतीय कृषक मुसलमान का बेटा है। वह रायल होटल नैनीताल में 'बैरा' का काम करता है और अँग्रेज साहबों के सम्पर्क मे रहने के कारण टूटी-फूटी अँग्रेजी भी बोल लेता है। रामू त्रिशूल के समीपवर्ती ग्राम का निवासी है। वह पहले एक पटवारी का चपरासी खानसामा था। बाद में वह नैनीताल में एक हलवाई के पास नोकरी करता है और अन्त में अपने ही गाँव में दूकान खोल लेता है। मार्टिन बृटिश सेना में कप्तान है। मिस नोरा के प्रति उसका अत्यधिक आकर्षण है। दोनो का आकर्षण ही उन्हें वैवाहिक सूत्र में बाँधने की प्रेरणा देता है। कप्तान मार्टिन को युद्ध-क्षेत्र मे जाने का सरकारी आदेश मिलता है तो देश-भक्ति की भावना उसके रग-रग में दौड़ती है। वह तत्क्षण मिस नोरा से विदाई लेकर युद्ध-क्षेत्र को कूच करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय मिसेज नोरा अपने चाय के बगीचों को बेच कर नैनीताल में स्थायी रूप से बसने के इरादे से आती है। उसे एक ओर सेना के अंग्रेज अफसरों के लिए उचित आराम-गृहों का अभाव खटकता है, दूसरी ओर अपनी जीविका के लिए कोई व्यवसाय भी उसे खोजना होता है। इसलिए वह गफूर की सहायता से त्रिशूल नामक ग्राम के निकट सुदूर हिमालय की उपत्यकाओं की छटा के मध्य आधुनिक युग के आराम के सभी प्रसाधनों से सम्पन्न होटल खोलती है। गफूर नैनीताल में मिसेज नोरा का नौकर था। उसकी स्वामिभक्ति एवं ईमानदारी से प्रभावित होकर मिसेज नोरा उससे ही सबसे अधिक सहयोग की आशा रखती है। होटल मे जनरेटरों द्वारा बिजली भी पैदा की जाती है। भारत के सभी प्रमुख समाचारपत्रों में उसका विज्ञापन देकर प्रचार किया जाता है। परन्तु स्थान की दुर्गमता के कारण उद्घाटन के अवसर पर यात्री अथवा पर्यटक अधिक संख्या में आकर्षित नहीं हो पाते। केवल नोरा का भावी पति कप्तान मार्टिन और उसके सहकारी कुछ सेनाधिकारी ही आते हैं। गफूर उसके मैनेजर और चपरासी के रूप में कार्य करता है। होटल की बिक्री भी बढ़ने लगती है। रामू छूत-छात की तनिक भी परवाह न कर गफूर, मार्टिन, नोरा तथा अन्य अँग्रेज पदाधिकारियों से आत्मीय सम्बन्ध रखता है। रामू की प्रसिद्धि एवं व्यवसाय की वृद्धि को देख कर प्रधान के सीने में साँप लोटने लगते हैं। वह रामू के अहित एवं विनाश के उपाय सोचता है। वह रामू पर अजाति व्यक्तियों के साथ घुलमिल कर रहने का अपराध लगा कर उसे जाति से बाहर कर देता है। नोरा की माता की

अंत्येष्टि क्रिया के लिए गफूर और रामू पादरी बुलाने जाते हे अल्मोड़ा, तो उसके घर मे नमक भी नहीं था। रामू और गफूर की स्त्री नमकीन मिट्टी इकट्ठा करती है जिससे वे नमकीन मिट्टी से नमक का काम ले सकें, परन्तु जब प्रधान को इस बात का पता चलता है तो वह पटवारी और पुलिस को ले आता है। परिणामतः रामू को नमक कानून के अन्तर्गत ३ वर्ष का कठोर कारावास हो जाता है। भारत के स्वतन्त्र होने पर रामू भी जेल से छूट जाता है। कांग्रेस का राज्य समझ कर प्रधान रामू की चापलूसी करने जा पहुँचता है। उधर माता के देहान्त के पश्चात् मिस नोरा हर समय चिन्तित रहने लगती है। होटल मे भी कोई यात्री नही आता। सारे अँग्रेज अपनी सम्पत्ति को बेच कर विलायत जाने की तैयारी करने लगते हैं। कप्तान मार्टिन उसका एक मात्र सहारा था। उसका भी कई मास से कोई पत्र नहीं मिलता। वह उसकी भी आशा छोड़ देती है। यातायात के साधनों से कोसो दूर स्थित इस होटल की दशा दिन प्रति दिन गिरने लगती है। गफूर एक आदर्श सेवक, सहायक तथा संरक्षक के रूप मे उसे हर समय सान्त्वना देता है। होटल की गिरी हुई स्थिति को समझ कर गफूर होटल के समीपवर्ती स्थान में आलू आदि सब्जियां बोता है जिससे उसकी आय आशातीत होने लगती है। युद्ध में घायल होने के बाद कप्तान मार्टिन की स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। लोग उसे स्काट नाम से पुकारते है और वह भी इसी नाम को सत्य समझ कर रहने लगता है। प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बनाता, बेचता एक दिन वह त्रिशूल होटल मे पहुंच जाता है। वहां की दृश्यावली, मिस नोरा की मृदुल वाणी, और 'फारगेट मी नॉट' पुष्प की उपस्थिति से उसकी विगत स्मृतियाँ सजग हो उठती हे और नोरा के जीवन में पुनः आशा की ज्योति आ जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु का चयन पन्त जी ने नैनीताल और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से किया है। उपन्यास की कथा नैनीताल के अँग्रेज साहबों के बंगलों, होटलों से आरम्भ होती हुई सुदूर पर्वतीय ग्रामों तक पहुँचती है। वहाँ का चित्रण उपन्यासकार ने सुन्दर, सजग और काव्यात्मक ढंग से किया है। गाँव के प्रधान के माध्यम से ग्राम में व्याप्त दुर्गुणों का अंकन किया गया है। गफूर और रामू आधुनिक प्रगतिशील भावनाओं के प्रतीक हैं जो छूत-छात, जाति-पाँति का भेदभाव न मान कर मानवता को ही सर्वोपरि समझते हैं।

पन्त के अन्य उपन्यासों के नायकों की भाँति इस उपन्यास के नायक रामू का चरित्र विशेष सबल है। उसमें पुराने रूढ़िग्रस्त संस्कारों के साथ लड़ने की शक्ति है, सामर्थ्य है और वह पीठ दिखाकर भागता नहीं, बल्कि एक वीर सैनिक की तरह अपने पद पर अटल रहता है। प्रधान द्वारा जाति बहिष्कृत किए जाने पर वह तनिक भी नहीं घबराता, बल्कि एक कदम और भी आगे बढ़ता है। अल्मोड़ा जाते समय गफूर (एक मुसलमान) की पत्नी को अपने घर अपनी पत्नी के साथ के लिए रख जाता है। प्रधान उसे और भी आतंकित करता है और पुलिस को बुलाकर पकड़वा देता है। पर वह एक सच्चे स्वतन्त्रता-प्रेमी और देशभक्त के रूप में जेल-यात्रा के लिए जाता है।

उपन्यासकार इस उपन्यास में अन्य उपन्यासों की भाँति भावनात्मक आदर्शवाद का शिकार नहीं हुआ है जिससे उपन्यास मे अधिक स्वाभाविकता आ गई है और घटनाएँ कृत्रिम सी प्रतीत नहीं होती है। प्रस्तुत उपन्यास जीवन के वास्तविक धरातल पर खरा उतरता है।

देश में सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ रूढ़िग्रस्त समाज में परिवर्तन भले ही बाह्य रूप से दिखाई देते हों परन्तु आन्तरिक परिवर्तन उनमें एकदम नहीं आ सकता। मानव के अन्दर जो संस्कार जन्म से उसके कण-कण में विद्यमान है, उन्हें क्षण भर में ही नहीं बदला जा सकता। ऐसी परिस्थिति के लिए रामू जैसे साहसी व्यक्ति की आवश्यकता है। रामू की पत्नी पार्वती और गफ़ूर की पत्नी हमीदा में यद्यपि बाह्य परिवर्तन स्पष्टतः दिखाई पड़ते हैं तथापि वे कभी-कभी इस प्रकार का व्यवहार करती है जिससे उनकी रूढ़िवादिता स्पष्ट झलकती है। वह एक ही मकान में रहती है, एक ही कमरे में सोती हैं फिर भी पार्वती के अन्दर की ब्राह्मणत्व की भावना हमीदा को पीने के पानी को नहीं छूने देती और वह उसे अपने खाने के बर्तनों में भोजन न देकर केले के पत्तों में ही भोजन देती है।

रामू के कारावास से छूटने के बाद गाँव का प्रधान उससे क्षमा याचना करता है। यह रामू जैसे सशक्त चरित्र की विजय है और रूढ़िग्रस्त समाज की पराजय।

पर्णा (१९५६)

'पर्णा' पन्त जी का सोलहवाँ उपन्यास है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा हिन्द महासागर के एक नगण्य द्वीप - कर्णद्वीप—के सम्राट् राजराज के राज्य पर आधारित है। सम्राट् राज-राज के पूर्वजों को समुद्री मार्ग से अन्य देशों के साथ व्यापार करते समय कर्णद्वीप की स्थिति का ज्ञान था और उन्होंने अपने बाहुबल से उस द्वीप पर राज्य स्थापित किया था। वहाँ के मूल निवासी नागाओं के साथ भी उन्होंने संधि की थी जिसकी एक शर्त थी—"राजा तथा राज-कर्मचारी वन-क्षेत्रों में नहीं जाएँगे तथा नागा वनप्रदेश के अतिरिक्त सम्राट् के राज्यक्षेत्र में प्रवेश नहीं करेंगे, अन्यथा हत्या की जायगी।"[1] वहाँ के मूल निवासी नागा वस्त्रहीन नग्न अवस्था में ही रहते है और अग्नि से पकी हुई कोई भी वस्तु नहीं खाते। किन्तु नगरवासी केवल कमर पर पेड़ों के पत्ते या छाल बाँध लेते हैं। राजभवन के सुख व ऐश्वर्य के सभी आधुनिकतम प्रसाधन विदेशों से मँगाए जाते हैं। कर्णद्वीप का व्यापारिक सम्बन्ध भारत तथा अन्य देशों से है फिर भी विश्व के मानचित्र में उसकी कोई विशेष स्थिति नहीं है। महा-राजा का स्वामी कुल्लूटक—नागा सरदार—के प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति भाव है, परन्तु रानी के हृदय में उसके प्रति घोर घृणा और उत्कट द्वेष भावना है। रानी को किसी न किसी प्रकार मना कर महाराज हर वर्ष फूलोत्सव में स्वामी कुल्लूटक को आमंत्रित करते है। उसके नग्न शरीर को देखकर रानी आतंकित ही नहीं होती अपितु घृणा से नाक-भौं सिकोड़ती है। राजा निस्संतान था। स्वामी कुल्लूटक से संतान के आशीर्वाद की लालसा से ही उसके पावों में बार-बार सिर रगड़ता था। रानी के अवांछनीय स्वभाव को देखकर स्वामी कुल्लूटक राजा को आशीर्वाद देने में सदैव टालता रहा, परन्तु राजा के अत्यधिक घिघियाने पर इस शर्त पर आशीर्वाद दिया कि 'राजा अपनी प्रथम सन्तान को स्वामी को भेंट करे।"[2] स्वामी के आशीर्वाद के परिणामस्वरूप रानी ने कन्या को जन्म दिया, जिस समय रानी प्रसव पीड़ा से अचेत पड़ी थी, उसी समय राजा किसी न किसी प्रकार उस कन्या को चुराने में सफल होता है और उसे स्वामी कुल्लूटक को भेंट कर देता है।

---

१. पर्णा, पृ० ६५

२. वही, पृ० ७५

कुछ समय बाद रानी दूसरी कन्या को जन्म देती है। उसका नाम वासंथी रखा जाता है। समय के साथ-साथ रानी अपनी प्रथम कन्या के बिछोह का दुःख भी भूलती जाती है। कुछ समय बाद एक बार राजा गलती से नागा क्षेत्र मे प्रवेश करता है। वहाँ उसकी हत्या हो जाती है। राजा का मन्त्री स्वामी के पास पूछताछ के लिए जाता है परन्तु उसको भी मार डाला जाता है। अतः रानी को ऐसे संकट काल में राजसत्ता अपने निर्बल हाथों मे लेनी पड़ती है। उसके सम्मुख नागाओ के संहार की एक विकट समस्या खड़ी है। ऐसी संकटावस्था मे रानी को एक सुयोग्य मन्त्री की नितान्त आवश्यकता होती है। ठीक इन्ही दिनों एक भारतीय कार्गोशिप सिंगापुर से भारत आता है। तेल की कमी के कारण वह कर्णद्वीप में आश्रय लेता है। उसके कप्तान सुन्दरम् के व्यक्तित्व, उसकी वाक्पटुता एवं बुद्धि-मत्ता की ओर रानी आकर्षित हो जाती है और उसे बड़े अनुनय-विनय के साथ अपना मन्त्रीपद स्वीकार करने को विवश करती है। मन ही मन में उसे वह अपनी कन्या वासंथी के योग्य वर भी चुन लेती है। द्वितीय विश्व-युद्ध के उत्तरार्द्ध में जापानियों के हवाई जहाज एवं कई सिपाही पश्चिम से भारत पर चढ़ाई करने के लिए कर्णद्वीप पर उतरते हैं। कर्णद्वीप को वे हिन्द महासागर का प्रमुख युद्ध संचालन केन्द्र बनाना चाहते है। सुन्दरम् बड़ी निपुणता से जापानी कर्नल हिक्कू के साथ मित्रता स्थापित कर लेता है। कर्नल हिक्कू के साथ सुन्दरम् यदा-कदा मिलता रहता है और सुन्दरम् के साथ वासंथी भी। परन्तु वासंथी का आकर्षण दिन प्रतिदिन हिक्कू की ओर बढ़ते देख कर सुन्दरम् द्वीप के हित के लिए, एक सशस्त्र सैनिक के शत्रुभाव से बचने के लिए अपने प्रेम की बलि देता है। वह दिल के दौरे की बीमारी का बहाना कर रानी को इसकी सूचना देता है, ताकि रानी को भी राजकुमारी वासंथी के निर्णय पर दुःख न हो। सुन्दरम् एक बार तथाकथित रोग के इलाज का बहाना बनाकर स्वामी कुल्लूटक की गुफा में जाता है। वहाँ उसकी भेंट रुक्कू (रानी की प्रथम कन्या) से होती है। दोनों की आँखें चार होती है परन्तु यह घटना स्वामी को बुरी तरह से खटकती और वह भर्त्सनापूर्वक सुन्दरम् को वहाँ से निकाल देता है। परन्तु सुन्दरम् फिर छद्मवेष में स्वामी की गुफा की ओर जाता है। रुक्कू उसे पहचान लेती है। रुक्कू ने अभद्र व्यवहार के कारण एक सरदार के पुत्र की नाक काट दी थी, उससे अपनी रक्षा के लिए वह सुन्दरम् से लिपट जाती है। सुन्दरम् सरदार के बेटे के तीर चलाने से पहले ही उसे पिस्तौल से धराशायी कर देता है। दोनों गुफा में आते हैं। स्वामी दोनों का विवाह कर देता है। वासंथी अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए कर्नल हिक्कू की सहायता से नागाओ की गुफाओं में बमबारी करती है और उसी हवाई जहाज में कर्नल हिक्कू के साथ शादी भी कर लेती है। रानी अपनी बड़ी लड़की को देख कर बेहोश हो जाती है और होश में आने पर विक्षिप्त हो जाती है। उसकी अवस्था शनैःशनैः ठीक होती है तथा वह अपनी दोनों लड़कियों की शादी विधिवत् करने का आयोजन करती है परन्तु इसी समय जापान के पराजित होने का समाचार मिलता है और कर्नल हिक्कू जहाज में स्वदेश वापस जाने की तैयारी करता है। वासंथी भी भाग कर जहाज पर चली जाती है। समुद्र मे थोड़ी ही दूर जाने पर सबमेरीन से जहाज नष्ट हो जाता है और साथ ही वे दोनों भी। रुक्कू को लेकर सुन्दरम् स्वदेश लौटना चाहता है परन्तु कर्णद्वीप की जनता उसे रोकना चाहती है। वह उन्हें समझाते हुए कहता है—"राजा की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम सब मिलकर एकता करो। यह जनतन्त्र का युग है। अपने बीच में से कुछ लोगों को छाँटकर एक सभा बना

लो । उसी के वहुगत में द्वीप का प्रबन्ध करो ।"[1] और एक छोटे से जहाज में मक्कू सहित भारत लौटता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कर्णद्वीप के नागा जाति के जीवन पर अधिक प्रकाश डाला है । वहाँ के जनजीवन की कथा को द्वितीय युद्ध की घटनाओं के साथ पिरोने का प्रयास किया है । नागा स्वामी कुल्लूटक के व्यक्तित्व पर ही सर्वाधिक प्रकाश डाला गया है । प्रजा, कर्मचारीगण तथा नगर व वनवासी ही नहीं, राजा भी उसके व्यक्तित्व से पूरी तरह अभिभूत है -"स्वामी कुल्लूटक उस वनवासी सम्प्रदाय का बिना मुकुट का राजा है जो शरीर में कुछ नहीं पहनता । ईश्वर के बनाए हुए शरीर पर आवरण रखना पाप समझता है ।"[2] "वन के कन्दमूल तथा अपने धनुष तीर से मारे गए जन्तुओं का कच्चा मांस खाकर अपना जीवन यापन करता है ।"[3] "कुल्लूटक नागाओं का ईश्वर, नगरवासियों का देवता तथा राजा का स्वामी है ।" वह तान्त्रिक भी है । अपने मन्त्र-तंत्र के ही बल पर आश्चर्यजनक कार्य भी कर सकता है । मुर्दों की हड्डियों की माला उसके शरीर पर बँधी रहती है । उसी के आशीर्वाद से राजा की सन्तानें हुई हैं । लेखक स्वामी कुल्लूटक के प्रभावशाली व्यक्तित्व का चित्रण करने में सफल हुआ, परन्तु इसमें राजा का चरित्र दुर्बल बन गया है ।

स्वामी कुल्लूटक के प्रति सम्राट् राजराज की अगाध एवं अटूट श्रद्धा और भक्ति है । वह स्वामी के हाथ की कठपुतली सा प्रतीत होता है । सन्तान लालसा के कारण वह सब कुछ करता है । यहाँ तक कि द्वारपाल के पुत्र को भी चुरा लेता है—"सन्तान प्रेम मानव चरित्र का एक व्यापक गुण है ।"[4] इस प्रेम की प्राप्ति के लिए सब कुछ करता है । रानी के हृदय में स्वामी कुल्लूटक के प्रति किञ्चिन्मात्र भी श्रद्धा नहीं । वह उसे गुंडा समझती है । बार-बार राजा को भी उससे सम्बन्ध विच्छेद करने की सलाह देती है । राजा की हत्या होने पर तो उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठती है, जिसे उसकी कन्या वासंथी कर्नल हिक्कू की सहायता से शान्त करती है ।

सुन्दरम् पहले हमारे सम्मुख एक भारतीय कार्गोशिप के कप्तान के रूप में आता है । रानी के आग्रह पर ही वह कर्णद्वीप का मंत्रीपद स्वीकार करता है । कर्णद्वीप की निर्बल स्थिति का उसे पूर्ण ज्ञान है, इसीलिए वह कर्नल हिक्कू से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है । रानी अपनी कन्या वासंथी के लिए सुन्दरम् को ही योग्य वर निश्चित कर चुकी थी, परन्तु जब सुन्दरम् को ज्ञात होता है कि वासंथी का आकर्षण दिन-प्रतिदिन कर्नल हिक्कू की ओर बढ़ता जा रहा है तो अपने प्रेम का बलिदान भी करता है । रानी को अपनी असाध्य बीमारी का बहाना बताता है जिससे रानी वासंथी के मार्ग में बाधक नहीं बनती । अन्त में वह कर्णद्वीप के राजवंश की परम्परा को समाप्त कर जनतन्त्र स्थापित कर स्वदेश लौटता है जो उसके स्वदेश प्रेम तथा स्वतन्त्रता प्रेम का परिचायक है ।

पन्त जी ने अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में भी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है । घटनाओं का सृजन नाटकीय ढंग से हुआ है । पात्रों के चरित्रचित्रण में लेखक सतर्क रहा है । कथोपकथनों द्वारा ही पात्रों का चरित्र निर्माण होता रहा है । द्वितीय विश्वयुद्ध का स्पर्श देकर उपन्यास को ऐतिहासिक रंग देने का भी प्रयत्न किया है ।

१. वही, पृ० २५६
२. वही, पृ० ५८
३. वही, पृ० ७४
४. साहित्य का साथी, पृ० ८५

मैत्रेय (१६५६)

'मैत्रेय' (१६५६) तिब्बत की पृष्ठभूमि पर आधारित गोविन्दवल्लभ पन्त जी का १७वाँ उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास दुहरी कथाशैली में लिखा गया है। कथा का एक सूत्र कथा के नायक भैरव, एक भारतीय धनी परिवार के नवयुवक से आरम्भ होता है और दूसरा सूत्र कलजन—ल्हासा के वैद्य से आरम्भ होता है। दोनों कथासूत्र कथा के मध्य भाग तक स्वतंत्र रूप से चलते हैं और अन्त में खंपालामा के मठ में दोनों कथाओं का विलीनीकरण होता है। पन्त जी की दुहरी कथाशैली के उपन्यास में अधिकांशतः दोनों कथाएँ अन्त में ही मिलती हैं। कथा के मध्यभाग तक दोनों की घटनाओं, पात्रों आदि का किसी भी प्रकार सम्बन्ध नहीं रहता है। जब कि दुहरी कथाशैली के उपन्यासों में दोनों कथा के पात्रों, घटनाओं तथा उद्देश्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहता है परन्तु पन्त जी के उपन्यासों में ऐसा नहीं मिलता है।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख लक्ष्य इस धरती से धन और प्रभुता के अत्याचार को मिटाकर वास्तविक न्याय और सच्ची शांति स्थापित करना तथा वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी प्रयत्नशील रहते हैं, यद्यपि प्रत्येक का मार्ग एक दूसरे से भिन्न है। भैरव एक धनी परिवार की सन्तान है परन्तु उसे "धन सम्पत्ति के चारों ओर बड़े भयानक गिद्ध मँडराते दिखाई देते हैं। वह उच्च जाति या कुल को धन सम्पत्ति का ही दूसरा नाम मानता है।"[1] वह क्रांतिकारी विचारों का युवक है। समाज की मुक्ति के लिए वह तड़पता है। ऊँच-नीच के भेद-भाव को नष्ट करने के लिए बीसो नाम की एक महरी कन्या से विवाह करने के लिए राजी हो जाता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्य की प्राप्ति का कोई ठोस कार्यक्रम नहीं है। इसलिए वह केवल माता-पिता का विरोध करता है।

आतंकवादियों का आश्रम भी समाज में समानता लाने के उद्देश्य से कार्य करता है। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि "गरीबी हमारा दुर्भाग्य नहीं है, वह हम पर बलपूर्वक लाद दी गई है—अत्याचारियों के अन्याय, स्वार्थ के अन्वेषण द्वारा। इसके सहायक दो हैं – शस्त्र और सिक्के। एक के भय और दूसरे के लोभ के कारण न्याय फैल नहीं पा रहा है। इसलिए पृथ्वी पर से इन दोनों को मिटा देने की आवश्यकता है, तभी यहाँ असली न्याय और सच्ची शान्ति फैल सकेगी।"[2] धन और प्रभुता के अत्याचार को मिटाना उनका व्रत है। अपने व्रत की पूर्ति के लिए उनके पास भी कोई ठोस योजनाबद्ध कार्यक्रम नहीं दिखाई देता। माता जी उस आश्रम की संचालिका हैं। सम्पूर्ण कार्यकर्त्ताओं और स्वयंसेवकों पर उनका कठोर अनुशासन है। परन्तु वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाने की अपेक्षा युगचेतना के आगमन की प्रतीक्षा में रहती हैं और उसका आगमन वह ज्योतिष के गणित के आधार पर भैरव को ही मानती है, जो अन्त में असफल सिद्ध होता है।

खंपालामा भी तिब्बत में इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जप करता है। वह जप द्वारा मैत्रेय का अवतरण करना चाहता है। "मैत्रेय ही बुद्ध का भावी रूप होगा, जो विश्व का कल्याण करेगा।' उसका ऐसा विश्वास है। वह भी अपनी गणित विद्या के आधार पर भैरव को ही मैत्रेय का अवतार मानता है परन्तु उसका गणित भी गलत सिद्ध होता है। इस प्रकार विश्व मंगल के लिए तीनों कार्य करते हैं, भैरव, आतंकवादी केन्द्र

---

१. मैत्रेय, पृ० ५६

२. वही, पृ० ६०

और खपोलामा । ये तीनों इसमें असफल होते है । वस्तुत: आज के समाज की विषम स्थिति का अकन उपन्यासकार ने सफलतापूर्वक किया है । आज के समाज में व्याप्त अत्याचार, अनाचार, अशांति एक विकट समस्या है परन्तु इस समस्या का समाधान न तो भैरव के समाज विरोध से ही हो सकता है और न खंपोलामा तथा आतंकवादी केन्द्र की स्थापना से । केन्द्र की संचालिका की ज्योतिष गणना के अनुसार मैत्रेय व युग चैतन्य के अवतरण से ही हो सकता है । कथाकार ने पाठकों को वर्तमान सामाजिक समस्या की यथास्थिति का बोध कराकर उनके हृदयो में एक खलबली पैदा की । आज के पिसे हुए समाज की बुद्धि में वास्तविकता की रश्मि प्रदान की परन्तु उसके समाधान के स्थान पर पाठकों के मस्तिष्क में प्रश्नवाचक चिह्न उत्पन्न कर दिया । उपन्यासकार अपने उपन्यास में लक्ष्य प्राप्ति में पूर्णत: असफल रहा है ।

प्रस्तुत उपन्यास, जैसा कि पहले निवेदन किया जा चुका है, तिब्बत की पृष्ठभूमि पर आधारित है । इसलिए इसमें अनेकों तिब्बती शब्दों—अवलीश, कंग्यूर, कापा, खऊँ, रारियन, गुंपा, चोआ, छुपा का प्रयोग हुआ है । ये शब्द वातावरण की सृष्टि में सहायक सिद्ध हुए है और भाषा की रोचकता में भी ।

तारों के सपने (१९५५)

गोविन्दवल्लभ पन्त जी का अठारहवाँ उपन्यास 'तारो के सपने' अपने बम्बई प्रवास के कुछ कड़वे-मीठे अनुभवों को लेकर लिखा गया है । कथानायक प० भानुदेव शर्मा अर्थात् भन्नन जी उच्च कोटि के कथाकार है। अपनी आर्थिक दशा से तंग आकर प्रकाशित-अप्रकाशित सभी उपन्यास-कहानियों को लेकर निर्धनता से मुक्ति पाने के लिए फिल्म क्षेत्र में पदार्पण करने के विचार से वे बम्बई जाते हैं। बम्बई जाने के लिए अपनी पत्नी भग्गो का हार बेचकर मार्ग व्यय जुटाते हैं। रेल में उनके सन्दूक की चोरी हो जाती है और वे अपने वस्त्रों और अपनी कृतियों से हाथ धो बैठते हैं । किसी न किसी प्रकार बम्बई पहुँच कर वे अपने मित्र प्रेम के साथी हरीश के पास रहने लगते है । हरीश बेनू प्रोडक्शन में चपरासी है । वह और करीम चाचा उसे फिल्म-क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था और गुटबन्दी के विषय मे बताते है, परन्तु भानुदेव शर्मा अपना प्रयास नहीं छोड़ते । एक फिल्म कम्पनी में उनकी भेंट किरसन जी से होती है जो अपना परिचय फिल्म डाइरेक्टर के रूप में देता है । विज्ञापन के खर्च के रूप में वह पंडित जी से २० रुपये ले लेता है साथ ही, सीधे-साधे स्वभाव को त्याग कर पंडित जी को आधुनिक ढंग से रहने की सलाह भी देता है । पंडित जी को भी अपनी सादगी अखरने लगती है और वे अपने लिए पैंट-कमीज सिलवाते है । छून-छात को रूढ़िवादिता कहकर अब वे करीम चाचा, हरीश आदि के साथ ही भोजन करते हैं । किरसन जी पंडितजी को प्रेम प्रधान कहानी लिखने को कहता है । पडित जी अछूतोद्धार की कहानी, दर्जी की कहानी, प्रेम की कहानी, दयालभाई की पौराणिक कथा का प्लाट सोचते हैं, परन्तु बिना भाग की चुटकी के उनकी कल्पना जाग नही पाती । वे जिस किसी व्यक्ति या घटना से मिलते हैं उसी में कहानी का प्लाट ढूंढने का प्रयास करते है । यहाँ तक कि जिस दर्जी को उन्होंने अपने कपड़े सिलने को दिए थे, उसकी दीन दशा एवं सुन्दर पत्नी को देखकर कहानी का प्लाट खोजने के लिए वे उसकी पत्नी की ओर घूर-घूर कर देखने लगते है । फलतः उन्हें दर्जी की करारी भर्त्सना सहनी पड़ती है । किरसन जी प्रेम प्रधान कहानी लिखने की सलाह के साथ ही इसकी विधि भी बताता है और कहता है कि जब तक वह किसी तारिका से वस्तुत: प्रेमपूर्ण बातें नहीं कर लेते तथा उसे अपने हृदय-स्पन्दन में नही उतार लेते तब तक

ऐसी कहानी लिखना सम्भव नहीं। अतएव वे एक रात को प्रेम पाने, अपनी कल्पना को जगाने और अपने हृदय-स्पन्दनों मे उस सुन्दरी को उतारने के लिए शराब पीकर अभिनेत्री सरिता के कमरे मे घुसते है। परन्तु वहाँ उन्हे सरिता से करारी चपत, भर्त्सना और धिक्कार मिलती है और पडित जी अपना सा मुँह लेकर आते है। कुछ महीने बाद सरिता पडित जी को अपनी फिल्म के लिए कहानी लिखने का निमन्त्रण देती है और बम्बई आने के लिए मार्गव्यय भी भेजती है, परन्तु पडित जी प्राप्त धन को वापस भेज कर निमन्त्रण को ठुकरा देते है, परन्तु फिल्म के लिए 'तारो के सपने' कहानी अवश्य भेज देते है।

सिनेमा जगत् पर लिखा गया पन्त जी का यह दूसरा उपन्यास है। इसी विषय के प्रथम उपन्यास 'तारिका' में लेखक ने युवको की सिनेमा-प्रवेश की प्रवृत्ति तथा सिनेमा कम्पनियों के पतन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है, पर यह सब कुछ केवल कल्पना के आधार पर है और स्वानुभूति का उसमे किञ्चिन्मात्र ही प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास को पढ़कर प्रतीत होता है कि लेखक ने स्वय उस क्षेत्र में प्रवेश कर स्वयं के अनुभवो का चित्रण किया है तथा सिनेमा जगत् के अन्तर्गत फैली हुई बुराइयों की शल्य-चिकित्सा की है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में भी इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है—"बम्बई के प्रवास मे कुछ कड़वे-मीठे अनुभव हुए थे—उन्ही को कल्पना का रंग देकर यह उपन्यास लिखा है।"

वस्तुत. उपन्यास की कथावस्तु एक साहित्यकार के जीवन के सघर्षों की करुण गाथा है। जिस साहित्यकार को कलम घिसते-घिसते बीस बरस बीत चुके हों, जिसकी रचनाओ को बेचकर प्रकाशकों ने महल खड़े कर लिए हों, जिसके अन्तर्मन में एक सच्चे साहित्यकार का आत्मसम्मान और एक सच्चे कलाकार की आत्मा का वास हो तथा जिसके जीवन के अनुभवो ने उसकी भावना मे गहरी अनुभूति दी हो, ऐसे साहित्यकार को अन्ततः अपनी दरिद्रता से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय यही दिखाई देता है और वह बम्बई में फिल्म निर्माताओं के दरवाजों के चक्कर काटता है, वहाँ के व्यक्तियों के हाथ मे कठपुतली के सदृश नाचता है और अन्त में अपना सब कुछ नष्ट कर वापस आने के लिए घर से ही रुपये मँगाता है। फिल्म निर्माताओं, कहानी लेखकों की गुटबन्दी तथा अदूरदर्शिता वहाँ उसके पाँव नही जमने देती।

लेखक आधुनिक युग का सुन्दर खाका खींचता है—"यह विज्ञापन का युग है। बिना विज्ञापन दिये कौन किसी का मूल्य समझता है।"[1] वस्तुतः लेखक का प्रस्तुत कथन अक्षरशः सत्य है। स्वयं लेखक लगभग दो दर्जन उपन्यासों का रचयिता है परन्तु कथासाहित्य में उन्हें कोई जानता तक नहीं। जिसका अधिक विज्ञापन होता है वही सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार माना जाता है। आज का साहित्यकार दिन-रात परिश्रम कर साहित्य का सृजन करता है। सरस्वती की अगाध तपस्या करता है और उस तपस्या का फल तपस्वी को न मिलकर प्रकाशक को मिलता है। लेखक स्वयं इस बात को स्वीकार करता है कि "प्रकाशकों का घोर अत्याचार हैं, जो मैं इस तरह पीस दिया गया हूँ।"[2] वस्तुतः आज का कोई भी सच्चा साहित्यकार ऐसा नहीं जो आर्थिक दुर्दशा का शिकार न हो। दिन रात परिश्रम कर अध्ययन, चिन्तन और मनन के पश्चात् अपनी कृति प्रकाशक को सौंपता है तो उसे पृष्ठों के हिसाब से पैसे मिलते हैं। प्रकाशक थोड़े ही समय में लखपति बन जाता है और वही

१. तारों के सपने, पृ० ३
२. वही, पृ० ४

साहित्यकार निर्धनता के कारागार में कराहता रहता है—"आखिरकार उसे भी भोजन, वस्त्र, आवास की आवश्यकता है। अन्य संसारी प्राणियों के समान उसकी भी इच्छाएँ हैं, साहित्य से पेट नहीं भरता।"[1] भारत स्वतन्त्र है। सरकारी राजपत्रों में हिन्दी भी राजभाषा स्वीकार कर ली गई है, उसमें प्रचुर साहित्य का सृजन भी हो रहा है। आज के साहित्यकार की एक सरकारी महकमे के चपरासी के बराबर भी प्रतिष्ठा नहीं। लेखक ने उपन्यास के नायक भानुदेव शर्मा के माध्यम से इस कटु सत्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा है—"कितना पिछड़ा हुआ मेरा देश है? राष्ट्रभाषा के साहित्यिक की यह दशा। अगर मैं किसी महकमे का कोई चपरासी भी होता तो मेरे बिल्ले की चमक से मुझे जगह मिल गई होती।"[2] वस्तुतः आज हमारे सम्मुख कई उदाहरण हैं। शिखर कोटि के साहित्यकारों की दयनीय दशा है। उनका सम्मान, स्थान व मूल्य एक साधारण चपरासी के बराबर भी नहीं। राष्ट्र व देश पर यह एक बड़ा कलंक है जहाँ विद्वानों का सम्मान नहीं। इसके अतिरिक्त जीवन की प्रगति के प्रत्येक मार्ग में गुटबन्दी है। यदि कोई किसी गुट विशेष से सम्बन्धित नहीं है तो नवीन प्रतिभाओं को उभरने का अवकाश ही नहीं मिलता। राजनीतिक क्षेत्र में तो है ही, सामाजिक-साहित्यिक क्षेत्र में भी इस प्रकार की अवाञ्छनीय प्रवृत्तियाँ कार्य करती हैं। गुटबन्दी की यह प्रवृत्ति राष्ट्र की प्रगति में सबसे बड़ी बाधक है और हमारे वर्गहीन समाज प्रधान संविधान के लिए एक महान् चुनौती। सिनेमा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं। पंडित भानुदेव शर्मा की रचनाएँ विद्वत्तापूर्ण हैं, उनमें भावनाओं की गहरी पैठ है और उन्हें अपनी लेखनी पर विश्वास है—"उस विशाल बम्बई नगरी में मेरी सिफारिश करने वाला कौन है? इतनी किताबें उनके सामने रखूँगा, तो वे समझेंगे, आज सचमुच में कोई असली लेखक बम्बई की आबहवा में आकर फँस गया।"[3] परन्तु वहाँ पहुँचने पर वास्तविकता का ज्ञान होता है। जब हरीश शर्मा जी से कहता है—"लेकिन यहाँ इन लोगों के ऐसे गुट बने हुए हैं, किसी बाहर वाले को घुसने ही नहीं देते।"[4] भारत को स्वतन्त्र हुए आज प्रायः १५ वर्ष हो गये हैं। हिन्दी नाम मात्र की राजभाषा है। भारत के कर्णधारों की विचारधारा में अभी अंग्रेजी की वासना है। भारतीय पद्धति से सोचना-समझना तो वे अपना पतन समझते हैं। इस पर भी लेखक ने भानुदेव शर्मा के वक्तव्य के माध्यम से कटु व्यंग्य कसा है—"यह अंग्रेजों का बसाया और बनाया हुआ है। अंग्रेज चला गया तो क्या हुआ? अंग्रेजियत यहाँ से कभी जा ही नहीं सकती...।"[5]

प्रस्तुत उपन्यास में आज के साहित्यकार तथा आज की राजभाषा हिन्दी का कितना सम्मान है, स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी इन दोनों की क्या दशा है, इसका सत्य एवं स्पष्ट चित्र अंकित किया गया है। साहित्य एवं साहित्यकार के प्रति सरकार तथा समाज का उपेक्षाभाव प्रदर्शित करने पर भी साहित्य की महत्ता एवं शक्ति को नवीन ढंग से व्यक्त करना लेखक नहीं भूला है—"साहित्य वह इंजेक्शन है, जो एक मनुष्य नहीं सारे राष्ट्र को नवीन चेतना और नवजीवन से ओत-प्रोत कर देता है। साहित्य ही वह मंत्र है जिसके द्वारा धरती पर की कौटुम्बिकता बढ़ाकर हम उसे स्वर्ग में बदल सकते हैं। दुनिया में जो बहुत

१. तारों के सपने, पृ० २८
२. वही, पृ० ५८
३. वही, पृ० १७
४. वही, पृ० १०४
५. वही, पृ० १५२

बड़े-बड़े काम लड़ाइयों से सिद्ध नहीं हो सके, दण्ड और कानून के भय से नहीं किये जा सके, वे साहित्य की मदद से बड़ी आसानी से सम्पन्न हो गए।''[1]

उपन्यास की सम्पूर्ण कथा भानुदेव शर्मा के ही चारों ओर घूमती है जिससे कथा का वस्तु-विधान शिथिल हो गया है। इस कथा के अतिरिक्त सम्पूर्ण उपन्यास में अन्य कोई प्रासंगिक या अन्तर्गत कथा भी नहीं है। कथा पर्वतीय क्षेत्रों की इकहरी पगडंडी की भाँति चलती है।

लेखक के अन्य उपन्यासों के पात्रों की भाँति प्रस्तुत उपन्यास के नायक पंडित भानुदेव शर्मा का चरित्र भी सबल नहीं है। अन्य उपन्यासों के पात्रों में भावात्मक आदर्श की यत्र-तत्र झलक दिखाई पड़ती है जिससे उनकी दुर्बलता अधिक नहीं उभरती है, परन्तु प्रस्तुत उपन्यास का नायक पं० भानुदेव शर्मा बेपेंदे के लोटे की तरह करवटें बदलता रहता है। उपन्यास के आरम्भ में हमें वह एक स्वाभिमानी साहित्यकार के रूप में दिखाई पड़ता है—"मैं साहित्यिक हूँ, बड़ा भारी आत्मसम्मान रखता हूँ, और ये सिनेमा वाले—उनका आदर्श ही क्या है?"[2] परन्तु पं० भानुदेव शर्मा जैसे आत्म-सम्मानी व्यक्ति का एक दो मित्रों के कहने भर से सिनेमा क्षेत्र में चले जाना दुर्बलता का ही द्योतक है। बम्बई जाने पर तो वह औरों के हाथ की कठपुतली मात्र रह जाता है। उसका व्यक्तित्व, आत्म-सम्मान, रेत की भीति के समान ढह जाता है। धोती-कुर्ता पहनने वाला, अब लोगों के कहने मात्र से ही कोट-पैंट पहनना आरम्भ करता है। जो व्यक्ति यह स्वीकार करता हो —"कपड़ों की सुन्दरता के लिए जो भावना है वह आदमी की कमजोरी है। विचार की दुर्बलता ही अक्सर बढ़िया कपड़े पहन कर उसमें छिपाई जाती है।"[3] वही अगर सुन्दर वस्त्र पहनना आरम्भ कर दे तो उस में चरित्रबल कहाँ रहा? इसी प्रकार कल्पना को जगाने के लिए मदिरा का सेवन करना, सरिता जैसी सुन्दर अभिनेत्री से प्रेम पाने की इच्छा से रात्रि के समय एकान्त में उसके कमरे में चला जाना साहित्यकार के आत्मसम्मान के सर्वथा विपरीत है। इतना ही नहीं पं० भानुदेव शर्मा जैसा कर्मकांडी ब्राह्मण यदि दूसरों के कहे में आकर संध्यापूजा को पाखंड मान कर आत्मप्रदर्शन, मदिरासेवन और कामुकता को ही प्रगति मान ले तो उसे आत्माभिमानी और चरित्र का साहित्यकार मानने में संकोच होता है। वस्तुतः उपन्यासकार अपने नायक के प्रति उचित न्याय नहीं कर सका है। भानुदेव जैसे आदर्शवादी, आत्म-सम्मान-प्रिय एवं स्वाभिमानी साहित्यकार को इतना गिरा देना उचित नहीं।

कागज की नाव (१९६०)

'कागज की नाव' गोविन्दवल्लभ पन्त जी का १९वाँ उपन्यास है। विमाता के कटु व्यवहार, पिता के उपेक्षित भाव, स्नेहहीन व्यवहार के वातावरण में बाल्यकाल की घड़ियों को काटने वाले बालक में समाज विद्रोही तथा समाज एवं राष्ट्र के अकल्याणकारी तत्व किस प्रकार उभरते हैं—उसका अंकन, विवेचन एवं विश्लेषण लेखक ने प्रताप के माध्यम से इस उपन्यास में किया है। प्रताप अपनी विमाता के दुर्व्यवहार एवं पिता के उपेक्षित भाव

---

१. तारों के सपने, पृ० ४६
२. वही, पृ० १
३. वही, पृ० ८१

से प्रायः भूखा रह कर और अधपेट खा कर किसी न किसी प्रकार दिन काटता रहता है। उसकी आयु १०-१२ वर्ष की होने पर कितने ही दिन भूखा रखने के बाद उसका पिता उसे घर से निकाल देता है। वह भी परिस्थितियों की बेबसी में चोरी करना आरम्भ कर देता है और कुछ समय बाद कुख्यात डाकू बन जाता है। अपनी प्राण रक्षा के लिए उसे बीहड़ जगलों की शरण लेनी पड़ती है और वह अपने साथी रजन और कुत्ता विक्टर को साथ लेकर दस्युराज सरूपा के दल में सम्मिलित हो जाता है। सरूपा के दल में विरूपाक्ष एक ज्योतिषी काली माँ का पुजारी भी है, जिसके ज्योतिष ही की गणना के सकेतों पर वह डाके डालता है। उसकी ही ज्योतिष गणना के संकेतों पर दस्युराज सरूपा एक विवाह के अवसर पर बांसवाड़ा में डाका डालता है। डाका डालते समय सरूपा को ज्ञात होता है कि एक १५ वर्ष की कुंवारी कन्या चांदनी का विवाह ५० वर्ष के बूढ़े से होने वाला है। चांदनी को उसकी तथाकथित माता ने कहीं से चुराया था और वह १० हजार रुपये में उसे उस बूढ़े के हाथ बेच रही है। सरूपा की मानवीय आत्मा तिलमिला उठती है और वह चिल्लाते हुए कहता है—"राक्षसो, इसको विवाह कहते हैं। पचास वर्ष का बूढ़ा यह वर और पन्द्रह वर्ष की कुमारी यह कन्या।"[1] और चाँदनी को "इधर आओ बेटी, मैं तुम्हारा ही उद्धार करने आया हूँ।"[1] कहकर उस की इच्छा से उसका अपहरण कर और सम्पत्ति को लूट कर चला जाता है। मार्ग में वह किसी अज्ञात व्यक्ति की गोली का शिकार हो जाता है। प्रताप की तीक्ष्ण बुद्धि ने सरूपा के मन को जीत लिया था। इसलिए वह उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर तथा चाँदनी के विषय में यह कहते हुए प्राण छोड़ देता है—"यह भाग्य की मारी लड़की चाँदनी इसका ध्यान रखना, इसके लिए जो मैंने कहा है वह पूरा करना।"[3] प्रताप भी सरूपा के ही अनुसार विरूपाक्ष के ज्योतिष की गणना के संकेत पर डाके डालता है। 'रात का राजा' के नाम से सारे क्षेत्र उससे आतंकित हो उठते हैं। हवा में तीन गोलियाँ छोड़ने पर ही वह डाके डालता है। कई अमीरों को उसने भिखारी बना दिया है। राज्य की पुलिस शक्ति भी उससे तंग आ गई है। प्रताप के मन में अपने परलोकवासी सरदार के हत्यारे के प्रतिशोध की अग्नि अभी शान्त नहीं हुई है। इसी प्रतिशोध की अग्नि को शान्त करने के लिए वह विरूपाक्ष की गणना के अनुसार एक विधवा जगद्धात्री के मकान पर डाका डालता है। सारा घर छानने के पश्चात् नकदी व जेवर के नाम पर एक छल्ला तक उसे नहीं मिलता। और जगद्धात्री के पति का देहान्त तो सरदार के मरने के एक वर्ष पहले हो गया था। जगद्धात्री के मकान में उसे एक बंद लिफाफा मिलता है जिस पर बारह वर्ष बाद जगद्धात्री की कन्या सरिता के विवाह पर खोलने का आदेश अंकित था। उस पत्र को वह अपने साथ ले जाता है। चांदनी के सम्मोहन व्यवहार से सरिता उसकी गोद में आ जाती है। चांदनी का भी मातृत्व जाग उठता है और अपने गले के हार को सरिता के गले में डाल-कर [illegible] चली जाती है। ज्योतिष की गलत गणना पर प्रताप बहुत कुपित हो उठता है। जगद्धात्री के अगाध, दीनता भरे संतप्त जीवन पर चांदनी का हृदय पसीजता है और वह कह उठती है—"हे मालिक, रात के राजा, क्या यह अच्छा नहीं कि हम फिर से श्रमजीवी ही बने रहें।"[4] प्रताप से वह लिफाफा रास्ते में गिर जाता है।

---

१. [illegible], पृ० ३०
२. वही, पृ० ४२
३. वही, पृ० ३१
४. वही, पृ० ३६

गुफा में आने के बाद इस घटना से उसकी आत्मा आन्दोलित हो उठती है। उसके अपने कुकृत्यों के दृश्य एक के बाद एक उसके सामने चलचित्र के समान आते हैं। जगद्धात्री का क्रन्दन और उसकी दीन, असहाय अवस्था उसे स्पष्ट दिखाई देने लगती है। "मेरे बहुत से पाप जमा हैं मुझे उन्हें क्षीण करना ही होगा।"[1] वह उस लिफाफे की खोज में साधु का वेष बनाकर जाता है परन्तु नहीं मिलता। निराश होकर, वह 'रात का राजा' दीन भिक्षुक बनकर वापस आता है। वेष बदल कर अपनी सम्पूर्ण संचित सम्पत्ति दीनों, दुखियों, अपाहिजों को बाँट देता है। उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है। वह अपने साथियों के विषय में कहता है—"मैं उन्हें रात्रि के अन्धकार से निकालकर प्रकाश का जीवन दिलाऊँगा।"[2] "जिनको स्वीकार न हो, वे जहाँ चाहें चले जाएँ।"[3] और सारे जगल को काटकर खेती करता है। विरूपाक्ष, रंजित, चाँदनी के अतिरिक्त अन्य सब एक-एक करके चले जाते हैं। महाराजिन के मरने के बाद चाँदनी अकेली रह गई थी इसलिए वह सरिता के लिए जिद करती है। प्रताप जाता है परन्तु असफल रहता है। उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। वह अपने हाथों को काट देता है, जिन हाथों ने पापकर्म किए थे। रंजित और विरूपाक्ष भी एक दिन बाजार जाते हैं पर लौट कर वापस नहीं आते। अब प्रताप और चांदनी ही केवल रह जाते हैं। अपने हाथों की पीड़ा से व्याकुल होकर प्रताप ने अपनी सम्पूर्ण जीवनगाथा चांदनी को सुनाई तथा बताया कि वह उसकी सगी बहन है, जिसे उसकी सौतेली माँ ने एक बुढ़िया को बेच दिया था। चाँदनी व्याकुल होकर अपनी आत्महत्या कर लेती है। प्रताप और उसका एकमात्र मित्र विक्टर कुत्ता, जगद्धात्री के पास जाता है। उसे ज्ञात होता है कि वह लिफाफा शहर के चौकीदार को मिला था और उसने उसे सरकारी आफिस में जमा करा दिया था। उसमें नैशनल सेविंग सर्टिफिकेट थे और वे जगद्धात्री को मिल गये हैं। वह अब अपनी कन्या की शादी कर सकेगी। प्रताप जब यह बात सुनता है तो आसमान की ओर अपने कटे हुए हाथों को जोड़ कर कहता है—"उस प्रभु का धन्यवाद है। तब मैं अकेला ही न्याय की शरण में जाता हूँ।"[3] और पागल की तरह दौड़ता है। विक्टर और वह मोटर की लपेट में आ जाते हैं और दोनों का प्राणान्त हो जाता है।

विनोबा भावे के डाकू ग्रस्त क्षेत्र का दौरा तथा उनके हृदय परिवर्तन के अभियान से प्रभावित होकर पन्त जी ने उसी पृष्ठभूमि पर इस उपन्यास की रचना की है। डाकू समस्या भारत की बड़ी विकट समस्या है। लेखक अपने उपन्यास में इस तथ्य को चित्रित करने में पूर्ण सफल हुआ है कि डाकू जन्मजात नहीं होते। समाज ही इस बात का उत्तरदायी है। ये विकट परिस्थितियों के शिकार होने पर ही पथभ्रष्ट होते हैं और इस प्रकार के अवांछनीय कुकृत्य करते हैं। प्रताप के माध्यम से लेखक ने उन परिस्थितियों का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। प्रताप द्वारा आत्महत्या भावात्मक आदर्शवाद है। वस्तुतः जब कुकृत्यों के परिणामतः आत्मा उत्पीड़ित होती है और जब आत्मपीड़न की चरम अवस्था आ जाती है तो व्यक्ति अपने आप से घृणा करता है। प्रताप भी इसी घृणा के वशीभूत होकर अपने हाथों को काट लेता है, फिर भी उसके पश्चात्ताप की ज्वाला शान्त नहीं होती। वह

1. कागज की नाव, पृ० ७०
2. वही, पृ० ७१
3. वही, पृ० १२५

विक्षिप्त-सा हो जाता है और अन्त में आत्महत्या कर लेता है। लेखक हृदय-परिवर्तन के वातावरण की सृष्टि करने में भी सफल हुआ है। बाबू रामधन राय की विधवा पत्नी जगद्धात्री केवल अपनी पुत्री सरिता के लिए दीन और असहाय वैधव्य जीवन बिताती है। जेवर के नाम पर उसके पास एक अँगूठी तक नहीं। प्रताप उसके घर पर डाका डालता है, उसकी करुण दशा तथा स्नेहमयी बहन चाँदनी की वाणी उसके हृदय में क्रान्ति पैदा कर देती है। वह सरिता के विवाह के अवसर पर खोले जाने वाले लिफाफे की ढूँढ में ही अपनी वेशभूषा, आचार-विचार परिवर्तन कर देता है।

वह बीहड़ जगलों के उन गगनचुम्बी वृक्षों को काट कर अन्न पैदा करता है जो कभी उसके रक्षक बने थे। उसकी बहन चाँदनी की मृत्यु के बाद उसके साथ कोई नहीं रहता। केवल उसका कुत्ता विक्टर ही रहता है। उसके तन पर केवल एक लँगोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को दीन-गरीबों में बाँट देता है। अन्त में जगद्धात्री के पास आकर कहता है—"माँ, मैं पापी हूँ। आज मैं अपने पापों का प्रायश्चित्त करने आया हूँ।"[1] जब वह उसके कटे हुए हाथों तथा नग्न भिखारी के रूप में देखती है और घबरा उठती है तो वह विनयपूर्वक कहता है—"नहीं माँ, मुझ पर दया करो, पहले मेरी बात सुन लो। मुझे जीवित या मृत पकड़वाने के लिए पाँच हजार का पुरस्कार है। तुम मुझे पकड़वाने के लिए पुरस्कार की अधिकारिणी बनो। वह द्रव्य उस लिफाफे की कीमत समझ ली जाएगी जो मैंने खो दिया। इस द्रव्य से तुम्हारी लड़की की शादी होने में सहायता हो जाएगी।"[2] परन्तु जब उसे लिफाफा मिलने की घटना ज्ञात होती है तो वह प्रसन्नतापूर्वक अपने कटे हुए हाथों को जोड़ कर उस प्रभु का धन्यवाद करता है। खुशी से पागल हो कर भागता है।

लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में उन परिस्थितियों का चित्रण किया है जिनसे वे डाकू बनते हैं और उन परिस्थितियों का चित्रण भी किया है जिनसे ज्ञात होता है कि डाकू हृदय-शून्य नहीं होते। उनके हृदय में भी एक स्वस्थ गृहस्थी के समान स्नेह होता है। सरूपा चाँदनी की स्थिति को देखकर उसे बेटी के रूप में ग्रहण करता है। मरते समय उसके सामने केवल एक ही समस्या रहती है और वह है चाँदनी का भविष्य।

चाँदनी यद्यपि डाकुओं के पास रहती है फिर भी वह हृदयशून्य नहीं, सरिता को गोदी में लेकर उसका भी मातृत्व जाग उठता है। जगद्धात्री को वही सांत्वना देती है। जगद्धात्री विस्मय के साथ कहती है—"कौन हो तुम इतनी दयावती ? ऐसे निर्दयी और निर्मम डाकू के साथ ?"[3] प्रताप के हृदय-परिवर्तन में सबसे बड़ा हाथ चाँदनी का ही है जो बड़े करुण भाव से कहती है—"हे मालिक, रात के राज्य से क्या यह अच्छा नहीं कि हम दिन के श्रमजीवी ही बने रहें।"[4] और सचमुच प्रताप श्रमजीवी बनकर ही रहा।

---

१. कागज की नाव, पृ० २५
२. वही, पृ० १२५
३. वही, पृ० ४०
४. वही, पृ० ३९

२. सुमित्रानन्दन पन्त

हार

'हार' उपन्यास श्री सुमित्रानन्दन पन्त की सर्वप्रथम रचना है, जिसे उन्होंने अपनी किशोरावस्था मे १९१६-१७ के आस-पास लिखा था। कथा, शिल्प अथवा पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भले ही इस उपन्यास का कोई महत्त्व न हो किन्तु पन्त जी की काव्य-कला के विकास की प्रथम कड़ी के रूप में यह अवश्य ही मूल्यवान् है। इसके अतिरिक्त इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है क्योंकि यह १९१६-१७ की भाषा-शैली पर भी कुछ प्रकाश डालता है।

कथा इस प्रकार है—आशा नाम की एक लड़की भविष्य नाम के एक लड़के की ओर बचपन की क्रीड़ाओं में आकृष्ट हो जाती है। किशोरावस्था मे वही आकर्षण प्यार का रूप ले लेता है किन्तु संकोच के कारण दोनों एक-दूसरे पर अपना प्यार प्रकट नहीं कर पाते हैं। सुफला और विजया आशा की सहेलियाँ हैं, जिनमे से विजया भविष्य के बाल सहचर निमेष से ब्याही हुई है। भविष्य और आशा तरलंग सर के पास मिलते तथा बातें करते हैं किन्तु प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं करते। निमेष सुफला के रूप से आकृष्ट हो कर अपनी पत्नी विजया से विमुख हो जाता है और उधर एक दिन आशा भी निमेष की ओर बुरी तरह आकृष्ट हो जाती है। इस विकट स्थिति से सुफला ही सब को उबारती है। वह निमेष के प्रेम-निवेदन को अस्वीकार कर के उसे ठीक रास्ते पर लाती है और भविष्य को आशा के ढुल-मुल प्रेम का परिचय देकर उसे आसक्ति से विमुख करती है। भविष्य एक पुजारी से प्रेम-स्वार्थ, दुःख-सुख सम्बन्धी उपदेश ग्रहण कर के तरलग के तट पर संन्यास लेकर रहने लगता है और जब आशा अपनी गलती का प्रायश्चित्त करती हुई उसके पास आती है तो वह उसे बहन कह कर वैराग्य का उपदेश देता है।

उपन्यास जिस ढंग से लिखा गया है उससे लगता है कि पन्त जी अपनी किशोरावस्था में ही कालीदास के महाकाव्यों, रीतिकालीन शृंगारिक कवियों तथा समकालीन कवियों की रचनाओं के थोड़ा-बहुत सम्पर्क में आ चुके थे। उपन्यास का प्रारम्भ आराम की शोभा का वर्णन करने वाली एक कविता से होता है और फिर कविताओं को उद्धृत करने का यह क्रम अन्त तक चलता रहता है। नायिका के रूप, पात्रों की मनःस्थिति आदि व्यक्त करते समय बिहारी के दोहों के अतिरिक्त अनेक रीतिकालीन कवियों के पदों का आश्रय लिया गया है। विरह, विलाप और प्रेम निवेदन में वही शैली अपनाई गई है जो तोता-मैना की प्रेम-कथाओं में मिलती है। कहीं मेघदूत से प्रेरणा पाकर प्रेम से ही प्रेम का सन्देश-वाहक बनने की याचना की गई है। उपन्यास का अन्त भर्तृहरि और पूरन भक्त की कथाओं के आधार पर किया गया है जहाँ नायक को संन्यास दिला कर उसके मुँह से ही प्रेयसी को 'बहन' कहलवा कर उसे उपदेश दिया गया है। कहीं पर निमेष, बद्धा की बाँसुरी की मनमोहक तान है जो कृष्ण की बाँसुरी की याद दिलाती है और जिस के जादू में बँध कर ब्रज की गोपियाँ लोक-लाज छोड़ने के लिए कटिबद्ध हो गई थीं। विजया की दशा का चित्रण करके नारी जाति की हीनावस्था पर भी लेखक ने प्रकाश डालने की कोशिश की है। किन्तु पति के चरणों को आँसुओं से धोने के अलावा कोई दूसरा हल

उन्हें नहीं दिखाई पड़ा है। और अन्त में ईश्वरोन्मुख प्यार को ही सच्चा प्यार और वैराग्य को ही जीवन की उच्चतम उपलब्धि मानने में पन्त जी का किशोरवय तत्कालीन समाज सुधारकों की ओर झुका हुआ दिखाई पड़ता है। उपर्युक्त बातों को उपन्यास की त्रुटियाँ न कह कर उसके आकर्षण ही कहा जा सकता है, क्योंकि ये पन्त जी की किशोर-अभिरुचियों को समझने में बहुत सहायक है। भूमिका में पन्त जी ने कहा है :—

"सम्भवत. अपने किशोर मन की कुछ अस्फुट भावनाओं एवं अस्पष्ट विचारों को कथा के रूप में गूँथने के लिए ही मैंने उस लघु उपन्यास की कागज की नाव को साहित्य के सिन्धु में प्रथम प्रयास के रूप में छोड़ने का दुस्साहस किया हो। उस कागज की नाव पर बैठकर आधे दर्जन लोग बिना मानव मन की गहराइयों को छुए, बिना शिल्प की पतवार घुमाए या अनुभव के डाँड चलाए किस प्रकार ऊपर ही ऊपर भावों के फेन को चीरते हुए पार हो सके, मैं आज भी इस बात को सोचकर आश्चर्य में डूब जाता हूँ।"[1]

किन्तु उस उपन्यास का सर्वाधिक महत्व इस बात में है कि यह पन्त जी की कुछ काव्य-शक्तियों को अपने भीतर बीज रूप में सजोए हुए है। पन्त जी का काव्य भाव-सुकुमारता, शब्द, शिल्प, छंद-योजना और कल्पना की प्रखर उड़ान के लिए खड़ी बोली में सर्वाधिक प्रसिद्ध है और इनके बीज हमें इस उपन्यास में ही मिल जाते हैं। प्रेम-विह्वल आशा, भविष्य, निमेष आदि पात्रों के उद्‌गार उनकी भाव-प्रवणता का परिचय देने के लिए काफी हैं। कल्पना की उड़ान तो कथावस्तु की योजना में ही स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर, एक ही उपमेय के अनेक उपमानों की योजना भी प्रखर कल्पना का ही फल हो सकता है। अलंकारप्रियता संभवतः पन्त जी की किशोरावस्था का सबसे बड़ा साहित्यिक गुण था। उपमा और श्लेष सम्भवतः उनके सबसे प्रिय अलंकार थे। पुस्तक के नाम में श्लेष है। भविष्य, आशा, विजया आदि पात्रों में श्लेष है। भविष्य और निमेष तो श्लेष में ही बातचीत करते हैं। नाद-सौंदर्य के लिए अनुप्रास, यमक आदि का भी खुल कर प्रयोग हुआ है। विरह की ज्वाला में झुलसती हुई विजया कहती है— "इस पंच शर की पंचाग्नि सहते-सहते इस पंचभूत शरीर को आज पाँच मास हो गए हैं।"[2] और इन शब्दों को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा उद्धृत, "दोनों दलों की दला-दली में दलपति दलदल में फँस गए" वाक्य के समकक्ष रखा जा सकता है।

नीचे उद्धृत पंक्तियों की अलंकार-योजना पन्त जी की यौवन काल की कविताओं में सरलता से ढूंढी जा सकती है :—

"तुम मेरे जीवन रूपी मरु में शीतल-जल-परिप्लुता अनंत-वाहिनी तरंगिनी हो। तुम मेरे कुहू रूपी हृदय में सदा रहने वाली एक अचंचल दीपशिखा हो।...... तुम्हारा आभास अनंत तारक-राशि के झिलमिल में, तुम्हारी लीला जल की तुतली तरंगों में, तुम्हारा बोलना अलि-दल के मृदु गुञ्जन में, तुम्हारी छवि शरदेन्दु में, तुम्हारी मनोरमता बसंत के बाल विकास में, तुम्हारा गाना कोकिल के कल-कंठ में क्रीड़ा करता है।"[3]

---

१. हार की भूमिका, पृ० ११
२. हार, पृ० ४६
३. वही, पृ० ४५-४६

भविष्य और आशा के श्लेष को तो पन्त जी ने आदि से अन्त तक निभाया है। आशा भविष्य में ही लीन रहती है और भविष्य आशा के सहारे ही जीता है। दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते हुए परस्पर मिल नहीं पाते है, क्योंकि वस्तु जगत् में आशा का विलयन अथवा तिरोभाव कभी नही होता है। आशा यदि भविष्य से बहुत लम्बे समय तक दूर रहेगी तब जीवन भार बन जाएगा और यदि सदैव वह भविष्य के साथ रहेगी तो उस का अस्तित्व ही मिट जाएगा। किन्तु यह एक रहस्य की बात है कि पन्त जी ने विरह की अवधि का उपन्यास मे चार बार[1] उल्लेख किया है और चारों बार यह अवधि एक मास ही है।

---

१. हार, पृ० ६७, ८०, ९५ और ११४

३. इलाचन्द्र जोशी

मनोविश्लेषणात्मक पद्धति—बौद्धिक दृष्टि से जैसे आधुनिक युग का जीवन-दर्शन समाज-सापेक्ष्य न होकर व्यक्ति-सापेक्ष्य हो गया है, ठीक इसी प्रकार इस काल का उपन्यास-कार कलादृष्टि से भी वैयक्तिक और स्वतन्त्र हो गया है। अनेक समस्याओं, अनेक चरित्रों तथा प्रश्नों के अध्ययन के उद्देश्य से उपन्यासशिल्प में अनेक नवीन प्रयोग किए गए हैं जिनमें से मनोविश्लेषणात्मक भी एक है। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का मूल केन्द्र चरित्र होता है और कथानक के प्रति लेखक का दृष्टिकोण पहले के समान विवरणात्मक नहीं होता है। अब कहानी कहना उसका प्रधान उद्देश्य नहीं रहा है। कथानक-कथन का स्थान चिंतन या मनन ने ले लिया है। अतः कथावस्तु के विकास के सब प्राचीन मानदण्ड इन पर चरितार्थ नहीं होते। कथावस्तु के आदि, मध्य, अन्त क्रम की कोई व्यवस्था इस पद्धति में स्वीकार नहीं की जाती है।

इन उपन्यासों की दृष्टि एकान्त रूप से पात्रों में केन्द्रित रहती है। वे उसके साध्य हैं, शेष तत्त्व केवल साधन मात्र हैं। उनका उपयोग लेखक की स्वेच्छा पर निर्भर है, क्योंकि इनमें स्त्री और पुरुष की चेतन और अवचेतन भावनाओं और उनसे उद्भूत समस्याओं का मनोविश्लेषणात्मक ढंग से चित्रण किया जाता है, इसलिए यह चरित्र प्रधान और समस्यामूलक होते हैं। चरित्र-चित्रण की शैली भी इनकी अपनी है। ये चरित्र का चित्रण नहीं करते, उसका विश्लेषण करते हैं। चरित्रों में क्रिया-कलापों, व्यापारों का चित्रण इनकी दृष्टि में इतना महत्त्व नहीं रखता, जितना इन व्यापारों के मूल में अन्तर्निहित प्रेरक चित्तवृत्तियों का अनुशीलन रहना है। इसीलिए इस शैली में व्यापार-चित्रण का स्थान कर्म-प्रेरणाओं तथा चित्तवृत्तियों के अध्ययन ने ले लिया है। सामाजिक उपन्यासों की भाँति इस शैली का उपन्यासकार चरित्रों का आलोचक बनने को उत्सुक नहीं है, वह तो अपने चरित्र का द्रष्टा है और वह उसका व्याख्याता बनने का आग्रह धारण करता है।

अन्य पुरुष वाली इतिहासकार की शैली का इस शैली में स्थान नहीं रहा है। पत्र-शैली और आत्मकथात्मक रचना शैली का इसमें आश्रय लिया जाता है। मानव-मन की गुत्थियों को सुलझाने में इन दोनों शैलियों की विशेष उपयोगिता है। इस प्रकार सामाजिक उपन्यासों की रचना शैली से मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की शैली नितान्त भिन्न दिशा में अग्रसर हुई है। इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यासों में इसी नवीन शैली का अनुसरण किया है।

इस नवीन शैली की दृष्टि से इनके उपन्यासों की समीक्षा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि मनोविश्लेषण शैली के स्वरूप पर कुछ विचार कर लिया जाए, इस शैली में पाश्चात्य साहित्यिक वादों का प्रभाव विद्यमान है। व्यक्तिवैचित्र्यवाद के प्रभाव से ही व्यक्ति का महत्त्व बढ़ा है और इसीलिए समाज के माध्यम से व्यक्ति को देखने की अपेक्षा समस्त चेतना सूत्र का संचालन व्यक्ति में प्रतिष्ठित हो गया है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि फ्रायड के काम वासनावाद और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों ने व्यक्ति और समाज के अध्ययन में नई क्रान्तिमूलक दृष्टि प्रदान की है। अतएव इनके

उपन्यासो की पृष्ठभूमि से भली-भांति परिचित होने के लिए इन वादो का तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का सामान्य परिचय प्राप्त कर लेना भी नितान्त आवश्यक होगा।

मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली और व्यक्तिवैचित्र्यवाद—व्यक्तिवैचित्र्यवाद की यदि पृष्ठभूमि देखी जाए तो पता चलता है कि यूरोप के पुनरुत्थानकाल मे इस बात की ओर ध्यान गया कि समाज मे व्यक्ति भी एक विशेष स्थान रखता है। उसकी भी अपनी विशेषताए होती है, उसकी अपनी स्वतन्त्र अभिरुचि होती है। इसके अतिरिक्त यूरोप म वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति के कारण एक नई सभ्यता ने जन्म लिया। सामान्य भावना को स्वीकार करना अब समुचित नहीं समझा जा सकता, क्योकि यह भावना इस सभ्यता के फलस्वरूप उत्पन्न हुए व्यक्तिवाद के विरुद्ध पडती है। वैयक्तिक प्रवृत्ति के निरन्तर विकसित होने के कारण साहित्य मे व्यक्तिवैचित्र्यवाद की धारणा प्रादुर्भूत हुई। इस वाद के अनुसार साहित्यिक रचनाओ मे शील वैचित्र्य या अन्त प्रकृति वैचित्र्य की ओर ही प्रधानतया ध्यान दिया जाने लगा है। शील वैचित्र्य के चित्रण की अतिशयता से साहित्यिक रचनाओ मे ऐसे पात्रो की सृष्टि होने लगी जो सर्वथा अद्वितीय प्रकृति के थे, जिन्हे किसी वर्ग के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं किया जा सकता। इनमे नर-प्रकृति की ऐसी झाकी मिलने लगती है, *जिसे यदि असम्भव न भी कहा जा सके तो भी विलक्षण या नूतन अवश्य कहना पडेगा।* मानव-समाज मे जो व्यक्ति सामान्य नर-प्रकृति से अधिक विलक्षणता धारण कर लेता है वह समाज मे उपहासास्पद या विक्षिप्त रूप मे ग्रहण किया जाता है।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासो मे इसी व्यक्तिवैचित्र्यवाद के प्रभाव मे व्यक्ति निष्ठता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है। जोशी जी के उपन्यासो मे भी इसी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। व्यक्ति के माध्यम से समाज अथवा व्यक्ति की समस्याओ पर, नैतिक मानदण्डो पर विचार करना अनुचित नहीं। व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता का भी विरोध नहीं किया जा सकता, परन्तु इस प्रवृत्ति को ही एकमात्र ग्रहण कर लेने से जो अतिशयता आ जाती है, उसका दुष्परिणाम मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के पात्रो की अद्वितीय एव विलक्षण प्रवृत्ति के रूप मे दिखाई पड़ता है। जनेन्द्र जी के हरिप्रसन्न और सुनीता इसी बात के उदाहरण कहे जा सकते है। सन्यासी का नन्द किशोर तथा प्रेत और छाया का पारसनाथ भी सामान्य नर-प्रकृति का प्रतीक नहीं माना जा सकता। उनकी चेष्टाओ और क्रियाकलापो को विलक्षण ही कहा जा सकता है। इस प्रकार का व्यक्तित्व समाज मे सामान्यतया यदृष्टिगोचर नहीं होता। नन्दकिशोर के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठापित करने के लिए समाज की यथार्थ वस्तुस्थिति को ध्यान मे रखने के स्थान पर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का आश्रय लिया गया है। इसी कारण यह इन सिद्धान्तो का उदाहरणस्वरूप हो गया है। पाठक वर्ग के हृदय मे यह कुतूहल की सृष्टि भले ही कर दे, परन्तु वह व्यक्तित्व उसके हृदय मे स्थान नहीं पा सकता। लेखक का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर व्यक्तित्व की स्थापना है, यही उसका साध्य है, अभिप्राय यह है कि इस मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली पर इस व्यक्तिवैचित्र्यवाद की गम्भीर छाया के साथ मनोविज्ञान की नई विचारधाराओ का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ता है, अत फ्रायड, एडलर तथा युग के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझ लेना इनके उपन्यासो की समीक्षा करने के लिए आवश्यक हो जाता है।

मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली और मनोविज्ञान—आधुनिक मनोविज्ञान ने मानव-मन की खोज मे आश्चर्यजनक कार्य किया है तथा नए-नए अन्वेषणो तथा अनुशीलनो ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप 'मनोविश्लेषण' की क्रिया अस्तित्व मे आई, जिसका शिलान्यास फ्रायड के हाथों हुआ है। फ्रास के मानसिक चिकित्सक

रूए महोदय के पास रहते समय फ्रायड के मन में यह कल्पना आई कि दबी हुई भावनाओं को प्रबल निदेश के द्वारा दबाने की अपेक्षा उनको किसी प्रकार खोज कर बाहर लाना मानसिक रोगों को समूल नष्ट करने के लिए आवश्यक है। इसी कल्पना के परिणामस्वरूप मन की अज्ञात क्रियाओं के चमत्कारी अन्वेषण हुए। फ्रायड के बाद एडलर और युंग ने भी अचेतन मन की क्रियाओं का गम्भीर अध्ययन करके अपने सिद्धान्तों की स्थापना की है। इन्ही मनोवैज्ञानिको ने अचेतन मन की कल्पना ससार को दी है।

मनोवैज्ञानिक खोजों के आधार पर मन के तीन भाग माने जाते हैं—

(i) चेतन मन, (ii) अवचेतन, (iii) अचेतन।

चेतन मन में मन की समस्त ज्ञान-क्रियाएँ चला करती है। इसे चेतना-केन्द्र या अवधान का क्षेत्र कहा जाता है। इस चेतन मन के परे अवचेतन मन है। मन के इस स्तर में वे भावनाएँ, स्मृतियाँ, इच्छायें तथा वेदनायें रहती हैं जो प्रकाशित नहीं होतीं, किन्तु जो चेतना पर आने के लिए तत्पर रहती हैं। अवचेतन मन के परे अचेतन मन है। अचेतन मन के विचार तथा भावनायें न तो ज्ञात रहती हैं और न प्रयत्न करने से ही वे चेतना के स्तर पर आती है। फ्रायड ने मानव मन की तुलना नाट्यशाला के रगमंच के साथ की है। वे कहते हैं कि चेतन मन रंगशीर्ष या रगपीठ के सदृश होता है जहाँ रंगभूमि के अनेक पात्र अभिनय दिखाने के लिए आते हैं। अचेतन मन नेपथ्यगृह के समान माना जाता है। नेपथ्य-गृह में पात्र अभिनय के लिए अनेक प्रकार की तैयारियाँ करते हैं। अवचेतन मन रंगशीर्ष या रंगपीठ में प्रविष्ट होने के लिए दरवाजे के समान है। जैसे रंगमंच का नेपथ्यगृह निष्क्रिय नहीं रहता, उसमें भावी अभिनय करने वाले पात्रों की तैयारी की जाती है, ठीक उसी प्रकार मन का अचेतन स्तर भी सतत क्रियाशील रहता है। हम जिन अनैतिक या समाज-प्रतिकूल भावनाओं को विवेक के द्वारा दबाते रहते हैं वे भावनायें नष्ट नहीं होतीं। वे मन के इसी स्तर में पड़ी रहती हैं और वहाँ हमारे व्यक्तित्व के प्रतिकूल षड्यंत्र रचती रहती हैं। चेतन और अचेतन मन के बीच एक प्रतिबन्ध व्यवस्था रहती है। यह प्रतिबन्ध व्यवस्था मनुष्य की नैतिक धारणाओं से निर्मित होती है। इसी व्यवस्था के कारण कोई अनैतिक भावना चेतन मन के स्तर पर प्रकाशित नहीं होने पाती और व्यक्ति की अनैतिक वासना प्रतिबन्धक या विवेक बुद्धि के द्वारा दबा दी जाती है। यह पहले कहा जा चुका है कि ये अचेतन मन में पड़ी रहती हैं, नष्ट नहीं होतीं। ये अपने निकास का मार्ग उसी प्रकार बना लेती हैं जिस प्रकार प्रवहण-शील जल की धारा अवरुद्ध होने पर अधिक प्रबल होकर अपने निकास का मार्ग बना लेती है। अचेतन मन की भावनाओं के प्रकाशित होने के प्रधान मार्ग स्वप्न, दैनिक भूलें, और हँसी-मजाक हैं। कला और काव्य भी इन्हीं निकास के मार्गों में से है परन्तु ये मार्ग अधिक परिष्कृत और परिमार्जित हैं।

अचेतन मन की सबसे प्रबल वासना के सम्बन्ध में मतभेद है। फ्रायड के अनुसार अचेतन मन की सबसे प्रबल वासना काम-वासना है। समाज में काम-वासना सम्बन्धी चेष्टाओं पर सबसे अधिक नियन्त्रण रहता है। मनुष्य मन में नैतिक धारणा के विकास के साथ ही साथ काम वासना का कठोर नियन्त्रण होने लगता है। इसी भावना का अधिक नियन्त्रण होने के कारण अचेतन मन में इसकी प्रबलता स्वीकार की जानी चाहिए।

इस सम्बन्ध में एडलर की पृथक् धारणा है। उनका मत है कि मनुष्य की सबसे प्रबल भावना प्रभुत्व कामना या आत्म-प्रकाशन की कामना है। उनका यह वैयक्तिक सिद्धान्त है

कि मनुष्य जन्म लेने के कुछ ही समय बाद से अपनी हीनता या असहायावस्था की अनुभूति से पीड़ित होने लगता है। मनुष्य अज्ञान रूप से अपनी हीनता और असमर्थता से छुटकारा पाने के लिए छटपटाता रहता है और किसी-न-किसी रूप में अपनी स्वाभाविक कमी की पूर्ति अवश्य करता है। उसकी अन्तश्चेतना में शक्ति प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा उत्तेजित होने लगती है। एक प्रकार से पराजित होने के कारण वह अन्तर्मुखी होकर अपनी अन्तश्चेतना में शक्ति सञ्चय करने में सक्रिय हो उठता है और प्रकारान्तर से वह अपनी उस क्षति की पूर्ति कर लेने के लिए उत्कण्ठित हो जाता है। साराश यह है कि एडलर के सिद्धान्त के अनुसार प्रभुत्वकामना अचेतन मन की सबसे प्रबल भावना है।

युग महोदय का अपना स्वतन्त्र मन्तव्य है। उन्होंने समाज-प्रेम की वासना की ओर ध्यान दिया है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में अपने प्रभुत्व, व्यक्तित्व, सुख और समृद्धि की प्रबल इच्छायें होती हैं, उसी प्रकार उसमें समाज के साथ ऐक्य स्थापित करने तथा समाज का कृपापात्र बनने की भी प्रबल आकांक्षा विद्यमान रहती है। उसने काम वासना, प्रभुत्वकामना का विरोध नहीं किया, परन्तु उनको जीवनधारा का भिन्न-पक्ष स्वीकार किया है। इस प्रकार वे लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा को जीवनप्रेरक वृत्तियाँ स्वीकार करते हैं। इन्होंने अचेतन मन की दो विशेषतायें मानी है—(i) वैयक्तिक अचेतन मन, (ii) सामूहिक अचेतन मन। वैयक्तिक अतृप्त इच्छायें वैयक्तिक अचेतन मन की वस्तुयें है। सामूहिक अचेतन मन में मनुष्य की सामाजिक भावनायें स्थित रहती है। मनुष्य की नैतिक भावनाओं का उदय इनकी दृष्टि में सामूहिक अचेतन मन से होता है।[१]

जोशी जी के औपन्यासिक व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में ये ही मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त हैं। प्रमाणस्वरूप उनके उपन्यास 'प्रेत और छाया' की भूमिका को लिया जा सकता है। इस भूमिका में वे लिखते हैं कि "आधुनिक मनोविज्ञान ने अत्यन्त परिपुष्ट परिणामों से यह सिद्ध कर दिया है कि मानव मन के भीतर की अतल गहराई में एक गहन, रहस्यमय, अपार, अपरिमित जगत् वर्तमान है, जिसकी एक निजी स्वतन्त्र सत्ता है। असंख्य मूल पशुवृत्तियाँ और उनके संस्कार इस अज्ञान चेतनालोक में दबे और भरे पड़े हैं। आधुनिक मनुष्य ने सभ्यता के ऊपरी संस्कारों के लेप से अपने सचेत मन में अवश्य सफेदपोशी कर ली है। पर जिस पर्दे पर वह सफेदपोशी की गई है वह इतना झीना है कि जरा-जरा सी बात से वह फट जाता है और उसमें तनिक भी छिद्र पैदा होते ही उसके नीचे दबी पड़ी पशुवृत्तियाँ परिपूर्ण वेग से विस्फुरित होने लगती है। इन मूल पशुवृत्तियों को जितने ही जोर से सभ्य मनुष्य नीचे को दबाता है, वे उतने ही प्रवेग से रबर की गेंद की तरह ऊपर को उछाल मारने लगती हैं।"[२]

मनोविश्लेषणात्मक भूमि को आधार बनाकर चलने वाले उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी का स्थान बहुत ऊँचा है। उनके सभी उपन्यासों में प्रायः मनोविश्लेषण के शास्त्रीय दृष्टिकोण को ही आधार बनाया गया है, जिसके कारण उनकी दृष्टि में न केवल एक प्रकार की विशिष्टता आ गई है वरन् प्रत्येक समस्या की जड़ को पहचानने और उसके विश्लेषण की

१. संन्यासी एक विवेचन, पृ० ४५
२. प्रेत और छाया, भूमिका

विधि में भी अन्तर आ गया है। उनके उपन्यासों की रचना के मूल में पात्रों की अपनी विकृतियों के आधार पर उन्हें विकास देने का उद्देश्य दिखाई पड़ता है।

लज्जा (घृणामयी)

हिन्दी कथा साहित्य में मनोविश्लेषण-प्रधान प्रथम उपन्यास 'घृणामयी'[1] (१९२९) का किंचित् संशोधित रूप 'लज्जा' (१९४७) इलाचन्द्र जोशी का पहला उपन्यास है। जीवन में दुहरी मार से आहत, मन में अगाध पीड़ा को संजोए हुए, जीवन यापन करने वाली दुखियारी नारी की यह ऐसी कथा है जो निपट नैराश्य से आरम्भ हो कर गहन विषाद में समाप्त होती है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए प्रस्तुत उपन्यास की नायिका लज्जा मानसिक यातनाओं की प्रचण्ड अग्नि से उत्तप्त होकर अपने जीवन की कहानी कहती है। लज्जा एक प्रतिष्ठित तथा धनी व्यापारी की कन्या है, जिसे काका और छोटे भाई राजू से अगाध स्नेहरस मिलता रहा है। उसमें असीम सौन्दर्य है। उसके चार भाई-बहन हैं, परन्तु उसका सबसे अधिक स्नेह राजू पर ही है। और वह सब भाई-बहनों में अधिक बुद्धिमान्, गुणवान् और रूपवान् भी है। बाल्यकाल में दोनों भाई-बहन आनन्दमग्न होकर खेलते-कूदते और स्नेह से झगड़ते है। प्रारम्भिक शिक्षा भी दोनों की एक ही साथ एक विदेशी महिला की देखरेख में होती है। इस प्रकार विलासितापूर्ण वातावरण में पल्लवित लज्जा यौवन में पदार्पण करती है। उसके सुन्दर मुख की सुकुमारता और स्नेहपूर्ण कान्ति सभी के आकर्षण के केन्द्र बनते हैं। यौवन के प्रथम स्फुरण के साथ ही उसके शैशवकाल की सम्पूर्ण सरलता, भाई राजू से निष्कपट स्नेह एवं सरल प्रसन्नता का स्थान अन्यमनस्कता और मधुर विषाद की छाया ग्रहण कर लेते हैं। वह कोलाहलपूर्ण वातावरण में रहते हुए भी हृदय की निविड़ विजनता में दिन व्यतीत करती है। राजू अल्पायु में ही दर्शन, उपनिषद् और राजनीतिशास्त्र के बड़े-बड़े जटिल ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन से उद्‌भूत चेतना के फलस्वरूप देश भर में आत्मबलिदान तथा जलियाँवाला बाग की रक्तोत्तेजक घटना के कारण उत्तेजित हो उठता है, परन्तु लज्जा का नववसन्तमय हृदय मधुर स्वप्नों में ही हिलोरें लेता रहता है। फिर भी लज्जा अपने ऐसे प्रतिभासम्पन्न भाई पर गौरव से फूली नहीं समाती। राजू की भाँति उसमें ज्ञान पिपासा नहीं है, बल्कि है अपने रूप का प्रखर अभिमान, जिसे वह पुरुषवर्ग पर प्रयोग करने के लिए अधीर हो उठती है। विशेषकर वह अपने काका से मिलने वाले प्रो० किशोरी मोहन और डॉ० कन्हैयालाल की ओर अधिक आकृष्ट होती है। दोनों के रूप की तुलना अपने अन्तर्मन में करने के पश्चात् डॉ० कन्हैयालाल की ही ओर उसका झुकाव अधिक होता है। यहाँ तक कि जब उसके काका डॉ० कन्हैयालाल को फैमिली डॉक्टर बनकर रहने का प्रस्ताव करते हैं, तो वह प्रसन्नता से झूमने लगती है और भावावेश में स्वयं भी डॉक्टर से अनुरोध करती है। उसके इस अनुरोध में उसका काम-जनित प्रेम, स्वार्थ और उत्कट कामवृत्ति प्रकट होती है। डॉक्टर लज्जा की रुग्णावस्था में तल्लीनता से उपचार करता है तो उसके बाद वह उद्दाम भावनाओं के प्रवाह में डॉक्टर को

---

१. 'घृणामयी' नाम से जो उपन्यास मैंने कई वर्ष पूर्व लिखा था, 'लज्जा' उसी का अल्प संशोधित रूप है। मूल कहानी, भाव, भाषा या शैली में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, जो नाम-मात्र का परिवर्तन किया गया है वह केवल ऊपरी 'पालिश' में। इसलिए जो पाठक मेरी औपन्यासिक रचनाओं के विकास की पहली सीढ़ी से यथारूप परिचित होने की आकांक्षा रखते हैं, उन्हें उसके वर्तमान स्वल्प परिवर्तित रूप से अधिक निराशा नहीं होगी। ('लज्जा' की भूमिका)

आत्मसमर्पण तक कर देती है। लज्जा का डॉक्टर कन्हैयालाल से अत्यधिक घुलमिल कर रहना, एकान्त में बातें करना, स्वच्छन्द होकर घूमने जाना, नाटक, सिनेमा निर्भय होकर जाना आदि सामाजिक तथा नैतिक व्यवहार की दृष्टि से अनुचित है और लज्जा के ऐसे अवांछित व्यवहार से भाई राजू रुष्ट है, चाचा उदासीन। एक बार राजू लज्जा और डॉ० कन्हैयालाल को अन्धेरे कमरे में निमग्नावस्था में बातें करते देखता है तो बहन के इस निर्लज्ज व्यवहार से उसकी आत्मा तड़प उठती है और लज्जा अपने भाई राजू को अपने मार्ग का काँटा समझकर सिहर उठती है। जिस भाई पर उसे गर्व था, अगाध स्नेह था उसे घृणा का पात्र एवं जानी दुश्मन समझने लगती है। लज्जा जितना अधिक डॉक्टर के समीप जाती है, उतना ही अधिक राजू से मानसिक रूप से दूर होती जाती है। राजू अपनी बहन को पथभ्रष्ट पाकर उसे उचित मार्ग पर लाने का प्रयास करता है क्योंकि वह डाक्टर कन्हैयालाल जैसे चापलूस, तुच्छ, दम्भी, स्वार्थी, उच्चाकांक्षी तथा पाखण्डी से घृणा करता है और ऐसे व्यक्ति के चंगुल से अपनी बहन को बचाना चाहता है। बहन उसे अपनी उन्मुक्त प्रणयक्रीड़ा में बाधा पाकर उसके विद्वेष की अग्नि में आहुति डालने के लिए डॉक्टर से और भी अधिक घनिष्टता बढ़ाती है। राजू लज्जा को माधवी दीदी के पास ले जाता है ताकि वह माधवी दीदी के आदर्श जीवन से प्रभावित होकर वांछनीय जीवन व्यतीत करे परन्तु सब निष्फल जाता है। अन्त में राजू विश्वव्यापी अन्याय, अत्याचार, घोर-नैराश्य और दुःख के कारण तिलमिला उठता है। भावुकता के कारण इतना विक्षुब्ध और उत्तेजित हो उठता है कि जीवन निर्वाह असम्भव समझकर आत्महत्या कर लेता है। पुत्र की अकाल मृत्यु के मर्मान्तिक आघात से पिता का भी कुछ दिन बाद देहावसान हो जाता है। पिता और भाई की मृत्यु के बाद डॉक्टर का भी आना-जाना बन्द हो जाता है। एक दिन कमरे की सफाई करते समय लज्जा को राजू की डायरी मिलती है, पढ़कर उसकी आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ती है। अपने कुकृत्यों के चित्र उसकी आँखों के सामने स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। भाई की मृत्यु के कारण उसकी आत्मा घृणा, अथाह शोक और गहन विषाद से भर उठती है। राजू की डायरी पढ़ने के बाद लज्जा के मानस में राजू की मूर्ति प्रतिक्षण प्रकट होकर उसे उन्मन करके व एक अत्यन्त तीक्ष्ण वेदना से उसके मर्म को छेदती रहती है। विलासमय जीवन के समस्त प्रसाधनों को त्यागकर अब वह चर्खा कातती है, विशुद्ध खादी पहनती है और दान-दक्षिणा, तीर्थ, व्रत, उपवास आदि द्वारा प्रायश्चित्त करती है। एक दिन अचानक उसे डॉ० कन्हैयालाल और उसकी कालेज की संगिनी कमलिनी मोटर में जाते हुए दिखाई देते हैं। वह पहले तो स्तब्ध जड़वत् होकर देखती रहती है, परन्तु शीघ्र ही प्रतिहिंसा की भावना से फुंकारती हुई, अपने सम्पूर्ण नियम व्रत, संयमपूर्ण जीवन को भूलकर कहती है—"यदि मैं भले घर की महिला न होकर ताड़का राक्षसी होती, तो उन दोनों की छाती फाड़कर और खून पीकर उन्हें मोटर सहित निगल जाती।"[1] और वह जीवन को और अधिक भारस्वरूप समझने लगती है। उसके मानस-पटल में सम्पूर्ण जीवन और जगत् के प्रति घृणा होती है।

चेतन रूप से सर्वसुख सम्पन्न लज्जा के अवचेतन मन में प्रेम की एक प्रचंड ज्वाला भड़क उठती है, जो अन्ततः उसके भाई राजू और काका के विनाश का कारण बनती है। वैसे प्रेम करना पाप नहीं है और किसी भी युवती का किसी भी स्वस्थ, सुन्दर युवक के प्रति अनुराग एवं आकर्षण स्वाभाविक है, किन्तु साधारणतः पारिवारिक, सामाजिक एवं

१. लज्जा, पृ० १६६

नैतिक कसौटी के प्रतिकूल होने के फलस्वरूप सम्पूर्ण वातावरण विषम बन जाता है। इलाचन्द्र जोशी ने इसी प्रकार की स्थिति का चित्रण अपनी प्रथम कृति में किया है।

डॉक्टर कन्हैयालाल के प्रथम दर्शन में ही लज्जा काम-जनित प्रेम का अनुभव करती है। उसकी पररति का आलम्बन भाई राजू से परिवर्तित होकर डॉ० कन्हैयालाल होने लगता है। वह रुग्णावस्था में समर्पण भी कर देती है। यह काम-वासना का चरम रूप है। डॉक्टर के आने बाद राजू के भावों का परिवर्तन मनोवैज्ञानिक है। उसे भाई का विशुद्ध प्रेम शूल के सदृश खटकता है। लज्जा में ज्यों-ज्यों स्वरति का विकास होता है वह डॉक्टर के निकटतर और राजू से दूर-दूर होती जाती है। डॉक्टर के प्रेम-पाश में बँध जाना काम-मूलक है। बाल-यौवन के संधिकालीन वय की दमित यौन-भावना के कारण उसके अवचेतन मन मे डाक्टर के प्रति आकर्षण, झुकाव ही नही है अपितु काम-मूलक प्रेम भी है। वस्तुतः अवचेतन मन में छिपी हुई बात उचित समय पाकर अनायास ही प्रकट हो जाती है। काका जब डॉक्टर को फैमिली डॉक्टर के रूप में वहीं रहने का प्रस्ताव करता है तो वह प्रसन्नता से झूम उठती है तथा भावावेश में परिस्थिति का ध्यान न रखते हुए बोलती है—"सिर्फ अम्मा ही क्यों, मैं भी आप से अनुरोध करूँगी कि आप यहीं रहें।"[1] ये शब्द लज्जा के डॉक्टर के प्रति प्रेम, स्वार्थ और उत्कट काम-वृत्ति के द्योतक हैं। डॉक्टर से घंटों बाते करने में मानसिक शान्ति एवं प्रसन्नता अनुभव करती है। ये उसके मानसिक परिवर्तन और काम-प्रधानता के द्योतक हैं। वह कई दिनों, घंटों तक डॉक्टर की गोद में सम्मोहन अवस्था में लेटी रहती है जबकि एक भारतीय नारी का पर-पुरुष अंग स्पर्श नैतिक दृष्टि से हेय, सामाजिक दृष्टि से घृणास्पद है।

लज्जा और राजू के मानसिक भावों का अंकन करने में मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों—काम-वृत्ति, सम्मोहनक्रिया, हीनता-भाव, तादात्मीकरण एवं अहं का प्रतिपादन बड़ी कुशलता से किया गया है और हिन्दी तथा साहित्य को जोशी जी ने एक नई विधा, मार्ग प्रदान किया है। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित तादात्मीकरण प्रयोग जब डॉक्टर एक मरीज की 'हॉरिबल' फोड़ों में ग्रस्त दुर्दशा का वर्णन करता है तो लज्जा उस रोगी से अपना तादात्म्य स्थापित कर अपनी विकृति का उल्लेख करती है—"...पर जब, ईश्वर न करे, फोड़ों के कारण मेरा शरीर विकृत हो जाएगा, उनमें से मवाद निकलने के कारण बदबू से वहाँ कोई खड़ा नहीं हो सकेगा, पीड़ा से मैं कराहने लगूँगी, तब कौन मुझे पूछेगा ?"[2] इस कल्पना मात्र से ही उसका शरीर जर्जर होने लगता है और वह स्पष्ट शब्दों में डॉक्टर से कहती है—"यह कैसा लोमहर्षक वर्णन आपने मुझे सुनाया। मुझे भी किसी रोग का वहम होने लगा है। कहीं मुझे यह बीमारी न हो जाए।"[3] और तबीयत खराब होने का अनुभव कर अपनी नाड़ी डॉक्टर को दिखलाती है।

नारी सब कुछ सह सकती है, परन्तु वह अपने प्रणय पर आघात, प्रिय के प्रति कुविचार, लांछन, चाहे वे सत्य पर आधारित क्यों न हों, नहीं सह सकती। कमलिनी से डॉक्टर की चारित्रिक दुर्बलताओं के विषय में सुनकर वह जल-भुन जाती है और मानसिक संतुलन खो बैठती है जिसका वर्णन वह स्पष्ट शब्दों में करती है—"जब घर आई तो मन में बड़ी बेकली समाई हुई थी। अचानक पंख छिन्न हो जाने पर जिस प्रकार आकाश

---

१. लज्जा, पृ० ७७
२. वही, पृ० ७७
३. वही, पृ० ९१

में उड़ता हुआ पक्षी शून्य में कहीं कोई सहारा न पाकर फड़फड़ाता है, उसी तरह मेरा मन भी बेचैनी के सबब से छटपटाने लगा .. "।[1]

एडलर के मतानुसार प्रत्येक प्राणी हीनता की ग्रन्थि से जकड़ा हुआ है। वह अपने आपको अधिक बलशाली, प्रभुत्वसम्पन्न बनाने में संलग्न रहता है और इसके लिए उचित आश्रय ढूंढता है। लज्जा भी अपनी मानसिक हीनता को मिटाने के लिए डॉक्टर का अवलम्बन लेती है। "मेरे मन की तत्कालीन हीनता केवल उन्हीं (डॉक्टर) के साथ मिलकर सुख-दुख की बातें करने से मिट सकती थी।"[2] अपनी हीनता को स्पष्ट स्वीकार करते हुए कहती है— "दुर्बलता ! दुर्बलता ! यह सब मेरे नारी हृदय की स्वाभाविक दुर्बलता का ही फल था।... भगवान्, क्या मैं किसी भी उपाय से संसार के सब स्त्री-पुरुषों की उपेक्षा करके अपने बल पर खड़ी नहीं हो सकती ? बात-बात में संशय और भय की धुकधुकी अब किसी तरह सही नहीं जाती।"[3]

अहंभाव भी लज्जा में कूट-कूट कर भरा हुआ है। उसे अपने रूप, बुद्धि पर अभिमान है। प्रो० किशोरी लाल और डॉ० कन्हैया लाल से अपनी रूप प्रशंसा सुनकर अपने को रूपगर्वाली समझ बैठती है। बुर्जुआ समाज में पली-पोसी होने के कारण कर्महीन जीवन यापन करती है। वह दीन-दुखियों के प्रति किञ्चिन्मात्र भी स्नेह नहीं रखती, तभी तो माधवी दीदी के परिवार से उसे कोई रुचि नहीं है, जिसे राजू एक आदर्श हिन्दू नारी समझता है।

राजू का चरित्र गौरवमय है। धनी परिवार में जन्म लेने पर भी उसके अन्तर्तम मन में बुर्जुआ संस्कार छू-भर नहीं पाये हैं। उसका अधिकांश समय दीन-दुःखियों में ही व्यतीत होता है। लज्जा के समान उसे अपने रूप, गुण व बुद्धि पर अभिमान नहीं। वह नैतिकता एवं मर्यादा का कट्टर पक्षपाती है। बाल्यकाल से उसमें ज्ञान-पिपासा विद्यमान है। प्रारम्भ से ही वह दर्शन, उपनिषद्, राजनीतिशास्त्र के बड़े-बड़े जटिल ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन करता है। देश के राजनीतिक आन्दोलन से विशेषकर जलियांवाला बाग के काण्ड से, उसकी आत्मा तिलमिला उठती है। वह डॉक्टर कन्हैया लाल की चापलूसी, उसके तुच्छ व उथले ज्ञान के दम्भ एवं उसकी स्वार्थसिद्धि की बुद्धि और उच्चाकांक्षा के पाखण्ड तथा स्वभाव की निर्लज्जतापूर्ण नम्रता से घृणा करता है। ऐसे व्यक्ति के चंगुल से वह अपनी बहन की रक्षा करने का प्रयत्न करता है। यहाँ तक कि उसे माधवी दीदी के पास ले जाता है जिसके जीवन को वह आदर्शपूर्ण स्वीकार करता है। उसके चरित्र में निर्भयता, सेवा, त्याग और दृढ़ता है। वह निश्छल प्रेम का ग्राही है। जब तक उसे अपनी बहन लज्जा से प्रेम मिलता रहा तब तक उसके जीवन में शांति रही। इस कटुता को मिटाने के लिए उसके बाद उसे माधवी दीदी, जो दीन-हीन अवस्था में शापित वैधव्य जीवन-यापन करती है, से निश्छल प्रेम मिलता है।

राजू के जीवन में हमें कभी स्थायी आनन्द नहीं दिखाई देता। वह सर्वत्र अन्याय, पाखण्ड, दम्भ, स्वार्थ, क्रूरता को पनपते हुए देखता है। अत्याचार, अन्याय, नीचता और

१. लज्जा, पृ० ५६
२. वही, पृ० ७७
३. वही, पृ० ६५

स्वार्थ के वीभत्स दृश्य, उसकी आत्मा के यथार्थ स्वभाव से मेल नहीं खाते। वह अपने आप से प्रश्न करता है :—

"क्यों सबलों में स्वार्थपूर्ण भोग के प्रति उत्कट लालसा देखकर घृणा और प्रतिहिंसा के भाव से मेरा दम घुटने लगता है?" इस क्यों का उत्तर न पाकर चारों ओर से अपने को एकाकी समझकर वह इस भयंकर संसार में संघर्ष करने में अपने को असमर्थ पाता है। राजू अपने सम्मुख समस्याओं, जीवनगत अत्याचार का सामना न कर आत्महत्या कर लेता है। इसलिए हम उसे क्रान्तिकारी स्वीकार नहीं कर सकते। कन्हैयालाल भ्रमरवृत्ति का व्यक्ति है, जो अपने सौंदर्य एवं वाक्चातुर्य के बल पर दूसरों को आकर्षित करता है।

नए टैकनीक को लेकर अवतरित किया हुआ यह जोशी जी का प्रथम उपन्यास है और वह टैकनीक है मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का हिन्दी कथासाहित्य में प्रतिपादन। जोशी जी ने मानव-भावों का अंकन, विश्लेषण विशुद्धतः मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर किया है। इस कृति से प्रतीत होता है कि जोशी जी मनोवैज्ञानिक पहले हैं और बाद में हैं कथाकार। भाषा, भाव और आत्म-पीड़ित चरित्र की आधारभूमि पर उन्होंने सुन्दर वातावरण की सृष्टि की है तथा घृणा, करुणा एवं शृंगार सदृश शाश्वत मनोवृत्तियों का वर्णन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है।

संन्यासी

"हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में 'संन्यासी' मनोविश्लेषणात्मक-शैली की एक सफल रचना है। उपन्यास के पात्र मनोविज्ञान के सिद्धांतों का कलात्मक ढंग से स्पष्टीकरण करते हैं। जोशी जी अपनी समस्त कलाकुशलता को चेतन व अवचेतन मन का विश्लेषण करने में लगा देते हैं।"[1] जीवन को संचालित तथा विकृत करने वाली मूल भावना अहंभाव है। 'संन्यासी' इसी को आधार बना कर लिखा गया है।

'संन्यासी' एक ऐसे व्यक्ति की आत्मकथा है जो अपनी संदेहशील प्रवृत्ति और अहंभाव के कारण न अपने को ही सुखी रख सकता है और न ही अपने सम्पर्क में आने वाले किसी भी अन्य प्राणी को, चाहे वह परिजन हो या मित्रजन। एकमात्र अपने ही अधिकार को चाहने वाला, वह आदि मानव का प्रतीक है। उसकी कामनाएँ अतृप्त हैं, जिसके कारण उसके अणु-अणु से प्रेम करने वाली और अपने जीवन को दहकती हुई ज्वाला में डालने वाली साध्वी, स्नेहमयी शान्ति को भी शंकालु राक्षसीवृत्ति का शिकार होना पड़ता है।

जेल की यात्रा समाप्त करने के बाद उसके पास अब केवल दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक और घृणा आदि मनोविकारों से युक्त अपने विद्यार्थी जीवन की मधुर स्मृतियाँ ही हैं। तब वह विद्यालय में [illegible], मित्रमण्डली में [illegible] एम० ए० प्रिवियस का विद्यार्थी था और अब लम्बी दाढ़ी, जोगिया वस्त्रों वाला संन्यासी। सरल प्रकृति के विद्यार्थी नन्दकिशोर को यौवन, नारी, प्रेम तथा दाम्पत्य के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। अपने बड़े भाई के मित्र प्रोफेसर कृष्ण कुमार मिश्र की पुत्री जयन्ती से आगरा में उसका प्रथम साक्षात्कार होता है। तब तक उसे ज्ञान न था कि सौंदर्य का जादू कैसा होता है? जयन्ती का सौन्दर्य उसकी मानसिक दशा में एक महान् क्रांति उत्पन्न कर देता है और वह अन्तर्मुखी बनने लगता है। उसे प्रकृति का कोई भी रमणीय तत्त्व अथवा विद्यार्थी जीवन की मनोरंजक

---

१. हिन्दी उपन्यास, पृ० २००

मित्रमण्डली भी आकर्षणहीन और महत्त्वहीन-सी प्रतीत होने लगती है। अपना विश्लेषण करते हुए वह स्वयं कहता है— "नहा-धोकर बालू के ऊपर ही आसन मार कर सध्या करने लगा, पर आज ओंकार अथवा गायत्री का ध्यान मेरे मन में नहीं जमता था। लाख चेष्टा करने पर जिस तड़ित रूप की तीव्र ज्योति रेखा मेरे मानस नेत्रों को बरबस चौंधिया कर मुझे ध्यान से विचलित कर रही थी, उसी को गायत्री के बतौर मानने के सिवाय मेरे लिए और कोई चारा नहीं था।"[1]

वस्तुतः, नन्दकिशोर की दमित काम-वासना अपना उग्र रूप धारण कर फूट पड़ी थी। और उसका अचेतन मन बुरी तरह घायल हो गया था। केवल तीन दिन के आगरा प्रवास के पश्चात् नन्दकिशोर पुन बनारस अपने होस्टल में आता है। उसके मानसिक जगत में एक क्रान्ति छाई रहती है जिसके परिणामस्वरूप वह अपनी शिक्षा को भी समाप्त करने का निश्चय करता है। इसी बीच एक दिन सध्या समय नन्दकिशोर और मित्रमण्डली का शांति और कमला से साक्षात्कार होता है। नन्दकिशोर और शांति का आँखों-ही-आँखों में प्रेमालाप होता है। संगीतहीन चलचित्रों की तरह नाना खण्ड विचार तथा काल्पनिक दृश्य विद्युत्गति से उसके मानसपटल पर झलक आते और तत्काल विलीन हो जाते थे। नारी-सौंदर्य का आकर्षण नन्दकिशोर को इस प्रकार प्रभावित कर देता है कि उसके अचेतन मन में दमित काम-वासना पूर्णतया प्रबल रूप धारण कर लेती है जिसका विश्लेषण करते हुए वह स्वयं कहता है :—

"किसी नवीन किशोरी के दर्शन मात्र से हृदय की ऐसी काया पलट हो सकती है, इससे पहले मुझे कभी इसका अनुभव नहीं था। कितने ही युगों से रुद्ध मेरा व्याकुल वासना-बाँध बिलकुल ही टूट पड़ा था। जिधर को गति पाता था, उसी ओर विस्फूर्णित उद्दामवेग से बहने लग जाता था।"[2]

और शीघ्र ही नन्दकिशोर की शान्ति के साथ इतनी अधिक घनिष्ठता हो जाती है कि "यदि एक दिन भी उससे न मिल पाता तो ऐसा जान पड़ता है जैसे एक महीना उसे बिना देखे बीत चुका हो।"[3]

नन्दकिशोर के अधिक मेल-मिलाप व आने-जाने के कारण शान्ति और कमला में कटुता उत्पन्न हो जाती है। परिणामत. शांति को विद्यालय छोड़ना पड़ता है और शांति के अनुरोध पर उसके प्रेमपाश में जकड़ा हुआ नन्दकिशोर अपने विद्यार्थी जीवन को समाप्त कर इलाहाबाद आ जाता है। शान्ति इलाहाबाद से अपने भाई के पास जाना चाहती है परन्तु नन्दकिशोर काम-वासना की तृप्ति एवं नारी जीवन से खिलवाड़ करने के लिए उसे रोक देता है। इस बात को नन्दकिशोर भी स्वयं स्वीकार करते हुए कहता है :—

"पर मै दूसरी बात सोच रहा था। मेरे मन में शैतान का दूसरा ही नृत्य चल रहा था।"[4]

इलाहाबाद में दोनों कुछ दिन तक शान्तिपूर्वक दाम्पत्य जीवन बिताते रहे। परन्तु कुछ दिन बाद नन्दकिशोर शान्ति के चिन्ता, अवसन्न एवं खिन्न मनोभावों का मूल कारण

---

१. संन्यासी, पृ० १६
२. वही, पृ० ६४
३. वही, पृ० ७•
४. वही, पृ० १२३

जानना नहीं चाहता, बल्कि उसे निहारकर मन-ही-मन घुटता है, जलता है। बलदेव, के व्यक्तित्व की सबलता, हृदय की सच्चाई, परिस्थितियों की दयनीयता शांति के संवेदनशील हृदय में निर्विकार करुणा की भावना भर देती है, परन्तु बलदेव, जिसका परिचय स्वयं नन्दकिशोर ने शांति से कराया था, के प्रति ही उसके हृदय को सन्देह और ईर्ष्या की भावना मथ डालती है, और एक दिन जब नन्दकिशोर कार्निवाल में अपने सब रुपए हार कर घर आता है, तो उसके मन में पुन. सन्देह की वृत्ति और विकृत अहं भाव उत्पन्न होते है, मन के इसी घात-प्रतिघात में वह उस त्यागमूर्ति स्नेहस्वरूपा शान्ति के सतीत्व पर लांछन लगाते हुए कहता है. "बलदेव के प्रति तुम्हारे दिल में जो भाव हैं तुम क्या समझती हो कि मुझसे छिपा है" और इतना ही नहीं उसके अन्दर का शैतान कहता है : "तुम मुझसे ऊब कर बलदेव को चाहने लगी हो, यह बात न होती तो तुम सारी परिस्थिति को समझते हुए भी कभी बलदेव के यहाँ जाने को तैयार न होती।" नारी सब कुछ सहन करने की शक्ति रखती है, परन्तु वह अपने सतीत्व पर लांछन नहीं सह सकती। शान्ति के सतीत्व और पातिव्रत्य पर भी जब लांछन लगा तो उसका भावुक हृदय विदीर्ण हो उठा : "और तुम निष्ठुर हो।" कहकर वह पछाड़ खाकर फर्श पर गिर पड़ी। इस प्रकार के अपमानित, लांछित, आहत, विषम जीवन में अब दोनों में पुन. प्रेम की आशा क्षीण हो गई थी। इसी बीच नन्दकिशोर के भाई, जिनसे उसने तार द्वारा रुपये माँगे थे, स्वयं ही आ जाते हैं। उनके आने से रही-सही आशा पर भी पानी फिर गया। शान्ति रात्रि के बीच चुपके से चली जाती है। उसके चले जाने पर नन्दकिशोर छटपटाता है, झुँझलाता है, परन्तु दूसरे दिन बलदेव के पास जाने पर उसे शान्ति का पत्र मिलता है। उसकी शंकावृत्ति पुनः जाग उठती है और वह अपने भैया के साथ शिमला चला जाता है। अहं और अतृप्त दमित वासना का शिकार, शिमला में भी सबसे अलग और निठल्ले बैठा-बैठा अपनी जीवनगत व्यर्थता पर मनन करता हुआ बीमार पड़ जाता है। बीमारी से थोड़ा ठीक होने के अवसर पर आगरा से उसके बड़े भैया के मित्र प्रो० मिश्र वहाँ घूमने आते हैं और जयन्ती से उसका साक्षात्कार होता है, और उससे नन्दकिशोर का ब्याह भी हो जाता है। कैलाश के प्रति अपने हृदय में प्रेम को पाले रखने पर भी जयन्ती नन्दकिशोर को सदैव प्रसन्न करने का प्रयत्न करती रहती है, परन्तु उसकी अतृप्त अहं जनित ईर्ष्या एवं शंकालुवृत्ति उस वैवाहिक जीवन को भी विकृत किए रहती है। उसके मनोभावों का चित्रण करते हुए स्वयं जयन्ती कहती है :—

"आपने वैवाहिक सुख और शान्ति के इरादे से मुझ से विवाह कभी नहीं किया, बल्कि अपने सामाजिक अधिकारों के पूरे प्रयोग से मुझे कलुषित और दमित करके एक हिंसात्मक सुख प्राप्त करने का उद्देश्य आपका प्रारम्भ से ही रहा है। विवाह के पूर्व से ही आपके मन में, जान में या अनजान में, मेरे चरित्र के प्रति सन्देह और साथ ही एक अस्वाभाविक ईर्ष्या का भाव घर किये है।"[1]

यदि नन्दकिशोर के अन्दर का शैतान कैलाश को अपमानित न करता तो कैलाश से प्रेम करते हुए भी जयन्ती अपने कृत्रिम वैवाहिक जीवन को निभाये चली जाती। इस प्रकार के अहंग्रस्त शंकालु व्यक्ति के साथ वैवाहिक जीवन का निर्वाह असम्भव देखकर इस घटना के दो दिन बाद ही वह अपने वस्त्रों में आग लगाकर आत्महत्या कर डालती है और नन्दकिशोर के लिए एक पत्र छोड़ जाती है, जिसका एक-एक शब्द नन्दकिशोर की भूल को

१. संन्यासी, पृ० ४२३

उसके सम्मुख रखता है। वह असह्य आन्तरिक व्यथा से विक्षिप्त सा हो उठता है और मानसिक शान्ति की खोज के लिए इधर-उधर भटकता रहता है। कई वर्षों के बाद लखनऊ में उसे अचानक बलदेव मिलता है। उससे ज्ञात होता है कि शान्ति देहरादून में आर्यकन्या पाठशाला में अध्यापिका है, शान्ति से मिलने वह देहरादून जाता है, वहाँ उसे शान्ति मिलती है जो सुभद्रादेवी और अपने पुत्र लल्लन (किशोर कुमार) के साथ रहती है। वह शान्ति से एकान्त में बातचीत करना चाहता था, परन्तु समय न मिलने से वापस आ जाता है। फिर कुछ दिन बाद पुन: शान्ति से मिलने जाता है, परन्तु वहाँ जाकर ज्ञात होता है कि शान्ति अपने पुत्र को सुभद्रा को सौंपकर अज्ञात स्थान को चली गई है और नन्दकिशोर के नाम एक पत्र भी छोड़ गई है। इस घटना से उसकी मर्माहत आत्मा को और भी चोट लगती है। वह देहरादून छोड़ देता है और केसरिया वस्त्र धारण कर 'सन्यासी' रूप में रहने लगता है। लोगों में वह भावनानन्द के नाम से प्रसिद्ध होता है। संन्यासी बनकर वह मजदूरों का नेतृत्व करता है। एक बार उसके भाषणों से मजदूर उत्तेजित होकर मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं और उत्तेजक भाषण देने के अपराध में उसे जेल की काल कोठरी में ठूँस दिया जाता है। जेल से छूटने पर न वह नेता ही रहता है और न संन्यासी ही। लल्लन को देखने जाता है और अपने शेष जीवन भर कटु-अनुभूतियों की तीव्र वेदना सहता रहता है।

उपन्यास का नायक नन्दकिशोर दमित काम-वासना का शिकार है। यौवन पदार्पण में भी उसे इसका भान नहीं होता, किन्तु जयन्ती के दर्शनमात्र से ही उसकी वह कुंठित वासना भड़क उठती है और कालान्तर में यही ग्रन्थि उसमें कामुकता की सृष्टि करती है। बनारस में शान्ति के साथ प्रथम साक्षात्कार में वह मदान्ध-सा होकर अपने मित्र उमापति के कहने मात्र से ही उससे बातचीत करने के लिए उसका पीछा करता है। उसके घबराए हुए चेहरे में और भर्राई हुई अवाज में नववधू की तरह एक सलज्ज और संत्रस्त भाव होते हैं। अपनी अन्तश्चेतना में बल प्राप्त कर अपनी कायरता एवं हीनता के निराकरण के लिए शान्ति से बल संचार की प्रार्थना करता है। "शान्ति, शान्ति! प्यारी शान्ति, अपनी प्रेममयी आत्मा से मुझमें बल संचारित करो।"[1] वस्तुत: वह फ्रायड द्वारा प्रतिपादित दमित काम-वासना का एक भोला शिकार है। अधिकांशत: कामी पुरुष कायर एवं भीरु होते हैं। नन्दकिशोर भी कायर है, भीरु है और उसके अन्तर्गत हीनता ग्रन्थि भी कार्य कर रही है। एडलर के मतानुसार प्रत्येक प्राणी के अन्तर्गत प्रारम्भिक काल से हीनता भाव विद्यमान रहता है और इसके निराकरणार्थ प्रत्येक प्राणी शक्ति अर्जित करने का प्रयत्न करता है। नन्दकिशोर भी शक्ति अर्जित करने के लिए शान्ति से सहायता माँगता है।

नन्दकिशोर में भावुकता भी चरम कोटि की है। 'क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा' की प्रवृत्ति उसमें निरन्तर कार्य करती है। भावुकता के प्रवाह में वह बिना भविष्य के परिणामों के विषय में सोचे, शान्ति को इलाहाबाद भगा ले जाता है। उसे अपने सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ आजन्म साहचर्य का आश्वासन देता है—"शान्ति! संसार की कोई भी शक्ति तुम्हारे प्रेम से और अपने कर्त्तव्य से मुझे कभी विचलित नहीं कर सकेगी, इस बात पर तुम एक बार दृढ़ता के साथ विश्वास कर लो बस। अपने जीते जी मैं तुम्हें एक दिन के लिए भी कभी नहीं छोड़ूँगा।"[2]

---

१. संन्यासी, पृ० ६२
२. वही, पृ० १२६

भावुकता के प्रवाह में नन्दकिशोर यह सब कुछ कह गया, परन्तु अपनी घोर अहं-वादी और परम शंकालु वृत्ति के कारण वह शान्ति के निश्छल, पावन चरित्र पर लांछन लगाता है कि "तुम मुझसे ऊब कर बलदेव को चाहने लगी हो।" जयन्ती तो उसके अहं और शंकालु वृत्ति का स्पष्ट चित्र उसके सामने रखती हुई कहती है—"आप में तो अभिमान है ही, पर अहंभाव भी हद दर्जे तक है। इस अहं की तृप्ति के लिए आप चाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो, वह पूर्णरूप से आपकी होकर रहे, उसकी प्रत्येक वासना, प्रत्येक लालसा आपकी इच्छा पर बलि हो जाये, उसके भीतर छिपी हुई कोई गुप्त से गुप्त प्रवृत्ति उसकी अपनी होकर न रहे, वह सब कुछ बिना किसी असमंजस के आपके पैरों तले समर्पित कर दे। इन दोषों में सबसे बढ़कर—अहंभाव की ज्वाला बुझाने के लिए प्रवृत्ति के सब तत्वों को पूर्ण से होम करने की प्रबल आकांक्षा पर इस अप्राकृतिक आकांक्षा की तृप्ति कभी सम्भव नहीं है, इसलिए मन में अशान्ति के भाव सदा बने रहेंगे और जिसके सम्पर्क में आप रहेंगे उसके जीवन में भी आप बेचैनी के बीज बोते चले जावेंगे।"[1]

'संन्यासी' उपन्यास का नन्दकिशोर एक आस्थाहीन और असामाजिक चरित्र है। नन्दकिशोर प्रत्येक विश्वासघात तथा असामाजिक कार्य के लिए तर्क ढूंढकर सन्तोष प्राप्त कर लेता है। वह शान्ति को भगा लाता है और अन्ततः उसके साथ शादी न करके विश्वास-घात करता है। लेकिन आत्मसन्तोष के लिए वह तर्क ढूंढ ही लेता है कि शान्ति उसे चुपचाप छोड़कर बलदेव के पास क्यों गई? जयन्ती उसकी विवाहिता पत्नी है। उससे त्रस्त होकर वह आत्महत्या करती है। नन्दकिशोर ग्लानिमय स्थिति में भटकता है। लेकिन युक्ति मिलने पर उसकी समस्त ग्लानि मिट जाती है। बल्कि जयन्ती की आत्म-हत्या की सराहना करता है। उसका चरित्र जितना कुत्सित है, उसकी युक्ति उतनी ही भयंकर। बलदेव उसे बताता है कि उसकी बहन ने भी कपड़ों में आग लगाकर आत्महत्या कर ली। नन्दकिशोर को इससे दुःख नहीं वरन् आत्मसन्तोष मिलता है। नन्दकिशोर सोचता है कि—"जयन्ती के जल मरने की घटना को मैं जैसी अस्वाभाविक, असाधारण और आतंकोत्पादक समझे बैठा था, वह वास्तव में वैसी नहीं है। जरा-जरा सी बात पर जल मरना भारतीय नारी के लिए एक साधारण सी बात है, और सम्भवतः उन्हें जलते-जलते, मरते-मरते एक प्रकार का सुख प्राप्त होता है। जिस असह्य, तीक्ष्ण कण्टकित वेदना को मैं इतने वर्षों से दिन-रात भूलने की चेष्टा करते हुए भी न भूल पाया था, वह बलदेव की बहन की आत्महत्या की खबर सुनने पर समूल उखड़ कर नष्ट हो गई।"[2] "नन्दकिशोर की आस्थायें इतनी जर्जर एवं क्षीण हैं कि साधारण युक्तियों से ही उसकी ग्लानि मिट जाती है। वह भयंकर से भयंकर अपराध करने में नहीं हिचकता है। लेकिन साधारण युक्तियाँ ढूँढ़ कर नैतिक [illegible] उसकी [illegible] बौद्धिकता तर्क के बल पर भयंकर अपराधों को करने के लिए नैतिक समर्थन दे देती है। नन्दकिशोर [illegible] से भी आगे बढ़कर '[illegible]' मनोवृत्ति का है। उसकी प्रमुख विशेषता है कि वह अपराध स्वयं करता है, लेकिन उसका भार दूसरे व्यक्ति, परिस्थिति, नियति तथा समाज पर आरोपित करता है। इलाचन्द्र जोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पुरुष पात्र बहुत अपराधवृत्ति के हैं। उनकी कुटिलता, प्रवंचना तथा उनका अत्याचार भारतीय नारी पर टूटता है। ये नारियाँ पहले त्रस्त हो रहती हैं, लेकिन अन्ततः अपना उद्धार कर

१. संन्यासी, पृ० ३८१
२. वही, पृ० ४८८-४८३

लेती हैं। क्रमश अगले उपन्यासों की नारियाँ ऐसे कुटिल नायकों के विरुद्ध विद्रोह करती है और अतत विजयी होती है। 'सन्यासी' में दो प्रकार के नारी पात्र है—तेजस्वी, त्यागमूर्ति, श्रद्धामयी और स्नेहस्वरूपा शान्ति है और विलासप्रिय, सौन्दर्यगर्विता, उन्मुक्त जयन्ती है। शान्ति का जीवन जयन्ती के जीवन की अपेक्षा अधिक संघर्षमय है। नन्दकिशोर के अहं एवं शंकालुवृत्ति की दोनों ही शिकार है। पहली तो स्वयं मार्ग निर्धारित कर स्वावलम्बी बन जाती है। उसके चरित्र मे एक ओर प्राचीन भारतीय नारी के सतीत्व का आदर्श है और दूसरी ओर आधुनिक भारत की जाग्रत नारी का स्वावलम्बन। दूसरी में आधुनिक विलासिता, सौन्दर्य का दर्प है। उसमें स्वावलम्बन शक्ति नहीं है। जीवन-संघर्षों का सामना करने की अपेक्षा वह जीवन का अन्त करना ही श्रेयस्कर समझती है। कैलाश के प्रति प्रेम को संजोए हुए विवाहित जीवन व्यतीत करना चाहती है। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं होता।

प्रस्तुत उपन्यास मे मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई है कि मूल कथा का सूत्र परे पड जाता है। कहीं-कही पर तो एक-एक पृष्ठ में तीन-तीन विश्लेषणात्मक प्रसंग दिए गए हैं। कही-कही इस विश्लेषणात्मक प्रसंग को कई पृष्ठों तक घसीटा गया है। ऐसे स्थलों पर उपन्यास के कथानक में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का पिष्टपोषण किया गया है, जिससे कथा-प्रवाह में शिथिलता और घटनाओं की रोचकता पर दुष्प्रभाव पड़ा है।

प्रेत और छाया

'प्रेत और छाया' जोशी जी का तीसरा उपन्यास है। "इसमें लेखक ने मानव के कार्य-व्यापारों में लगी हुई सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों को अपनी पैनी दृष्टि से खोज निकालने का सफल प्रयास किया है। अवचेतन मन जिस प्रकार चेतन पर छाकर जीवन को संचालित करता है, इसका अनूठा चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।"[१]

उपन्यास के नायक पारसनाथ का पिता धनलोलुप, सुरा और कामिनी का आराधक बैजनाथ तिब्बत प्रदेश के एक बड़े शहर कलिम्पांग में बड़ा व्यापारी है। पारसनाथ कलकत्ता में शिक्षा ग्रहण करता है और एम० ए० की परीक्षा देकर अपने पिता के पास आता है। सुरा और कामिनी के नशे में मस्त अपने पिता के घृणित जीवन को देखकर पारसनाथ के निश्छल एवं भावुक हृदय पर महान् आघात पहुँचता है और वह अपने पिता को 'तिब्बत दानव' की संज्ञा देता है। एक दिन यह दानव पारसनाथ को बताता है कि वह उसकी अवैध सन्तान है। उसकी माँ का किसी वैद्य से अनैतिक संबंध था और वह उसी का पुत्र है। अपने जन्म की इस कलंकपूर्ण घटना को सुनकर पारसनाथ के अवचेतन मन में एक गहरी छाया पड़ जाती है। उसके अन्तर्मन में हीनता की ग्रन्थि उग्र रूप धारण कर लेती है। इसके बाद पारसनाथ की आत्मा प्रेतच्छायाओं से घिरी रहती है और न तो वह स्वयं सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है और न अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को ही सुखी रख सकता है।

अपने जन्म की तथाकथित पंकिलता को लिए हुए पारसनाथ मालूम नहीं कितनी नवयुवतियों का कौमार्य और विवाहिताओं का सतीत्व नष्ट करता गया और आगे बढ़ता गया। एक बार युक्तप्रांत के एक नगर के किसी होटल में मंजरी से मिलता है जो अपनी

१. हिन्दी उपन्यास, पृ० २१५.

अन्धी माँ और अपनी आजीविका के उपार्जन तथा शिक्षा के लिए होटल में रूप-प्रदर्शन करती है, उसकी कारुणिकता और सौन्दर्य पर पारसनाथ आकर्षित होता है और मानसिक तथा शारीरिक पवित्रता से प्रभावित। वह उसकी आर्थिक सहायता करना आरम्भ करता है तथा कुछ दिन बाद उसके घर भी आना-जाना आरम्भ कर और भी अधिक घनिष्ठता स्थापित कर लेता है। एक प्रलय रात्रि को मंजरी की माँ नारकीय यंत्रणा से मुक्ति पाकर इस संसार से चल बसती है। अब मंजरी का इस संसार में पारसनाथ के अतिरिक्त और कोई अवलम्ब नहीं। इसलिए, पारसनाथ उसे अपने घर ले आता है तथा अपने कलंकित जीवन की सम्पूर्ण कथा को सुनाता है। मंजरी के हृदय में उसके प्रति घृणा का भाव उदित न होकर सहानुभूति पैदा होती है और संवेदनापूर्वक कहती है : "कोई भी दुःखी व्यक्ति घृणा के योग्य नहीं हो सकता चाहे वह कितना ही हीन क्यों न हो।" धीरे-धीरे दोनों में यौन सम्बन्ध स्थापित होता है परन्तु मंजरी जितनी पारसनाथ के अन्तस्तल को छूकर एकरस होना चाहती है, पारसनाथ का कुंठित मन उतना ही अधिक काल्पनिक शंकाओं से भरता जाता है। उसका मन अनेक प्रकार के भय, दुश्चिन्ता और भ्रान्ति से भरने लगता है। इसी बीच मुजौरिया की पत्नी नन्दिनी से उसकी घनिष्ठता बहुत बढ़ जाती है। उसे वह चित्रकला सिखाता है। वह रात-रात उसके पास रहने लगता है और मंजरी से अनेकों प्रकार के बहाने करता है। नन्दिनी इससे पूर्व वेश्या जीवन व्यतीत करती थी, सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए मुजौरिया से विवाह करती है परन्तु मुजौरिया का उद्देश्य उसके द्वारा धनोपार्जन करना था। नन्दिनी पारसनाथ पर अत्यन्त मुग्ध होती है और मुजौरिया के कोप से भी पारसनाथ और नन्दिनी का सम्बन्ध कम न होकर, दृढ़तर होता जाता है। इधर गर्भवती मंजरी मातृत्वपद प्राप्ति की ओर बढ़ती है। पारसनाथ का मन काल्पनिक दुश्चिन्ताओं से ग्रस्त होता है और वह मंजरी से कतराने लगता है। प्रसव रात्रि में वह उसके पास ही बैठा रहता है परन्तु अशान्त, व्याकुल और भारी हृदय लेकर। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होने लगता है उसके हृदय में शूल-सा चुभता है और चार माह बाद माँ और शिशु को अनाथ अवस्था में छोड़कर नन्दिनी के साथ लखनऊ भाग आता है। लखनऊ में नन्दिनी अपनी वेश्या बहन हीरा के पास रहती है। कुछ कालान्तर में पारसनाथ का नन्दिनी के प्रति भी अनुकूल व्यवहार नहीं रहता। परिणामतः नन्दिनी को पुनः वेश्यावृत्ति आरम्भ करनी पड़ती है। पारसनाथ वहीं पर शराब के नशे में मस्त होकर कुत्तों की तरह नन्दिनी की रोटियाँ तोड़ता है। दोनों में कई बार लड़ाई भी होती है। पारसनाथ को नशे में पागलपन के फिर भी आने लगते हैं और वह विक्षिप्त-सा जीवन व्यतीत करने लगता है। इन्हीं दिनों वह नन्दिनी की बहिन हीरा को संगीत की शिक्षा देकर पारंगत बना देता है, जिससे उसकी आय भी बढ़ जाती है और दोनों में घनिष्ठता भी स्थापित हो जाती है। वह उसे लेकर कलकत्ता चला आता है और वहां उसके गहने चुराकर भागने की कोशिश करता है कि उसके पिता का पुराना नौकर जंगबहादुर मिल जाता है जो उसे बड़े अनुनय-विनय के साथ घर ले जाता है। रोगग्रस्त पिता कई वर्षों से बिछुड़े पुत्र को बड़े प्रेम से मिलता है, गले लगाता है और उसके जन्म के विषय में मिथ्यापूर्ण घटना का खण्डन कर उसे बताता है कि उसके जन्म के विषय में उसने झूठ कहा था और वास्तव में वह उसका ही पुत्र है और उसकी माता बड़ी ही सती-साध्वी नारी थी। पारसनाथ की चेतना की गाँठ खुल पड़ती है और वह हीरा को धोखा देने के बदले अपने पिता की अनुमति लेकर उससे विवाह कर लेता है और एक सभ्य एवं सुसंस्कृत व्यक्ति का जीवन-यापन करता है। इधर पारसनाथ के छोड़

कर जाने के बाद मंजरी का लड़का मर जाता है और वह घर छोड़कर 'नारी संस्कृति निकेतन' में आश्रय ग्रहण करती है जहां उसके डाक्टरी पढ़ने की व्यवस्था होती है और वह कलकत्ता चली जाती है। वहां एक प्रोफेसर से विवाह करती है। कुछ दिनों के बाद प्रोफेसर का देहान्त हो जाता है—मंजरी विख्यात डाक्टर हो जाती है। पारसनाथ और मंजरी की एक बार बड़े ही मार्मिक अवसर पर भेंट होती है, परन्तु मंजरी उसके साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार करती है।

पारसनाथ के मन में एक ग्रन्थि बन जाती है। स्त्री-जाति मात्र में वह जारज सन्तान पैदा करने वाली अपनी व्यभिचारिणी माता की छाया देखने लगता है। जिस जाति के एक सदस्य ने उसे एक घृणित और समाज में तिरस्कृत जारज सन्तान का रूप दे दिया उसे वह कभी भी क्षमा नहीं कर सकता। जहां तक हो सकेगा वह अपने हृदय की सुलगती हुई ज्वाला से उसे जलाकर भस्मीभूत कर और नेस्तोनाबूद करेगा।[1] यही कारण है कि चाहे काची से, चाहे मंजरी से, चाहे नन्दिनी से प्रारम्भ में वह कितना ही सहृदयता तथा स्नेह और उदारता का व्यवहार करता हो पर जब असली समय आता है वह धुता देकर, धोखा देकर, उनका सर्वस्व अपहरण कर, उन्हें दर-दर की भिखारिनी बनाने के लिए छोड़कर चला जाता है। "इस अज्ञात और अर्द्धज्ञात चेतना को अपनी क्रियात्मक प्रतिभा की किरणों के स्पर्श से चमत्कृत कर पाठकों के सामने रखें और उन्हें जीवन को मूल रूप में संचालित करने वाली वास्तविकता से परिचित करायें। क्योंकि शांति की स्थापना तब तक सम्भव नहीं कि जब तक मानव समाज अन्तर्जीवन को उतना ही बल्कि अधिक महत्त्व नहीं देता जितना कि बाह्य जीवन को। तब हमारे सामने अपनी समस्या के हल का एक ही उपाय रह जाता है और वह यह है कि हम उन प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण करें, उन्हें दबायें नहीं पर उन्हें अपने मनोनुकूल मार्ग की ओर प्रेरित करें।"[2]

लेखक ने महान् मनोवैज्ञानिक फ्रायड के सिद्धान्तों का निरूपण कर अपने कथन की पुष्टि की है। पिता के प्रति पुत्र के दुर्भाव की प्रधानता के कारण इडिपस ग्रन्थि की भी बात आई है। फ्रायड ने मैथुन भाव संबंधी चेष्टाओं का नाम इडिपस ग्रन्थि दिया है। इस ग्रन्थि के अनुसार जन्म के साथ ही बालकों में कामभाव की उत्पत्ति हो जाती है और बालक तरह-तरह से उसकी तृप्ति का साधन निकाल लेता है। कथानायक पारसनाथ का कुंठित व्यक्तित्व बाह्य परिस्थितियों और सामाजिक विषमताओं से लड़कर उन पर विजय प्राप्त करके व्यक्तिगत और सामूहिक प्रगति लाने के स्थान पर अपनी दमित प्रवृत्तियों और ग्रन्थियों से उलझ कर रह जाता है। उसकी समस्त शक्ति विध्वंसात्मक कार्यों में लगी रहती है। वह बड़ा सुरुचिपूर्ण, अध्ययनशील एवं सहृदय व्यक्ति है परन्तु पिता द्वारा माता की कलंक कहानी सुनकर उसके हृदय और मस्तिष्क की परिस्थिति बदल जाती है और लिबिडो शक्ति प्रबल होकर अवचेतन प्रवृत्तियां चेतन प्रवृत्तियों को दबा देती हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य के मस्तिष्क और उसके सारे व्यक्तित्व को परिचालित करने वाली मूल शक्ति लिबिडो है। यह बड़ी शक्तिशालिनी होती है और बाह्य जीवन में अपनी अभिव्यक्ति के लिए सदा उत्सुक रहती है। यह कामयुक्त और स्वार्थमूलक होती है और समाज की नैतिक धारणाओं से मेल नहीं खाती। केवल बुद्धि ही उसकी अभिव्यक्ति पर नियंत्रण रखती है। फलस्वरूप उसके सभी कार्य [illegible] होते हैं। समस्त स्त्री जाति उसके

१. प्रेत और छाया, पृ० २२१
२. वही, भूमिका।

लिए ऐन्द्रिक सुख देने वाली मशीन से अधिक महत्त्व नहीं रखती। वह उनमें अपनी व्यभिचारिणी माता की प्रतिच्छाया देखता है और अपने घृणित एवं तिरस्कृत जीवन का सारा दायित्व वह स्त्री जाति के ऊपर डालता है। मंजरी के प्रति आकर्षित होना, उसे सहायता देना और उसके साथ कुछ दिन व्यवस्थित जीवन व्यतीत करना चेतन मन का क्रिया-कलाप है। किन्तु मंजरी के निकटतम सम्पर्क में आने पर उसके अवचेतन का दानव हुंकार भरता है और परस्पर भाव विरोधी भावप्रवणता भी दृष्टिगत होती है। फ्रायड की मान्यताओं के अनुसार मानव मन में दो प्रकार की परस्पर विरोधिनी प्रवृत्तियाँ साथ ही साथ प्रवाहित होती रहती है। यदि हम किसी से प्रेम भी करते हैं तो साथ ही घृणा के भी भाव लगे रहते हैं। अपनी माँ के कलुषित जीवन की स्मृति आते ही घृणा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। नवजात शिशु उसे नितान्त असह्य होता है और वह नन्दिनी के साथ भाग निकलता है। इस प्रकार अपने अन्तर्मन की धधकती हुई ज्वाला को नवजात शिशु से इस प्रकार प्रतिशोध लेकर शान्त करता है। पिता के कृत्य का प्रतिशोध वह इस बालक से लेता है। पारसनाथ को नन्दिनी को भगाकर ले चलने में इस बात का अत्यधिक आनन्द है कि वह एक सती-साध्वी विवाहिता नारी को पति से छुड़ाकर दूर ले जा रहा है। इसमें उसको एक विकृत रसोपभोग का सुख मिलता है।

"एक विवाहिता नारी को भगाने में जो सुख है वह किसी अविवाहिता स्त्री के साथ भागने में किसी भी हालत में प्राप्त नहीं हो सकता। किसी गुणवती और शीलवती सुन्दरी स्त्री का, पतिव्रत खंडित करने से हम नरक के कीड़ों की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति होती है। इसलिए आज मेरे नारकीय जीवन की चरम सफलता का दिन है।"[1] परन्तु जब उसे नन्दिनी के वेश्या रूप का ज्ञान होता है तो उसे बड़ा आघात पहुँचता है।

"इस तरह की मनोवृत्ति हिन्दी उपन्यास के लिए नई वस्तु है और नई है क्रिया-कलापों की मनोवैज्ञानिक रूप में व्याख्या।"[2]

इस बार वह स्वयं छले जाने पर नन्दिनी की बहन को भगाकर कलकत्ता पहुँचता है। वहाँ उसके साथ विश्वासघात करने के निश्चय में उसके अव्यक्त मन को सन्तोष होता है। परन्तु इसी बीच उसके पिता का नौकर चन्द्रबहादुर उसे बड़े आग्रहपूर्वक घर ले आता है और कलकत्ते में ही वह अपने रुग्ण पिता से मिलता है जो अपने कटु-व्यवहारों और माँ के चरित्र पर लगाए गए मिथ्यापूर्ण दोषों का स्पष्टीकरण देता है—

"मैं भली भाँति जानता था कि तुम्हारी माँ के रक्त की एक-एक बूँद में सतीत्व की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। सम्भवतः ईर्ष्या की प्रतिक्रिया के फल से मेरे विरत मन को यह विश्वास करने की इच्छा हुई कि वह घोर असती है। जिस दिन कलिम्पांग में मैंने तुम्हारा तिरस्कार करते हुए तुमसे कहा था कि तुम मेरे बेटे नहीं हो उस दिन तुम्हारे प्रति मेरे मन में सबसे अधिक स्नेह भावना उमड़ी थी।"[3] लेखक ने इस कथन द्वारा मनुष्य के मनोव्यापार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है जिसके परिणाम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और मानवता का वास्तविक रहस्योद्घाटन करते हैं। तन, मन, धन से स्त्री मात्र को ठगने वाले पारसनाथ के अवचेतन मन की गाँठ खुलती है और एक सभ्य तथा सुसंस्कृत व्यक्ति का सा जीवन यापन करता है।

---

१. प्रेत और छाया, पृ० २६७

२. आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २४३

३. प्रेत और छाया, पृ० ३८५

"जहां तक अदृश्य मन की रूपरेखा खींचने का प्रयत्न है, जोशी पर्याप्त सफल रहे है। इस सफलता का कारण अपने सिद्धांत के प्रति उनकी अतिशय सतर्कता एवं सजगता रही है। किन्तु उनकी कला उनके सिद्धान्तों से परिवेष्टित हो गई है। सिद्धान्त आगे आ गए हैं, कला पीछे पड़ गई है। पात्र, घटनाएँ, वार्तालाप सभी इस प्रकार नियोजित किए गए है कि अवचेतन मन वाला मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त परिपूर्ण रूप से प्रकाशित हो उठे।"[1]

यौन सम्बन्धी समस्याओं से परिपूर्ण कथानक लेने पर भी जोशी जी कहीं भी कथा में नग्नता तथा अश्लीलता को गन्ध नहीं आने देते। मर्यादा को नग्न करने वाला वर्णन कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

पर्दे की रानी

पूर्व अर्जित संस्कारों का मनुष्य के क्रियाकलापों पर कितना सबल प्रभाव पड़ता है, उसका चित्रण जोशी ने अपने दूसरे उपन्यास 'पर्दे की रानी' में किया है। यह उपन्यास भी आत्मकथा प्रणाली में लिखा गया है। उपन्यास की नायिका निरंजना और उसकी सहेली शीला के आत्मविश्लेषण द्वारा उनके अवचेतन मन की क्रियात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति की गई है। निरंजना और शीला दोनों एक ही होस्टल की छात्राएं हैं। निरंजना वेश्या मां और हत्यारे पिता की सन्तान है। उसका पिता उसकी माँ को वेश्यालय से लाता है और निरंजना के जन्म के कुछ काल बाद ही उसे १२ साल का कारावास हो जाता है। लेकिन श्यामा, निरंजना की माँ उसे बाप के मर जाने की सूचना नहीं देती है। १६ वर्ष की आयु तक उसे अपनी वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता और एक राजकुमारी के सदृश सुख-सम्पन्न और विलासमय जीवन व्यतीत करती है, परन्तु एक रात्रि को माँ की निर्मम हत्या उसके जीवन को ही बदल डालती है। माँ के जीवन और वैभव का उसे किंचिन्मात्र भी ज्ञान न था। माँ मरते समय उसे मनमोहन नामक व्यक्ति के संरक्षण में छोड़ जाती है। वहाँ वह एकाकिनी बन कर रहती है। उसका परिचय निरंजना के ही विद्यालय में पढ़ने वाली मनमोहन की दो कन्याओं से होता है। उनके मन में उसके प्रति घृणा के भाव विद्यमान रहने के कारण वे उसके साथ चाय तक नहीं पीतीं। उनका भाई इन्द्रमोहन, विलायत से वापस आया हुआ था। निरंजना के बंगले में आकर वह प्रथम दर्शन में ही बेतकल्लुफी से बातें करता है और प्रथम दर्शन में निरंजना भी उसकी ओर आकृष्ट होती है। उसके जन्मजात संस्कार इन्द्रमोहन से खुलकर बातें करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। शराबी इन्द्रमोहन अपनी काम-वासना तृप्ति के लिए उसे एक रात एक होटल में ले जाता है और उसके अस्वीकार करने पर भी इन्द्रमोहन मदान्धता की दशा में बलपूर्वक उसका कौमार्य नष्ट करने का प्रयत्न करता है। संत्रस्त निरंजना वहाँ से भाग निकलती है। संयोगवश मार्ग में उसे उसके गुरु चन्द्रशेखर मिल जाते हैं और उसे उसके बंगले तक पहुँचाते हैं. किन्तु निरंजना किसी अज्ञात भय से संत्रस्त होकर अपने गुरु को बड़े आग्रहपूर्वक अपने यहां रात को रोक लेती है। कुछ रात्रि बीतने पर इन्द्रमोहन अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए आता है। गुरु को वहां देखकर उसकी विफलता भीषण क्रोध में परिणत हो जाती है। वह अपनी पिस्तौल से गोली चलाता है, गोली का निशाना ठीक न बैठने से वह गुरु के हाथ पर लगती है। निरंजना गुरु की सेवा-शुश्रूषा करती है और गुरु इन्द्रमोहन के कुकर्म को पुलिस और संसार से छिपाए रखने के लिए

---

१ हिन्दी उपन्यास, पृ० २८१

उसे क्षमा प्रदान करता है। गुरु के प्रति इन्द्रमोहन का शत्रु भाव मित्र भाव में परिणत हो जाता है और निरंजना को पाने के लिए एकान्त साधन जुटाने में संलग्न रहता है।

इन्द्रमोहन के पिता मनमोहन भी निरंजना को अपनी काम-वासना-तृप्ति का साधन बनाना चाहते हैं। एक दिन निरंजना बहुत उत्तेजित होकर दोनों बाप-बेटों की काली करतूतों पर क्षोभ प्रकट करती हुई उनकी भर्त्सना करती है। मनमोहन अपनी पराजय की प्रतिक्रियास्वरूप उसकी वेश्या माँ और कालापानी वासी खूनी पिता का रहस्योद्घाटन करता है। इस अकल्पनीय समाचार के भयंकर आघात से निरंजना का अहंभाव इतना व्यथित होता है कि वह मानव विद्रोही हो उठती है, क्योंकि अपनी सामाजिक हीनता की ग्लानि को वह एक क्षण के लिए भी नहीं भुला पाती। इन द्वन्द्वों को भूलने के लिए वह मनमोहन का आश्रय छोड़ कर होस्टल में रह कर पढ़ने लगती है। होस्टल में उसका मेल-मिलाप किसी से नहीं होता, केवल एक सम्भ्रान्त परिवार की लड़की शीला से उसकी घनिष्ठता होती है। विद्यार्थी जीवन समाप्त होने के दो साल बाद निरंजना को अचानक शीला और उसका पति इन्द्रमोहन, मसूरी में मिलते हैं। निरंजना को देखते ही इन्द्रमोहन की पुरानी आग फिर से भड़क उठती है। वह निरंजना को स्वानुकूल बनाने के लिए अधिक सभ्य और संयत रीतियों को अपनाने का प्रयत्न करता है। निरंजना का प्रथम आकर्षण भी पुनः जागरित होता है। वह इन्द्रमोहन को आकर्षित करने के लिए सारे प्रयत्न करती है। इस पशुवृत्ति के बीच में, उसकी अन्तरात्मा उसे शीला जैसी स्नेहशील सखी को उसके अधिकारों से वंचित करने के प्रयत्नों से विमुख करना चाहती है। इस मानवी भावना से प्रेरित होकर ही वह इन्द्रमोहन के प्रस्ताव को जी जान से स्वीकार करने पर भी बड़ी शालीनता तथा सावधानी से कहती है—"जब तक शीला जीवित है तब तक आप मुझसे हर्गिज इस तरह की आशा न करें।"[1]

निरंजना की इस विवेक बुद्धि के साथ-साथ एक अव्यक्त एवं अज्ञात संकेत स्वतः भी ध्वनित होता है। पशुवृत्ति प्रधान इन्द्रमोहन उसी दिन भयंकर निश्चय करता है और औषधि के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में शीला को संखिया पिलाकर उसकी हत्या कर डालता है। मृत्यु से पूर्व वह अपने बिस्तर के नीचे एक चिट लिखकर छोड़ जाती है—"मैं जानती हूँ कि मुझे विष पिलाया जा रहा है, पर यह जानते हुए भी मैं अनजान बनकर इसलिए विषपान कर रही हूँ कि इस उपाय से मैं निरंजना के लिए रास्ता साफ करके उसकी चरम सेवा कर पाऊँगी, जिसकी इच्छा मेरे मन में इतने दिनों से वर्तमान थी।"[2] शीला की मृत्यु के बाद वह मसूरी से चला जाता है और कुछ दिन के बाद अपनी दाढ़ी-मूँछ मुँड़वाकर जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों में दीनता का अभिनय करते हुए निरंजना को शीला की हृदयगति रुक जाने से मृत्यु का समाचार देता है और कहता है कि इस मर्मघाती घटना के बाद उसके जीवन में वैराग्य भाव आ रहा है। साथ ही किसी राजनीतिक षड्यन्त्र में पकड़े जाने का बहाना बनाकर निरंजना की सहानुभूति भी प्राप्त कर लेता है और शीघ्र ही भारत से नेपाल की ओर भागने का प्रस्ताव रखता है। नारी सुलभ इस श्रद्धा एवं करुणा के उदित होते ही वेश्या-पुत्री समर्पण की भावना से डोल उठती है—

---

१. पर्दे की रानी, पृ० १६०

२. वही, पृ० २०७

"आप मुझे जहाँ चलने के लिए कहेंगे मैं वहीं चलूँगी। इन्द्रमोहन जी, मृत्युपर्यन्त आप का साथ न छोड़ूँगी।"[1] नेपाल जाते समय रेल में दोनों का प्रथम और अन्तिम मिलन तथा प्रणय होता है। इन्द्रमोहन अपनी जीवन-व्यापी काम-वासना की तृप्ति के बाद जब शीला की हत्या की सत्य एवं वास्तविक घटना बताता है तो निरंजना क्रोध और घृणा से पागल-सी हो उठती है। इन्द्रमोहन उसके इस प्रचण्ड क्रोध को सम्भाल नहीं पाता और उसके प्रति अपना सच्चा प्रेम प्रमाणित करने की धुन में गाड़ी से कूद कर प्राण दे देता है। इस घटना के प्रायः तीन मास पश्चात् निरंजना अत्यन्त क्षोभ और मानसिक संघर्ष के बीच मेरठ में अपने गुरु से मिलकर अपनी आपबीती सुनाती है। गुरु उसे सान्त्वना देते हैं एवं सच्चे कर्तव्य का पाठ पढ़ाते हुए कहते हैं—"इस प्रथम और अन्तिम प्रेम मिलन के फलस्वरूप मातृत्व की जो स्थिति तुमने पाई है, उसे ग्लानि का कारण न समझकर गौरव के रूप में ग्रहण करना तुम्हारा कर्तव्य है।"[2] गुरु के इस आदेश को मानकर निरंजना मातृत्व के मंगलमय पथ पर अग्रसर होती है।

"इस उपन्यास की नायिका निरंजना ही कथाकार की मानस प्रतिमा है, उसी को कलाकार की सहृदयता का सुख मिलता है ...... संकुचित दृष्टिवाले यथार्थवादियों की भाँति जोशी जी ने इस वेश्या-पुत्री की नग्न अवतारणा नहीं की, परिस्थितियों की विवशता से पराजित विफलता को एक करुणार्द्र समवेदना दी है। वेश्याओं में भी हृदय होता है, आत्मसम्मान होता है और सबसे बढ़कर होता है मानापमान का भाव, इसका अनुभव कितने व्यक्ति करते हैं? समाज तथा संसार ने उन्हें अपनी वासना-तृप्ति का साधन बनाने के अतिरिक्त उनके लिए और किया ही क्या है? जोशी ने इस स्तर के प्राणी को अपने कथानक के माध्यम से जो ममता दी है, वह स्तुत्य है।"[3]

"प्रस्तुत उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली में दो नारी पात्रों की कहानी है जिनके माध्यम से लेखक ने पूर्व अर्जित संस्कारों का मनुष्य के क्रियाकलापों पर कितना प्रभाव पड़ता है, इसका दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है तथा पात्रों के निर्मम एवं तटस्थ आत्मविश्लेषण द्वारा अवचेतन मन की क्रियात्मक शक्ति को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है।"[4]

"हमारे सम्मुख वह गर्ल्स होस्टल में आती है। उसके बाह्य रूप को देख कर उसे अन्य लड़कियाँ राजकुमारी समझती हैं। लेखक ने स्वयं उसका परिचय तथा उसके नख-शिख का ब्यौरेवार चित्रण किया है जो एक अच्छे-खासे नखशिख वर्णन के निकट ठहरता है।"[5]

"जिस लड़की को घेर कर होस्टल की सब लड़कियाँ खड़ी थीं, वास्तव में उसका रूप ऐसा अद्भुत, अपूर्व और अनुपम था कि स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध किसी के लिए भी उसके प्रति उदासीन रहना असम्भव था मेरा ऐसा विश्वास है। उसकी आयु उन्नीस या बीस वर्ष के लगभग होगी। वह पीले रंग की रेशमी साड़ी पहने थी। यद्यपि होस्टल की लड़कियों के लिए भड़कीले रंग की साड़ी पहनकर आनेवाली लड़कियाँ ही थोड़ा-बहुत

---

१. पर्दे की रानी, पृ० २०२
२. पर्दे की रानी, पृ० २२५
३. हिन्दी कथा-साहित्य, पृ० १२५
४. हिन्दी उपन्यास, पृ० २१०
५. हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ० ४०३

कौतूहल उभाड़ने को यथेष्ट थी तथापि उस नवागत लड़की की विशेषता उसकी गाड़ी से कोई सम्बन्ध नहीं रखती थी। उसका अनिर्वचनीय सौंदर्य मण्डित व्यक्तित्व सर्वसाधारण विशेषताओं के ऊपर था।"[1]

"हॉस्टल में निरंजना मेल-मिलाप किसी से न रखकर अपने ही कमरे में रहती थी। केवल शीला के साथ उसकी घनिष्ठता हो गई। उन दोनों का प्रेम मानो पूर्वसंस्कारों का हो। युग-युग से पीड़ित नारी, जिसे पुरुष के अहं, स्वार्थ ने सताया है, ऐसे नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व निरंजना करती है जिसने जीवन में लाञ्छन, आघात ही सहे हैं और जिसके लिए सुख केवल मोहमयी कल्पना है और दुःख जीवन के प्रतिपल का प्रत्यक्ष सत्य।"[2]

मनमोहन का पुत्र इन्द्रमोहन विलायत से आने पर निरंजना से बेतकल्लुफी से बातें करता है। परोक्ष रूप में वह भी उस पर आकृष्ट होती है लेकिन उसके अमानुषिक रूप को देखकर बड़ी कठिनाई और बुद्धिमत्ता से उसके चंगुल से बचकर कौमार्य की रक्षा करती है। मार्ग में उसे उसके गुरु मिलते हैं। वह उसी प्रसंग पर गुरुजी से बातें करती है। गुरुजी की समझ में नहीं आता कि निरंजना ने इन्द्रमोहन को ढीठ बनने में प्रोत्साहन दिया, प्रत्येक रंग में प्रत्येक ढंग से उस चरमस्थिति को निकट लाने में सहायक हुई परन्तु चरम-स्थिति के आने पर भाग क्यों आई और अवसर का लाभ क्यों नहीं उठाया ? गुरुजी उस की परिस्थिति में अत्यन्त विरोधाभास पाते हैं। निरंजना स्वयं इस विरोधाभास के मूल में पैठे कारण को समझ नहीं पाती और स्वीकार करते हुए कहती है— "इसलिए मुझे पागल होने का डर है गुरुजी। केवल एक ही नहीं, मेरे भीतर कई विरोधाभास वर्तमान हैं। मुझे ऐसा लगता है कि कभी-कभी मुझे यह अनुभव होने लगता है कि मेरे मन के मूल केन्द्र के ऊपर बहुत से विचित्र-विचित्र संस्कारों के स्तर एक के ऊपर एक इस सिलसिले में जमे हुए हैं और उनमें से प्रत्येक स्तर के तत्त्व किसी दूसरे स्तर के तत्त्वों से मेल नहीं खाते। उन सब स्तरों के नीचे मेरा मूल भाव भयंकर रूप से दबा पड़ा है। बीच में जब मेरे भीतर परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के कारण भयंकर भूकम्प मच उठता है तो उन सब वज्रपाषाणों के समान कठिन स्तरों को डगमगा कर भेद करती हुई मेरी वास्तविक प्रकृति प्रबल वेग से बाहर उमड़ पड़ती है। मेरी वह मूल प्रवृत्ति कभी कभी भीषण ज्वालामुखी के समान आग के फव्वारे छोड़ती है और कभी स्निग्ध शीतल जलधारा बहाती है। पर न पहले का कारण जानती हूँ, न दूसरे का। मैं अपने भीतर तक के विचित्र संस्कारों की क्रिया-प्रतिक्रिया की कठपुतली मात्र हूँ। न अपने जीवन का लक्ष्य दीख पड़ता है न अपने अस्तित्व की कोई उपयोगिता ही समझ में आती है, मैं स्वयं अपने लिए पहेली हूँ गुरुजी! क्या कभी इस पहेली का रहस्य भी मुक्तभाव से समझ पाऊँगी ?"[3]

"प्रस्तुत जोशीजी ने अन्तर्मन और [illegible] शक्ति का निदर्शन करने का इसमें पूरा प्रयत्न किया है। निरंजना के भीतर दो प्रेरक शक्तियाँ हैं—एक तो उसका शिक्षित एवं सुसंस्कृत तर्कबुद्धि से संचालित चेतन पर लहराने वाला मन तथा दूसरा इस मन के अतल में बाड़वाग्नि की तरह छिपा हुआ अचेतन मन, जिस पर माता-पिता की पूरी-पूरी छाप है।"[4] जिसे वह स्वयं भी बाद में स्वीकार करती है। जब मनमोहन वासनावृत्ति की तृप्ति के

---

१. पर्दे की रानी, पृ० ६०-७

२. वही, पृ० ६८

३. वही, पृ० ६८

४. हिन्दी उपन्यास, पृ० २६८

लिए निरंजना के पास जाता है और निरंजना का सुसंस्कृत तर्क उसे धधकारता है, वह पिता-पुत्र दोनों की कुत्सित वृत्ति एवं दानवी व्यवहार से आतंकित हो उठती है। अपनी वासना-वृत्ति की अतृप्ति पर मनमोहन उसके जीवन का रहस्य—वेश्या माँ और खूनी पिता की लड़की—का उद्घाटन कर देता है। निरंजना के अहं पर करारी चोट पड़ती है। उसका अहं विकृत हो जाता है, वह चिल्ला उठती है :—

"मुझे खा डालो। जान से मार डालो। नर पिशाचों! हत्यारो! कमीने कुत्तो! तुम दोनों बाप-बेटों ने मिलकर मेरे जीवन को विषम बना दिया है।"[1] और जब मनमोहन अपनी वासना की तृप्ति के लिए उसके शरीर का उपभोग करने में असफल रहता है तो वह उसके वास्तविक जीवन के रहस्य का उद्घाटन करते हुए बताता है कि वह एक वेश्या माँ और खूनी बाप की बेटी है। निरंजना को वह कालरात्रि स्मरण हो आती है जब उसकी माता की हत्या हुई थी। उसके अहं पर महान् चोट पहुँचती है, आत्मा तिलमिला उठती है, उसकी अचूक पहेली की गाँठ खुलती है और वह विकृत अहं चिल्ला उठता है :—

"मेरे भीतर वेश्या के संस्कार पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो मैं इन्द्रमोहन जी को अपनी भाव-भंगिमा से उस तरह रिझाने की चेष्टा न करती... होस्टल वाली घटना और उसके बाद की दुर्घटना का कारण न बनती।"[2]

"आप शैतान से भी अधिक भयंकर और नरक के कीड़े से भी अधिक घृणित और घातक हैं। जिस भयानक सत्य को माँ अपनी मृत्यु के समय तक मुझसे छिपाये रही, उसे आज मेरी वर्तमान असहाय अवस्था में प्रकट करने का आपका उद्देश्य क्या था? क्या मैं नहीं जानती? आप मुझे जन्मजन्मान्तर के शत्रु लगते हैं, मनमोहन बाबू। जन्म-जन्म के बैर का बदला चुकाने के लिए आपने मेरी जानकारी में एक ऐसी बात बतला दी जो मुझे अब से पल-पल तिल-तिल करके हजारों छोटे-छोटे विषैले कीड़ों के डंकों के दर्शन कराती रहेगी।"[3] अपने जीवन के भयंकर सत्य को सुनकर निरंजना का अहं विकृत हो जाता है और मनोदशा विकृत हो जाती है और एक विकट कुंठा उसके अन्तर्मन में बन जाती है। उसका सुशिक्षित, सभ्य, सुसंस्कृत चेतन मन एक बाहरी आवरणमात्र रह जाता है और उसका अवचेतन मन उसमें हीनता की ग्रन्थि को जन्म देकर उसे अवनति की ओर धकेलने लगता है। उसके वर्तमान व्यक्तित्व में एक विध्वंसकारी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। पुरुष-वर्ग के प्रति उसका दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो जाता है। स्वयं इन्द्रमोहन को ढीठ बनने के लिए प्रोत्साहित करती है और अन्त में सम्पूर्ण दोष उसी के सिर मढ़ती है। उसका अचेतन मन हर समय चेतन मन को वासना की ओर धकेलकर, तृप्ति का अनुभव कराता है। पुरुष मात्र को बदनाम कर तथा उसे आत्मगत कुरूप कहकर अपने अहं की तृप्ति करती है। उसका मत है कि "स्त्री-पुरुष की मूल वृत्ति प्रेम की नहीं वरन् घृणा की है और यह अन्ततः हत्या की सीमा तक पहुँच सकती है। केवल अन्तर यह है कि कोई पुरुष एक बार ही स्त्री की हत्या करता है और कोई तिलतिल कर मारता है।"[4] इसीलिए वह विवाह को पुरुष की दासता मात्र समझती है और पुरुष के सम्बन्ध में उसका मत है

---

१. पर्दे की रानी, पृ० ११७
२. वही, पृ० ६५
३. वही, पृ० २२६
४. वही, पृ० २२

कि वे नारी को केवल अपनी प्यास बुझाने के साधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते हैं।"[1] और वह पुरुष वर्ग को घोर स्वार्थी, कामुक और भावुक समझती है, जिसमे उच्छृंखलता कूट-कूट कर भरी है। काम, स्वार्थ, ढोंग पुरुषतत्त्व के लक्षण है। एक नारी से तो उसकी आग या प्यास बुझ ही नहीं सकती।

पुरुष के प्रति निरंजना इस प्रकार के भाव प्रकट कर अपने विकृत अहं और हीनता की तृप्ति करती है परन्तु स्वय भी कामजनित वासना की ही शिकार होती है और साथ ही अपने कार्यों के प्रति भी सजग होकर कहती है—"सचमुच मेरे स्वभाव में नीचता आ गई है। चूंकि मेरे हृदय की हरियाली एकदम झुलस गई है, इसीलिए जब मैं किसी दूसरे के हृदय की हरियाली को लहलहाते हुए देखती हूँ तो मेरे अज्ञात में मेरे भीतर ईर्ष्या की आग धधकने लगती है और मै भरसक प्रयत्न करती हूँ कि उसके हृदय की सरस भावनाएँ और मधुर स्वप्न भी मेरे ही समान झुलस जाएं।"[2]

इसी प्रतिक्रिया मे वह अनेकों बार इन्द्रमोहन के चरित्र के विषय मे जान लेने पर भी उसके प्रति उदासीन न होकर, नित्य नवीन रूप से उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। निरंजना के चेतन मन में शीला के प्रति सहानुभूति है किन्तु अचेतन मन में उसकी पीड़ा देखकर सुख का अनुभव करती है। अपने मन का विश्लेषण करते हुए वह शीला से कहती है— "मैंने जानकर या अनजान में तुम्हारे साथ भयंकर अन्याय किया है, कर रही हूँ और बहुत सम्भव है कि भविष्य में भी करती रहूँगी। फिर भी तुम निश्चय रूप से जान लो कि तुम्हारे प्रति मेरे मन में सच्ची ममता वर्तमान है। तिस पर भी मैं तुम्हारे सर्वनाश के लिए क्यों तुली हुई हूँ यह मैं स्वयं नहीं जानती। अपने स्वभाव की इस विचित्र विकृति पर स्वयं मुझे आश्चर्य होता है। पर तुम्हें यह बात सदा ध्यान रखनी चाहिए कि तुम्हारे सर्वनाश का मूल कारण मैं नहीं, बल्कि वह व्यक्ति है जिसने मीठी-मीठी बातों से रिझाकर तुम्हारे साथ विवाह किया है। यदि मै न होती तो निश्चय ही कोई दूसरी स्त्री मेरे स्थान पर अधिकार कर लेती, क्योंकि कोई भी आत्मगत पुरुष विवाहित स्त्री से अधिक समय तक सन्तुष्ट नहीं रह सकता।"[3]

स्पष्ट है कि निरंजना में अपनी सखी शीला के प्रति चेतन रूप में सच्ची ममता है और उसके हित की उसे अक्षरशः चिन्ता है। इन्द्रमोहन के आगे अनजान में उसके अवचेतन मन की या काम-वासना की दुर्गन्धयुक्त भावना निकल पड़ती है कि "जब तक शीला जीवित है तब तक आप मुझसे हर्गिज इस तरह की आशा न करें।"[4] और "निरंजना के व्यक्तित्व में अन्तर्निहित जो एक विध्वंसकारी प्रवृत्ति—पुरुष को अपनी सम्मोहन शक्ति के प्रयोग से आकर्षित कर उसे विनाश के गह्वर में धकेल देने की— काम कर रही है, वह पुरुष जाति के प्रति ही नहीं स्त्री जाति के प्रति भी हिंसक वृत्ति से प्रेरित हो रही है। अपनी सखी शीला की हत्या का कारण भी वही है। इन्द्रमोहन को अपने वाग्बाणों से छेद कर उसे डाकगाड़ी से नीचे कूद कर आत्महत्या करने के लिए वही बाध्यत करती है पर साथ ही साथ उसके प्रति उसके

---

१. पर्दे की रानी, पृ० २१
२. वही, पृ० २३
३. वही, पृ० १६४
४. वही, पृ० १६०

हृदय में प्रेम के भाव भी चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हुए हैं।"[1] इन्हीं उलझनों की स्पष्ट मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या द्वारा उसकी मूल विकृति का रहस्योद्घाटन कर गुरु चन्द्रशेखर उसे मानसिक सांत्वना प्रदान करते है और मातृत्व के मंगलमय पथ की ओर अग्रसर होने का आदेश देते हैं। वस्तुत. अगर कथा का ही प्रश्न था, तो इन्द्रमोहन की मृत्यु के साथ ही साथ कथा भी समाप्त हो जाती है, परन्तु कथाकार ने निरजना की मनोवैज्ञानिक व्याख्या को स्पष्ट करने के लिए गुरु की व्याख्या आवश्यक मानी है।

इन्द्रमोहन आधुनिक युग के पूँजीवादी और भौतिकवादी युग के व्यक्तिवादी पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। जिसका विश्लेषण वह स्वयं करता है:—

"असल बात यह है कि केवल मैं ही इस यथार्थवादी, बौद्धिक युग में अन्तर्लोक की असंख्य उद्भ्रान्त कल्पनाओं में मग्न रहने वाला व्यक्ति नही हूँ, बल्कि ऐसे बहुत से व्यक्ति हमारे प्रतिदिन के समाज मे वर्तमान हैं जो बाहर से सहज, सरल और साधारण सामाजिक जीवन बिताते हुए मालूम होने पर भी भीतर से भयंकर रूप से इन्द्रजाली भावनाओ में मग्न रहते हैं। इस युग का व्यक्ति अपनी आन्तरिक भावनाओं को छिपाने की कला खूब जानता है— और अपने आपको और एक-दूसरे को धोखा देने की कला भी। यही कारण है कि आजकल के बने हुए यथार्थवादियों की पोल कम खुल पाती है। मुझमें और दूसरे व्यक्तियों में केवल इतना ही अन्तर है कि मैं दूसरों को भले ही ठगूँ पर अपने आप को ठगना नहीं चाहता। मैं स्पष्ट रूप से अपने आगे यह स्वीकार कर लेता हूँ कि मैं बड़ा आत्मगत हूँ और मेरा 'मैं' ही मेरे लिए सब कुछ है। और यह 'मैं' भी कितना बड़ा है। जैसा कि मैं कह चुका हूँ कि उसके भीतर सारे संसार की चहल-पहल, कोलाहल, युद्ध और संघर्ष सब कुछ आकर समा जाता है और वह सब कुछ भी इतना कम स्थान घेरता है कि उसके एक कोने में बेमालूम पड़ा रहता है।"[2] इन्द्रमोहन के इस आत्मविश्लेषण में उसका अहं एवं व्यक्तिवाद स्पष्ट है। वह इतना अहंवादी है कि अपने मन के आगे किसी भी सत्य तथा पुण्य को हेय समझता है। वह इतना बड़ा व्यक्तिवादी है कि अपने व्यक्तिगत चक्रों के सम्मुख सामूहिक विकास, सामाजिक उन्नति अथवा राष्ट्रीय हितों की बातों की ओर ध्यान भी नहीं देता। तत्कालीन द्वितीय विश्व-युद्ध, और जन-संहारकी उसे तनिक भी चिन्ता नहीं। केवल उसे चिन्ता है शीला शीघ्र मर जाए एवं निरंजना अपना सर्वस्व उसके चरणों में समर्पित कर दे।

वह व्यक्ति प्रेम की परिणति को सबसे बड़ा वरदान स्वीकार करता है तथा उसकी प्राप्ति के लिए छल, कपट, झूठ, आडम्बर, अनाचार, अत्याचार, सब कुछ करने में उसे किंचिन्मात्र भी हिचकिचाहट एवं संकोच नहीं। प्रेम के लिए वह इन सबके अतिरिक्त मृत्यु का भी हँसकर आलिंगन करता है। उसका प्रेम—वासना की दुर्गन्ध से युक्त पशु-प्रेम है। निरंजना का कौमार्य बलपूर्वक भग करने की चेष्टा, प्रतिशोध के लिए गुरु पर गोली, निरंजना की प्राप्ति के लिए नए-नए छल-कपट, और आडम्बर की योजनाएँ रचता है। अपनी असफलता पर वह निराश होकर आत्महत्या नहीं करता, न वैराग्य ही ग्रहण करता है, अपितु हर क्षण उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके जीवन का लक्ष्य निरंजना के शरीर का भोग मात्र है। निरंजना की प्राप्ति के लिए ही वह शादी करता है। वह ईर्ष्या की भावना से नहीं, किसी निराशा की प्रतिक्रिया से प्रेरित होकर नहीं,

१. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २४०
२. पर्दे की रानी, पृ० १९३

प्रतिहिंसा की भावना से नहीं, अपितु इस भावना से कि दूसरी नारी के सम्पर्क में आकर उसके चरित्र के वे उबड़-खाबड़ कोण दूर हो जायेंगे, जिनके कारण प्रथम प्रेमिका की प्रणय-प्राप्ति मे बाधा उपस्थित हुई थी। इसीलिए वह शीला से विवाह करता है और इस कथन को विश्लेषणात्मक ढंग से निरंजना से कहता है : "मैंने विवाह केवल इस आशा से किया कि इस बात से आपके मन में मेरे संबंध मे अच्छी धारणा जम जाएगी। मेरे भीतर जो आवारागर्दी का भाव मुझे सब समय शैतान की कलाबाजियों के चक्कर मे डाले रखता था, उससे मुक्ति पाकर मैं अपना स्थिर, गम्भीर रूप आपके सामने रखना चाहता था। वह स्थिरता मुझे केवल विवाहित जीवन से प्राप्त हो सकती थी। मैं अपने अज्ञान में यह आशा रखता था कि जीवन के किसी चरम अवसर पर कहीं-न-कहीं फिर एक बार आप से भेंट होगी। उस महत्त्वपूर्ण मिलन की तैयारी के उद्देश्य मे ही मैं अपने जीवन का गठन एक विशेष आदर्श के अनुसार करने पर तुला हुआ था। मेरे लिए विवाह की यही सार्थकता थी।"[1]

प्रियतमा की प्राप्ति की ऐसी कल्पना सम्भवतः अन्य किसी उपन्यासकार ने भी की हो। इतना ही नहीं अपनी प्रियतमा से तनिक संकेत पाकर चिरसंगिनी की हत्या कर डालना चारित्रिक अद्वितीयता का उदाहरण कहा जा सकता है।

निरंजना के शब्दों में वह नीच, नराधम और पिशाच है।

निर्वासित

'निर्वासित' (१९४६) जोशीजी का पाँचवाँ उपन्यास है, "जिस में लेखक के कथनानुसार "मध्यवर्गीय जीवन की उथल-पुथल की कहानी है।" प्रस्तुत उपन्यास की कथा में द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रारम्भिक अवस्था से भारत में कांग्रेसी मन्त्रीमंडल की स्थापना तक की अवधि का सामाजिक, एवं राजनैतिक पहलुओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। लेखक का उद्देश्य मध्यवर्गीय समाज की विभिन्न परिस्थितियों की प्रतिक्रिया को अंकन करने का प्रयास रहा है। उपन्यास का नायक महीप एम० ए० पास है। वह इतना प्रतिभाशाली एवं बुद्धिमान् युवक है कि आई० सी० एस० की परीक्षा में सफलतापूर्वक निकल सकता था, परन्तु कुछ आदर्शों से प्रेरित होकर वह इससे वंचित रहता है। वह कवि है और अत्यन्त भावुक भी। खन्ना परिवार की चारों कन्याओं—रमा, सुषमा, नीलिमा और प्रतिमा से बारी-बारी अपना प्रेम प्रदर्शित करता है, परन्तु उसमें व्यावहारिक बुद्धि और सबल व्यक्तित्व के अभाव में तीनों उसके प्रेम का अनुकूल उत्तर न देकर अपनी-अपनी राह पकड़ती हैं। नीलिमा का आकर्षण अव्यक्त रूप से महीप के प्रति रहता है और वह उसके साथ कानपुर भागने के लिए स्टेशन तक भी चली जाती है। अचानक उसका रहस्यमय मनोव्यापार वापिस उसे अपनी माँ के पास वापिस ले आता है। ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह नामक ऐसे व्यक्ति के साथ उसका विवाह हो जाता है जिसके स्वभाव की शालीनता के भीतर विष के बीज निहित हैं। नीलिमा के शब्दों में वह रंगा सियार है जो अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को कालान्तर में अपनी भयंकर प्रताड़नाओं का शिकार बनाकर नष्ट करके छोड़ता है।

अन्ततः प्रेम क्षेत्र मे अपने को सर्वथा असफल पाकर महीप एक क्रांतिकारी दल को संगठित कर उसे संचालित करता है। नीलिमा की बहन प्रतिमा भी इस दल की सदस्या

१. पर्दे की रानी, पृ० १७८

बनती है और अप्रत्याशित रूप से एक बार महीप के पास भी जाती है। महीप का भावुक हृदय द्वितीय विश्वयुद्ध के निर्णायक दानवीय अस्त्र अणुबम के विनाशकारी परिणामों से आतंकित हो कर वह दल से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है। लेखक ने गांधीवादी विचारधारा से इस पात्र को प्रभावित दिखाया है। ऐसा करने पर महीप के प्रति प्रतिमा की श्रद्धा घृणा रूप में परिणत हो जाती है। उधर नीलिमा, अपने पति के अमानवीय अत्याचारों से पीड़ित होकर अपनी बहन सुषमा के पास लखनऊ आ जाती है। महीप साहस बटोरकर नीलिमा के पास पुनः प्रेम प्रस्ताव लेकर जाता है, परन्तु नीलिमा उसके प्रति सहृदय होते हुए भी उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। महीप की रही-सही आशा पर पानी फिर जाता है और वह भयंकर रूप से पराजित होकर चला जाता है। प्रतिमा और एक अन्य क्रांतिकारी नारी शारदा किसानों को लक्ष्मीनारायणसिंह के विरुद्ध भड़काते है और प्रचंड प्रतिहिंसा की भावना से उसके घर पर आग लगा देते है। शारदा ने महीप को किसी कार्य से बुलाया था, इसलिए महीप भी वहीं पहुँच जाता है। इसी समय वह ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह को अग्नि की प्रचंड लपटों में घिरा हुआ देखकर, और उसकी चीत्कार सुनकर उसकी सहायता के लिए दौड़ता है। विद्रोही उसे ठाकुर साहब का ही पक्षी समझ कर उस पर झपट पड़ते हैं और लाठियों के प्रहार से उसे घायल कर देते है। पुलिस के पहुँचने पर सभी विद्रोही भाग जाते हैं और अभागा महीप पकड़ा जाता है। पुलिस उसे ले जाती है, वहाँ भी उस पर पुलिस की मार पड़ती है और उसकी मृत्यु जेल के अस्पताल में बड़ी दुर्दशा के साथ होती है।

प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में उल्लिखित लेखक के विचारों के अनुसार 'निर्वासित' में द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ से काँग्रेस मंत्रीमण्डल की स्थापना तक की अवधि के मध्यवर्गीय समाज का चित्रण है। उपन्यास का नायक महीप अपने जीवन में सम्पन्नता एवं स्थिरता लाने के निमित्त भुवनेश्वरी खन्ना के परिवार से सम्पर्क बढ़ाता है। खन्ना परिवार में चार कन्याएँ हैं—रमा, सुषमा, नीलिमा और प्रतिमा। महीप एक के पश्चात् दूसरी से, इस प्रकार चारों बहनों की ओर आकर्षित होता है, प्रेम-प्रदर्शन करता है, किन्तु चारों के द्वारा ठुकराया जाता है—उनके मनोराज्य से निर्वासित होता है। यद्यपि प्रतिमा उसे अपने जीवन का ध्रुवतारा समझती है, परन्तु तदन्तर हम उस प्रेम को पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा हुआ पाते हैं, जब वह महीप के गुप्त दल की सक्रिय सदस्या होती है। नीलिमा में भी महीप के प्रति आकर्षण के भाव पाते हैं। यहाँ पर [illegible] गया है। नीलिमा के सम्मुख चुनाव के लिए दो पुरुष पात्र है। [illegible] प्रतीक है तथा ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह भौतिक सुख के प्रेम का प्रतीक। वह एक साथ ही दोनों से प्रेम निर्वाह करती है। लेकिन अभिजात्यवर्ग के संस्कार अन्ततः उसे ठाकुर के साथ शादी करने के लिए बाध्य करते हैं। "नीलिमा न राजनैतिक मंच पर ही अपनी आधुनिकता का परिचय देती है और न समाज की विवाह की रूढ़ परम्परा का विरोध करती है। अन्ततः उसकी दयनीय स्थिति तथा जमींदार ठाकुर की अमानुषिकता इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अभिजात्य वर्ग की नीलिमा तथा भौतिक सुख लालसा की कामना करने वाली श्रीमती खन्ना का सामाजिक दृष्टिकोण मरणशील है। उनके विरोध में लेखक ने शारदा और प्रतिमा जैसे उग्र क्रांतिकारी नारी पात्र रखे हैं जो जमींदार की नृशंस हत्या करते हैं। शारदा और प्रतिमा दोनों व्यभिचारी, शोषक जमींदार ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह के विरुद्ध हिंसक क्रांति का नेतृत्व करती है। जमींदार आग की लपटों में मृत्यु का आलिंगन करता है। शारदा को पूर्ण विश्वास

है कि भविष्य में शोषण के विरुद्ध मजदूर-किसान वर्ग तथा दुर्बल राष्ट्रों की जो भी क्रांति होगी उसमें नारी का बहुत बड़ा हाथ होगा क्योंकि उसे भी पुरुष के शोषण से मुक्त होना है।"[१] लेखक की दृष्टि में भावी समाज का नेतृत्व नारी करेगी, यही कारण है कि लेखक के क्रांतिकारी विचारों का प्रतिनिधित्व शारदा करती है न कि कोई पुरुष पात्र। लेखक के विचारों को प्रस्तुत करते हुए शारदा कहती है—"वर्तमान युग में सारी मानवजाति को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक पुरुष वर्ग और दूसरा स्त्री वर्ग। ये दोनों शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के ही पर्यायवाची हैं। जिस अल्पसंख्यक सबल वर्ग ने राजनीतिक और आर्थिक तथा सामाजिक दासता से सारे विश्व के दुर्बल राष्ट्रों या वर्गों को गुलामी की जजीरों से जकड़ रखा है वह पुरुष वर्ग है, और सभी दलित वर्ग—निम्न मध्यम वर्ग, मजदूर-किसान, अछूत, नारी-समाज आदि—स्त्री वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।"[२] वस्तुतः जोशी जी के सभी नायक घृणा, असामाजिकता, अहं, प्रतिहिंसा, अनाचार, स्वेच्छाचारिता के प्रचारक हैं। नारी-पात्र पुरुष की स्वेच्छाचारिता, प्रतिहिंसा तथा अनाचार से पीड़ित हैं। जोशी जी विश्व को दो वर्गों में बाँटते हैं—शासक और शासित। पुरुष शासक है तथा नारी शासित। पुरुष शासक वर्ग का प्रतीक है, नारी शासित वर्ग का प्रतीक। यह प्रतीकात्मक वर्गीकरण मार्क्सवादी दर्शन के अनुरूप है, लेकिन संघर्ष का आधार फ्रायड एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों के विचार दर्शन हैं। इस प्रकार समाजवाद और मनोविज्ञान को मिश्रित करके जो सांस्कृतिक मान्यताएँ बनती है, वे इलाचन्द्र जोशी के विचार-दर्शन का निर्माण करती है।

"वस्तुतः जिस प्रकार प्रेमचन्द सामाजिक यथार्थ का वर्णन करते-करते आदर्श में कथा का पर्यवसान किया करते थे, वैसे ही जोशी जी मनोवैज्ञानिक यथार्थ के साथ आदर्श के समन्वय का प्रयत्न करते है। मानसिक विकृतियों से ग्रस्त पुरुष पात्रों के समकक्ष एक क्रान्तिकारी नारी पात्र को चित्रित कर जोशी जी अपने लोक-मंगल के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।"[३]

महीप और नीलिमा का एकान्त मिलन होता है। दोनों का एक दूसरे के प्रति सरल आकर्षण है जो काम-मूलक है। परन्तु महीप को ऐसा प्रतीत होता है कि नीलिमा उससे कहीं अधिक ऊँचाई पर है जहाँ वह उसे छू भी नहीं सकता। उसके अन्तर्मन में हीनता की ग्रन्थि निम्न धरातल तक पहुँच जाती है और इसी हीनता भाव के कारण नीलिमा की अन्य बहनें भी विमुख हुई थीं। वह नीलिमा के सम्मुख अपनी हीनता को प्रकट करते हुए कहता है—"कोई सहृदय प्राणी मुझे जीवन में मिल जाए, तो मैं अब भी भटकने से बच सकता हूँ। पर इस बात की मुझे आशा दिखाई देती नहीं।"[४] महीप के प्रति नीलिमा का आकर्षण फलीभूत होता हुआ-सा दिखाई देता है जब वह अशोक के पेड़ के नीचे महीप के साथ एकान्त में बात करती हुई बताती है कि वह तत्क्षण उसके साथ भागने के लिए तैयार है। नीलिमा जैसी विवेकशील, उच्च शिक्षा प्राप्त कुमारी 'चाय में एक चम्मच से अधिक चीनी डाल दी है', अपनी माता की इस छोटी-सी बात पर घर छोड़कर महीप के साथ कानपुर भागने के लिए रेलवे स्टेशन पहुँच जाती है। स्टेशन पर पुलिस को उनके

---

१. निर्वासित, पृ० २०७
२. वही, पृ० २०७
३. हिन्दी कथा साहित्य, पृ० ३०५
४. निर्वासित, पृ० २२६

अस्वाभाविक व्यवहार को देख कर शका होती है और पूछताछ करने पर नीलिमा महीप को 'हसबैंड' बताती है फिर भी पुलिस का सन्देह नही मिटता और उसे उसकी माँ के पास ले आते है। घर आकर नीलिमा के मनोव्यपार मे आमूल परिवर्तन हो जाता है और वह महीप को भूलकर पुनः माँ की आज्ञानुसार ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो जाती है। इस मानसिक क्रान्ति की व्याख्या देने के लिए तथा बीच-बीच में होते रहते छोटे-मोटे अप्रत्याशित व्यापार की व्याख्या के लिए जोशी जी ने एक लम्बा-चौड़ा एक्स्प्लेनेशन दिया है जिसे पढ़कर फ्रायड की पुस्तकों में दी गई वृत्तेतिहास के विश्लेपण की याद हो आती है। ऐसा मालूम होता है कि फ्रायड ने मनोविश्लेपण के कारणों की अन्त:प्रकाशिनी शक्ति का रहस्य बतला दिया है और औपन्यासिक इसी मनोविश्लेषण किरणो के सहारे मानव मन के स्तर पर स्तर और गाँठ पर गाँठ खोल कर देखने का उपक्रम कर रहा है।"[1]

मुक्तिपथ

'मुक्तिपथ' के पात्र और घटनाएँ जोशी जी के अन्य उपन्यासों के पात्रो और घटनाओ की तरह उलझी हुई नही है। इसके पात्र एवं घटनाएँ सरल तथा स्पष्ट हैं। उपन्यास का नायक राजीव देश के स्वतन्त्र हो जाने पर भी बेकार है। वह एक पुराना क्रांतिकारी है जो जेलयात्रा भी कर चुका है और उसके मानस में वर्तमान समाज-व्यवस्था के प्रति असंतोष, घृणा और विद्रोह की भावनाएँ अशांति लिए रहती हैं। बेकारी की दशा में इधर-उधर भटकता है। एक बार अमीनाबाद पार्क में बैठे हुए उसने 'वाण्टेड' के स्तम्भ में एक रिक्त पद का विज्ञापन देखा। वह उस कम्पनी के मैनेजर से मिलने जाता है। उस के अभद्र व्यवहार पर राजीव को क्रोध आता है और उसे दो तमाचे जड़ कर बाहर चला आता है। इसी बेकारी की स्थिति में वह अपने एक मित्र उमाप्रसाद की शरण लेता है जिसकी एक बालविधवा बहन है सुनन्दा। उस पर सारे घर के कार्य का भार है। सुनन्दा के हृदय में राजीव के प्रति सहानुभूति का भाव विद्यमान रहता है। वह राजीव के खाने-पीने का उतना ही ध्यान रखती है जितना उमाप्रसादजी का। उमाप्रसाद की लड़की प्रमिला, राजीव और सुनन्दा को दाम्पत्य जीवन में बाँधना चाहती है इसलिए उन्हें शाम के समय सैर भी कराने ले जाती है। परन्तु सुनन्दा की भाभी कृष्णा, राजीव और सुनन्दा के परस्पर ममता के भावों को अपने परम्परागत संस्कारों के कारण सहन नहीं कर पाती और उसे निरंतर अपने तीक्ष्ण व्यग्य बाणों से बेधती रहती है। उसके सारे गृहस्वामित्व के अधिकारों को भी छीनकर एक निरुपाय निःसहाय सेविका की भाँति रहने के लिए विवश करती है। प्रमिला प्रगतिशील भावों की युवती है जो समाज की कुरीतियों को ढकोसला मात्र ही समझती है।

राजीव बढ़ई का काम शुरू कर अलग रहना आरम्भ कर देता है। प्रमिला भी अपनी शादी से पहले अपनी मनोकामना के अनुसार उन दोनों को गृहस्थ-बंधन में बाँधने में सफल होती है और सुनन्दा को राजीव के पास ही छोड़ देती है। प्रमिला का विवाह राजीव के मित्र विजय से हो जाता है।

विवाह के पश्चात् राजीव सुनन्दा को गृहस्थी के संकीर्ण दायरे से निकालकर नवनिर्माण सघ की ओर प्रेरित करता है और लखनऊ के पास कुछ बंजर भूमि अपने मित्र

---

१. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २३३-३४

देवराज की सहायता से प्राप्त कर लेता है। दोनों अपने अथक प्रयत्नों से वहाँ एक उपनिवेश बसाने में सफल होते है। परन्तु सुनन्दा का इस मगल कार्य में निरत रूप में लगे रहने पर भी मातृत्व भाव जाग उठता है जो अभी तक सूना ही पड़ा हुआ है। राजीव अपने आदर्श कार्य में रत रहने से इस बात के प्रति उपेक्षा का भाव-सा रखता है। सुनन्दा अपने हृदय की अतृप्त कामनाओं को लिए अथाह वेदना एवं क्षोभ को प्रकट करती हुई संघ से पृथक् हो जाती है— "आप श्रम ······केवल श्रम और उसके द्वारा मुक्ति ······ केवल मुक्ति चाहते है। मैं जीवन में श्रम चाहती हूँ और विश्राम भी, मुक्ति भी चाहती हूँ और बन्धन भी।"[1]

"मैंने सारे पिछले बन्धनों को तोड़कर जो आपका साथ दिया था, वह केवल इस मूलगत आशा मे कि मेरे अन्तर्जीवन की अनंत प्रसारित जलती हुई मरुभूमि को भी आप अंतः-प्राणों के अविरल स्नेह रस से सींच कर...............बंजर भूमि की तरह ही उर्वरा और हरा-भरा बना पायेंगे। पर आपको तो केवल मेरे बाहरी जड़ श्रम की आवश्यकता थी, भीतर के स्नेह सिंचित आश्रय की नहीं।"[2]

राजीव भी अपनी भूल को स्वीकार करते हुए कहता है—"सुनन्दा, मुझसे सचमुच बड़ी ही भयंकर भूल हुई है। उसके लिए मुझे क्षमा कर दो।"[3] परन्तु सुनन्दा अपना संबंध विच्छेद कर आश्रम चली जाती हैं।

'मुक्तिपथ' में दो परस्पर विरोधी भावनाएँ कार्य करती है। राजीव का दृष्टिकोण प्रगतिवादी है। वह सामूहिक चेतना का प्रतीक और व्यक्तिगत सुख-दुःख को हेय समझता है। सुनन्दा व्यक्ति को समाज का केन्द्र बिन्दु मानती है और सामूहिक विकास और प्रगति के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करती है। राजीव केवल श्रम द्वारा मुक्ति चाहता है परन्तु सुनन्दा कहती है :—

"उस श्रम का क्या महत्त्व जिसके सुख का अनुभव विश्राम के एकान्त क्षणों में न किया जा सके। उस मुक्ति का क्या मूल्य जो सहस्रों बंधनों के बीच में अपना आभास न दे सके।"[4] "लेखक का उद्देश्य राजीव के कोरे आदर्शवाद पर आघात करना है, अन्यथा वह सुनन्दा के विद्रोह की चर्चा न करता।"[5]

'मुक्तिपथ' एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें भारत के स्वाधीनोत्तर काल की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का सफल चित्रण किया गया है। राजीव, उन स्वाधीनता संग्राम के सैनिकों का प्रतीक है जिन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम में गोराशाही पुलिस के छक्के छुड़ाए थे। कारावास की कठिन से-कठिन यातनाएँ सही थीं। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति पर राजीव का क्रान्तिमय मन खिल उठता है, नव आशाओं के दीप प्रकाशमान हो उठते हैं, परन्तु भारत विभाजन के कारण हजारों, लाखों प्राणियों को अनाथ, असहाय दुर्दशा, उनकी दारुण गाथा, ढोंगी, स्वार्थी, परम चापलूस, कुछ-एक नेताओं के अतिरिक्त, चार आने की गाँधी टोपी पहने विधान व संसद् सदस्यों तथा भारतीय स्वतन्त्रता के हित प्राणों को हथेली पर रखकर जूझने वाले सेनानियों पर लाठी बरसाने वाले व्यक्तियों के

१ मुक्तिपथ, पृ० ३१३
२. वही, पृ० ३२४
३. वही, पृ० ३२६-२७
४. वही, पृ० ३२३
५. हिन्दी कथा-साहित्य, पृ० १३४

हाथ में स्वतन्त्र भारत की बागडोर देखकर शीघ्र ही यथार्थता की आँधी पल भर में नव आशाओं के दीप बुझा देती है। राजीव जैसा क्रान्तिकारी व्यक्ति भी बेकारी की हालत में दूसरे की रोटी तोड़ता है।

उपन्यास के नायक राजीव में क्रान्तिकारी जीवन अपनाने के कारण निडरता, चतुरता एवं असीम उत्साह है। वह आजीविका के लिए तुच्छ कृत्य हेय समझता है। लखनऊ के बाजार में उसे मिथ्यावादिता के ही दर्शन होते हैं। बेकार, असहाय और समाज द्वारा पीड़ित अवस्था में वह जीवन यापन करता है। सुनन्दा की दृष्टि में वह चिर एकांकी, रहस्यमय, व्यक्तित्वशाली परन्तु सहृदय और समझदार प्रौढ़ युवक है, कृष्णा की दृष्टि में परम आतंकमय विकराल प्राणी है तथा प्रमिला उसमें निश्छल महानता के दर्शन पाती है, जिसकी महानता साधारण व्यक्ति नहीं जान सकते हैं। इसलिए वह उसे समस्त श्रद्धा का पात्र समझती है।

राजीव राजनीतिक कूट चक्रों से भली-भाँति परिचित है। वह जीवन में कटु अनुभवों और संघर्षों के साथ ही जूझता रहा है। परन्तु आत्मविश्लेषण करने पर वह अपने को निपट निस्सहाय तथा निकम्मा पाता है। पारिवारिक जीवन के चक्रों से तो वह घबराया हुआ सा प्रतीत होता है। एक बार सुनन्दा के साथ बातें करते हुए उसे ठहाका मारते कृष्णा देख लेती है। वह मन ही मन सोचता है— "तुम यह बात भूल गए कि सुनन्दा विधवा है और किसी भी भारतीय विधवा के लिए यह अत्यन्त अनुचित है कि वह किसी भी पुरुष से एकान्त में बातें करे? ठीक है! मेरा ठहाका मारना भाभी जी के क्रोध का उतना कारण नहीं है जितना यह कि मैंने एक विधवा युवती से आधी रात तक सन्नाटे में बातें की है।" अपने इस व्यवहार को सर्वथा अनुचित मानकर वह अधिक संयम से रहने की चेष्टा करता है।

सुनन्दा के प्रति राजीव का आकर्षण प्रेमिका के प्रति प्रेमी का आकर्षण नहीं है अपितु कठोर, अहंवादी और अतिमानव का आकर्षण है जो नारी को समझना चाहता है परन्तु नारीत्व को नहीं।

राजीव के अन्तर्मन में हीनता भाव, विशेषकर पारिवारिक संघर्षों के विषय में, विद्यमान है। "राजीव सुनन्दा के व्यक्तित्व की अथाह गहराई से डरता था। दूसरे व्यक्तियों के आगे वह अपने अन्तस्तल की समस्त विद्रोही शक्तियों को एकत्रित करके उनके हृदय में एक अज्ञात भय और संभ्रम का भाव सचालित करने में समर्थ होता था। पर इस तेजस्विनी के आगे उसकी सारी शक्तियां छिन्न-भिन्न हो जाती थीं और वह अपने को अत्यन्त क्षुद्र और घृणित समझने लगा था।"[1] एडलर के अनुसार सभी में हीनता ग्रन्थि विद्यमान है और इसके परिष्कार के लिए सभी प्रयत्नशील रहते हैं, परन्तु राजीव 'मुक्तिनिवेश' की स्थापना करके भी सुनन्दा के सम्मुख अपनी हीनता को स्वीकार करते हुए कहता है— "सुनन्दा, मुझसे सचमुच बड़ी भयंकर भूल हुई है, इसके लिए क्षमा कर दो, जाओ मत, रह जाओ। फिर यह भूल न होगी।" "अपराध न करने पर भी जो व्यक्ति अपराध स्वीकार करता है, वह कायर होता है, राजीव बाबू।"[2]

---

१. मुक्तिपथ, पृ० २१-२२
२. वही, पृ० ४६

कृष्णा के उलाहना देने पर वह स्वयं अपने को भारतीय नैतिक कुंठाओं से जकड़ा हुआ पाता है। वस्तुत: जीवन के प्रति दोनों के दृष्टिकोणों में मतैक्य नहीं। सुनन्दा स्वीकार करती है— "उस परिश्रम की क्या आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप एक क्षण के लिए भी दम लेने का अवकाश नहीं।......जीवन की परिपूर्णता क्या केवल इसी प्रकार खटकते रहने में समाहित है? मानवीय चेतना की रागमयी प्रवृत्तियाँ मानव जीवन के रंग भरे पहलू......ये सब क्या एकदम निरर्थक हैं?"[1]

परन्तु राजीव मानता है कि "कर्म ही जीवन है और कर्म-हीनता ही मृत्यु। इसके अतिरिक्त जीवन और मृत्यु की परिभाषा झूठी कविता के रंगीन मायाजाल के अतिरिक्त और कुछ नहीं।"[2]

सुनन्दा और राजीव के दृष्टिकोण में अन्तर बड़ा तर्क-वितर्क बनकर भयंकर रूप धारण कर लेता है और राजीव द्वारा साधनापथ, व्यक्तिगत सुख-दु:ख की बात सुनकर सशक्त तर्कों में वह उसे सचेत करती है—"तुम भ्रम में हो, राजीव बाबू और अपने इस भ्रम को एक दिन स्वयं महसूस करोगे, यह भविष्यवाणी मैं कर रही हूँ। जिस वज्र पाषाण की सुदृढ़ इमारत के निर्माण की योजना के पीछे तुम पागल हो उसके विरुद्ध मुझे कुछ नहीं कहना है, पर यदि तुम्हारी धारणा यह हो कि वह इमारत बिना स्नेहसिक्त गारे या बिना अन्तर्वेदना की नमी के जम जायेगी, तो इससे बड़ी भूल नहीं हो सकती...।"[3]

सुनन्दा के तर्कों के सम्मुख राजीव का सम्पूर्ण ज्ञान एक कुहासे के अन्तर्गत ढक जाता है और उसे अपनी भूल का ज्ञान होता है। सुनन्दा उसके—'मुक्ति-निवेश' को छोड़कर अपने मुक्तिपथ पर जाती है। राजीव उसे रोकना चाहता है। पुन: भूल न होने का आश्वासन देता है परन्तु सुनन्दा दृढ़ निश्चय के साथ कहती है—"क्यों न होगी... यह तो वह भूल है जो संसार का पुरुषमात्र नारी के प्रति सदैव से करता आया है... इसमें क्षमा के लिए स्थान रह ही कहाँ जाता है।"[4]

लेखक का उद्देश्य राजीव के कोरे आदर्शवाद पर आघात करना है। अन्यथा वह सुनन्दा के विद्रोह की चर्चा न करता। अगर राजीव ने आदर्शवाद के साथ जीवन की मोह-ममता का भी सामंजस्य कर लिया होता, तो सम्भवत: उसका जीवन अधिक सफल होता। "जीवन को किसी भी विद्रोह में ध्वंस और निर्माण की धाराओं के संगम बिना कभी कोई रस नहीं प्राप्त हो सकता, यही इस उपन्यास का संदेश है।"[5]

दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का स्पष्टीकरण प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है। राजीव अपने यौवन में क्रान्तिकारी रह चुका है। वह प्रगतिवादी दृष्टिकोण को अपनाए हुए है। वह सामूहिक चेतना का प्रतीक है जिसे उद्बुद्ध करने और साकार बनाने के लिए व्यक्ति को अपनी निजी सुख-दुःख की आहुति देनी पड़ती है। उधर सुनन्दा व्यक्ति को समाज का केन्द्र बिन्दु मानती है। सामूहिक विकास एवं कल्याण के लिए वह व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करती है। राजीव केवल श्रम द्वारा मानव की मुक्ति चाहता है किन्तु सुनन्दा जीवन में श्रम भी चाहती है और विश्राम भी और फिर मुक्ति भी चाहती है।

---

१. मुक्ति पथ, पृ० ३१८
२. वही, पृ० ३२१
३. वही, पृ० ४०१
४. वही, पृ० ३७५
५. हिन्दी कथा साहित्य, पृ० १३४

उसके शब्दों में "उस श्रम का क्या महत्त्व जिसके सुख का अनुभव विश्राम के एकान्त क्षणों में न किया जा सके। उस मुक्ति का क्या मूल्य जो सहस्रों बंधनों के बीच में अपना आभास न दे सके।"[1]

इससे पूर्व हमें सुनन्दा शापित विधवा जीवन व्यतीत करती हुई दिखाई देती है, जो राजीव से प्रेम करती है लेकिन उसमें सामाजिक बन्धन तोड़ने का पर्याप्त साहस नहीं। शिक्षित प्रमिला, आधुनिक जागरूक भारतीय नारी का आत्मविश्वास समेट कर उसे प्रोत्साहन देती है— "एक बार दृढ़ निश्चय करके पूर्ण विश्वास के साथ खड़ी हो जाओ। देखोगी, तुम्हारा पथ रोकने वाला समस्त विश्व में एक भी नहीं है।"[2]

अन्ततः यही सुनन्दा "राजीव के समश्रम के आधार पर प्रतिष्ठित सम्पूर्ण मानव जाति, सम व्यवस्था, सम नियम और सम अधिकार की योजना के विरोध में स्वतन्त्र नारी की चेतना जाग पड़ती है और वह इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आगे चल पड़ती है।"[3]

जोशी जी ने युग-युगान्तर से पीड़ित नारी की आत्मा को सुनन्दा की देह में लाकर बिठा दिया है और फिर उसके प्रचण्ड स्वरूप को पहचान कर स्वेच्छाचारी घोर अतिश्रम-वादी, अतिमानव के लौहकरों से मुक्त कराकर 'मुक्तिपथ' की ओर अग्रसर किया है।

प्रमिला आधुनिक युग की शिक्षिता जाग्रत नारी है जिसके अन्तर्मन में समाज की रूढ़ियों से संघर्ष करने का अदम्य साहस है। परन्तु उसके अन्तर्गत सर्वप्रथम हम गम्भीरता नहीं पाते। वह राजीव और सुनन्दा के विवाह के प्रति अपना साहस दिखाती है, परन्तु अपने विवाह के विषय में वह विवाह को गुड्डा-गुड्डी की क्रीड़ा मात्र समझती है जिसका परिणाम अन्ततः दुःखदायी ही होता है।

सुबह के भूले

"जोशी जी ने अपने उपन्यासों में जीवन की यथार्थता को बिना किसी आवरण के प्रस्तुत किया है। मानव के अवचेतन, अचेतन और चेतन मन में पैठकर जोशी जी ने उसकी कुण्ठाओं का विश्लेषण किया है। उसके जीवन के संघर्षों और विकृतियों का मनो-वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया है। परन्तु 'सुबह के भूले' में बिना कला के चमत्कार, असाधारण एवं जटिल जीवन प्रेम और वासनाओं की प्रचण्ड लीलाओं के सीधे पात्रों को लेकर सरल कथा को लिया है।"[4]

प्रस्तुत उपन्यास से ऐसा प्रतीत होता है कि मानव जीवन के शाश्वत सत्य का उद्घाटन 'सुबह के भूले' में किया गया है। यह एक ऐसी नारी की कहानी है जो जीवन के मध्य में पहुँचकर सन्मार्ग को छोड़कर भ्रान्त-पथ की अनुगामिनी बन जाती है। परन्तु अनेक कटु अनुभूतियों को प्राप्त करने के पश्चात् जब पुनः अपने पूर्व-त्यक्त मार्ग को ग्रहण करती है तभी अपने जीवन की विषम परिस्थितियों को सम बना पाती है।

बम्बई की टीनशेडों की गंदी बस्ती में उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों के निवासी दूध के व्यापार के लिए गाय-भैंसें रखे हुए हैं। एक शेड में बैजनाथ काछी और महावीरसिंह

---

१. मुक्तिपथ, पृ० ४१४
२. वही, पृ० १७५
३. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २५०
४. हिन्दी उपन्यास, पृ० २२५

रहते हैं। उन्हें अपने व्यापार में अपार सफलता मिलती है। एक बार कुछ दिनों के लिए बैजनाथ अपने गाँव जाता है अपने बधु-बांधवों से मिलने के लिए। समीपवर्ती गाँव मे झमिया नाम की एक विधवा है जिसके मायके और ससुराल में सहारा देने वाला कोई भी नही है। वह अपनी एकमात्र पुत्री गुलबिया के साथ अपनी मौसी के पास रहती है और वहाँ दुःखपूर्ण जीवन यापन करती है। बैजनाथ उस पर आकृष्ट होता है और झमिया से एकान्त में बातचीत कर शादी करने का सुझाव रखता है। वह अपनी स्वीकृति दे देती है, परन्तु शादी की शर्त रखती है। बैजनाथ उसकी मौसी को ३०० रुपये देकर शादी कर लेता है और झमिया तथा उसकी लड़की गुलबिया को अपने साथ बम्बई ले जाता है। झमिया स्वस्थ, सुन्दर, सुशील तथा शान्त स्वभाव की नारी है। महावीर उसके गुणों पर मुग्ध हो उठता है, इसलिए वे एक सम्मिलित परिवार बनाकर रहते है। परन्तु भाग्य के निर्मम विधान से कुछ दिन बाद बैजनाथ की मृत्यु हो जाती है और झमिया एवं गुलबिया अनाथ स्थिति मे पड़ जाती हैं। परन्तु महावीर सांत्वना भरी वाणी में झमिया से कहता है—"भौजी, भाग्य में जो बदा था सो तो हो गया, पर अब आगे के लिए निश्चित रहो। जब तक मेरे दम में दम है तब तक मैं तुम्हें अनाथ बनने के लिए नहीं छोड़ सकता। बंजू भैया जो कारोबार छोड़ गये हैं उसमें कोई कमी नहीं आने दूँगा। और फिर मेरा अपना कहने को है ही कौन? इसलिए तुम तनिक भी न घबराओ। तुम्हारे घबराने से मेरा जी जाने कैसे कर उठता है।"[1] और इस प्रण को महावीर अन्त तक निभाता है।

महावीर अपने और बैजनाथ के कारोबार को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाता है। झमिया, जिस पर महावीर ने अन्तर् का समस्त स्नेह और श्रद्धा अर्पित की है, महावीर से किसी रूप-गुण सम्पन्न लड़की से विवाह करने का आग्रह करती है। परन्तु महावीर उसे समझाते हुए कहता है कि किसी अपरिचित लड़की के घर में आ जाने से "इस शान्ति और स्नेह भरे परिवार में तुम क्या चाहती हो ऐसी खलबली मचे, एक ऐसा भूचाल आ जाय, जो सारा टाट ही उलट दे।"[2] परन्तु झमिया, सब कुछ समझती हुई भी उसे विवाह करने को बाध्य कर मालती से उसका विवाह करवाती है। प्रारम्भ में मालती के कारण घर के स्नेह और शान्त परिवार का वातावरण अशान्त हो उठता है, परन्तु इससे उनके जीवन में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था नहीं आती। गुलबिया को सुशिक्षिता कर उसे सम्पन्न जीवन में देखने की झमिया की आन्तरिक इच्छा है। गुलबिया एक असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न लड़की है जो पाठशाला में दिन प्रतिदिन प्रगति करती है और स्कूल में कई सम्पन्न तथा धनाढ्य परिवारों की लड़कियों से उसका परिचय होता है। कई लड़कियों के माता-पिता उन्हें साधारण स्थिति मे उसके दूध बेचने वाले माँ-बाप के घर जाने से मना कर देते है। कुछ लड़कियाँ उससे स्नेह संबंध बनाये रखती हैं। विद्या के क्षेत्र में उन्नति करने पर उसे अपने नाम मे देहातीपन की गंध आने लगती है और उसमें हीनता का भाव जाग उठता है। अतः वह अपना नाम बदलकर गिरिजा बन जाती है। गिरिजा अपने बाल्यकाल के साथी एक गरीब लड़के किशन को पढ़ाना आरम्भ करती है। किशन बौद्धिक और मानसिक रूप से विकसित गिरिजा पर अपने बाल्यकाल का स्नेहाधिकार जताना चाहता है। परन्तु उसे ज्ञान होता है कि वह तो अब गुलबिया से गिरिजा बन गई है।

---

१. सुबह के भूले, पृ० ३१

२. वही, पृ० ३५

गुलबिया अब अपने घर के नीरस और निर्जीव वातावरण से विरक्त होकर फ़ैशन की रंगीन दुनिया में विहग के समान उल्लास भरी उड़ान भरने लगी है, किन्तु फैशनपरस्त समाज भी गिरिजा की वास्तविक स्थिति को जानकर उससे दूर हटने लगता है। हेमन्तकुमार नामक एक युवक गिरिजा के सम्पर्क में आता है जो उसकी विषम परिस्थिति—असमानता के भाव—से द्रवित होकर बताता है कि हमारे समाज का दृष्टिकोण बड़ा ही छिछला और संकीर्ण होता है और साथ ही उसे ऐसे समाज का बोध कराता है, जहाँ ऊँच-नीच, कृत्रिम भेदभाव को नहीं माना जाता है और वह समाज है सिनेमा-समाज। गिरिजा सिनेमा-जगत् में प्रविष्ट होती है अभिनेत्री के रूप में, परन्तु वह प्रगति की सीढ़ी पर कुछ ही समय बाद अभिनेत्री से निर्मात्री और निर्देशिका भी बन जाती है। गिरिजा के पास समय का अभाव है, अतः वह एक प्रेस कम्पोजीटर को किशन के लिए मास्टर नियुक्त करती है। आगे चलकर किशन को वह अपनी एक फिल्म का नायक भी चुनती है। गिरिजा के पिछले दम्भपूर्ण व्यवहार से किशन को गहरी चोट लगी थी, परन्तु वह उसे समझाती है कि कुछ काल तक सीधी राह पर चलते हुए वह भटक गई थी, अब सुबह की भूली गुलबिया उल्टे-सीधे पथ से होकर शाम को फिर घर आ गई है। इसी बीच झमिया की मृत्यु हो जाती है। उस की मृत्यु के एक वर्ष बाद दोनों परिणय सूत्र में बँध जाते हैं तब गिरिजा उसी के द्वारा मातृमंदिर में अपनी माँ के चित्र का अनावरण करवाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक का जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण रहा है। गिरिजा के माध्यम से मोहनदास, चन्द्रमोहन, और शान्ता आदि द्वारा एक ऐसे समाज का ढाँचा प्रस्तुत किया गया है जो ऊपर से आकर्षक है परन्तु अन्दर से छिछला है और जहाँ मनुष्य की प्रतिष्ठा उसके व्यक्तित्व और उसकी विशेषता, सद्गुण एवं प्रतिभा के कारण नहीं होती, अपितु उसके सामाजिक स्थान कुल की ख्याति पर होती है। मोहनदास का आकर्षण गिरिजा पर अत्यधिक है, परन्तु जब उसे गिरिजा के कुल की वास्तविकता का पता चलता है, तो उसका सम्पूर्ण आकर्षण, उल्लास छूमंतर हो जाता है। जोशी जी नारी स्वतन्त्रता के समर्थक हैं। उनके नारी पात्र पुरुष द्वारा अपमानित, प्रताड़ित तथा संचालित नहीं, अपितु वे आधुनिक भावनाओं—स्वेच्छा, महत्वाकांक्षा, स्वतन्त्र सत्ता—के प्रतीक हैं। 'पर्दे की रानी' की निरंजना, 'संन्यासी' की शांति और प्रस्तुत उपन्यास की गुलबिया उल्लेखनीय हैं। वे समाज व पुरुष वर्ग से उपेक्षाभाव पाकर निराश नहीं बैठतीं, आत्म-हत्या नहीं करतीं, अपितु दृढ़तापूर्वक अपने पथ पर अग्रसर होती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के दो प्रमुख पात्र झमिया और गुलबिया (गिरिजा) हैं। झमिया को वैधव्य का शापित जीवन मिला है जिसका मायके तथा ससुराल में कोई भी सहारा नहीं है। अपनी पाँच-छः वर्ष की लड़की गुलबिया को लेकर वह धैर्यपूर्वक अपनी भाभी के अत्याचार को सह रही है। बैजनाथ के प्रथम साक्षात्कार से ही वह उसके प्रति स्नेहभाव रखने लगती है, फिर भी वह अपने वर्तमान जीवन से किसी प्रकार का असंतोष प्रगट नहीं करती है। उसे केवल चिन्ता है अपनी छोटी-सी छोकरी की। वह केवल अपनी छोटी-सी बालिका के लिए ही जीवित रहना चाहती है। हमें उसके चरित्र में परमार्थ, परसेवा, दृढ़सकल्प, मर्यादा तथा निडरता के दर्शन होते हैं। बैजनाथ के आग्रह पर वह उसके साथ बम्बई जाने के लिए तैयार होती है, परन्तु सामाजिक मर्यादा के साथ। बैजनाथ उसे भगाने के लिए उकसाता है, परन्तु वह विवाह का प्रस्ताव स्वीकार किए बिना नहीं जाती। बम्बई चले जाने पर महावीर उसके निश्छल प्रेम से मोहित होता है।

बैजनाथ की मृत्यु के पश्चात् वह अपना सारा स्नेह अपनी सरल, भोलीभाली भौजी पर उँडेलता है। झमिया अपने देवर के सूने गृहस्थ को देखकर आतंकित हो उठती है। बार-बार उससे विवाह करने का आग्रह करती है। महावीर सुखमय और शान्तिपूर्ण पारिवारिक वातावरण में आफत पैदा नहीं करना चाहता, परन्तु झमिया कुछ भी न सुनकर कहती है, "आफत ही सही, मैं उसे खुशी-खुशी सह लूँगी। पर तुम्हें अब मैं अकेला इस हालत में न रहने दूंगी।" अन्त में भौजी का स्नेह-पूर्ण हठ उसे मालती के साथ विवाह करने के लिए बाध्य कर देता है।

मालती का पदार्पण सारे शान्तिमय वातावरण को क्लेशमय बना देता है। यहाँ तक कि मालती अपने पति से कह देती है: "मुझे क्या पता था कि सौत को मेरी छाती पर बिठाने के लिए ही तुम मुझ से शादी कर रहे हो।" इतना सुनने पर भी वह शान्त और गम्भीर रहती है और गृहकलह को रोकने के लिए ही अपने देवर को समझाती है—"देवर, तुम्हें मेरी हत्या लगेगी अगर तुमने बहन को तनिक भी छुआ तो।"[1] भाग्य की विडम्बनाओं के घात-प्रतिघातों को सहते हुए, उसे अभी तक अपनी लड़की की ओर से कुछ न सहना पड़ा था। परन्तु अब उसके अपने रक्त से सिंचित गुलबिया 'गिरिजा' बन गई। अपने ही घर में अपनी पुत्री को, अपने ही द्वारा रखे गए नाम से पुकारने की आज्ञा तक नहीं। पतनोन्मुख गिरिजा बात-बात पर उसकी अवहेलना करती है और अन्त में जब वह स्नेहमयी माँ और चाचा का घर छोड़कर चले जाने की धमकी देती है तब माँ कहती है:—

"मेरी बात जाने दे। मैं तो जन्म की अभागी हूँ। तेरे चाचा ने इतने प्यार से तुझे पाला-पोसा, उन्हीं की बदौलत तू इतना पढ़-लिख गई, अब आज उन्हीं को ठुकराकर तू चली जाने की धमकी देती है। ऐसे अनर्थ की बात सोचनी भी नहीं चाहिए।"[2]

झमीया के इतने करुणामय, त्यागमय तथा निराशापूर्ण भावनाओं से ओतप्रोत वचनों का गिरिजा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तपाक से माँ को मुँहतोड़ जवाब देती है—"किसी ने अगर मुझे पढ़ाया-लिखाया तो मुझ पर क्या अहसान किया?" इन बातों को सुनकर झमिया की कमर-सी टूट जाती है। इस विषय में लेखक स्वयं लिखता है:—"बस, विष ने अपना काम किया। हमारी नायिका का जीवन-दीप स्नेह-तेल के अभाव में बुझने लगा।" शैशवकाल की गुलबिया जब यौवन की गिरिजा बनती है तब उसके काम के साथ-साथ चरित्र में भी आकाश-पाताल का अन्तर पाते हैं। कहाँ शैशवकाल की गुलबिया, ६-७ वर्ष की भोली भाली, गन्दी-गन्दी, रूखे और बिखरे बाल, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र, बहती हुई नाक और कहाँ अब यौवन काल की गिरिजा-मोहनदास जैसे सुन्दर, सुसज्जित तथा सुशील, कुशाग्र बुद्धि जीव को, लड़कियों के जमघट से खींच कर, अपनी प्रतिभा द्वारा अपने शान्त, संयत और गम्भीर व्यक्तित्व द्वारा आकर्षित करने वाली। यह सब कुछ परिवर्तन अथवा विकास झमिया और महावीर के त्यागमय जीवन का ही प्रतिफल है, परन्तु वह यह सब कुछ न समझकर भ्रान्त पथ की अनुगामिनी बन जाती है। गुलबिया ही झमिया की आकांक्षाओं और आशाओं की एक-मात्र केन्द्र है। उसके लिए उसने क्या नहीं किया और वही गुलबिया अपनी माँ के रखे हुए नाम से तथा माँ से ऊबकर जाने के लिए उद्यत होती है। ज्यों-ज्यों वह बड़े-बड़े धनाढ्यों के सम्पर्क में आती है उनके महलों को देखकर झोंपड़ी

१. सुबह के भूले, पृ० १७८
२. वही, पृ० २०७

नक फूँकने के लिए चल पड़ती है। गिरिजा शान्ता के उच्च परिवार के उच्च रहन-सहन को देख कर आई थी जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उस पर हुआ और वह अपना पथ भूल गई। उसके चरित्र में हम क्रमश. सरलता, बुद्धिमत्ता, मानसिक पतन, भावुकता और आत्मीयता के दर्शन पाते हैं। शैशव की सरल गुलबिया किशोरावस्था में पहुँचकर बुद्धिमती और कुशाग्र-बुद्धि जीव बन जाती है। परन्तु वह यौवन आते ही पथभ्रष्ट हो जाती है। उसके मानसिक घात-प्रतिघात, हेमन्तकुमार और मोहनदास आदि का उसके प्रति उपेक्षा करने का रहस्योद्घाटन, उसकी जीवन-दिशा और चरित्र में परिवर्तन लाने मे सहायक होते है और उसे अपनी वास्तविकता और अज्ञानता का बोध होना है तथा अपनी भूल को स्वीकार करते हुए वह अपने बालसाथी किशन से कहती है :—

"उस गुलबिया को तुम आज क्यों भूल गए हो ? वह गुलबिया मरी नहीं, अभी तक जिन्दी है ! किशन ! पर सुबह की भूली हुई वह गुलबिया जीवन के उल्टे रास्ते से होकर शाम को फिर घर लौट आई है। यह सूचना तुम्हें अभी तक नहीं मिली। आश्चर्य की बात है।"[1] गिरिजा किशन से गुलबिया की अवस्था से प्रेम करती थी, परन्तु भ्रान्त पथ ग्रहण करने से वह प्रेम कुछ धूमिल पड़ गया था जिसे वह अन्त में अपनी भूल को स्वीकार कर सजग बनाती है और माता के देहान्त के बाद मातृमंदिर में अपनी माँ के चित्र का अनावरण उसी से करवाती है।

किशन का परिचय गुलबिया के बालसखा के रूप मे मिलता है। शिक्षा एवं विद्या के प्रति उसका आकर्षण है। गिरिजा की अनुपस्थिति में उसकी पुस्तकें लेकर घंटों पढ़ता है। उसे गिरिजा की आशातीत प्रगति पर आश्चर्य होता है। वही गुलबिया जिसे वह कभी डाँटता था, रौब जमाना चाहता था, अब जब कभी उसके पास जाता है तो दुबक कर बैठ जाता है।

कभी-कभी तो अब गिरिजा उसे 'फिर कभी आना' कहकर टाल देती। इस पर उसे उदासीनता तथा मानसिक द्वन्द्व घेर लेते हैं। वह अनेकों बार गुलबिया के पास पुनः न जाने का प्रण करता है, परन्तु वह ऐसा कर ही नही पाता, क्योंकि प्रेम उसके जीवन की शाश्वत समस्या बन गई है।

उसके आगे गुलबिया और गिरिजा दो भिन्न व्यक्तित्व हैं। गुलबिया तो उसके मानस में अभी तक समाई हुई है और गिरिजा कूद कर चली गई है।

जब गिरिजा इस बात का अनुभव करती है कि उसका वास्तविक रूप गुलबिया ही है, तो वह किशन के प्रति अपने सच्चे प्रेम को व्यक्त करती हुई कहती है कि उसका सच्चा प्रेम ही सुबह की भूली हुई गिरिजा को गुलबिया बनाकर लौटा लाया है।

परिस्थितियों के आघातों के कारण उसे गिरिजा के इस कथन पर पहले तो विश्वास भी नहीं होता।

किशन के अन्दर एक कलाकार की आत्मा भी है जिसे कलामूर्ति गिरिजा पहचान सकी और 'अखण्ड ज्योति' में उसे नायक का पार्ट देती है।

इस प्रकार किशन हमारे सम्मुख क्रमशः एक बिगड़ा दिल खिलाड़ी, उद्योगी और सफल कलाकार के रूप में आता है।

---

१. सुबह की भूलें, पृ० २५१।

इसके अतिरिक्त नारी पात्रों में मालती महावीर की पत्नी और झमिया की देवरानी है। उसके चरित्र में कुढ़न, द्वेष और क्रोधाग्नि कूट-कूट कर भरी हुई है। वह स्नेहमयी झमिया को सौत तक कह डालती है और उसे घर से बाहर निकालने तक की धमकी देती है, परन्तु उससे कुछ भी हो नहीं पाता। कथाकार ने उसके विषय में कुछ अधिक न कहकर तथा उसे पुत्रवती बनाकर कथा समाप्त कर दी।

महावीर कर्त्तव्यनिष्ठा, मानवता, लग्नशीलता, परदुखकातरता का प्रतीक है। स्नेहमयी भौजी के प्रति उसका मानवतावादी दृष्टिकोण है जिसमे वासना की दुर्गन्ध किंचित् मात्र भी नहीं है।

भौजी के दुःख से वह दुःखी है, इसीलिए विवाह कर शान्ति भंग नहीं करना चाहता। गुलबिया की इच्छा-पूर्ति और शिक्षा-दीक्षा की ओर वह पूरी तरह ध्यान देता है। मालती गुलबिया या झमिया के प्रति दोषारोपण करती है, तो उसकी आत्मा जल उठती है। परन्तु क्रोधी होते हुए भी वह आत्मसंयमी है। ईर्ष्या उसे छू तक नहीं गई है। इसी स्वस्थ व्यक्तित्व के कारण झमिया उसे देवता तुल्य मानती है।

जिप्सी

'जिप्सी' उपन्यास नवीन युग की जागरूक चेतना का प्रतीक है और मनोराज्य की एकान्त तथा आबद्ध कारा में कराहती हुई नैतिक पतन की विवश पीड़ा से ओत-प्रोत है। यह हिप्नोटिज्म के चमत्कारों और बुर्जुवा संस्कारों से पूर्ण प्रोलेतेरियन क्रान्ति के स्वर्ण स्वप्नों में लीन एक पूंजीवादी की रोमानी कथा है।

प्रस्तुत उपन्यास मनिया, एक जिप्सी कन्या की जीवनगाथा और बुर्जुवा संस्कारों से आबद्ध रंजन, एक पूंजीपति के रोमांस की कहानी है। बुलन्दशहर का जमीदार, रंजन हवाखोरी के लिए मंसूरी जाता है। बाजार में उसे एक जिप्सी कन्या मालरोड पर अपनी दुकान में सामान बेचती हुई मिलती है। उसके मुख की अभिव्यक्ति में एक ऐसा अनोखापन वर्तमान रहता है कि रंजन उस लड़की की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहता और वह उससे एक चाकू खरीदकर उसके साथ वार्तालाप का आनन्द लेता है। इस प्रकार का आनन्द लेने के लिए नित्यप्रति कुछ न कुछ खरीदता रहता है। फिर एक दिन उसकी सारी दुकान को ही खरीद लेता है। मनिया उस समय तो प्रसन्न होती है, परन्तु उन रुपयों की चोरी हो जाने पर वह पूर्णतया निराश्रित हो जाती है। घृणा एवं प्रतिशोध के भाव लेकर रंजन के पास आती है, परन्तु रंजन हिप्नोटिज्म के द्वारा उसे अपने वश में कर लेता है।

पहले मनिया की माँ उस दूकान पर बैठती थी। अपने पति की विलासिता एवं अकर्मण्यता से तंग आकर एक दिन वह उसकी हत्या कर देती है और वहाँ से भाग कर फिर कुछ दिन बाद स्वयं भी आत्महत्या कर डालती है— शैशवकाल में ही मनिया ने भयंकर घटनाओं को देखा था, सहा था। उसके मन पर इन घटनाओं की अमिट छाप पड़ी हुई है। अब वह अपने जीवन की स्वतन्त्र सत्ता (दूकान) को बेचकर एक अनाथ गुलाम की तरह रंजन की शरण में है। वह रंजन को ही अपनी इस आश्रयहीन स्थिति के लिए उत्तरदायी समझकर कभी-कभी बीच में आत्मा को तिलमिला देने वाले व्यंग्यों का प्रहार करती है।

होटल मालिक की आपत्ति पर रंजन एक बंगला खरीद लेता है। वह मनिया सहित वहाँ रहता है। रंजन पड़ोस की एक ईसाई परिवार की लड़की मेरी को मनिया का मास्टर रख देता है, जो मनिया में ईसाई धर्म की ओर गहरी श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न कर देती

है। फिर भी वह रंजन की विनम्रता को देखकर उन्हें विवाह सूत्र में बंधने के लिए स्वीकृति दे देती है, परन्तु एक शर्त रखती है कि रजन ईसाई धर्म स्वीकार कर ले। रजन को आन्तरिक रूप से किसी भी धर्म के प्रति आस्था नहीं है, इसलिए वह सीधे-सादे ढग से विवाह करना चाहता है, परन्तु मनिया की हठधर्मी और रजन के उस के प्रति उत्कट प्रेम के कारण वह ईसाई धर्म स्वीकार कर विवाह कर लेता है। विवाह में मेरी, मेरी की बहिन, माँ और फादर जेरेमिया सहायता करते है।

कालान्तर में रजन मनिया को, जिसे मातृत्व का भार प्राप्त हुआ है, कलकत्ता ले जाता है। जहाँ उसे उसका बाल-सहपाठी वीरेन्द्र मिलता है। दोनों को उसके आलीशान बंगले और रूप-गुण-सम्पन्ना पत्नी शोभना का आतिथ्य स्वभावतः भा जाता है। मनिया का प्रवेश उस घर में बहू के रूप में होता है और शोभना दीदी बन जाती है।

नवजात शिशु रंजन को अत्यन्त रहस्यमय जीव-सा लगता है और उसे देखकर उसके तन-मन में एक विचित्र सिहरन सी होने लगती है। मनिया बच्चे में इतनी मग्न रहती है कि उसे किसी बात का ध्यान ही नही रहता। रंजन की सुविधाओं और आवश्यकताओं का ध्यान वह पहले की अपेक्षा बहुत कम रखती है। इस प्रकार के उपेक्षाभाव से रजन के अन्तर्मन में अजीब बेचैनी और बच्चे के प्रति ईर्ष्या होती है। शोभना, एक ऐसी प्रबल आकर्षण शक्ति है, जो रंजन को बरबस अपनी ओर खींचने लगती है। वह एक ऐसी विचित्र नारी है जिसे न उसका पति वीरेन्द्र ही समझ पाता है और न देवर रंजन ही। वीरेन्द्र जनवादी आन्दोलन में इतना लीन रहता है कि वह कई दिन-रात तक घर से गायब रहता है। शोभना और रंजन के पारस्परिक आकर्षण को देखने-समझने का उसे अवकाश ही नही है। मनिया यद्यपि रंजन की सम्पूर्ण गतिविधियों को जानती है फिर भी ऐसे व्यवहार के प्रति बाह्य रूप से उदासीनता बनाए रखती है। एक बार मनिया, शोभना और रंजन कार में घूमने जाते है। जनवादियों के आन्दोलन में मनिया के चेहरे पर कोई आन्दोलनकारी तेजाब फेंक देता है। मनिया का चेहरा तेजाब से विकृत हो जाता है। नवजात शिशु का भी देहान्त हो जाता है। इस दुःखदायी घटना के बाद रंजन-शोभना का प्रणय-व्यापार भी मनिया को और अधिक अनास्थावान बना डालता है। इसी समय उसका परिचय वीरेन्द्र की संस्था के एक अधिकारी से होता है। संस्था के उद्देश्यों और सिद्धान्तों से प्रभावित होकर वह भी उसके कार्य-कलापों में सक्रिय भाग लेने लगती है। मनिया के उदासीन और उपेक्षित व्यवहार का कारण रंजन संस्था को ही ठहराता है और संस्था में प्रविष्ट होने के बाद रंजन का विलासी और सन्देहात्मक रूप मनिया को इतना अशान्त और उद्विग्न बना डालता है कि एक दिन वह घर छोड़कर संस्था में सम्मिलित हो जाती है। इसी बीच वीरेन्द्र का वध हो जाता है। मनिया अपने जीवन के मूल श्रम संस्कारों के कारण संस्था में शीघ्र ही सर्व-प्रिय एवं सच्ची सेविका का पद ग्रहण कर लेती है और एक नर्स के रूप में कार्य करती है। मेरी और फादर जेरेमिया भी विवाह के सूत्र में बँध जाने के बाद अमेरिका चले जाते हैं। मनिया भी उनके साथ अमेरिका जाकर प्लास्टिक सर्जरी के द्वारा अपना चेहरा ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण शरीर सुडौल बनाकर आती है और संस्था में सच्चे सेवा भाव से नर्स के रूप में कार्य करती है।

अब रंजन-शोभना के प्रणय-व्यापारों में बाधक न मनिया रही और न वीरेन्द्र। ये कलकत्ता से कुछ दूर नदी के किनारे स्थित एक सुन्दर भवन में एक बहुत बड़ी युवक और युवतियों की टोलियों के साथ केलि-क्रीड़ा के लिए जाते हैं, परन्तु वहाँ एकाएक महामारी और दुर्भिक्ष का प्रकोप होता है और उनका केलि-क्रीड़ा के लिए वहाँ रहना कठिन हो जाता

है। रंजन पीड़ित मानवता की सेवा के लिए प्रेरित होकर सब को कलकत्ता भेज देता है और स्वयं मनमौजी स्वभाव के बूढ़े बंगाली के साथ वहीं ठहर जाता है। इसी बीच मनिया वाली संस्था के कुछ डाक्टर और नर्स सेवा के लिए वहाँ पहुँचते हैं। विलास और केलिक्रीड़ा का केन्द्र वह भव्य कोठी अस्पताल के रूप में बदल जाती है। रंजन मनिया के परिवर्तित रूप पर मोहित हो जाता है और नर्स की घनिष्ठता के बाद उसे ज्ञात होता है कि यह सम्पूर्ण व्यवस्था मनिया और वीरेन्द्र वाली संस्था की ओर से हुई है। तब उसके विस्मय की सीमा नहीं रहती और संस्था के प्रति अत्यधिक सहानुभूतिशील हो उठता है। उसकी सहानुभूति का लाभ उठाकर मनिया बड़ी कुशलता से उसे अपनी सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग दान के रूप में देने के लिए बाध्य करती है। मनिया (मंजुला) 'जनसंस्कृति समन्वय केन्द्र' का निरीक्षण करवा कर रंजन को पटना ले जाती है और वहाँ उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति केन्द्र के नाम पर करवा देती है। इसके बाद अपना रहस्य बताकर रंजन भी आश्रम में आ जाता है और कुदाली-फावड़ा से अन्य व्यक्तियों की तरह कार्य करता है। मनिया रंजन के कर्म और धन दान करने के बाद भी उसे स्वीकार नहीं करती, क्योंकि वह उसके मूल भावों से परिचित है। इसलिए वह सामूहिक सेवा द्वारा, अपना संस्कार परिष्कार करने के लिए उसे पुनः वापस पहाड़ भेज देती है। नारी सुलभ कोमलता तथा पूर्व संसर्ग की मोह ममता को दबाकर वह रंजन को रचनात्मक कार्य द्वारा तथा अपने जीवन को विश्व जीवन से नियोजित करने के लिए मुक्त कर देती है।

सामाजिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत उपन्यास में "सम्पत्ति और श्रम-सुविधा प्राप्त और सुविधाहीनों... के संघर्ष का चित्रण किया गया है। रंजन धनी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है और मनिया श्रमिक वर्ग का। मनिया को जब रंजन की अतुल सम्पत्ति का बोध होता है तो वह आश्चर्यचकित होकर कहती है—

"तुम्हारे पास आने से पहले तक मैं समझती थी कि सुबह शाम तक का खाना जुटाने के लिए गरीबों को जो परेशानी उठानी पड़ती है, वह कोई दुःख की बात नहीं, बल्कि सुख की बात है और अगर उस परेशानी में आदमी उलझा न रहे तो जीना भी दूभर हो जाए। मेरे मन में कोई खटका नहीं था। पैसे वालों से डाह नहीं थी। पर तुम्हारे पास आने के बाद ही मुझे पहली बार मालूम हुआ कि आराम क्या चीज है? और यह भी मैंने जाना कि इसके पहले दिन मैं कैसे कष्ट से बिता रही थी।"[1]

"मनिया के अन्तर्मन के प्रतिदिन संघर्षमय जीवन की सचित राख के नीचे दबी हुई विद्वेष की चिनगारी एक प्रबल तूफानी धक्के से सारी राख उड़ जाने पर तीव्रता से दहक उठती है और वह रंजन की सम्पत्तिशीलता के भयावह चित्र खींचने लगती है।"[2]

जोशी जी ने प्रस्तुत उपन्यास में एक ऐसी क्रान्ति की कल्पना की है जिसमें गाँधीवाद समाजवाद, फ्रायडवाद, अध्यात्मवाद, आदि का समन्वित रूप है। ऐसे समन्वित वादों के कार्य को 'जनसंस्कृति समन्वय केन्द्र' की स्थापना कर क्रान्ति करते हैं। यह क्रान्ति निम्न मध्यमवर्ग के नेतृत्व में हो और इस वर्ग के पुरुष पात्र के नेतृत्व में नहीं बल्कि स्त्री के, क्योंकि पुरुष शोषक वृत्ति का है। इस क्रान्ति का नेतृत्व भी एकमात्र निम्नमध्यमवर्ग की नारी

---

१. जिप्सी, पृ० १४०
२. हिन्दी उपन्यास, पृ० २३०

मजुला (मनिया) करती है। जोशी जी प्रमुखतया मनोविज्ञानवादी उपन्यासकार है परन्तु किसी-न-किसी रूप में इनके प्रत्येक उपन्यास मे राजनीति का आग्रह अवश्य मिलता है। और कुछ उपन्यासों में राजनीतिक विचारधाराओ का विवेचन भी मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में कथा के अनेक स्थलों पर राजनीतिक क्रान्ति के लिए लम्बे-लम्बे भाषण प्रस्तुत किए है और उसके लिए विशेष-विशेष पात्रों द्वारा विशिष्ट समस्याओ पर प्रकाश भी डलवाया है। लेकिन जोशी जी की राजनीति भी समाज तथा सामाजिक जीवन पर आधारित न होकर व्यक्ति तथा उसके अन्तर्मन पर आधारित है। वे विश्व में केवल दो वर्ग मानते है स्त्री तथा पुरुष और इस बात की उद् घोषणा भी करते हैं कि भविष्य में इन दो वर्गों के संघर्ष मे क्रान्ति होगी और राजनैतिक चेतना का विकास होगा और राजनैतिक क्षेत्र मे भी स्त्री-पुरुष दो वर्ग मान लेना फ्रायड के वर्गीकरण से भिन्न नहीं।

"इलाचन्द्र जी उन उपन्यासकारो में से है, जिनकी उपन्यास कला कथा में ही ढलकर अपने स्वरूप को प्रस्फुटित करती है, पर विषय के निर्वाचन में उन्होंने दृढ़तापूर्वक मनोविज्ञान को अपनाया है। उनमें आधुनिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं के प्रति अवहेलना नहीं है। गांधीवाद, राष्ट्रवाद, साम्यवाद, इत्यादि का जितना मार्मिक विवेचन इनके उपन्यासों में हुआ है उतना शायद ही अन्य किसी के उपन्यासो मे हुआ हो। पर यह सब कुछ मानव के मनोविज्ञान के आधार पर, जिसमें सबके मूल में रहने वाली मौलिक प्रवृत्तियों की छानबीन की गई है।"[1]

'जिप्सी' का वीरेन्द्रसिंह इसलिए साम्यवादी बना, क्योंकि उसकी माँ कहार की लड़की धनी व्यक्ति की रखैल थी। ऐसी दम्पति की उपज वीरेन्द्रसिंह मोटर, बगला तथा धन-सम्पत्ति का मालिक होने पर भी साम्यवादी है जो आदर्शवाद को मानता है और साथ साथ देवी-देवताओं का अस्तित्व भी। जिस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में जोशी जी के पात्र किसी जन्मजात मनोग्रन्थियों की उपज होते हैं, उसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भी किसी न किसी मनोग्रन्थि पर आधारित होते हैं।

'जिप्सी' उपन्यास में आते आते जोशी जी ने मनोविज्ञान के कुछ नूतन पहलुओं को भी अपनी कथा का आधार बनाया है और साथ ही कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या देने का प्रयत्न किया है। अब तक के उपन्यास चाहे वे जोशी जी के लिखे हों अथवा किसी अन्य के, किसी में भी सम्मोहन को कथासूत्र के विकास में सहायक के रूप में प्रयुक्त नहीं किया गया था। एक पात्र को दूसरे पात्र की उपस्थिति में प्रभाव ग्रहण करते भले ही चित्रित किया गया हो पर सम्मोहन कला को विधिवत् उपन्यास के क्षेत्र मे प्रवेश करने का अधिकार नहीं मिला था। सृजनात्मक प्रतिभा ने उसे अपने यहाँ स्थान नहीं दिया था।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास का नायक नृपेन्द्र रंजन सम्मोहन कला का ज्ञाता है। वह मनिया, एक साधारण जिप्सी बालिका के प्रेम को स्वाभाविक रूप से पाने के लिए सम्मोहन का प्रयोग करता है और सम्मोहन की निद्रा अवस्था में अपने आत्मविश्वास पूर्ण दृढ़ आदेशों, एवं सूचनाओं द्वारा मनिया के विद्रोही भावों को जीतकर अपने प्रति आसक्त बनाता है। परन्तु

१. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २५६
२. वही, पृ० २५२

ज्यों-ज्यों मनिया मे आत्म-विश्वास और स्वतन्त्र-चिन्तन की मात्रा बढ़ती जाती है, सम्मोहन क्रिया का प्रभाव भी कम होता जाता है। वह अपनी असफलता के कारणों का उल्लेख भी करता है। इसका मूल कारण मैं स्वयं हूँ, दूसरा कोई नही। तब मेरी असफलता का कारण यह था कि तब मैं मनिया की सच्ची मंगलमय कामना से प्रेरित होकर, उसकी दयनीय परिस्थिति को देखते हुए आन्तरिक करुणा से सच्चा आत्मिक बल पाकर उसके मन को प्रभावित करने को उद्यत हुआ था पर आज मैं उसकी वास्तविक कल्याण कामना से प्रेरित होकर अपनी स्वार्थ जनित आशंका मे ईर्ष्यादिग्ध होकर कृत्रिम मानसिक बल के प्रयोग से हिप्नोटाइज करने चला था।"[1]

रंजन पूंजीवादी है, उसके अन्तर्गत कुछ वर्गगत विशेषताएं भी परम्परा से मिलती है। रजन के समान किसी भी पूंजीवादी के लिए मनिया जैसी एक नहीं, अनेकों जिप्सी बालाओं के नारीत्व को रौंद डालना कठिन कार्य नही था। परन्तु रंजन ने ऐसा नही किया। 'जिप्सी' का नायक बहुभोक्ता नहीं, उसका प्रेम केवल मनिया के प्रति रहा। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में शोभना के प्रति प्रेम रहा, परन्तु उसकी दोषी मनिया है न कि रंजन के चरित्र का पतन। वस्तुत रजन का त्यागपूर्ण जीवन मनिया के अवचेतन मे प्रवेश नही कर सका, अन्यथा वह किसी दशा में रंजन को न छोड़ती और उसे पतन के मार्ग से बचाती। मनिया के मातृत्व पद प्राप्त होने के बाद उससे नितान्त उपेक्षा पाकर ही उसके पग डगमगाते हैं और जब उसी मनिया ने, जिसने उसे हृदय से चाहा था, उसे ठुकरा कर मुक्त मार्ग का अवलम्ब ग्रहण किया तो उसे ठेस पहुँचती है—"मुझे लग रहा था जैसे मेरे शरीर का अंग काटकर अलग हो गया हो। यह ठीक है कि वह अंग जलकर निकम्मा हो गया था और मेरी विवशता की याद दिलाने और बदसूरती बढ़ाने के अतिरिक्त मेरे और किसी काम का नहीं रह गया था, पर सब कुछ होने पर भी वह था मेरा अंग ही।"[2] मनिया के प्रति वह पहले से ही ईमानदार रहा है। वह उसके तन को नहीं, मन को जीतना चाहता है इसलिए उस ने सम्मोहन कला का प्रयोग किया। उसकी करुण गाथा को सुनकर अपनी वासनाओं को स्पष्ट करता है—

"मैंने केवल इस उद्देश्य से मनिया को अपने वश मे करने का प्रयास नही किया कि वह मेरी आत्म-तुष्टि के लिए मुझसे प्रेम करे; इसलिए कि मै उसके भटके हुए, जीवन संघर्ष में पिसे हुए एवं पारिवारिक दुर्घटनाओं की ग्लानि से पीड़ित मन को ठीक रास्ते पर लाना चाहता था।"[3] मनिया के लिए ही वह सब कुछ करता है। कहीं-कहीं पर तो वह मनिया के हाथ की कठपुतली मात्र रह जाता है। मंजुला (मनिया) तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान करवाकर उसे अनाथ ही बना देती है।

मनिया, जिप्सी बाला, छोटी ही आयु मे जीवन के सभी उतार-चढ़ाव देख चुकी है। उसकी स्निग्धता, सरसता और सरलता पर आकर्षित होकर रंजन उसे अपने वश में करता है। वह इतनी सरल है कि धनी लोग धन का व्यय क्यों नही करते आदि विचित्र तर्क-वितर्क करती है। परन्तु उसका मंजुला के रूप में आकाश-पाताल का अन्तर है।

मनिया का प्रेम विवशता-जनित है। वह सम्मोहन क्रिया जन्य प्रेम है, प्राकृतिक नहीं। वह एक असहाय नारी है इसलिए उसे असहाय, पीड़ित और शोषित समाज से

---

१. जिप्सी, पृ० १४७
२. वही, पृ० ५८३
३. वही पृ० १२३

प्यार है और धनी-मानी शोषक वर्ग से घृणा। वह रंजन को एक पूंजीवादी जमींदार के रूप में ही देखती रही, आदर्श पति के रूप में नहीं। उसने अन्तर्मन से कभी न उसे प्यार किया न उसकी इच्छा के अनुसार ही अपने को ढाला और यही विषमता उनके असफल दाम्पत्य जीवन का कारण रहा। पुत्र की मृत्यु होने पर रंजन सान्त्वना देता है, जिसे वह ग्लानि की दृष्टि से देखती है और उसका मूल्यांकन करने में असमर्थ रहती है।

'सन्यासी' की नायिका शान्ति के समान ही 'जिप्सी' की नायिका भी नायक को ठुकरा कर चली जाती है परन्तु शान्ति नन्दकिशोर की ज्यादतियों के कारण जाती है परन्तु 'जिप्सी' की सारी परिस्थितियों के लिए स्वयं मनिया उत्तरदायी है। वह शनैः-शनैः रंजन की अवहेलना करने लगती है। उसके उपकारों को भूलकर शोभना को आगे रखकर उसे पथभ्रष्ट कह कर छोड़ देती है। क्या पत्नी होने के नाते उसका कर्तव्य नहीं था कि वह अपने पति को सन्मार्ग पर लाए ? जब पति उससे बिना आज्ञा कई दिन तक घर से बाहर रहने का कारण पूछता है तब पूंजीवादी पुरुष के चरित्र का विश्लेषण कर वह सारा दोष उसके ऊपर ही थोपती है :—

"वही करुणा और वही संवेदना जिसकी प्रेरणा से एक दिन तुमने मेरे भोले से जीवन की द्वन्द्व-रहित बस्ती को उजाड़ कर, मेरा सर्वस्व लूटकर, अपने जाल में चारों ओर मुझे इस तरह जकड़ लिया था कि भाग निकलने के लिए कोई रास्ता नहीं छोड़ा...तुमने मुझे पढ़ाया-लिखाया, वह इसलिए नहीं कि मैं विचारों के जगत् में स्वतन्त्र रूप से विचरण कर सकूँ। बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हारे इशारों पर एक अच्छी खासी बौद्धिक और फैशनेबल कठपुतली की तरह नाच सकूँ......आज अपने चारों ओर के जीवन का सीधा और सच्चा रूप मेरी खुली हुई आँखों के आगे सुस्पष्ट हो उठा है। बाहर से थोपा हुआ कोई भी भ्रमजाल अब मुझे धोखे में नहीं रख सकता।"[१]

मनिया के चरित्र में धार्मिक कट्टर नारी सिल्विया का प्रभाव है। उसके प्रभाव में आकर वह अपने पिता का धर्म (बौद्ध धर्म) भी छोड़ देती है और रंजन से विवाह की शर्त भी यही रखती है कि उन दोनों का शारीरिक संबंध तभी हो सकेगा, जब दोनों ईसाई धर्म स्वीकार कर लें। वह जितनी सीधी है उतनी ही जिद्दी भी। परन्तु यह प्रभाव भी शनैः-शनैः समाप्त होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कन्हाईलाल के सम्पर्क में आने से तो आमूल परिवर्तन हो जाता है। अमेरिका जाकर वह अपने रूप-रंग को बदलकर सांस्कृतिक समन्वय केन्द्र की अधिष्ठात्री बनकर रंजन की सम्पूर्ण सम्पत्ति को भी ले लेती है।

जोशीजी ने इस पात्र द्वारा दुहरा (डबल रोल) काम लिया है। इस प्रकार का कार्य किसी भी उपन्यास में नहीं किया गया है। जोशीजी के उपन्यासों में मूलतः दो प्रकार के नारी चरित्र आते हैं। कुछ नारियाँ तो ऐसी हैं जो पुरुष के अहं, अत्याचार, स्वेच्छाचारिता तथा शोषण की वेदी पर समर्पित हो जाती हैं, लेकिन उनके अधिकांश नारी पात्र पुरुष के शोषण, अराजकता, स्वेच्छाचारिता, अत्याचार एवं अहम् पर कठोर प्रहार करने के लिए प्रबल विद्रोहाग्नि एवं प्रतिहिंसा लेकर आते हैं जो उनके पिछले उपन्यासों में उभरे हैं। क्रमशः उनके नारी दृष्टिकोण में प्रगतिशीलता बढ़ती दिखाई पड़ती है। 'जिप्सी' उपन्यास तक आते-आते उनकी नारियाँ मानवीय स्वाभाविकता को छोड़ देती है

१. जिप्सी, पृ० ३३५-३६

और लेखक के आदर्शों के अनुसार मानवी न रहकर पुरुष, पूँजीवादी समाज तथा शोषण के विरुद्ध एक-मात्र विद्रोहाग्नि की ज्योति-पुंज बन जाती है।

सिल्विया एक कट्टर धार्मिक महिला है जिसके विचारानुसार व्यक्ति को पहले भगवान ईसामसीह से प्रेम करना चाहिए, फिर आदमी से। उसके विचारों से प्रभावित होकर मनिया और रंजन भी ईसाई धर्म ग्रहण करते हैं। फादर जेरेमिया को इसके स्वभाव में एक संजीवनी शक्ति के दर्शन होते हैं और अन्त में दोनों विवाह कर अमेरिका चले जाते हैं।

फादर जेरेमिया प्रगतिवादी पादरी हैं, जो ईसा को पहला कम्युनिस्ट मानते हैं। उनके विचारानुसार ईसा और मार्क्स दोनो ही विश्व से आर्थिक वैषम्य दूर करने और पृथ्वी पर सर्वहारा वर्ग का स्वर्ग स्थापित करने के पक्ष में रहे है। सिल्विया से उसका प्रेम है परन्तु जिसे वह धार्मिक चोला पहन लेने के कारण प्रगट करने का साहस नहीं कर सकता। अन्त में अपने धार्मिक चोले को उतार फेंककर सिल्विया से विवाह कर अमेरिका चला जाता है।

जहाज का पंछी

'जहाज का पंछी' का कथा-नायक समाज द्वारा पीड़ित, पुलिस द्वारा प्रताड़ित दीन-हीन व्यक्ति है। वह कलकत्ता की गलियों, सड़कों और पार्कों में ६ फुट लम्बा और ३ फुट चौड़ा आश्रय पाने में असमर्थ रहता है। आश्रय तो दूर की बात रही, समाज के ठेकेदार —पूंजीपति और जनता के रक्षक—पुलिस, उसे स्वच्छन्दता से सोने-बैठने तथा घूमने तक नहीं देते। उसकी ईमानदारी की प्रवृत्ति ही उसके लिए सबसे बड़ी शत्रु सिद्ध होती है जो पग-पग पर उसकी दुर्गति कराती है। 'जहाज का पंछी' एक सुशिक्षित, बौद्धिक और संवेदनशील युवक की जीवनयात्रा का चित्रण है। कथानायक स्वयं ही प्रथम पुरुष में अपनी कथा कहता है। वह सुशिक्षित, संवेदनशील, बौद्धिक युवक है। उसकी आयु लगभग २७ वर्ष की है। वह कलकत्ता नगरी में अपने भरण-पोषण के लिए कोई उपयुक्त काम ढूंढने में असमर्थ रहता है। वहाँ के पार्कों, गलियों और सड़कों में निवास की समस्या भी हल नहीं होती है। उसे देखने वाले गिरहकट समझते हैं। पुलिस बार-बार कभी जेल, कभी कचहरी घसीटती है। इस प्रकार के कष्टमय जीवन से उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति बिगड़ती जाती है। ऐसी विकटतम परिस्थितियों से जूझते हुए भी उसमें जीने की अमिट साध है। समाज उसके आन्तरिक गुणों की अवहेलना कर बाहरी वेषभूषा को देखकर ही उसे गिरहकट और चोर समझ बैठता है, और पुलिस उसे आवारा घूमने के अपराध में पकड़ती है, मारती है, पीटती है और बेहोश बना देती है। बेहोशी की दशा में सरकारी अस्पताल में भर्ती कर देती है। वहाँ प्यारे नाम के एक धोबी से उसका परिचय तथा मित्रता होती है और उसे अनुभव होता है कि अस्पताल के डाक्टरों, और नर्सों में सहानुभूति का अभाव है जिसे वह समाज का कठोर अंग मानता है। वहाँ से निकलने के बाद फिर अपनी ही पूर्व-स्थिति में कलकत्ता की व्यस्त सड़कों और गलियों में आवारा भटकने लगता है। निरंतर प्रयत्न करने पर भी उसे कोई काम नही मिलता। युग की परिस्थितियाँ उसके मन को क्षुब्ध और विकल बनाये रखती हैं। एक दिन नौकरी की खोज में भटकते हुए एक जहाज में पहुँच जाता है। वहाँ ज्योतिषी बन बैठता है और फिर आवारा और गिरहकट के रूप में पकड़ा जाता है। वह स्वयं भूखा रहना चाहता है परन्तु

दूसरों को भूखा नहीं देख सकता, इसलिए जो कुछ भी धन ज्योतिषी बनकर प्राप्त किया था वह उदार हृदय व्यक्ति अपनी उस सम्पूर्ण पूँजी को बाँट देता है। इसके बाद वह मजीद मल्लाह और चाचा करीम के सम्पर्क में आता है जो मानवता का सच्चा प्रतीक है। करीम चाचा का पहलवानों का अखाड़ा है। करीम चाचा के पास वह एक असहाय लड़की को पढ़ाने का काम करता है। करीम चाचा के संरक्षण में उसके शरीर की काया पलट हो जाती है। उसके स्वास्थ्य में वृद्धि हो जाती है और जीवन में समता भी आ जाती है। परन्तु जब उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अखाड़े के कुछ लोगों की धारणा उसके प्रति अप्रिय है, तो उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है और करीम चाचा को भी छोड़कर प्यारे धोबी के पास २० रुपये महीने की नौकरी कर लेता है जिससे उसका अस्पताल में परिचय हुआ था। वहाँ वह धोबियों की गन्दी बस्ती में चींटियों, खटमलों, मच्छरों के फ्रीवर्ल्ड का स्वाद लेता है। संयोगवश धोबी की बालविधवा लड़की बेला उससे प्रेम-सा करने लगती है और इस स्नेह की गंध धोबी को मिल जाती है। यह घर भी उसे छोड़ना पड़ता है और जैसे उड़ि उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवे की हालत हो जाती है। वह उस महानगरी की स्वार्थपूर्ण भीड़ में भटकने लगता है। जितना धन उसके पास बचा था, अपने उदार स्वभाव के कारण वह सब एक अभागिन को दे देता है। संयोगवश उसे भादुड़ी महाशय, एम० एल० ए० के पास रसोईये का काम मिल जाता है, जहाँ से एक बार वह पहले ठुकराया गया था। चाचा करीम का सिखाया हुआ पाकशास्त्र का ज्ञान भादुड़ी परिवार को मोहित कर देता है। परन्तु उसकी साहित्यिक अभिरुचि एवं उसका ज्ञान एक नौकर के रूप में उसके लिए अभिशाप सिद्ध होता है। फलस्वरूप साम्यवादी होने के आरोप में उसे नौकरी छोड़नी पड़ती है और वह फिर नगर की गलियों की धूल छानने के लिए विवश हो जाता है। तदनन्तर उसे मिस साइमन के चकले में रसोईये का काम मिल जाता है। मिस साइमन विभिन्न देशों की असहाय लड़कियों से पेशा करवाकर धन कमाती है। उक्त लड़कियों के निःसहाय, विषादपूर्ण और विवशतापूर्ण जीवन के कारण नायक विद्रोह करने के लिए विवश हो जाता है। साइमन की मृत्यु के पश्चात् वह अपने एक अन्य साथी के सहयोग से उन निरवलंब लड़कियों का उद्धार करके फिर अपनी पूर्वस्थिति में आ पड़ता है। फिर कलकत्ता की गलियों की धूल छानता हुआ और परिस्थितियों के कटु चक्कर में पिसता हुआ काम की खोज में एक सम्पन्न परन्तु अकेली महिला के द्वार खटखटाता है। महिला नौकरी देने के बदले अपना स्नेह देती है। मानो लीला वर्षों से इसी की प्रतीक्षा में कौमार्य व्रत लिए हुए है। अपने को सोने के पिंजरे में बन्द समझकर वह चुपचाप वहाँ से खिसक जाता है और रांची के मानसिक रोगों के अस्पताल में पहुँचकर वहाँ के रोगों का मूल कारण जानने का प्रयत्न करता है। पागलखाने के समीप एक बाबा की झोंपड़ी में रहता है। लीला उसके चले जाने पर बेचैन हो उठती है। संयोगवश जब कथानायक का पता लगता है तो वह वहाँ आकर उसके जीवन उद्देश्य को स्वीकार कर पुनः अपने सुदृढ़ स्नेह से बांधकर उसे कलकत्ता ले जाती है और दोनों दम्पति के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं।

अम्मां, सुजाता और जुलेखा के करुण गीत, भग्न गान उसके अन्तर पर अमिट छाप छोड़ते हैं। उपन्यासकार ने चकले के प्रसंग को लाकर समाज का पर्दाफाश किया है, साथ ही साथ उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। प्रसंग स्वाभाविक एवं आवश्यक है।

"जोशी के पहले के उपन्यासों के कथानक काम-कुंठाग्रस्त, अत्यधिक, आत्मपरायण, पापवृत्ति प्रधान, प्रतिहिंसा प्रिय, संदेहशील, शंकालु, पलायन प्रिय, आत्मनिष्ठ तथा

मानसिक रोगों के शिकार हैं। 'जहाज का पंछी' का नायक उनसे भिन्न है। इसके भीतर सामाजिक विकृतियों से उद्भूत व्यक्ति-पीड़ा के प्रति गहरी सहानुभूति है और सामूहिक पीड़ा के आगे वह अपनी कठिनाइयों को कुछ महत्त्व नहीं देता। चाहे उसे निराहार ही क्यों न रहना पड़े।"[1]

उपन्यासकार ने कथानायक को मानसिक ग्रन्थिजाल से निकाल कर उसे समाज अध्येता के रूप में चित्रित किया है जो अपनी स्मृति और अनुभूति को पाठकों के सम्मुख रखता है। साधारणतः जोशी जी के सभी उपन्यासों के कथानकों का शिथिल वस्तुविधान होता है और मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में ऐसा होना स्वाभाविक भी है। जोशी जी की यह कृति उनकी औपन्यासिक कला की चरम सीमा है। इस उपन्यास का वस्तुविधान इतना शिथिल है कि किसी भी घटना का कोई भी सूत्र दूसरी घटना से स्वाभाविक रूप से मेल नहीं खाता। कथानायक ही उन घटनाओं को जोड़ता है। फिर भी घटनाएँ अपने आप में पूर्ण है और महत्त्वपूर्ण भी है। अस्पताल से लेकर पागलखाने में भेंट हुए संन्यासी तक सभी पात्र एक सीमित अवधि तक नायक के संसर्ग में आते हैं और उसे नव अनुभूतियों से परिचित कराकर कथा को आगे धकेलते हुए लुप्त हो जाते हैं।

कथानायक कलकत्ते की विशाल भीड़-भाड़ पूर्ण नगरी में गली-गली का चक्कर काटता है। धूल भरे पार्कों में निरुद्देश्य घूमता है। पेट की ज्वाला को तो वह दो आने के चिउड़े और पानी से शान्त कर लेता है परन्तु आश्रय के लिए ६ फीट लम्बी और ३ फीट चौड़ी जगह उसे नहीं मिलती। खुले आकाश की छाया में वह पार्कों में लेटना चाहता है। शिक्षित वर्ग उसे गिरहकट और चोर आदि समझकर पुलिस के हवाले करते हैं। नित्य-प्रति पुलिस से मुठभेड़ होती है और एक बार पुलिस द्वारा बेहोश किये जाने पर उसे अस्पताल में भरती भी होना पड़ता है।

"आज का मानव न स्वयं अपने को समझ पा रहा है, न दूसरे को समझना चाहता है। प्रत्येक सम्पन्न व्यक्ति बाहर से भरा-पूरा रहने पर भी, अपने निकट संकीर्ण ग्रह में डूबा रहने के कारण अपने भीतर किसी एक अनन्त हाहाकार भरे अस्पष्ट अभाव का अनुभव कर रहा है और प्रत्येक अकिंचन व्यक्ति सारे जीवन को ही, अभावमय, अर्थहीन और अनावश्यक मानकर, जब तक सामर्थ्य है उसके भार को किसी तरह ढोता चला जा रहा है। आज का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उनके जीवन को विकृत एवं पीड़ित बनाने का कारण है। नायक इस दृष्टिकोण के प्रति विद्रोह करता हुआ अपनी सामाजिक चेतना का परिचय देता ....बीच वाले व्यक्ति प्रतिक्षण जीवन और मृत्यु के झूले में झूलते हुए परस्पर विरोधी परिस्थितियों के क्रूर परिहास के शिकार बन रहे हैं। सर्वत्र भय, संशय, अनास्था और अविश्वास का बोलबाला है। सब कहीं झूठ और ढोंग का राज्य छाया हुआ है। सब ओर जीवन अरक्षित और अव्यवस्थित है। सबके मन के अणु बिखर कर छितरा रहे हैं और तत्त्वों से भरे हुए हैं।"[2]

यह आज की पूँजीवादी तथा व्यक्तिवादी युग-चेतना का परिणाम है। नायक के जीवन की अनुभूति से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि आज का व्यक्तिवादी

---

१. हिन्दी उपन्यास, पृ० ३०८

२. जहाज का पंछी, पृ० ५८

दृष्टिकोण उनके जीवन को विकृत एवं पीड़ित बनाने का कारण है। नायक इस दृष्टि-कोण के प्रति विद्रोह करता हुआ अपनी सामाजिक चेतना का परिचय देता है।

अस्पताल में भी वह कटु अनुभव प्राप्त करता है कि अस्पताल भी अन्य विभागों व संस्थाओं के समान भ्रष्टाचार एवं अनाचार के केन्द्र हैं जहाँ मरीजों की सेवा लगन से नहीं होती अपितु केवल 'ड्यूटी' पूरी करने के निमित्त मात्र डॉक्टर व नर्स इधर से उधर दौड़ लगाते हैं। रोगियों को उचित भोजन नहीं दिया जाता तथा दूध में पानी की इतनी अधिक मात्रा मिलाई जाती है कि दूध केवल सफेद पानी ही रह जाता है। वहाँ वातावरण इतना विषादपूर्ण, नीरस, अशान्त और सहानुभूतिहीन होता है कि स्वस्थ व्यक्ति भी अस्वस्थ हो जाता है। परन्तु उसे केवल रहने के लिए आश्रय मिल गया है इसलिए वह वहाँ से निकलना नहीं चाहता। लेकिन अस्पताल से छूटने के बाद फिर वही अपनी पूर्ववत् स्थिति पर आ जाता है।

अपनी बेकारी की हालत में वह नौकरी के लिए इधर-उधर चक्कर काटता है। खगेन्द्र मोहन भादुड़ी एम० एल० ए० के बंगले पर जाकर आधुनिक दीनबन्धु जनता के सेवक नेता से कुछ काम की याचना करता है, परन्तु भादुड़ी महाशय से उसे भर्त्सना ही नहीं मिलती, बल्कि वह अपने बंगले के पठान चौकीदार से उसे बलपूर्वक बाहर करवा देता है।

एक जहाज पर चढ़कर वह ज्योतिषी का बहाना बनाकर दो विदेशी यात्रियों का हाथ देखता है और उन से कुछ धन की प्राप्ति भी होती है, परन्तु इसके बाद वहाँ भी उसकी दुर्दशा होती है और गिरहकट एवं चोर होने का आरोप लगाकर उसे बाहर निकाला जाता है।

किसी प्रकार करीम चाचा के सम्पर्क में आता है। करीम चाचा का पहलवानों का अखाड़ा है। वहाँ वह एक असहाय लड़की को पढ़ाने का काम करता है। करीम चाचा के पास रह कर उसके स्वास्थ्य की भी पर्याप्त वृद्धि होती है। उसकी जीर्ण काया तब मांस-पेशियों से ढक जाती है और अब वह स्वस्थ पुरुष सा दिखाई देता है। परन्तु जब परिस्थिति को वहाँ भी अनुकूल नहीं पाता तो वहाँ से भी भाग निकल कर प्यारे धोबी के पास मुनीम का काम कर लेता है परन्तु बालविधवा कन्या बेला की ओर से प्रदर्शित प्रेमभाव के कारण उसे वहाँ से भी जाना पड़ता है। इस बार उसे भादुड़ी महाशय के यहाँ रसोइये का काम मिल जाता है। करीम चाचा की सिखाई हुई पाक-कला के कारण सभी परिवार के सदस्य प्रसन्न रहते हैं, परन्तु एक बार एक साधारण कुक के मुँह से रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन की चर्चा सुनकर उस पर कम्युनिस्ट होने का आरोप लगता है और वह निकाल दिया जाता है।

फिर कथानायक कलकत्ता की भीड़-भाड़ से पूर्ण गलियों में घुलमिल जाता है और उसे मिस साइमन के चकले में खानसामा का काम मिलता है। मिस साइमन के चकले में विश्व के विभिन्न देशों की पन्द्रह लड़कियाँ हैं, जिन्हें परिस्थिति की विवशता में पुलिस के भय, समाज की घृणा ने बाँध रखा है। वेश्याओं के जीवन की करुण गाथा और मिस साइमन के पाशविक व्यवहार का चित्रण जोशी जी ने मर्मस्पर्शी ढंग से किया है। मिस साइमन के रूप व्यापार में, यौवन चोखे दामों में बिकता है, मानवता रोती है और दानवता खिलखिलाती है। कथानायक ही वहाँ उद्धारक के रूप में कार्य करता है। उसी के परिश्रम व मानव प्रेम के फलस्वरूप वह वेश्यालय देवालय के रूप में परिणत हो जाता है। इस बार भी कथानायक का सामना पुलिस से होता है, परन्तु पुलिस पराजित होकर चली जाती है।

"जोशी जी ने 'जहाज का पंछी' उपन्यास में समाज का सफल चित्रण किया है। इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि जोशी जी की उपन्यास-कला का विकास अन्तर्जगत् से बहिर्जगत् की ओर संकीर्ण वैयक्तिकता से व्यापक सामाजिकता की ओर हुआ है।"[1]

लीला के पास उसे स्नेह और आश्रय मिलता है, परन्तु वहाँ से भी भाग कर राँची के पागलखाने में चला जाता है जहाँ वह मानसिक रोगियों के रोग का मूल कारण बताते हुए कहता है—"स्त्री-रोगिणियाँ अधिकतर दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी कारणों से मानसिक संतुलन खोए बैठी हैं। वहाँ पुरुष रोगी अधिकांश आर्थिक कारणों से दिमाग की बीमारी से पीड़ित दिखाई देते हैं।"[2]

सत्ताईसवर्षीय संकोचशील, जीर्णवसन, उदारचित्त एवं सत्यनिष्ठ फक्कड़ युवक कथा का नायक है। सम्पूर्ण उपन्यास में उसका व्यक्तित्व छाया हुआ है। बाह्य जीवन के साथ-साथ अन्तर्जीवन की झाँकी हमें स्थान-स्थान पर मिलती है। वह जीवन की साधारणतम आवश्यकताओं की पूर्ति—आवास, भोजन एवं वस्त्र—से वंचित रहता है। पार्क में सुभीता पाकर बटुआ नहीं उठाता जो उसके आत्मसम्मान और ईमानदारी का ज्वलन्त उदाहरण है। उसे देखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति उसके गिरहकट अथवा पेशेवर गुंडा होने का सन्देह करता है। अपने उदार चरित्र और जीवन के विषम संघर्षों का विश्लेषण करते हुए वह स्वयं कहता है—

"जिन-जिन क्षेत्रों में मैंने सच्ची लगन से काम किया, वहाँ मैं ठोकरें खाता और ठुकराया जाता रहा। तुच्छ व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजलि देता हुआ सामाजिक, राष्ट्रीय और सामूहिक हित को ध्यान में रखकर अपनी सीमित समर्थता से भरसक ईमानदारी को अपनाता हुआ मैं अवरोधों से निरन्तर लड़ता हुआ जिन नए-नए पथों, नए-नए मोड़ों पर कदम बढ़ाता चला गया वहाँ मैंने सामूहिक विरोध और प्रतिरोध पाया।"[3] फिर भी वह आशावाद और आदर्शवाद लिए अपने जीवनपथ पर अग्रसर होता रहता है।

कथानायक में परिष्कृत कोटि का अहं विद्यमान है। वह अस्पताल के बड़े डॉक्टर के अमानुषिक व्यवहार और पुलिस के लोमहर्षक अत्याचार की पुनरावृत्ति की धमकी पर लम्बे-लम्बे भाषणों में उन्हें घोर नीच, कायर और नरपिशाच तक कह डालता है। इस प्रकार वह अपने अहं की तृप्ति करता है।

उसकी सूक्ष्म दृष्टि अपने अहं का ही विश्लेषण नहीं करती अपितु सरकारी अफसरों के अहं की भी शल्य-चिकित्सा करती है—"याद रखो, डॉक्टर, आज भले ही तुम इन पुलिसवालों की सहायता से या स्वयं अपने अधिकार के बल पर किसी व्यक्ति को निस्सहाय और निराश्रय समझकर उसे अधिक-से-अधिक दुर्गतिपूर्ण परिस्थितियों में ढकेलकर अपने अहं की, अपने झूठे अधिकार के मद की तृप्ति कर लो, पर यह भूलकर भी न समझना कि आज के युग की हजारों विकृतियों के ताने-बाने से उलझी हुई विषम आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के शिकार के प्रति स्वयंभू समाजपतियों का यह रुख जनता द्वारा बराबर इसी तरह उपेक्षित रहता चला जाएगा।"[4]

---

१. हिन्दी उपन्यास, पृ० २३६
२. जहाज का पंछी, पृ० ५२०
३. वही, पृ० २१
४. वही, पृ० ४३

अपने अहं के कारण ही वह महान्-से-महान् और भयंकर-से-भयंकर सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के आगे नहीं झुकता। करीम चाचा के अड्डे में एक वर्ष तक पूर्ण सुख और सुविधापूर्वक रहने पर उसकी मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है परन्तु उस अड्डे पर एक जवान लड़की खेमी के अपहरण और बलात्कार की कल्पना मात्र से ही वह सब सुख-सुविधा को तिलांजलि देकर चला आता है। लीला के यहाँ निठल्ले बैठे-बैठे रोटी तोड़ना उसे अपने सिद्धान्तों के प्रतिकूल लगता है इसलिए वहाँ से भी भाग जाता है। उसे अपनी निःसम्बलता, निरुपायता और आवारापन की सर्वाधिक पीड़ा उस समय होती है जब वह त्रस्त-हृदय नारी बेला को असहाय अवस्था में छोड़कर निरुद्देश्य भटकने लगता है। "मुझे ले चलो। कहीं भी ले चलो।" बेला के शब्द मर्म को भेदते रहते हैं। इस पर वह स्वयं अपना आत्मविश्लेषण करता हुआ कहता है—"तुम पुरुषार्थ-हीन हो। नपुंसक हो। कायर हो। बड़ी-बड़ी बातें सोचते हो, बड़ी-बड़ी बातें दूसरों को बताते फिरते हो, पर इतनी-सी भी शक्ति न तो भीतर से बटोर पाए, न बाहर से संगठित कर पाए कि असंख्य पीड़ितों और दलितों की अवस्था में सुधार तो क्या, एक अदना-सी असहाय नारी आत्मा का उद्धार कर सकते। इतनी-सी बात के लिए भी तुम निपट अक्षम सिद्ध हो रहे हो। धिक्कार है तुम्हारी पराक्रमहीनता पर! लानत है तुम्हारे निकम्मेपन पर!"

प्रेमी का रूप उसमें कहीं भी नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मन की कोमल रसमयी भावनाएँ जीवन के दारुण अनुभवों के कारण कठोर बन गई हैं। लीला की स्नेहमयी कोमलता उसके अन्तर्मन में प्रवेश करती तो है, परन्तु लीला को अपने सिद्धान्तों के अनुकूल बनाने पर ही वह उसकी ओर झुकता है।

४. यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

अन्न का आविष्कार (१९५६)

'अन्न का आविष्कार' यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' का वैज्ञानिक उपन्यास है। कथा साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं और जीवन के चित्रण आधुनिकतम चेतना के प्रकाश में किए जाते हैं और विज्ञान का साहित्य से कोई संबंध स्वीकार नहीं किया जाता, परन्तु यमुनादत्त वैष्णव ने प्रस्तुत उपन्यास लिखकर इस उक्ति को अप्रमाणित सिद्ध कर दिया है। 'अन्न का आविष्कार' 'थ्योरी ऑफ एसेन्स' पर आधारित है। इलायची, फलों आदि पदार्थों का कृत्रिम सत निकाला जाता है तथा रासायनिक क्रिया द्वारा इन पदार्थों के तत्त्वों का मिश्रण उसी अनुपात से किया जाता है जिस अनुपात से यह प्राकृतिक पदार्थों मे विद्यमान रहता है। वैष्णव जी स्वयं भी विज्ञान के छात्र रहे है। उन्होंने अपने अमूल्य वैज्ञानिक ज्ञान को अपनी प्रतिभा से कथा-साहित्य में अवतरित कर दिया है। कथा-नायक केशवचन्द्र विज्ञान-अनुसंधान का छात्र है। कागज, कूड़ा आदि टनों की संख्या में प्रतिदिन नष्ट किया जाता है। वह डॉ० राय के पर्यवेक्षण में इन पदार्थों से कृत्रिम गेहूँ बनाने की रासायनिक विधि के अनुसंधान में लगा रहता है। इस दिशा में उसे सफलता नहीं मिलती। परिणामत: उसकी छात्रवृत्ति भी बन्द हो जाती है। विवशता की स्थिति में उसे अपने पुराने सहपाठी कमांडर सेन की सहायता लेनी पड़ती है और वह कानपुर के मिलिटरी स्टोर में रसायनज्ञ (कैमिस्ट) के पद पर काम करने लगता है। परन्तु वहाँ उसकी वैज्ञानिक आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। उसकी अनुसंधानप्रिय, जिज्ञासु वृत्ति को तुष्टि नही मिलती। वह अपनी आत्मा को मारे हुए रहता है और इस प्रकार के कुंठित वातावरण में बीमार पड़ जाता है। कुछ समय बाद उसे हिमालय क्षेत्र में सेना के रसद भंडारों के निरीक्षण के लिए भेज दिया जाता है। वहाँ उसे अपने भूतपूर्व पर्यवेक्षक डॉ० राय भी मिलते हैं, जो एक बालक को कृत्रिम आहार द्वारा जीवित रखने के प्रयोग में लगे रहते हैं। लूथर (एक अमेरिकन पत्रकार) इन दोनों वैज्ञानिकों से प्रभावित होकर उनके अद्भुत ज्ञान से अपने देश को लाभान्वित करना चाहता है और वह गुप्त मार्ग से उन्हें हवाई जहाज में बिठाकर अमेरिका की ओर ले जाता है परन्तु मार्ग में यूराल की पहाड़ियों से टकराकर विमान ध्वस्त हो जाता है और उसके सभी यात्री मर जाते है।

साहित्य हृदय की वस्तु है। उसमें रागतत्त्व की प्रधानता रहती है। विज्ञान विशुद्धत: बुद्धि की उपज है। उसमें रागतत्त्व का कोई काम नहीं। आज तक के साहित्यकार इन दो तत्त्वों के समन्वय का प्रयास न कर उन्हें पूर्णतया पृथक्-पृथक् ही स्वीकार करते आए हैं। विज्ञान के शुष्क क्षेत्र में अनेक कल्याणकारी एवं विनाशकारी अनुसंधान नित्यप्रति होते रहते है और इनका ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र के विद्यार्थियों के अतिरिक्त शायद ही जन-साधारण को रहता हो। वैष्णव जी ने हिंदी साहित्य मे तो नहीं, कम-से-कम अनेक विद्वानों की जन्म-स्थली कूर्मांचल में सर्वप्रथम इस प्रकार का प्रयास किया है।

डॉ० भगीरथ के अनुसार, "वैष्णव जी ने विज्ञान के रूखे सिद्धान्तों को अपनी कथा के साथ इस प्रकार से पिरोया है कि विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओत-प्रोत होकर सरस बन गया है।" कथाकार ने अपनी प्रस्तुत कृति के द्वारा भावी लेखकों के लिए नया मार्ग प्रशस्त ही नहीं किया है अपितु कथा-साहित्य को एक नया विषय भी प्रदान किया है। आज का विज्ञान मानवता के विनाश की ओर झुका हुआ है। ऐसे विनाशकारी अस्त्रों का आविष्कार हो चुका है जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। मानवता इन विनाशकारी अनुसंधानों से त्रस्त है। लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में वैज्ञानिकों को मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने की ओर निर्देश किया है। विज्ञान का वास्तविक अर्थ मानवता का संरक्षण है, न कि विनाश। कथा-नायक केशवचन्द्र मानवतावादी वैज्ञानिक है जो अपने जीवन को इस क्षेत्र में अर्पित करता है। इतना ही नहीं, प्रस्तुत कथावस्तु में लेखक ने विज्ञान के नवीन प्रयोगों की ओर भी संकेत किया है जिन पर अनुसंधान किया जा सकता है और मानवता की सच्ची सेवा की जा सकती है।

वस्तुतः वैज्ञानिक उपन्यास वे हैं जिनकी आत्मा किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित हो, और कलेवर रागात्मक तत्त्वों से संश्लिष्ट हो। नायक के विज्ञान-प्रिय होने से या विज्ञान की प्रयोगशालाओं के दो-चार उपकरणों के नाम गिनने से ही उपन्यास वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। विज्ञान के किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन उसमें अनिवार्यतः होना ही चाहिए। प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु में केशवचन्द्र पदार्थों के संश्लेषण और विश्लेषण करते हुए कहता है—"दो परमाणु हाइड्रोजन के और एक ऑक्सीजन का। अब पानी का सूत्र हुआ एच-टू-ओ। हाइड्रोजन को ऑक्सीजन से इस अनुपात में रासायनिक क्रिया द्वारा मिला लीजिए। मेघ का जल, स्फटिक का जल, हाइड्रोजन के जलने से उत्पन्न जल सब एक है।"[1]

इसी संश्लेषण के सिद्धान्त पर वह कृत्रिम गेहूं बनाने का प्रयोग करता है। बैक्टीरिया के महत्त्व को समझाते हुए कहता है :

"बैक्टीरिया क्या नहीं कर सकते। वे दूध को दही में बदल देते हैं। शक्कर को शराब में, पत्थर को मिट्टी में। हाँ, बैक्टीरिया ही के कारण वह रुई को स्टार्च में बदलने में सफल होगा। ज्योंही क्रोमोसोम का मिश्रण उस स्टार्च के अणु में मिट्टी के सहयोग से हुआ, वह गेहूँ के आरम्भिक प्रयोग में सफल हो जाएगा। मिट्टी के प्रभाव से ही शायद स्टार्च में गेहूँ का-सा हल्का बादामी रंग भी आ जाएगा।"[2]

वह सामान्य पाठकों के सम्मुख अनेक आश्चर्यजनक प्रयोगों को प्रस्तुत करता है जैसे—"टारटरिक एसिड या इमली का सत तो लकड़ी के बुरादे से ही बनता है।"[3] इस प्रकार लेखक ने एक ओर तो विज्ञान का इतना अधिक विवेचन किया है और विशेषकर यह दिखलाने का प्रयास किया है कि विश्वविद्यालयों में किस प्रकार विज्ञान पर गम्भीर एवं ठोस अनुसंधान होता है। दूसरी ओर सेना में रसद-भण्डारों में रखे उनका भागदर्शिक परीक्षण किस प्रकार होता है, जहाँ वैज्ञानिक विश्लेषण की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु भारतीय शासनतन्त्र के मूल में भ्रष्टाचार का घुन लग गया है। केशवचन्द्र सैनिक रसद का परीक्षण वैज्ञानिक पद्धति से करना चाहता है :

---

१. अन्न का आविष्कार, पृ० ७
२. वही, पृ० १६
३. वही, पृ० १०

"कई बार इच्छा हुई कि आलुओं की इस श्वेत कटी हुई परत पर अपने सूक्ष्मदर्शक यन्त्र को लगाकर देखे कि वह नीला रंग किस बैक्टीरिया के कारण उत्पन्न हुआ है। उसमें और इस स्वाभाविक नीले रंग में क्या कोई सामंजस्य है ? पर न तो कोई ऐसा यन्त्र वहाँ सुलभ था और न ऐसा करने की उसे अनुमति ही प्राप्त थी।"[1]

लेखक ने वैज्ञानिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण कथानक में सामाजिक परिकथा को भी इस सुन्दर ढंग से पिरोया है कि सम्पूर्ण कथावस्तु में कुतूहल, रोचकता और सम्बद्धता बनी रहती है। केशवचन्द्र एक शुष्क स्वभाव का वैज्ञानिक ही नहीं है बल्कि एक आदर्श पति भी है। उसके चरित्र में दृढ़ता है। समाज की अनीति एवं परम्परागत रूढ़ियों का सामना करने का उसमें साहस है, बल है और शक्ति है और अन्ततः वह उन पर विजय प्राप्त कर एक आदर्श पति के रूप में अपना जीवन व्यतीत करता है। केशवचन्द्र के पिता ही सरोज के साथ, उसकी सगाई कर गए थे परन्तु उसके चाचा अपार दहेज के लोभ में सुषमा के साथ उसकी शादी करने का निश्चय करते है। केशवचन्द्र के भावों को बदलने के लिए वे उससे कहते हैं—"पर वह लड़की है ही ऐसी कुलक्षणा। सुनते है, ऐसी ही एक दुर्घटना पहले भी उस लड़की के साथ हो चुकी है। तुम-जैसे व्यस्त वैज्ञानिक के लिए तो सुषमा उपयुक्त है।"[2]

अपार दहेज के लोभ के कारण उसे किसी-न-किसी बहाने सुषमा के घर पर बुलाता है और अपना निर्णय उसे सुनाता है। परन्तु केशवचन्द्र इस निर्णय का विरोध ही नहीं करता बल्कि सरोज के पिता के पास जाकर पूछता है—"मैं आपके पास आया हूँ यही निश्चय करके कि यदि आपकी पुत्री में कोई दोष नहीं, तो मैं पिताजी की आज्ञा के अनुसार विवाह की बात पक्की करके ही घर लौटूंगा। बात ही नहीं, शादी करके जाऊँगा। चाचाजी के व्यवहार का यही एक प्रतिकार होगा।"[3] और वह सरोज के साथ आर्यसमाज-रीति से विवाह कर लेता है।

रुस्तम जैसे करोड़पति से विवाह होने पर भी सुषमा केशवचन्द्र के प्रति आकर्षित रहती है और अन्तिम क्षण तक उसे अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न करती रहती है। परन्तु केशवचन्द्र से सदैव उपेक्षा-भाव पाकर वह अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिशोध लेती है और प्रत्यक्ष रूप में सहानुभूति प्रदर्शित करती है। परन्तु उसके सारे प्रयास असफल हो जाते हैं।

डॉ० भगीरथ मिश्र के अनुसार लेखक ने वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा समाज के प्रबुद्ध मानस की तुष्टि एवं सामान्य मानव की ज्ञानवृद्धि की है, विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओत-प्रोत होकर सरस बनता है। बौद्धिक एवं मौलिक प्रयोगों में जीवन का स्पन्दन आ जाने से विज्ञान का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

विज्ञान की शिक्षा का राष्ट्र द्वारा जिस प्रकार दुरुपयोग हो रहा है, इसका सुन्दर उदाहरण आजकल प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देता है। बी० एस-सी०, एम० एस-सी० पास प्रतिभासम्पन्न छात्र आर्थिक अभाव के कारण कार्य न मिलने के कारण सरकारी कार्यालयों में क्लर्क आदि का कार्य कर जीवन-निर्वाह करते हैं। ख्यातिलब्ध वैज्ञानिक डॉ० राय इस

१. अन्न का आविष्कार, पृ० ८६
२. वही, पृ० २८
३. वही, पृ० ३०

प्रकार की स्थिति का स्पष्ट चित्रण करते हुए कहते है —"कोई थानेदार बनता है, कोई नायब-तहसीलदार। ऐसे लोगों के लिए विज्ञान के इन प्रयोगों मे रखा ही क्या है।"[1] इस प्रकार वे अपने प्रत्येक शिष्य को कार्यरत रहने का सुझाव देते रहते है—"कुछ तो करो, मिस्टर, कुछ तो करो। हाँ, पर थानेदारी मत करना।"[2] केशवचन्द्र जैसे प्रतिभा-सम्पन्न छात्र के जाने पर उन्हें दुःख होता है, परन्तु जब ज्ञात होता है कि वह सेना में रासायनिक परीक्षक के पद पर जा रहा है तो वे संतोष की साँस लेते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु के प्रारम्भ में केशवचन्द्र के वैज्ञानिक अनुसंधान का सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण किया गया है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवेचन नहीं मिलता, केवल वनस्पति द्वारा जीवित बच्चे पर किए गये प्रयोग ही मिलते हैं। केशवचन्द्र जैसे सच्चे एवं कर्मठ वैज्ञानिक की ज्ञान-पिपासा को उचित मार्ग न मिलने पर उसकी आत्मा तड़पती रहती है और उसकी आन्तरिक तड़पन एक भीषण रोग का रूप भी धारण कर लेती है। अपनी ज्ञान-पिपासा की तुष्टि उसे अपने देश में नहीं मिलती। उसके अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे सेना के अधिकारी प्रयोग करने की अनुमति नहीं देते, बल्कि भ्रष्टाचारग्रस्त अधिकारियों की सहायता से सुषमा उसे बन्दी बनाने का षड्यन्त्र रचती है और वह विवशता की स्थिति में अपनी स्नेहमयी पत्नी को भी त्यागकर लूथर के साथ अमेरिका जाने को तैयार हो जाता है। डॉ० राय और केशवचन्द्र जैसे वैज्ञानिक भारतीय प्रतिभा-सम्पन्न बुद्धिवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्हें स्वदेश में उचित सुविधा नहीं मिलती और विदेशी सरकारों का मुँह देखना पड़ता है। निःसन्देह यह एक स्वाधीन देश पर महान् कलंक है।

शैलवधू (१९५९)

'शैलवधू' कूर्मांचल के सास-वर्ग के कटु-व्यवहार में जीवन-यापन करनेवाली बहू के जीवन की करुण गाथा है। कथा की नायिका मधुली उन बहुओं की प्रतीक है जो परम्परा से चली आयी पर्वतीय-ग्रामीण-समाज की यातनाओं के विरुद्ध संघर्ष करती जीवन-यापन कर रही हैं। परन्तु मधुली तो दुहरी चोटें सह रही है। सास का व्यवहार तो सनातन से चला ही आता है, परन्तु वह तो सगी सास भी नहीं बल्कि सौतेली सास है। मधुली का विवाह प्रेमवल्लभ से हुआ है। प्रेमवल्लभ के पिता और मधुली के पिता ग्रामीण पाठशालाओं में अध्यापक हैं। उच्चकुलीन ब्राह्मण और सहधर्मी मित्र अपनी प्रगाढ़ मित्रता को अपने पुत्र और पुत्री के विवाह-सूत्र से और भी दृढ़ करते हैं। प्रेमवल्लभ हाई-स्कूल में पढ़ता था। उसी समय उसकी शादी हो चुकी थी। ग्रामों के रीति-रिवाजों के अनुसार पति-पत्नी आपस में बात-चीत भी नहीं कर सकते। यदा-कदा वह प्रेमवल्लभ से मिलती भी तो मायके जाने का आग्रह करती। यह प्रेमवल्लभ के सामर्थ्य से बाहर की बात थी। इन्हीं दिनों उस क्षेत्र में औरतों को भगानेवाले 'दोखुटिया' का आतंक व्याप्त था। एक बार मधुली वन में संयोगवश अपनी साथिनियों से पीछे रह जाती है। उसे एक ओर दोखुटिया का भय सताता है तो दूसरी ओर माँ, भाई-बहन, पिता की भी स्मृति। वह भागकर अपने मायके चली जाती है। भागकर आयी हुई जानकर पिता उसी समय उसे ससुराल छोड़ आता है। मधुली किसी-न-किसी प्रकार कुछ बहाना बना कर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा कर लेती है। परन्तु कुछ दिनों के बाद वसन्तु-

---
१. अन्न का आविष्कार, पृ० ५४
२. वही, पृ० ५५

स्थिति प्रकट होने पर उसके सास-ससुर उससे विमुख हो जाते हैं। उसकी कुल्टा सास उसका छुआ हुआ पानी तक नहीं पीती। उसे परिवार से अलग कर गोठ (मकान के नीचे की मंजिल) में स्थान दिया जाता है। प्रेमवल्लभ भी वस्तुस्थिति तथा विमाता एवं पिता के कटु व्यवहार से तंग आकर मुरादाबाद भाग जाता है और वहाँ पुलिस में भरती हो जाता है। पुलिस की ट्रेनिंग के बाद उसकी नियुक्ति थानेदार के पद पर तराई-भाँवर में होती है। उसकी ईमानदारी, भ्रष्टाचार-विरोधी भावना तथा कार्य-निपुणता पर प्रसन्न होकर पुलिस-अधिकारी उसे पर्वतीय क्षेत्र में 'दोखुटिया' के आतंक और डॉ० शर्मा की हत्या की छानबीन का कार्य सौंपते हैं। प्रेमवल्लभ अनिच्छापूर्वक नये कार्य को ग्रहण करता है। प्रेमवल्लभ के पिता मास्टर जयदत्त अन्य दारोगाओं की भाँति प्रेमवल्लभ सेभी रिश्वत से प्राप्त अतुल धन की आशा रखता है, परन्तु उसे अपनी आशा के विपरीत पाकर वह असंतुष्ट रहता है। प्रेमवल्लभ नये विभाग का कार्यभार ग्रहण कर तीन दिन की छुट्टी में घर आता है। मधुली से उसकी बातचीत होती है और वह बातचीत के प्रसंग में अपने पति से डॉ० शर्मा की हत्या का सम्पूर्ण वृत्तान्त, जिसमें स्वय उसका हाथ था, कह सुनाती है। प्रेमवल्लभ समझा-बुझाकर, विश्वास दिलाकर उसको निर्भय करता है। दूसरे दिन मधुली अपनी सहेलियों गंगा, सावित्री, सीता और कान्ता को रात की सारी बात बता देती है और अपने पति पर विश्वास प्रकट करते हुए उन्हें भी निर्भय रहने को कहती है। परन्तु उसकी सहेलियों को विश्वास नहीं होता और वे पाँचों पंचवेणियाँ तालाब में एक साथ कूद कर आत्महत्या कर बैठती हैं।

'शैलवधू' कूर्मांचल की पारिवारिक समस्या पर लिखा गया एक आंचलिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में कर्नाली की घाटी में बहुओं के जीवन का चित्रण मिलता है। आंचलिक वातावरण के सृजन के लिए तथा आंचलिकता की प्रायः सभी विशेषताएं इस उपन्यास में उपलब्ध हैं।

"कर्नाली की घाटी में बहुओं का जीवन, चाहे वे ब्राह्मणों के घरों की हों, चाहे ठाकुरों के, बड़ा ही दुखमय था। नववधू से परिवार की बिना वेतन की दासी का-सा काम लिया जाता था।"[1]

ऐसा कष्टमय जीवन यापन करता देखकर प्रेमवल्लभ अपनी पत्नी के विषय में प्रायः सोचता रहता, परन्तु "घर की बहू के विषय में सोचना भी उसके अपने अधिकार की बात नहीं थी, क्योंकि यही सारे गाँव की प्रथा थी।"[2] माता-पिता की जीवित अवस्था में पति का पत्नी के हित व विश्राम की बात सोचना व उसका पक्ष लेना माता-पिता का द्रोह समझा जाता है। इस प्रकार की यातनाओं का शिकार तब तक रहना पड़ता है। "गाँव की किसी भी नारी को तब तक विश्राम करने को नहीं मिलता, जब तक वह स्वयं सास का पद नहीं पा जाती।"[3]

वहाँ की इस परम्परा का चित्रण लेखक ने स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार किया है—"यहाँ देहात में बहुएं ऐसी मजदूरनियाँ हैं कि प्रतिदिन बीस-बीस घंटे काम करती हैं। वेतन के नाम पर उन्हें कौड़ी नहीं मिलती। घर का सबसे खराब खाना उन्हें मिलता

---

१. शैलवधू, पृ० ७
२. वही, पृ० ६
३. वही, पृ० १७

है।"[1]

इन अवैतनिक दासियों को बिना सास-ससुर की आज्ञा के पअनेके मायके जाने का भी अधिकार नहीं, क्योंकि यह उच्च कुल पर एक कलंक है। मधुली परिस्थितिवश अपने मायके चली जाती है तो मधुली की माता उच्च कुल की झूठी मर्यादा का उल्लेख करते हुए कहती है ..." वह भाग कर आयी होगी, यह बात तो वह सोच भी न सकती थी। ठाकुरों और बैरमुओं (अद्विजो) में तो भागना और लुकना-छिपना होता ही रहता था। उनमें बहुविवाह और पुर्नविवाह की प्रथा भी है। ससुराल में मन-मुटाव हो जाने पर लड़की का पिता ससुरालवालों को क्षतिपूर्ति के लिए कुछ रुपया देकर लड़की का दूसरी जगह विवाह कर देता था, लेकिन ब्राह्मण परिवार में लड़की भागकर मायके चली जाय तो दुबारा ससुराल आने ही नहीं दिया जाता था।"[2]

मधुली के माध्यम से लेखक ने उन सुदूर पर्वतीय ग्रामों की बहुओं के कष्टमय जीवन की करुण गाथा प्रस्तुत की है जहां अभी तक आधुनिक सभ्यता, शिक्षा और जागृति की रश्मियां नहीं पहुंच पायी है। ग्रामों का चित्रण लेखक ने इतने सुन्दर एवं मार्मिक ढंग से किया है कि सम्पूर्ण कथावस्तु में वहां के जन-जीवन, वहां की संस्कृति और वहां के रीति-रिवाजों का सजीव चित्र उपस्थित हो गया है। आंचलिक वातावरण की सृष्टि इसमें अत्यन्त स्वस्थ रूप में हुई है। कुछ आंचलिक उपन्यासकारों की भांति लेखक ने समाज का कुत्सित एवं अश्लील चित्रण न कर अपनी संयत लेखनी से वहां के यथार्थ किन्तु स्वस्थ चित्र प्रस्तुत किये हैं। कुछ लेखक आंचलिकता के नाम पर समाज के ऊपर कीचड़ उछालने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वैष्णव जी ने वहां की बहुओं के जीवन, रीति-रिवाजों का चित्रण कर कूर्मांचल की मर्यादा एवं आदर्श की पूर्ण रक्षा की है। कथावस्तु की घटनाओं में प्रवाह, सम्बद्धता एवं रोचकता है।

'शैलवधू' नायिका-प्रधान उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास की सम्पूर्ण कथा नायिका मधुली के चारों ओर घूमती है। मधुली हिन्दू परिवार की एक आदर्श नारी है जो जीवन के सम्पूर्ण कष्टों को झेलती हुई सच्चरित्र, निष्ठावान् एवं आदर्शपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। चारित्रिक दुर्बलता उसे छू तक नहीं पाती। सती सावित्री का रूप हमें उसके आदर्शपूर्ण चरित्र में मिलता है। उसके कष्टमय जीवन का चित्रण करते हुए लेखक कहता है—"कपोल अत्यधिक शीत के कारण ऐसे दीखते हैं मानो खूब पके हुए सेब पर पपड़ी पड़ गई हो। हाथों पर भी ऐसी ही महीन-महीन बैगनी पपड़ियाँ हैं। सिमटे हुए लहँगे के नीचे पाँवों की पिंडलियाँ भी पके हुए कार्तिकी खीरे की-सी भूरी धारियों से भरी हैं, पाँवों में वे फटी धारियाँ मोटी-मोटी और काली-काली हैं। स्थान-स्थान पर उनमें से रक्त निकलकर जम गया है।"[3]

उसके पाँवों में ओस के कारण इतनी बड़ी बिवाइयाँ पड़ गई हैं कि "इन बिवाइयों में तो छिपकलियाँ तक छिप सकती हैं।"[4] प्रातःकाल से लेकर अर्धरात्रि तक वह यंत्रवत् कार्य में लगी रहती है। एक बार दोगुदिया के भय के मारे वह अपने मायके चली जाती है। माता-पिता की प्रतिष्ठा एवं अपने कुल की मर्यादा का ध्यान कर वह अपने पिता के साथ अंधकारमय रात्रि में भूखी ही ससुराल को वापस चली आती है। इस तरह से उसे फिर सोने

१. शैलवधू, पृ० १०
२. वही, पृ० ५५
३. वही, पृ० १०
४. वही, पृ० ५३

का अवकाश तक नहीं मिला है। उसके पाँवों की दशा, उसकी क्षीण-काया तथा उसके ससुरालवालों के कटु व्यवहार को देखकर उसकी माता पर्वतीय कन्याओं के भाग्य पर दुःख प्रकट करती हुई कहती है—"हाय, लड़कियों को तो जन्म लेते ही मर जाना चाहिए। उन्हें न तो ससुराल में आराम मिलता है, न मायके में ठौर।"[1]

इतना नारकीय कष्ट सहते हुए भी मधुली अपने सास-ससुर के प्रति किंचिन्मात्र भी मलीन भाव नहीं रखती। वह अपनी माँ को सान्त्वना देते हुए कहती है—"ऐसे ही जाना होगा, माँ। बाज्यू ठीक ही कहते हैं। देरी का कुछ बहाना बना दूँगी। वे लोग बुरे नहीं हैं।"[2]

नव-विवाहिता मधुली के विवाह को एक वर्ष पूरा हो जाता है। सारे गाँव की बहुएँ अपने-अपने मायके जाती हैं। रह-रह कर अपने माता-पिता, भाई-बहनों और बाल्य-काल की सभी घटनाओं के स्मरण से उसका भी कंठ अवरुद्ध हो जाता है। सास के नित्य-प्रति के कटु व्यवहार से उसे तनिक भी आशा नहीं कि उसे मायके जाने की आज्ञा मिल जायेगी। उसे केवल मात्र सहारा अपने असहाय पति प्रेमवल्लभ का है। वह उससे मिलने का निरन्तर प्रयत्न करती है। संयोगवश स्कूल से आते हुए प्रेमवल्लभ से उसकी भेंट हो जाती है। वह बहुत ही अनुग्रहपूर्वक करुणा से ओत-प्रोत ध्वनि में अपने पति से अभ्यर्थना करती है—"कल तुम्हें छुट्टी होगी, मुझे मैत पठा दो।"[3] कुछ उत्तर न पाकर वह पुनः बोलती है—"तो कल मुझे पहुँचा दोगे न मैत ? फिर काला मास आ जाता है।[4]" उसके इन शब्दों में कितनी दीनता, कितनी बेबसी, कितनी करुणा भरी हुई है, अनुमान लगाना कठिन है। भोली-भाली ग्रामबाला मधुली अपने पति के जीवन को भी कष्टमय समझती है और उसके पठन-कार्य को भी उतना ही कष्टदायक समझती है जितना उसका है। और कहती है—

"तुम भी रोज चार मील दूर स्कूल जाते हो और चार मील पैदल वापस आते हो। सुना है वहाँ कसरत भी करनी पड़ती है। मास्टर लोग भी मारते हैं। लेकिन छः दिन के बाद तुम्हें भी एक इतवार मिलता है। तीज त्योहार को भी छुट्टी मिलती है। कभी-कभी मुझे भी तो छुट्टी होनी चाहिए।"[5]

परन्तु असहाय पति क्या करे ! विमाता के राज्य में तथा वहाँ के सामाजिक कठोर नियमों की उपस्थिति में वह तो निःशस्त्र है। प्रेमवल्लभ उसके पाँवों की बिवाइयों को देखकर द्रवित होता है, वह किसी-न-किसी प्रकार उसके लिए जूते लाने की भी व्यवस्था कर पाता है परन्तु मधुली अन्य ग्रामवधुओं का उदाहरण प्रस्तुत कर मना कर देती है और पति को सास के व्यंग्य-बाणों का शिकार होने से बचाती है।

जब भी कभी-कभी धोखा दे जाता है, परन्तु मधुली उस यंत्र के समान कार्य करती है जिसे कभी विश्राम की आवश्यकता ही नहीं होती और सास-ससुर की सेवा एवं उनकी आज्ञा का पालन करती है। इस सेवा के बदले उसे सास के कटुवचन, आधा पेट भोजन, घृणा, उपेक्षा, दासत्व की भावना ही मिलती है। अगर ससुर कभी-कभी दया प्रदर्शित कर

---

1. शैलवधू, पृ० [illegible]
2. वही, पृ० ५८-५९
3. वही, पृ० १४
4. वही, पृ० १५
5. वही, पृ० १६

देते हैं तो सास के पेट मे साँप लोटने लगते हैं तथा ससुर को भी आड़े हाथों लेते हुए वह कहती है—"जब देखो बेचारी ! बेचारी ! बेचारी का अचार बनाओ ।"[1] इतना ही नहीं, उसे मधुली की उपस्थिति भी असह्य होती है—"इस घर में या तो मैं ही रहूँगी या यह चुड़ैल।"[2] मायके भागकर जाने की घटना प्रकट होने के बाद तो ससुर के स्नेह से भी वंचित हो जाती है। सास का आतंक तथा त्रास अब निरंकुश रूप से होने लगता है। वह बहू का छुआ हुआ पानी तक नहीं पीती। इस घटना से रुष्ट होकर और पिता का परिवर्तित स्वभाव देखकर, मधुली को असहाय अवस्था में छोड़कर पति भी घर से भाग जाता है। मधुली की स्थिति घर मे उस शिल्पी के समान रह जाती है जो अपने हाथ से मन्दिर बनाकर उसमें अपनी ही गढ़ी हुई मूर्ति को स्थापित तो कर देता है पर जिसे अछूत कहकर उसी मन्दिर मे प्रवेश करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है।

कुछ अवधि के पश्चात् जब पुलिस-अधिकारी के रूप में प्रेमवल्लभ की नियुक्ति पर्वतीय क्षेत्र में होती है तो वह तीन दिन की छुट्टी लेकर अपने घर आता है और अपनी पत्नी की दुर्दशा अपनी आँखों से देखता है कि उसके पास पहनने के लिए वस्त्र नहीं, ओढ़ने-बिछाने के लिए बिस्तर नहीं। मोटे तागे से अपने पुराने कपड़े पुराने सी-सीकर वह अपनी लाज किसी-न-किसी प्रकार बचाए हुए है। मधुली को वह अपने साथ चलने का आग्रह करता है परन्तु इतने कष्टमय जीवन में भी वह सुख का अनुभव करती हुई कहती है—"मेरा ही जीवन कौन-सा कष्टमय है। गाँव की सभी बहुएँ इसी प्रकार दुःख सहती हैं। हम तो तुम्हारी फुलवाड़ी के पेड़ है, बिना जड़ के पेड़। पालो, पोसो, काटो या जला डालो—मुँह न खोलेंगे।"[3] आत्म-समर्पण की पराकाष्ठा है मधुली के इस कथन में। पति के चुपके से भाग जाने में उसे किंचिन्मात्र भी शिकायत नहीं, उसका आत्मसमर्पण तो निश्छल और परिपूर्ण है। डॉ० शर्मा की हत्या उसी ने की थी। अपने पति से वह सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाती है। पति के विश्वास दिलाने पर निर्भय हो जाती है। दूसरे ही दिन अपने पति के प्रति पूर्ण विश्वास प्रकट करते हुए अपनी अन्य सहेलियों से भी निर्भय रहने को कहती है, परन्तु पुलिस के आतंक एवं उनके हथकंडों को वे भली-भाँति जानती हैं—"चिकनी-चुपड़ी बात करने वाले, औरतों के हितैषी बनने का दम्भ भरने वाले पुलिस के थानेदार जो कुछ भी न कर डालें वही कम है।"[4] इसलिए अन्ततः निश्चय करती हैं कि "लाल पगड़ीवाले के हाथ में पड़कर जान गँवाने से तो अच्छा यही है जो दुःखी नारियों ने नित्य किया है। जो मुक्ति का द्वार शैलवधुओं के लिए युगों से खुला पड़ा है उसी की शरण में क्यों न चला जाए।"[5]

और वे पाँचों पंचवेणियाँ ताल में डूबकर आत्महत्या कर डालती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के लेखक ने पर्वतीय बहुओं के कष्टमय जीवन, वहाँ के पारिवारिक, सामाजिक रीति-रिवाजों के सफल चित्रण के अतिरिक्त आधुनिक छिछले दंडविधान और भ्रष्ट शासन-तंत्र का भी यत्र-तत्र चित्रण किया है। वर्तमान दण्ड-विधान के विषय में लेखक के विचार उल्लेखनीय हैं—"वाक्जाल के ताने-बाने से बुने छिद्रमय भारतीय दण्ड-विधान की छननी में से गुंडा तो साफ बच निकलता है और दण्ड भोगता है निरपराधी।"[6] और इस

१. शैलवधू, पृ० ६४
२. वही, पृ० ७१
३. वही, पृ० १२६
४. वही, पृ० १३६
५. वही, पृ० १३७
६. वही, पृ० १२८

उक्ति को सावित्री के साथ घटे हुए अन्याय के माध्यम से चित्रित किया है।

दोपहर को अँधेरा (१९६०)

'दोपहर को अँधेरा' हमारे देश के शासन-तंत्र में बडी गहराई तक पैठे हुए भ्रष्टाचार से संघर्ष करनेवाले तहसीलदार की कहानी है। उपन्यास का नायक रामप्रसाद सुमंतपुर में तहसीलदार है। उसके अधीनस्थ कर्मचारी उसकी ईमानदारी से तंग हैं, क्योंकि उनके रिश्वत लेने के मार्ग बन्द हो गए हैं। उससे मुक्ति पाने के लिए वे झूठी शिकायतें कर उसकी बदली तराई-भाँवर में करवाने में सफल होते हैं। वह अपनी बदली रुकवाने के लिए घोष साहब से मिलने लखनऊ जाता है, परन्तु घोष साहब से उपदेशात्मक एवं उपेक्षणीय बातें ही मिलती हैं, वास्तविक समाधान नहीं। विवश होकर उसे तराई-भाँवर का चार्ज लेना पड़ता है। वहाँ केवल उन्हीं कर्मचारियों का स्थानान्तरण किया जाता है जो सर्वथा निकृष्ट समझे जाते हैं। वहाँ रामप्रसाद के अतिरिक्त सफाई का इन्स्पेक्टर, अस्पताल का डॉक्टर, पुलिस का दारोगा, सड़कों का ओवरसियर, जंगल विभाग का रेंजर और सरकारी स्कूल का हेडमास्टर—ये राजकर्मचारी हैं जिनका काम केवल दिनभर ताश खेलने और झूठी डायरी भरने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। तहसीलदार रामप्रसाद दर्शनलाल की लोकप्रियता का गुर सीखने के लिए सदैव इच्छुक रहता है। इसी अवसर पर अरेठी गाँव के लोगों की क्षतिपूर्ति के आवेदनपत्र की जाँच-पड़ताल के लिए उसे एक सरकारी आदेश मिलता है। उस गाँव का जननेता सुखलाल है जो उसे पहले ही तहसील में मिल चुका है। वह पुरानी परम्परा के अनुसार पटवारी द्वारा रामप्रसाद को रिश्वत की भारी रकम देता है, परन्तु भ्रष्टाचार-विरोधी रामप्रसाद उसकी भर्त्सना करता है और लोगों को भविष्य में सरकार के साथ इस प्रकार के अनुचित कार्य न करने की सलाह देता है। इसी समय रामप्रसाद का परिचय प्रेमशंकर नाम के एक युवक से होता है जो उसके सामने सुखलाल और पटवारी के भ्रष्टाचारपूर्ण काले कारनामों का पर्दाफाश करता है। जब उस तहसील के अन्य कर्मचारियों को इस घटना और रामप्रसाद की इस जाँच-पड़ताल की रिपोर्ट के बारे में ज्ञात होता है तो वे भी भयभीत होकर आनेवाले बुरे दिनों की कल्पना करते हैं। रामप्रसाद तार द्वारा एस० डी० ओ० से मिलने की अनुमति चाहता है परन्तु सभी उसमें बाधा डालने का प्रयास करते हैं। विनोद और उपहास का ढोंग रचकर रामप्रसाद के परिवार को भी उसकी झूठी बीमारी का तार भिजवा दिया जाता है।

सुखलाल की सहायता से दारोगा एक शिकायत पत्र एस०डी०ओ० को भेजता है जिसमें रामप्रसाद जैसे ईमानदार, सच्चरित्र, कर्मठ, कुशल अधिकारी पर अनेक झूठे आरोप लगाये जाते हैं तथा दर्शनलाल को पुनः उसी क्षेत्र में नियुक्त करने की प्रार्थना भी की जाती है। एस० डी० ओ० मिस्टर घोष स्वयं मुआयने के लिए आते हैं और अपने साथ भूतपूर्व तहसीलदार दर्शनलाल को भी लाते हैं। इसकी सूचना रामप्रसाद को नहीं दी जाती है। पर जब उसे यह सब मालूम होता है तो रामप्रसाद स्वयं ही वहाँ चला जाता है। एस०डी०ओ० मिस्टर घोष उसकी ईमानदारी की प्रशंसा करना तो दूर रहा, उसे ही उल्टा दोषी बतलाते हैं। पचास रुपये प्रतिमास विशेष वेतन सहित दर्शनलाल को पुनः वहीं तहसीलदार नियुक्त किया जाता है। इस घटना के कुछ दिन पूर्व उस गाँव के समीपवर्ती क्षेत्र में खटिकों की झोंपड़ियों में आग लग जाती है। रामप्रसाद एक सच्चे जन-सेवक के रूप में उनकी सहायता करता है। जेठ की चिलचिलाती धूप में तीस मील साइकिल से जा कर सेना के कमांडर से

मिलकर गाड़िकों के लिए मिलिटरी के खाली बैरकों को निःशुल्क प्राप्त कर लेता है। परन्तु तहसीलदार के नाम से थानेदार दो सौ रुपये किराये के रूप में वसूल कर लेता है। खड़िकों के चौधरी की सहायता से सुखलाल एस० डी० ओ० मिस्टर घोष के सामने इस तथ्य का उद्घाटन कर रामप्रसाद के स्वभाव पर झूठा आरोप लगाते हुए उसे चिड़चिड़ा, सनकी और पागल तक बना देते है। डॉ० भीमराज पागलपन का प्रमाणपत्र भी प्रस्तुत कर देता है और उसकी सूचना आगे भी भेज देता है। एस० डी० ओ० मिस्टर घोष भी इन सब बातों को सत्य मान कर रामप्रसाद को सरकारी अस्पताल में दाखिल हो जाने का आदेश जारी कर देता है। दर्शनलाल को अचानक ही 'चार्ज' लेने का आदेश दे देता है ताकि तथाकथित पागल तहसीलदार सरकारी कागजों में कुछ गड़बड़ी न कर सके। दर्शनलाल ने चार्ज लेने के लिए ... रामप्रसाद को भी कार्यभार सौंप डॉ० भीमराज की देख... में सरकारी अस्पताल में भरती होने का आ... रामप्रसाद प्रेमशंकर को ... लेकर नजदीक के समीपवर्ती अनाज गोदाम का निरीक्षण कर... ओ० मिस्टर ... को वस्तुस्थिति बताने के लिए जाता है। रामप्रसाद के जाते ही ... गिरफ्तार करने के लिए अपने सिपाहियों को भेजता है। रामप्रसाद अनाज ... का निरीक्षण करता है, जाली बाँटों को पकड़ता है तथा भंडार-निरीक्षक चन्द्रकान्त के भ्रष्टाचारपूर्ण कारनामों की रिपोर्ट तैयार करता है। ऐसे ईमानदार एवं जन-हितैषी अधिकारी को पाकर जनता इकट्ठी हो जाती है। दारोगा के भेजे हुए सिपाही इस भीड़ को नियंत्रित नहीं कर पाते। रामप्रसाद जनता की अपार भीड़ को नियंत्रित कर एस० डी० ओ० से मिलने के लिए रवाना हो जाता है। एस० डी० ओ० पहले उससे मिलने के लिए तैयार नहीं होते, परन्तु जब राम प्रसाद जबरदस्ती मिलना चाहता है तो मिस्टर घोष उसकी कुछ भी न सुनकर चार्ज ... देने का आदेश ही देते है। प्रेमशंकर के द्वारा रामप्रसाद का परिचय त्रिवेदी जी से होता है, जो एक पाठशाला का संचालन करते हैं। त्रिवेदी रामप्रसाद पर किए गए अत्याचारों और रामप्रसाद की ईमानदारी और भ्रष्टाचार-विरोधी कार्यों के विषय में पहले ही सुन चुके थे, वे रामप्रसाद को देखकर ... हो जाते है और उनसे अपनी पाठशाला की विद्वन्मंडली का परिचय कराते हैं। रामप्रसाद दूसरे दिन दर्शनलाल को प्रसन्नतापूर्वक कार्यभार सौंप देता है। डॉ० भीमराज भी दो सिपाहियों की सहायता से उसे सरकारी अस्पताल की ओर ले चलता है। शहर पहुँचने पर प्रेमशंकर और त्रिवेदी जी सरकारी अस्पताल के सर्जन से रामप्रसाद की जाँच करवा कर आरोग्य का प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना चाहते हैं। परन्तु सुखलाल पहले ही सर्जन से मिल कर उसकी मुट्ठी गरम कर चुका होता है, इसलिए रामप्रसाद को अस्पताल में भरती होना पड़ता है। परन्तु जब डॉक्टर को ज्ञात होता है कि वह अपने पद से त्यागपत्र दे चुका है तो इधर-उधर पूछकर उसे छोड़ देता है। त्रिवेदी जी के आग्रह पर रामप्रसाद अध्यापन कार्य ग्रहण कर लेता है। कुछ समय के बाद रामप्रसाद को मेडिकल बोर्ड के सम्मुख डॉक्टरी परीक्षा के लिए उपस्थित होने का आदेश मिलता है। जब वह मेडिकल बोर्ड के सम्मुख अपनी सम्पूर्ण गाथा सुनाता है तो सभी सदस्य स्तब्ध रह जाते हैं। इसके बाद रामप्रसाद अध्यापक के रूप में शान्तिपूर्ण और सुखमय जीवन व्यतीत करता है। सुखलाल महाशय को तराई क्षेत्र से एम० एल० ए० चुन लिया जाता है। पर तराई की स्थिति को दिन-प्रतिदिन बिगड़ते देखकर सुखलाल को एक बहुत बड़ी डेरी का चेयरमैन बनाकर सीट रिक्त की जाती है। शासक दल अपना अन्य प्रतिनिधि खड़ा करता है। प्रेमशंकर और अन्य व्यक्तियों के आग्रह पर रामप्रसाद भी

निर्वाचनक्षेत्र में कूदता है और विजयी हो जाता है। विधान सभा के निर्दलीय सदस्य के रूप में जब वह पहले ही दिन तराई-भाँवर मे व्याप्त दुर्भिक्ष, विनाश तथा सरकारी अधिकारियों की भ्रष्टाचार-जन्य घटनाओं आदि पर भाषण देता है तो सम्पूर्ण सभा मे खलबली मच जाती है और विरोधी दल, मंत्रियों से त्यागपत्र की माँग करता है। शासक दल में भी फूट पड़ जाती है। राज्यपाल विरोधी दल को मंत्रिमंडल बनाने का आदेश देने की सोचते है। मालमंत्री भी विरोधी दल में मिलकर रामप्रसाद से विरोधी नेता का पद ग्रहण कर मुख्यमंत्री पद सुशोभित करने की प्रार्थना करता है। परन्तु रामप्रसाद इसे मुँह बन्द करने की चाल व भ्रष्टाचार ही मानता है, क्योंकि उसका विश्वास है कि जनता के सच्चे सेवक के लिए पद व अधिकार अवांछनीय वस्तु है।

सदियो की दासता के बाद भारत को महान् संघर्ष, [illegible]क बलिदानों के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। स्वाधीनता के पन्द्रह व[illegible] आज भी अगर [illegible]न भारत का चित्र [illegible] अनैतिकता, चरित्रहीनता, मुनाफ[illegible]ी, अ[illegible]त, द्वेष, गुटबंदी त[illegible] दुगुणो की कालिमा ही कालिमा परिलक्षित होती है। प्रस्तुत उ[illegible]यास में ले[illegible]निक जीवन और शासनतन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का यथार्थ ए[illegible] सजीव चित्रण कि[illegible] कथा का नायक रामप्रसाद एक तहसील में कुछ दिन भी नही टिक पाता। उसकी शि[illegible]ायतों के ऊपर शिकायतें होती हैं क्योंकि वह सच्चा, ईमानदार और भ्रष्टाचार-विरोधी अधिकारी है। अपने अधिकारी एस० डी० ओ[illegible] मिस्टर घोष से वह स्थानान्तर रोकने की प्रार्थना करता है तो उसके सामने दर्शनलाल [illegible]रिश्वतखोर, भ्रष्ट तहसीलदार का आदर्श प्रस्तुत करते हुए मिस्टर घोष कहते हैं—"[illegible] द[illegible]लाल भी आप ही के वर्ग के तहसीलदार हैं। दर्शनलाल जहाँ भी पहुँचते है इनकी [illegible]ा होती है। लोग इनसे प्रसन्न रहते है। सच्चाई और कर्तव्यनिष्ठा अवश्य मुख्य [illegible]एँ हैं, किन्तु उनके साथ-साथ हम लोगों को लोकप्रिय भी होना चाहिए। जो स[illegible]ो कर्मचारी जनता का प्रिय नहीं, वह जनता का सेवक नहीं।"[1]

जब दर्शनलाल के स्[illegible]ान पर रामप्रसाद अपना पद ग्रहण करता है तो दर्शनलाल की लोकप्रियता का गुर ज्ञात [illegible] पर उसे प्रतीत होता है कि... "उसकी अब तक की असफलताओं का कारण उसकी [illegible]ई अयोग्यता [illegible] [illegible]लता नहीं, किन्तु उसका भ्रष्टाचार-ग्रस्त गतानुगतिक समाज के एक नये, सच्चाई और ईमानदारी के आदर्श [illegible]ा अवलम्बन करने का निश्चय है।"[2]

वस्तुस्थिति बताने पर मिस्टर घोष उसकी ईमानदारी की प्रशंसा न कर... "जल्दी में बिना समझे कोई रिपोर्ट न भेजने"[3] का आदेश देता है और उसे लज्जित करता है। उसी तहसील में भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोर, जनता को सतानेवाला दारोगा, सफाई-निरीक्षक, डॉ० भीमराज, रामप्रसाद के स्वभाव से अपनी स्थिति को खतरे में पाकर उसे हर प्रकार से चंगुल में फसाने का प्रयत्न करते है। अरेठी गाँव, जहाँ हर वर्ष नहर तोड़कर खेतों की सिचाई की जाती है, उल्टा नहर टूटने की रिपोर्ट कर हजारों रुपये की क्षतिपूर्ति भी सरकार से ली जाती है। इन रुपयों का पटवारी, सुक्खलाल, दारोगा, तहसीलदार उपयोग करते है। सुक्खलाल द्वारा रामप्रसाद के सनकीपन और पागलपन

१. दोपहर को अँधेरा, पृ० १३
२. वही, पृ० ३७
३. वही, पृ० ४५

की रिपोर्ट की जाती है। भ्रष्टाचार-ग्रस्त एस० डी० ओ० भी उसे पागल घोषित कर डॉ० भीमराज की देख-रेख में सरकारी अस्पताल में भेज देता है और दर्शनलाल को पचास रुपये विशेष वेतन देकर पुन. वही नियुक्त किया जाता है।

रामप्रसाद ने चन्द्रकान्त के पास सरकारी अन्न गोदाम में जाली बाँटो को पकड़ा था। चन्द्रकान्त के चाचा और विधान सभा के सदस्य रामप्रसाद को अपने शिकंजे में नहीं ले सकते। वह भी उसकी सम्पूर्ण कार्यवाहियों को पागलपन की अवस्था में की गई कार्यवाही कह कर रद्द करवा देता है। रामप्रसाद की प्रार्थना पर जब मेडिकल बोर्ड उसकी परीक्षा करता है तो वे उसकी सम्पूर्ण गाथा को सुनकर दंग रह जाते है तथा उसका मानसिक स्तर सबसे ऊँचा पाते हैं।

प्रस्तुत कथावस्तु की घटनाओ का क्रम भ्रष्टाचार के साथ रामप्रसाद के संघर्षों का इतिहास है। उपन्यासकार ने प्रत्येक सरकारी विभाग तथा गाँवो के नेताओं के काले कारनामों का सुन्दर, सजीव तथा यथार्थ चित्रण किया है। लेखक ने शासक-तंत्र के मूल में व्याप्त भ्रष्टाचार जैसे असाध्य रोग को तो सामने रखा है, परन्तु न उसका निदान ही बतलाया है, न उचित उपचार ही। रामप्रसाद त्यागपत्र देकर, त्रिवेदी जी की पाठशाला में अध्यापन-कार्य आरम्भ करता है। फिर विधान सभा का सदस्य निर्वाचित होकर सभा में सरकारी ढाँचे में व्याप्त भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ करता है जिससे शासक दल में फूट पड़ जाती है। विरोधी दल रामप्रसाद को अपना नेता चुनना चाहते हैं। इसे संतोपजनक हल नही माना जा सकता। क्या विधान-सभा का सदस्य ही भ्रष्टाचार को नष्ट कर सकता है? सुखलाल-जैसे लोकप्रिय व्यक्ति अगर प्रेमशंकर और त्रिवेदी के समान हों तथा अधिकारी मिस्टर घोष रामप्रसाद के समान हो तो अवश्य ही भ्रष्टाचार मिट सकता है।

कथावस्तु की प्रत्येक घटना का परस्पर सम्बन्ध है जिससे कथा में क्रमबद्धता, रोचकता और कुतूहल है।

रामप्रसाद आदर्शवादी पात्र है जो कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी अपने आदर्श से विचलित नहीं होता। दर्शनलाल राजस्व-विभाग, दारोगा पुलिस-विभाग, डॉ० भीमराज स्वास्थ्य-विभाग के भ्रष्ट, रिश्वतखोर कर्मचारियों के प्रतीक हैं। सुखलाल महाशय भोली-भाली ग्रामीण जनता का शोषण कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वस्तुतः ऐसे व्यक्ति ही समाज के पतन के मूल कारण हैं जो भोली-भाली जनता को गलत मार्ग पर ले जाकर उनका अहित और राष्ट्र का अकल्याण करते हैं। ऐसे लोग भूमि पर भार-स्वरूप हैं तथा समाज के कलंक होते है।

सुखलाल जैसे भ्रष्ट व्यक्तियों को एम० एल० ए० बना देना, डेरी चेयरमैन बना देना, कम्पनी का परमिट देना, आजकल के राजनीतिक दलों की इस प्रकार के गुंडों को अपने प्रश्रय में लेकर अपना उल्लू सीधा करने की प्रवृत्ति का द्योतक है।

'दोपहर को अँधेरा' वस्तुतः स्वतन्त्र भारत के शासन-तंत्र का यथार्थ चित्रण है जहाँ दोपहर में भी अंधकार ही है।

५. जीवनप्रकाश जोशी

कलाकार (१९६०)

जीवनप्रकाश जोशी का यह प्रथम उपन्यास है। उपन्यास में एक कलाकार की जीवन-गाथा वर्णनात्मक शैली में कही गई है। कलाकार का पिता अभाव एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति है जो सीमित आय में बड़ी कठिनाई से अपने परिवार का भरण-पोषण करता है। कलाकार का पिता बाल्यकाल में ही मातृ-पितृहीन हो गया था। उसके चाचा ने उसकी अतुल पैतृक सम्पत्ति पर दाँत गाड़ने की लालसा से उसे अपनाया था। थोड़ा बहुत लिखाया-पढ़ाया भी और समाज की छींटाकशी से बचने के लिए उसकी शादी वेदना से की। अभाव दीन अवस्था में एक कम्पनी की नौकरी के सीमित वेतन पर चाचा से अलग रहने लगा। कलाकार उसकी एकमात्र संतान है जिसके भविष्य के लिए दम्पति सदैव चिंतित रहते हैं और स्वयं भूखे रहकर, फटे-पुराने वस्त्र पहन कर उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। कलाकार प्रतिभाशाली विद्यार्थी है। सदैव अपनी पाठशाला में प्रथम आता है। इसी से पिता का भी उत्साह बढ़ता रहता है। वह उसे हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट के बाद बी० ए० में पढ़ने के लिए कॉलेज में भेजता है। कलाकार की माता उचित भोजन-व्यवस्था न होने से भयानक रोग का शिकार हो जाती है और कुछ अवधि के बाद उसका देहान्त हो जाता है। पिता अस्वस्थ रहते हुए भी कलाकार की शिक्षा येन-केन-प्रकारेण जारी रखता है। कॉलेज में प्रवेश करने पर कलाकार एक बार कवि-सम्मेलन में एक कविता सुनाता है। सभी छात्र-छात्राएँ उसके प्रशंसक बन जाते हैं और एक छात्रा कल्पना उस पर विशेष रूप से आकृष्ट होती है। कलाकार भी उसकी ओर आकर्षित होता है। कुछ दिन बाद कल्पना कलाकार का अधिक सामीप्य पाने के लिए उसे प्राइवेट ट्यूटर के रूप में रखवा लेती है, परन्तु जब उसके माता-पिता को उनकी प्रेमलीला का ज्ञान होता है तो कलाकार का कल्पना से मिलना तो दूर रहा, उसके मकान में प्रवेश करने तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। शिक्षा समाप्त होने पर कल्पना की शादी किसी अन्य व्यक्ति से हो जाती है। भावुक कलाकार का हृदय घायल हिरणी की तरह छटपटाता है। परिणामतः उसके चरित्र का स्खलन होना आरम्भ होता है। वह अपनी विरह-वेदना को कम करने के लिए शराब पीना शुरू करता है। वेश्या के पंकिल दामन की छाया में रातें व्यतीत करने लगता है। उसकी इस अधोगति को देखकर उसके उद्धार के लिए उसके सहपाठी नरेन्द्र और कुमारी वीणा उसे इस कुमार्ग से बचाते हैं और उससे बी० ए० की परीक्षा दिलाते हैं। इसी बीच उसके पिता का भी देहान्त हो जाता है। वह अपने हृदय की पीड़ा को भुलाने के लिए नेतागीरी के चक्कर में पड़ता है और उसे चार वर्ष का कठोर कारावास मिलता है। उसके बाद नेतागीरी का भी रंग उड़ जाता है और वह अपने मित्र नरेन्द्र के पास आ जाता है जो दिल्ली के केन्द्रीय सचिवालय में एक उच्च पदाधिकारी है। कुछ दिन बाद उसे वीणा मिलती है जो दिल्ली के कन्या विद्यालय में प्रोफेसर है। वह उसे अपने पास ले जाती है

और अपने नारीत्व की वासना और भावना के अधिकारी के रूप में प्रणय-बन्धन में कस लेती है।

'कलाकार' के आमुख में लेखक ने इस बात का दावा किया है कि "सच्चे कलाकार का जीवन सामाजिक जीवन से कुछ असाधारण और प्रायः अभावग्रस्त रहता है।" प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने इसी तथ्य को सिद्ध करने का प्रयास किया है। कथाकार ने अपने उपन्यास के पात्रों के नाम 'यथा नाम तथा गुण' के आधार पर रखे है जो अटपटे तथा अस्वाभाविक-से लगते है। कथा के नायक के पिता का नाम 'अभाव' है क्योंकि उसके जीवन मे हर प्रकार का अभाव ही रहा है और माता का 'वेदना', जिसे गृहस्थ-बन्धन में पड़ते ही दो पुत्रों के मृत्युशोक ने दबोचा और पति की सीमित आय से गृहस्थी का भारवहन भी वेदनापूर्ण ही रहा। वस्तुत: ये नाम उनकी जीवन घटनाओं एवं परिस्थितियों के प्रतीक है, परन्तु इस बात में सन्देह है कि उनका जन्म का नाम भी यही रहा होगा।

कलाकार जन्मजात ही भावुक है, वह पुष्पों को हंसाता है तथा तारागण व चन्द्रमा से बातें करता है। लेखक ने कलाकार के लिए अभावग्रस्त एवं संघर्षरत जीवन आवश्यक बताया है तथा निराला के संघर्षमय जीवन से इसकी तुलना की है परन्तु कलाकार के अन्तर्गत न तो लेखक वैसा स्वाभिमान चित्रित कर सका और न ही संघर्षों से सामना करने का पुरुषार्थ। प्रणय-लीला असफल होने पर कलाकार शराबी और वेश्यागामी बन जाता है जो उसके चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

मध्यवर्गीय जीवन एक अभिशाप है। यह जीवन इतना गया-गुजरा है—"फटे हालों में सवेरे से शाम तक भीख माँगनेवाले भिखारी भी एक क्लर्क की तुलना में अधिक सुखी है। माँगकर मजे से खा लेना, फटे कपड़े पहनकर कार वाले साहब के सामने पैसे माँगने के लिए अड़ जाने में उसे कोई लज्जा या ग्लानि नहीं होती, भय नहीं होता। पर क्लर्क से यह सब कुछ नहीं हो सकता। दफ्तर का बाबू होने के नाते उसे धुले कपड़े भी चाहिए।"[1] इसी प्रकार का जीवन है अभाव का, जो वर्तमान समय के मध्यवर्गीय व्यक्ति का प्रतीक है।

जोशीजी ने प्रस्तुत उपन्यास में कोई नवीन शैली, भाव या विषय को स्पर्श नहीं किया, 'बॉय मीट्स ए गर्ल' की ही पुनरावृत्ति की है। केवल कथा के प्रारम्भ में अभाव के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज के विषम जीवन का यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है। कल्पना के प्रति कलाकार के उद्‌गार, वीणा के आत्मसमर्पण के समय के उद्‌गार एवं कलाकार के विरह-वेदना के भाव गद्यकाव्य का सुन्दर एवं सजीव अंश है। कल्पना के साथ प्रथम मिलन के बाद कलाकार की दशा का चित्रण लेखक इस प्रकार करता है :

"जिस प्रकार चंचल समीर शान्त, स्निग्ध जल में उद्वेग पैदा करती है, वीणा की स्वरलहरी स्वच्छन्द हिरण को मुग्ध कर देती है, शबनम की बूंदें जुगनू के प्राणों में महाप्यास की ज्वाला भर देती हैं और जिस प्रकार महान् तपस्वी को महामाया की एक कामुक चितवन असंयत कर देती है, उसी प्रकार कल्पना के मधुर मिलन से कलाकार का चिंतन और संयम आजकल विचलित हो रहा था।"[2]

१. कलाकार, पृ० ७
२. वही, पृ० ११

विवाह की मंजिलें (१९६०)

जीवनप्रकाश जोशी जी का यह दूसरा उपन्यास है। "विवाह जीवन का एक महत्त्वपूर्ण बन्धन है।" अगर इसके महत्त्व को भली-भाँति न परखा जाए तो जीवन भार-स्वरूप बन जाता है, विषम बन जाता है और आहों के उच्छ्वासों से घुल-घुलकर कटता है। प्रस्तुत उपन्यास में जोशी जी ने विभिन्न प्रकार के विवाहों की व्याख्या तथा उनका विश्लेषण किया है और अपने पात्रों के जीवन तथा वाणी के माध्यम से उसका परिणाम भी व्यक्त किया है। वस्तुत: आधुनिक समाज में विवाह की मान्यताएँ भी प्राचीन काल के समान नहीं रही हैं और न उनका उतना महत्त्व ही रहा है।

उपन्यास का नायक मोहन एक रिटायर्ड रेलवे क्लर्क का पुत्र है। उसके हाईस्कूल पास करने के समय उसके पिता का देहान्त हो गया था। वह ग्वालियर के एक होटल में नौकरी करता है। वहाँ से उसे चौधरी रामदयालसिंह बम्बई ले जाते हैं और मोहन की पढ़ने की रुचि को देखकर उसे घरेलू नौकर के रूप में न रखकर पढ़ने की सम्पूर्ण सुविधाएँ देते हैं। उर्वशी, चौधरी साहब की लड़की मोहन पर आकर्षित होती है। वह उससे अनुचित कार्य करने को कहती है। परन्तु मोहन उसका प्रतिकार करता है और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए देहरादून आ जाता है। वहीं प्राइवेट बी०ए०, एम० ए० कर एक नौकरी के इण्टरव्यू में दिल्ली आता है और अपने पिता के मित्र वकील साहब के पास टिकता है। उसकी भी माधवी नाम की एक कन्या है। वे दोनों बचपन में साथ ही खेले थे, पढ़े थे परन्तु समय और आयु के अन्तर में वे एक-दूसरे को पहचानने के बाद ही आकर्षित होते हैं। माधवी और मोहन में प्रगाढ़ मित्रता, स्नेह और आकर्षण हो जाता है। वह उसे अपनी मित्रमंडली में ले जाती है, जहाँ उसकी सहेलियों और मोहन के बीच 'विवाह' पर विचार-विमर्श और व्याख्यान होते है। मोहन फिर देहरादून चला जाता है। वहाँ से रेलवे में हिन्दी-अफसर बनकर बम्बई चला जाता है। माधवी और मोहन में पत्र-व्यवहार होता है, परन्तु मूलतः पत्रों का विषय भी आजकल की वैवाहिक मान्यताएँ और इसी से सम्बन्धित होता है। बम्बई में मोहन की भेंट उर्वशी से होती है। वह उसे अपने घर ले जाती है। उसका पुराना प्रेम पुन: अठखेलियाँ करने लगता है। इधर माधवी नारी कल्याण संस्था में समाज-सेविका के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। उस पर आई० ए० एस० राजन् बुरी तरह आसक्त होता है, परन्तु उसे इसके बदले माधवी से घृणा, फटकार, भर्त्सना ही मिलती है। वह अपनी एक गर्ल फ्रेंड की सहायता से माधवी के कई प्रकार के अश्लील फोटो लेता है और बम्बई में उर्वशी की सहायता से, मोहन के हृदय में माधवी के प्रति सन्देह उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। साथ ही, उर्वशी को मनाकर उर्वशी और मोहन के आलिंगन-चुंबन के फोटो भी ले लेता है। उर्वशी को और उन चित्रों को लेकर वह दिल्ली आता है। उन चित्रों को माधवी को दिखाती हुई उर्वशी कहती है—"मोहन से मैं प्रेम करती हूँ। आज से नहीं, वर्षों से...मेरे और उनके सुहागी शीशा साबुत रखने के लिए आपकी दया या सहानुभूति या त्याग बड़ा जरूरी होगा। नहीं तो माधवी, मैं तबाह हो जाऊँगी। मेरी जिन्दगी जली हुई बहार की खाक बनकर रह जायेगी।"[1] वह माधवी से असत्य घटना को व्यक्त करती हुई कहती है—"क्योंकि मोहन ने मुझे पत्नी बनने से पहले माँ बनने का बोझ

---

१. विवाह की मंजिलें, पृ० २१६

दे दिया है।"[1] सरल-हृदय माधवी मोहन को उर्वशी के साथ विवाह करने की सलाह देती है और उर्वशी को पूर्ण आश्वासन। मोहन को इस सूचना से आघात पहुँचता है और वह बीमार पड़ जाता है। उसकी चिंतित दशा को देखकर उर्वशी के माता-पिता माधवी को बम्बई बुलाते हैं। वह उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है। कुछ दिनों में जब वह रोगमुक्त हो जाता है तो माधवी और मोहन दिल्ली आते हैं और उर्वशी के माता-पिता भी माधवी के गुणों से प्रभावित होकर अपनी कन्या को उसको सौंप देते हैं। अतः वह भी उन्हीं के साथ दिल्ली आ जाती है। माधवी के निश्छल, सहानुभूतिपूर्ण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उर्वशी उसे सच्ची घटना बता देती है। माधवी और मोहन की शादी हो जाती है। राजन् शादी के अवसर पर माधवी का अपहरण करने का प्रयत्न करता है, पिस्तौल की गोली चलाता है परन्तु गोली का शिकार उसी के पिता होते हैं। वह पकड़ा जाता है और हत्या के अपराध में उसे आजीवन कारावास हो जाता है। माधवी उर्वशी की शादी नारी-कल्याण संस्था की पत्रिका के सम्पादक राजीव से कर देती है।

'विवाह की मंजिलें' में जोशी जी ने विवाह की समस्या और उसके असफल होने के कारणों पर प्रकाश डाला है। पाश्चात्य सभ्यता में पली हुई आधुनिकाओं के प्रेम-विवाह पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है।"विवाह दो रोमांटिक लड़के और लड़कियों का एक समझौता-मात्र है और उस समझौते के टूटने की शर्तें भी हृदय के संस्कारों से बँधी हुई नहीं हैं, वरन् कोर्ट के नियमादि के कच्चे सूत्रों से बँधी है।"[2] यामा ने प्रेम-विवाह किया था, परन्तु कुछ अवधि के बाद विवाहित जीवन से असन्तुष्ट होकर वह अपने पति की हत्या कर देती है, इस तथा अन्य इसी प्रकार की अन्तर्गत कथाओं के माध्यम से उन्होंने ऐसे प्रेम-विवाहों की असफलता व्यक्त की है जो "जीवन में उन्मुक्त प्रेम और शृंगार को सबसे अधिक महत्त्व देते हैं।"[3] जो विवाह को 'जॉय ऑफ़ लाइफ़', 'जॉय ऑफ़ सेक्स', 'डान्स, किसिंग, इम्ब्रेसिंग का लुत्फ़ मानते है' तथा जो चरित्र को "कैरेक्टर एण्ड आइडियल्स बोथ आर डैविल्स प्रिजन, प्लेअर लाइफ़ डाइज़ इन डिजायर्स, इन पैशन्स"[4] मानते हैं। विवाह के विषय में जिन आधुनिकाओं की ऐसी धारणाएँ होती हैं अन्ततः उनका दाम्पत्य जीवन असफल, भारस्वरूप और असह्य वेदनापूर्ण होता है और ऐसे प्राणी समाज के लिए भारस्वरूप हैं और समाज के नैतिक पतन के उत्तरदायी हैं। वस्तुतः पति-पत्नी के धर्म और मर्म की घनीभूत आस्था पर आधारित विवाह ही सफल एवं आनन्दप्रद होता है। यदि "पुरुष और नारी को इस आस्था की उपलब्धि हो जाय या एकदम स्वीकृत होने की आशा हो तो वह विवाह, चाहे लव-मैरिज हो, सिविल-मैरिज हो या धार्मिक-मैरिज हो, मेरा अनुमान है कि आदर्श विवाह सिद्ध होता देखा गया है।"[5] लेखक ने मोहन और माधवी को लव-मैरिज में इसी प्रकार आस्था दिखाकर उनके विवाह को सफल चित्रित किया है।

जोशी जी ने प्रस्तुत उपन्यास में आत्म-कथात्मक एवं पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। मोहन और माधवी के लम्बे-लम्बे पत्रों द्वारा (चार पत्र मोहन और चार माधवी

१. विवाह की मंजिलें, पृ० २१८
२. वही, पृ० ४७
३. वही, पृ० ५५
४. वही, पृ० ६५
५. वही, पृ० ६२

के) उनकी चरित्र और विवाह सम्बन्धी धारणा व्यक्त की है, परन्तु इनसे कथा के प्रवाह में बाधा आ गई है। राजन् द्वारा यामा की सहायता से माधवी की अवांछनीय फोटो लेने की घटना तथा इसी प्रकार बम्बई में राजन् द्वारा मोहन-उर्वशी के फोटो लेने की योजना पूर्णत: जासूसी कार्य है।

प्रस्तुत उपन्यास में दो प्रकार के नारी-पात्र है। पहले वर्ग के नारी-पात्रों में मिसेज शान्ति आहूजा, रेखा, गरोज, यामा, उर्वशी और सुवेला हैं जो विवाह को केवल एक लुत्फ, जॉय ऑफ़ लाइफ़, जॉय ऑफ सेक्स और हसीन चेहरो का लुत्फ मानती है और जिनके लिए नैतिकता और चरित्र नाम की कोई वस्तु नही है, जो लव-मैरिज द्वारा युगों से चली आयी आर्त्त नारी-रूपी गाय को सिंहनी बनाना चाहती है। इस प्रकार की अवांछनीय धारणाग्रस्त नारियों का दाम्पत्य जीवन अन्तत: असफल एवं दु:खद ही होता है। लेखक ने भी ऐसा ही चित्रित किया है। दूसरे प्रकार के नारी-पात्रों में माधवी है जो विवाह को एक आदर्श एव महत्त्वपूर्ण संस्कार स्वीकार करती है, जिसके अन्तरतम में प्राचीन भारतीय सतियों की आत्मा बोलती हुई-सी दिखाई देती है। इनके सम्मुख नैतिकता, चारित्रिक और सामाजिक बन्धन विद्यमान है। इस प्रकार की नारियों का दाम्पत्य जीवन भारस्वरूप न बनकर सुखद एवं सफल होता है।

जोशी जी ने विवाह की विभिन्न मंजिलों का वर्गीकरण करते हुए वर्तमान काल के युवक और युवतियों की वैवाहिक धारणाओं का सफल चित्रण किया है।

६. शैलेश मटियानी

वर्ण्य विषय और शैली के आधार पर उपन्यास के सामाजिक, ऐतिहासिक वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक आदि अनेक भेद होते हैं। आज उपन्यास का एक नव्यतम प्रकार है जिसे 'आँचलिक' उपन्यास कहा जाता है। आज "आँचलिक उपन्यास के रूप में एक सर्वथा नवीन विधा का विकास हो रहा है। प्रेमचन्द के उपन्यासों के बाद यही विधा अपने युग का सच्चा प्रतिनिधित्व कर रही है।"[1] इस उक्ति का परीक्षण करने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि यहाँ 'आँचलिक' शब्द का अर्थ क्या है ? अँचल से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी वस्तु 'आँचलिक' कही जा सकती है। आज अँचल शब्द का प्रयोग 'क्षेत्र या अंग्रेजी के 'रीजन' के अर्थ में होने लगा है। अतः व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ इतना ही कहा जा सकता है कि जिस उपन्यास में किसी क्षेत्र विशेष के समाज और जीवन का उसी क्षेत्र की भाषा में ज्यों-का-त्यों चित्रण हो उसे 'क्षेत्रीय उपन्यास' या 'आँचलिक उपन्यास' या 'रीजनल नोवेल' कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार क्षेत्रीय उपन्यास के दो लक्षण प्रधान माने जाते हैं—

(१) किसी विशेष भू-भाग के निवासियों की वेशभूषा, रहन-सहन, रीति-नीति, मत-विश्वास का यथार्थ चित्रण, और

(२) उस यथार्थ के वास्तविक अँकन के लिए उसी क्षेत्र विशेष की बोली—शब्दों और मुहावरों—का मुक्त प्रयोग।

वस्तुतः ये क्षेत्रीय उपन्यास सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों से भिन्न नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि इनमें समाज और जीवन का चित्र एक संकुचित क्षेत्र या अँचल तक ही सीमित रह जाता है।

जिस देश या काल की कथावस्तु उपन्यास में होती है उस देश या काल के अनुरूप वातावरण की सृष्टि करना तो उपन्यास की किसी भी विधा में अत्यन्त आवश्यक है, तब प्रश्न उठता है कि आँचलिक विशेषण देकर उपन्यास की एक सर्वथा नवीन विधा की सृष्टि करने से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है। इसे स्पष्ट करने से पूर्व हमें इस नई परम्परा के मूल उत्स की ओर जाना होगा, तब आँचलिक उपन्यास के स्वरूप का विवेचन और सीमा का निर्धारण कर सकेंगे। उपन्यास की यह विधा भी, साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति ही हिन्दी में अंग्रेजी के 'रीजनल' उपन्यासों के अनुकरण पर आयी है और इनमें बँगला की आँचलिक कृतियों की छाप स्पष्ट है। इंग्लैंड के प्रसिद्ध कथाकार नागरिक जीवन की प्रेम-कथाएँ लिखते-लिखते ऊब गए, तब उन लोगों ने एक ओर औद्योगिक केन्द्रों और नगरों के पाठकों के मनोरंजन के लिए उन्हीं सीमित क्षेत्रों के जीवन को लेकर उपन्यास लिखने प्रारम्भ किए तो दूसरी ओर दक्षिण-पूर्व अफ्रीका और अमेरिका के उपनिवेशों के असभ्य एवं पिछड़ी जातियों के जीवन के प्रति अपने पाठकों में कुतूहल जगाने के लिए जो

---

१. प्रो० मोहनवल्लभ पन्त—एक वार्ता

विविधतापूर्ण एवं अछूती सामग्री उन्हें दिखाई पड़ी—उसी को लेकर वे 'रीजनल नोवेल' लिखने लगे। क्षेत्रीय रंग देने के लिए इनमें यदा-कदा स्थानीय भाषा का भी प्रयोग किया जाने लगा। टामस हार्डी, आर्नल्ड बैनेट, हैमिंग्जवे आदि के इन 'रीजनल, उपन्यासों से इस शैली के उपन्यासों का सूत्रपात हुआ और इन्हीं उपन्यासों के अनुकरण पर हिन्दी में इन उपन्यासों का श्रीगणेश हुआ। भारत में वह प्रगतिवादी आन्दोलन का युग था। फलतः हिन्दी के उपन्यास-लेखकों का ध्यान जन-जीवन, विशेषतः ग्राम जीवन की ओर गया। कविता के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किए जाने लगे थे। यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेकर उपन्यास के क्षेत्र में यह क्षेत्रीयता एक नए प्रयोग के रूप में प्रविष्ट हुई। इसी यथार्थता के नाम पर जन-जीवन की दुर्बलताओं का चित्रण इनका मुख्य ध्येय हो गया। "प्रायः सभी उपन्यासकार अँचल की बुराइयों में ही रस लेने लगे हैं और साहित्य के उद्देश्य से बहुत दूर चले गए हैं।"[1] जनपदीय भाषाओं के साहित्य को लेकर भाषागत संकीर्णता का प्रवेश हो ही चुका था, अतएव यथार्थता के साधन के रूप में क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करना अत्यावश्यक समझा जाने लगा। इन्हीं सब परिस्थितियों ने आँचलिकता को जन्म दिया।

जिस क्षेत्र या काल की कथावस्तु होती है उसी के अनुरूप वातावरण की सृष्टि किए बिना और वहाँ के जातीय जीवन का चित्रण किए बिना कोई भी उपन्यासकार सफल नहीं हो सकता। इस व्यापक अर्थ में तो सभी उपन्यासों को आँचलिक मानना पड़ेगा। प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, शरत्, के. एम. मुंशी—सभी के उपन्यास आँचलिक ही तो हैं। पाठक वृन्दावनलाल वर्मा, के उपन्यासों में अपने को मध्यप्रदेश में पाते हैं, तो शरत् के उपन्यास उन्हें बंगाल में पहुँचा देते हैं और मुंशी के उपन्यास गुजरात में। क्षेत्रीय वातावरण की सृष्टि में सफल होने पर भी हम उन सब उपन्यासों को आँचलिक नहीं मानते हैं। आँचलिकता की सीमा आज इतनी संकुचित हो गई है कि उपन्यासों में आज जो क्षेत्र लिया जाता है वह राष्ट्र नहीं, प्रान्त नहीं, जिला नहीं, नगर नहीं, केवल एक गाँव होता है। वह भी अज्ञात, अपरिचित और पिछड़ा हुआ। किसी उपन्यास में नगर को लिया भी है तो वह भी नगर का अत्यन्त पिछड़ा हुआ कोना होता है। इस प्रकार अँचल अर्थात् क्षेत्र विशेष का आग्रह आँचलिक उपन्यास का प्रधान लक्षण है। उस पिछड़े हुए दीन-हीन अँचल के दलित, पतित, शोषित एवं रूढ़िग्रस्त जीवन के वास्तविक अंकन के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण उपन्यास की कथावस्तु छितराई-सी होती है। कुतूहलके अभावमें कथा का निर्माण नहीं होने पाता। क्षेत्र विशेष के वातावरण की सृष्टि करने के उपरान्त इन उपन्यासों का दूसरा लक्ष्य होता है वहाँ के जन-जीवन की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत करना। क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ा हुआ होता है, अतः यथार्थ का यहाँ अर्थ होता है सामाजिक कुरीतियों का नग्न चित्रण, क्षेत्रों में होनेवाले अनैतिक यौन-व्यापारों का सजीव वर्णन। ये गाँव संस्कृत-संस्कार सम्पन्न तो होते नहीं, अतः यह मानना भूल होगी कि इनमें गाँवों की संस्कृति-सभ्यता का चित्रण होगा, फिर भी आज डंके की चोट कहा जा रहा है कि इनमें गाँवों की संस्कृति का भी चित्र रहता है। यदि संस्कृति का अर्थ. जैसा आज प्रायः समझा जाने लगा है, केवल नाचना-गाना मात्र लिया जाए तो इसमें सन्देह नहीं कि इनमें क्षेत्रीय उत्सवों और उनमें किए जानेवाले नाच-गानों को पर्याप्त स्थान दिया जाता है। क्षेत्र विशेष के चित्रण पर ही लक्ष्य होने के कारण व्यक्ति विशेष के रूप में नायक का चित्रण भी इनमें नहीं होता। इनमें पात्र का नहीं, क्षेत्र के समाज का,

१. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ३५४

व्यक्ति का नहीं, समष्टि का; निरपेक्ष चित्रण मात्र पाया जाता है। यथार्थ का रंग देने के लिए जिस प्रकार सामाजिक कुरीतियों का, क्षेत्र में होनेवाले अवैध यौन-सम्बन्धों का, चित्रण इनमें अनिवार्य समझा जाता है उसी प्रकार क्षेत्र विशेष की ठेठ बोली का प्रयोग भी आवश्यक हो जाता है। अतः ग्रामीण शब्दों और मुहावरों का मुक्त प्रयोग आँचलिक उपन्यास का तीसरा लक्षण है। इनमें लक्ष्य कथा नहीं, आँचलिकता है; कुतूहल नहीं, चित्रण है; आदर्श नहीं, यथार्थ का नग्न चित्रण है। भाषा के संस्कार की इनमें उतनी चिन्ता नहीं जितना क्षेत्रीयता का मोह या प्रदर्शन है। उपन्यास के क्षेत्र में यह एक प्रयोग मात्र है—वस्तु का, क्षेत्र का, दृष्टिकोण का और भाषा का भी। अब ये उपन्यास व्यापक राष्ट्रीयता की ओर से क्रमशः संकुचित क्षेत्रीयता की ओर हटते जा रहे हैं।

शैलेश मटियानी आजकल के सफल आँचलिक उपन्यासकार माने जाते हैं। मटियानी की आँचलिकता में विविधता है। एक ओर तो बम्बई के पिछड़े क्षेत्र के निम्न वर्ग के समाज से उसने अपने लिए सामग्री ग्रहण की है तो दूसरी ओर कूर्मांचल के पिछड़े क्षेत्रों के दलित, पतित और हीन जीवन से। 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', 'कबूतरखाना', 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' में बम्बइया जीवन के कुत्सित चित्र हैं तो 'चिट्ठीरसैन', 'हौलदार', 'मुखसरोवर के हंस', 'चौथी मुट्ठी' आदि में कुमाऊँ के हीन वर्ग के चित्र।

शैलेश मटियानी के बम्बई-जीवन पर तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। तीनों उपन्यास बिक्री की दृष्टि से भी सफल रहे हैं और पत्र-पत्रिकाओं में अच्छी-बुरी आलोचनाओं की दृष्टि से भी। बहुत कम साहित्यकार ऐसे सौभाग्यशाली होते हैं जिन्हें इतनी जल्दी इतनी अच्छी ख्याति मिल जाती है। गुटबन्दी और पॉलिटिक्स भरे इस साहित्य-संसार में किसी तरुण साहित्यकार का आगे आ जाना सचमुच बड़े उत्साह की बात है।

बोरीवली से बोरीबन्दर तक

'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' शैलेश मटियानी का पहला उपन्यास है। 'कबूतरखाना' और 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' इसके बाद क्रमशः लिखे गए हैं। इस उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि लेखक ने बम्बई के एक साल के जीवन में ठोकरें खाते हुए जो कुछ देखा उसी का चित्रण किया है। वेश्याओं के वातावरण को लेकर लिखे गए इस उपन्यास में कुछ अश्लीलता आना स्वाभाविक था। अतः लेखक को भूमिका में ही यह कहना पड़ा कि "मलेरिये के रोगी को 'डोंगरे के बालामृत' की नहीं, कुनैन की जरूरत होती है···अश्लीलता का चित्रण यदि केवल मानव-मन को कामना, वासना और व्यभिचार की दिशा में ले जाने के लिए किया जाता है तो वह परिहार्य है, घातक है; पर सप्रयोजन किया गया यौन या काम-सम्बन्धी चित्रण सोचने-विचारने की एक स्वस्थ दिशा देता है।"[1] यद्यपि लेखक के उपन्यासों को पढ़ने के बाद उसकी इस मान्यता पर किसी को भी सन्देह हो सकता है क्योंकि सभी उपन्यासों में नग्न काम-चित्रण का यदि कोई प्रयोजन दिखाई पड़ता है तो यह कि लेखक और पाठकों की दमित काम-वासनाओं की काल्पनिक तृप्ति हो सके।

इस उपन्यास की कथा दिल्ली में शुरू होती है। एक सरदार जी के यहाँ एक पहाड़ी नौकर काम करता है और उसके पास आता है बीरेन ठाकुर, जो उसी के गाँव का सुन्दर और कमसिन लड़का है और सरदार जी की लड़की उसकी हँसी व उम्र पर आशिक हो जाती है। खैर, उस इश्क को अधूरा छोड़कर दोनों बिना टिकट बम्बई आने की योजना बनाते हैं,

१. बोरीवली से बोरीबन्दर तक—भूमिका

किन्तु नौकर तो रास्ते में टिकट-चैकर द्वारा पकड़ लिया जाता है और वीरेन अकेला ही टिकट-चैकरों की कृपा का पात्र बनता हुआ बम्बई पहुंच जाता है। यद्यपि बम्बई में उसको कष्ट उठाने पड़ते हैं, किन्तु वह अपनी कमसिनी सुन्दरता और साहित्यिकता के कारण हर व्यक्ति का कृपापात्र ही बनता जाता है। उसका सम्पर्क होता है एक दादा से जो जेब कतरने, शराब बेचने आदि धन्धे करता है किन्तु जिसने एक वेश्या 'नूर' को पाकर अपना जीवन बदलने का इरादा कर लिया है। नूर कुमाऊँ की एक ब्राह्मण परिवार की लड़की होती है, जो विधवा होने के बाद एक ठाकुर के साथ भाग जाती है और वह ठाकुर उसे बेच देता है जिसके फलस्वरूप वह बम्बई के कोठे में आ जाती है और वहीं से वह उस्ताद को चुनकर उसके साथ नूर के वेश में रहने लगती है। वीरेन पहले ही दिन नूर के बारे में अनुमान लगा लेता है कि वह उसके पहाड़ की हिन्दू लड़की है और दोनों मे आकर्षण हो जाता है। दादा शराब के धन्धे में पकड़ा जाता है और उसके 'तड़ीपार'(बारह पत्थर बाहर)होने की सम्भावना होती है। दादा नूर को बेहद प्यार करता है और वीरेन को भी अपने भाई की तरह चाहता है किन्तु उसके पकड़े जाने के तुरन्त बाद ही वीरेन और नूर आलिंगनबद्ध हो जाते हैं। दादा जमानत पर छूट कर आता है। नूर को योग्य पति मिला देखकर अपने वायदे के अनुसार दोनों को आशीर्वाद देता है। बीच में दादा के दो दोस्तों—विट्ठल और अन्नास्वामी का चित्रण भी है जो दादा के जेल जाने के बाद नूर पर हाथ साफ़ करना चाहते, हैं किन्तु फिर दोनों नाटकीय ढंग से अपनी बुरी नीयत से बदलकर मानवता का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

शैलेश मटियानी के अन्य उपन्यासों की तरह इसमें नारी को बार-बार अनावृत नहीं किया गया है, यद्यपि नूर और वीरेन को दादा के पकड़े जाने के तुरन्त बाद ही आलिंगन-बद्ध दिखाने की लेखक की बेताबी समझ में नहीं आती। इस घटना से नूर और वीरेन दोनों के चरित्रों पर अनावश्यक दाग़ लग जाता है और दादा की इन दोनों के प्रति उदार भावनाओं को देखते हुए एक निकृष्ट रुचि के व्यक्ति को भी यह बात बुरी लगेगी। 'मानव ऐसा भी कर सकता है' की आड़ में लेखक द्वारा इसे स्वाभाविक चित्रण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि चरित्रों के स्वतन्त्र विकास के नाम पर लेखक जब जो मर्जी हो लिखने लग जाएगा तो साहित्य से संगति को बहिष्कृत करना पड़ेगा। वैसे चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास अन्य दो की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सबसे बढ़िया चित्रण हुआ है नूर के चरित्र का, जिसका मानसिक द्वन्द्व उपन्यास का प्रमुख आकर्षण है।

कबूतरखाना

'कबूतरखाना' शैलेश का दूसरा उपन्यास है। इसकी भूमिका में पहले उपन्यास की आलोचनाओं के कुछ उदाहरण दिए गए हैं और एक स्थान पर यह भी लिखा है कि—"बम्बई-जैसी महानगरी में पलने वाले आवारा समाज का इतना जीवन्त और विश्वास्य चित्रण अब तक देखने को नहीं मिला।"[1]

गणपत रामा शराब के नशे में किसी 'गाँडा गुजराती' को गालियाँ देते हुए कथा शुरू करता है और कहता है—"हमेरे को कहिंगा, आक्खा गुजरात का, आक्खा महाराष्ट्र का, आक्खा इंडिया का, आक्खा वरल्ड का हिस्टरी कबूतर का माफ़िक हग देगा।"[2] और फिर सचमुच लेखक उसी के शब्दों में, उसी की भाषा में कबूतर की तरह उपन्यास की सारी कथा को 'हग' देता है।

१. कबूतरखाना, भूमिका
२. वही, पृ० २

महाराष्ट्र के किसी गाँव का था गणपत। माँ हैजे से मर गई। बहन रोटी कमाने के लिए बम्बई आ गई और परिस्थितियों से विवश होकर, वेश्या बनकर गणपत को रुपये भेजने लगी। एक दिन गणपत बहन से मिलने बम्बई आया तो बहन ने भाई के सामने अपने शर्मनाक चेहरे को ले जाने के बजाय आत्महत्या करनी ही ठीक समझी। गणपत अब होटल में बैरा और होटल के मालिक का घर का नौकर हो गया। सेठानी ने उसे तर माल खिलाना शुरू किया और उस पर कुदृष्टि रखने लगी। वहाँ से नौकरी छोड़कर वह बूट-पालिश करने लगा, किन्तु सेठ और पोपट लोगों की छेड़खानी से तंग आकर वह काम भी छोड़ दिया। फिर वह रामू दादा की कम्पनी में भरती होकर शराब का धन्धा करने लगा। दारू के धन्धे मे बार-बार पकड़े जाने का खतरा था। इसलिए उसने निश्चय किया कि किसी सेठ के घर मे नौकरी करेगा। बर्तन घिसने पड़ेगे तो क्या हुआ,तर खाना और मुलायम बिछौना तो मिलेगा। और भुलेश्वर के मन्दिर के बाहर जब वह भिखारी बनकर बैठा तो सचमुच एक सेठानी ने, 'भुलेश्वर के नामी-गिरामी सेठ नगीन भाई की सेठानी ने पूजा के थाल के नीचे गणपत के हाथ को भीड़ छँटने तक दबाए रखा।' और फिर किस तरह उसने उस सेठानी 'वसुन्धराबाई' के साथ मजे उड़ाए, यह सारी पोलपट्टी उसने यहाँ खोल दी। इसके साथ ही उसने अपने दोस्त पटवर्धन रामा (घर के नौकर) के यशोदाबेन के साथ उड़ाए मज़ों की भी कहानी सुनाई। यशोदाबेन का पति करसन भाई सेठ शकुंतलाबाई नाम की वेश्या पर ही धन और तन लुटाता रहा और उधर यशोदा पटवर्धन पर। उनके एक और साथी सखाराम ने अपनी सेठानी आनन्दीबाई को एक लड़की दी। एक पटेल सेठ दातुनवाली लड़की लक्ष्मीबाई को लेकर सिनेमा देखने गया और पीछे से उनके नौकर पन्नू भाऊ ने शारदा सेठानी को प्रसन्न कर दिया। बाद में यह सेठानी भी मालमता लेकर इसी के घर बैठ गई। इधर गणपत ने अपनी कथा यूँ सुनाई कि एक दिन सेठ दातुनवाली को ऊपर के कमरे में ले गया और उसकी पप्पी ली। इधर गणपत ने नीचे आकर सेठानी की पप्पी ली और फिर सेठानी ने अपने को पूर्णरूप से गणपत के हवाले कर दिया। इसके साथ लालजी सेठ की सेठानी नीलाम्बरी-बाई की कथा भी है। सेठ एक पठानी रंडीपर मस्त हो गया और नीलाम्बरीबाई के लिए उसने होटल के 'रामा लोगों' को छूट दे दी जिन्होंने नीलाम्बरीबाई के जिस्म को 'कापूस' की माफ़िक धुन दिया था। बाद में नीलम्बरी पगडू के इश्क में फँसकर उसके साथ भाग गई।

यह है इस उपन्यास की कथा जिसे गणपत रामा ने दूसरे रामाओं को सम्बोधन करते हुए कहा है। एक दृष्टि से हम इसे यथार्थ चित्रण भी कह सकते है क्योंकि इसमें बम्बई के उन रामा लोगों का यथार्थ चित्रण भी हुआ है जो रात को दस-ग्यारह बजे बर्तन-भाँड़े के काम से निपट कर किसी गन्दी बस्ती की खोली में या ऊँची-ऊँची बिल्डिंगों की सीढ़ियों के नीचे मिलकर बैठते हैं और अपनी स्त्रियों से घिरी हुई किन्तु स्त्री-सुख से वंचित जिन्दगी को बहलाने के लिए दारू-सुन्फे के साथ-साथ काल्पनिक स्त्री-सुख की गप्पें मारते है। यहाँ जिस तरह 'घंटा, गू, मूत, पाप' आदि गन्दे शब्दों का प्रयोग होता है, जिस तरह की गुदगुदी पैदा करने वाली उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं का इस्तेमाल होता है, जिस तरह दिल को सांत्वना देने के लिए स्त्रियों को अनावृत किया जाता है और जिस तरह अपनी गप्प को सौ फ़ीसदी सच्चा सिद्ध करने के लिए 'झूठ बोलना गू खाने के माफ़िक' पर और हर बात को आँखों-देखा, कानों-सुना बताने पर जोर दिया जाता है, ये सभी बातें इस उपन्यास में बड़ी यथार्थता से चित्रित हुई हैं। ये सब बातें कहते समय जैसे लेखक बीच-बीच में खाली स्थान छोड़ता गया है और उपन्यास लिख चुकने के बाद जैसे उसे यथार्थवादी या प्रगतिवादी रंग देने के लिए उसने वे खाली जगहें भर दीं, जिनमें कहीं तो गणपत के ही द्वारा गीतगीता की

वेश्याओं (माँ-बहनों) के प्रति सहानुभूति दिखाई गई है, कहीं नारी के शोषण के मूल कारण को आर्थिक असमानता कहा गया है और कहीं 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी' को कह कर वर्तमान काँग्रेस-राज को आड़े हाथों लिया है। किन्तु ये सब बातें वैसे ही दिखाई देती हैं जैसे फूहड़ औरत के चेहरे पर पुता हुआ पाउडर।

किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई

इस उपन्यास के बाद बम्बइया जीवन पर लिखा गया 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' है। यह कथा भी उस्ताद और उसके चेले पोपट की चिलम की कली की रोशनी में कही गई है किन्तु कथा शुरू से आखिर तक एक ही कड़ी में पिरोई गई है। भुलेश्वर का एक सेठ नगीनभाई नर्मदा जवेरी नाम की ऐसी लड़की से ब्याह करता है, जिसकी कॉलेज के दिनों में चन्द्रकान्त नामक युवक से घनिष्ठ मैत्री थी। शादी के बाद सेठ नगीनभाई नर्मदाबेन की काम-वासना को तृप्त करने में अक्षम सिद्ध होता है और नर्मदाबेन हिन्दी के एक सुन्दर तरुण कवि कृष्ण (जिसे नर्मदाबेन करसन कहने लगी) से प्रेम करने लगती है। कृष्ण से अपनी वासना तृप्त करने के लिए नर्मदाबेन कई प्रयास करती है, कभी बेहोश होकर उसकी छाती पर सिर टिकाए पड़ी रहती है, कभी एकदम नंगी होकर उसे आलिंगन में भरने का प्रयास करती है, किन्तु कृष्ण दर्शन, संस्पर्शन, भाषण आदि सुख देने के बाद भी अन्तिम सुख से उसे वंचित कर देता है जिसका कारण होता है उसका एक विधवा केलेवाली गंगूबाई से प्यार, जो तरह-तरह के इशारों से अपने ग्राहकों को बुलाती है किन्तु सिर्फ केले ही बेचती है।

भूमिका में कहानी कहनेवाले और सुननेवाले उस्ताद और पोपट का परिचय दिया गया है। पोपट के पिता रामदुलारे को नगीन सेठ ने अपनी नामर्दी पर पर्दा डालने के लिए विपुल-वासनावती नर्मदाबेन के लिए रखा था और उसे बाद में चोरी का आरोप लगाकर नासिक जेल भिजवा दिया था। पोपट की माँ रामी को नगीन सेठ ने पाँच रुपये भी नहीं दिये थे और तब उसने रहीम पठान को अपनी आसन्नप्रसवा काया सौंप दी थी, जिसके कारण वह तो मर गई, किंतु पेट का पोपट बाहर आ गया जो अब सोलह साल का हो चुका। इस पोपट को बैंकों में डाका डालनेवाले कल्लन उस्ताद ने, डाके छोड़कर, होटलों में प्लेटें धोकर (अर्थात् मानवता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण पेश कर) पाला था। (क्या ही अच्छा होता यदि उपन्यास उस्ताद और पोपट की इसी कहानी को लेकर लिखा गया होता।) भूमिका में ही पोपट के गुणों का यूँ बखान किया गया है कि वह सोलह वर्ष की कच्ची उम्र में ही अतृप्ता-अप्रसूता सुहागिनों को गर्भाधान...और रंडियों को गर्भपात की रीतियाँ बताता है। वह कोकशास्त्र का जानकार भी है और स्त्रियों के पदमनी, चित्रणी, शंखिनी, हस्तनी—चार भेद जानता है, किन्तु उस्ताद का नया कोकसिद्धान्त है कि तिरिया के दो ही भेद होते हैं, सेठानी और घाटन (नर्मदाबेन और गंगूबाई।)

उपन्यास में नर्मदाबेन की कहानी घोर विलासिता की तस्वीर लेकर कही गयी है। शादी के बाद उसके लिए रामदुलारे रखा गया था। फिर सिने-बाँसुरीवादक बाँकेबिहारी ने उसे प्रेम की बाँसुरी सिखाई और एक पुत्र दिया। पुत्र को नगीन भाई ने सात मंजिल की ऊँचाई से गिरा दिया। इसके बाद नर्मदाबेन तरुण कवि कृष्ण में उलझ गई। उसके आगे उसने अपनी तमाम वासना का नग्न प्रदर्शन करते हुए जैसे लेखक को उपन्यास लिखने की प्रेरणा भी दी—"इन सेठ कहानेवालों की जिन आन्तरिक विकृतियों का जिक्र मैंने किया है, उन्हें एक पुस्तक के रूप में लिखकर घर-घर पहुँचाने की चेष्टा करना ताकि किसी को तो

गैरत महसूस हो।" और लेखक ने उसकी प्रायश्चित्तपूर्ण विनती से विचलित होकर अपनी दारुण व्यथा की अभिव्यक्ति उपन्यास के रूप में कर दी।

बम्बइया जीवन पर लिखे गए इन तीन उपन्यासों को पढ़ने के बाद शैलेश मटियानी के प्रति कुछ ऐसी धारणा बन जाती है कि जैसे उन्होंने अपनी भड़ास निकालने के लिए, किसी पर क्रोध उतारने के लिए, किसी से प्रतिशोध लेने के लिए साहित्य के शस्त्र का प्रयोग किया है। सिने-कलाकारों, डायरेक्टरों, प्रोड्यूसरों और गीत-लेखकों पर यत्र-तत्र छींटे कसे गए हैं। इसके अतिरिक्त सेठों और सेठानियों, विशेषकर गुजराती सेठों और सेठानियों, के प्रति उन्हें बेहद आक्रोश था, जिसे प्रकट करने के लिए शैलेश मटियानी ने उन्हें अत्यन्त विकृत और बीभत्स रूप में उपस्थित किया है। इसके प्रतिकूल बम्बई के गुंडा और दादा समाज तथा वेश्याओं के प्रति सब जगह सहानुभूति व्यक्त की गई है। यथार्थवादी और प्रगतिशील लेखक के रूप में ख्याति पाने के लिए यह बहुत ही आसान तरीका है। यह ठीक है कि बम्बई के इस पिछड़े समाज में भी मानवता के ऊँचे गुण हो सकते हैं, किन्तु यह मानकर चलना कि बम्बई में विकृत जीवन व्यतीत करनेवाले केवल गुजराती सेठ-सेठानियाँ ही हैं और उनकी पोलपट्टी खोलना साहित्यकार का एक पुण्य कर्तव्य है, बहुत बड़ा दुराग्रह है। साहित्यकार मानव को देवत्व और दानवत्व दोनों से युक्त मानकर चलता है। किसी विशेष समाज के प्रति सुनी-सुनाई बातों के आधार पर पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों को लेकर लिखनेवाला साहित्यकार न तो अपने चरित्रों के प्रति न्याय कर सकता है और न समाज को ही नई दिशा दे सकता है।

विशेष समाज और विशेष व्यक्तियों के प्रति आक्रोश व्यक्त करने के ओछे लक्ष्य के अतिरिक्त लेखक ने साहित्य के पवित्र माध्यम का उपयोग अपनी और पाठकों की दमित वासनाओं को उत्तेजित करने के लिए ईंधन के रूप में भी किया है। यद्यपि 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' उपन्यास की भूमिका में काम-वासनाओं का सप्रयोजन चित्रण करने का दावा किया है, किन्तु उपन्यासों को पढ़ने के बाद जो प्रभाव हृदय में रह जाता है, उसको देखते हुए काम-वासनाओं के चित्रण का प्रयोजन उन्हें भड़काने के सिवाय और कुछ नहीं लगता। मलेरिया के रोगी को कुनैन खिलाने के स्थान पर लेखक ने 'गू' खिलाने की चेष्टा की है। 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' के पात्र रामा स्वामी के ही ये शब्द हैं—'गू तो सबके पेट में होता है सेठ, पर बिस्तरे में या चौके में कोई नहीं हगता।" किन्तु लेखक ने स्वयं बिस्तर, चौके या पूजागृह आदि किसी की भी मर्यादा का पालन नहीं किया है।

'बोरीवली से गंगूबाई तक' की शैलेश मटियानी की यात्रा वास्तव में ऊँचाई से निचाई की ओर है। 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' उपन्यास में लेखक में चिन्तन, संयम और समाज के प्रति एक दर्द दिखाई पड़ता है, किन्तु अगले दोनों उपन्यासों में एक विकृत अहं ही छाया हुआ लगता है। किन्तु इतना होते हुए भी मेरा विश्वास है कि शैलेश मटियानी हिन्दी साहित्य को सुन्दर योगदान दे सकेंगे। तरुणावस्था में बहका हुआ मन प्रौढ़ावस्था में किस महानता को छू लेता है, इसके उदाहरण सूर और तुलसी हमारे सामने हैं। हाँ, साहित्यकार में एक सशक्त भाषा और शैली का होना आवश्यक है, और शैलेश मटियानी की भाषा-शैली की सशक्तता के सम्बन्ध में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता।

हौलदार

'हौलदार' कूर्मांचल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया शैलेश मटियानी का उपन्यास

है। इस उपन्यास में अनेक स्त्री-पुरुष पात्र हैं, किन्तु मुख्य स्थान हौलदार डुँगरसिंह का है। भावजों की जली-कटी बातें सुनकर वह सेना में भर्ती हो जाता है, किन्तु प्रशिक्षण-काल में अनाड़ीपन से अपनी ही रायफल की गोली अपनी टाँग पर मार लेता है, जिससे उसकी टाँग काट दी जाती है और उसे सेना से डिस्चार्ज कर दिया जाता है। हौलदार डुँगरसिंह वापस गाँव को लौट आता है और ऐसा प्रकट करता है कि कश्मीर फ्रन्ट पर वह शत्रु की गोली से जख्मी हुआ था और उसको अपनी टाँग की बलि देनी पड़ी। वह बातों का ऐसा कुशल व्यापारी है कि अन्त तक उसका भेद नहीं खुलता। सेना में भरती होने से पूर्व उसका विवाह न हो पाया था। इसलिए अब टाँग कट जाने पर विवाह होना और भी मुश्किल हो गया। लेखक ने हौलदार के मन की कुण्ठाओं का खूबी के साथ चित्रण किया है। उसी के गाँव का एक अन्य सैनिक चतुरसिंह कश्मीर-फ्रन्ट पर तैनात है। उसकी पत्नी नरुली को पाने की लालसा डुँगरसिंह के मन में उठती है। नरुली गर्भवती होती है और डुँगरसिंह के हृदय में भी सद्विचार उदित होते हैं। कहानी का अन्त अकस्मात् हो जाता है परन्तु लेखक की टिप्पणी से प्रतीत होता है कि शेष कहानी इसी उपन्यास के दूसरे भाग में प्रस्तुत की जाएगी।

प्रस्तुत उपन्यास में कुमाऊँ के कौटुम्बिक जीवन का यथार्थ चित्र खींचा गया है। वहाँ के अन्धविश्वासों और देवी-देवताओं के अवतरणों का भी सजीव वर्णन है। जाति-पाँति की भावना किस प्रकार कार्य करती है इसका भी संक्षिप्त चित्रण किया गया है। कुमाऊँनी लोकगीत भी प्रसंगानुकूल यत्र-तत्र पिरोये गए हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि लेखक ने समाज के बीभत्स आइने पाठकों के सामने रख दिए हैं और शोषितों, पीड़ितों के प्रति उनके मन में सहानुभूति और ममता जगाने के लिए समाज के कुछ नग्न चित्र भी सामने रखे हैं। शैलेश मटियानी ने आँचलिक वातावरण की भाषा का द्विविध प्रयोग किया है। लेखक ने प्रस्तुत कृति में कुमाऊँनी शब्दों, लोकोक्तियों, मुहावरों का प्रयोग दिल खोलकर किया है जिससे वह हिन्दी ही नहीं रह गई है। अँचल विशेष के कुछ शब्द और मुहावरे तो कुमाऊँनी जाननेवालों के लिए भी अपरिचित हो सकते हैं। अतः यदि वे हिन्दी के पाठकों के लिए अस्पष्ट, दुर्बोध एवं कृत्रिम हो जाएँ तो आश्चर्य ही क्या ? कभी-कभी तो समस्त वाक्य ही आंचलिक हो जाता है। फिर भी शैलेश मटियानी की भाषा सजीव और रोचक है। उसके उपमान सर्वथा नवीन और अपने हैं, जैसे—'मन धूप लगी बरफ-सा पिघल रहा था', 'हाथ से गिरे काँच-सा हौलदार का सपना टूट गया' आदि—परन्तु 'बाबिल की लट-सी लम्बी' उपमा की सार्थकता तब तक समझ में आना सम्भव नहीं जब तक पाठक बाबिल घास से परिचित न हो। भाषा में स्वाभाविकता लाने के लिए शैलेश ने अँग्रेजी शब्दों के उच्चारण बोली के अनुरूप ही लिखे हैं—अटेंसन, अबौट्टन, लैफ्ट-रैट, फ़ैर। कहा तो जाता है कि आँचलिक उपन्यासों में क्षेत्रीय संस्कृति का अविकल चित्र अंकित किया जाता है, पर फणीश्वरनाथ 'रेणु' और शैलेश मटियानी ने असंस्कृत क्षेत्रों के जीवन से अपने उपन्यासों की कथावस्तु ग्रहण की है। कुल मिलाकर आँचलिक उपन्यासकार के रूप में शैलेश को रेणु के समकक्ष रखा जा सकता है। यों आंचलिकता की रक्षा में दोनों को एक स्तर पर रखने पर भी उपन्यासकार के रूप में शैलेश रेणु से इक्कीस ही ठहरेंगे, क्योंकि इनके उपन्यासों में एक निश्चित कथा होती है। उस कथा में प्रवाह होता है और विभिन्न मनःस्थितियों के चित्रण और विश्लेषण द्वारा उस कथा के पात्रों का विकास होता है।

वास्तविकता तो यह है कि आज के जन-मानस को आंचलिकता (संकीर्णता) की भावना से बोझिल नहीं करना है, क्योंकि देश विच्छिन्नता की ओर बढ़ रहा है। प्रान्तों के

भाषानुसार विभाजन ने देश में संकीर्णता का बीज बो दिया है। अब लोकभाषा और आँचलिकता को बढ़ावा देकर क्या हम पुनः छिन्न-भिन्न होने का प्रयत्न नहीं कर रहे है ? प्रान्तीयता स्वयं संकीर्णता है। और आज अनजाने में ही हम प्रान्तीय-संकीर्णता से आँचलिक संकीर्णता की ओर अग्रसर हो रहे है। अंचल की ओट में हम भारतीय अखण्डता को नही देख पा रहे हैं। हमारा अनुभव, हमारा ज्ञान सीमित होने लगा है और हमारी भावनाएँ भी सकुचित होकर क्षुद्र आंचलिकता तक ही सीमित रह गई हैं। जीवन की व्यापकता, राष्ट्र की विशालता और लोकहित दृष्टिपथ से ओझल होता जा रहा है। आंचलिकता की ओर इतनी दूर तक बढ़ना क्या देश के लिए श्रेयस्कर होगा ? कहीं ऐसा न हो कि अंचल-विशेष का मोह हमारे 'स्व' को और भी संकीर्ण कर देश को विघटित और विशृंखल न बना दे। हिन्दी आज राष्ट्रभाषा है। कही ऐसा न हो कि भाषा-संकीर्णता के फेर में पड़कर हम उस राष्ट्रभाषा के स्वरूप को ही विकृत कर दें। इसी प्रकार हमें यह भी देखना होगा कि हम अचल की संस्कृति के नाम पर विकृति को तो सामने नहीं ला रहे हैं ? आज देश को एक करने की आवश्यकता है। सब के मन में यह भावना जगाने की आवश्यकता है—हम पहले राष्ट्र के है, फिर प्रांत के, फिर जिले के और अन्त में अंचल के। हमारी भाषा एक है। आँचलिक भाषा का मोह भी हमें छोड़ना होगा, तब यह आंचलिकता क्यों ?

हमारे साहित्य-स्रष्टा का एक महान् उत्तरदायित्व है। अतः उसका पहला कर्तव्य है हिन्दी को राष्ट्रभाषा के अनुरूप गौरव प्रदान करने के लिए विकृति से भाषा की रक्षा कर उसे एक व्यापक रूप देने में सहयोग करना। इसके लिए भाषा में आंचलिकता के मोह का उसे त्याग करना पड़ेगा। अंचल की बुराई में रस लेने में कोई तुक नहीं। भले-बुरे सर्वत्र होते हैं—गाँव में भी और नगर में भी। क्षेत्रीय जीवन की सकीर्णता से ऊपर उठकर समस्त भारतीय जीवन-दर्शन का स्पर्श करते हुए इस प्रकार के साहित्य की रचना करनी चाहिए जिससे राष्ट्रीय गौरव बढ़े। व्यापक कथावस्तु लेकर भी अंचल की विशेषताओं का चित्रण कर कलाकार आदर्श समाज के निर्माण में सहायक हो सकता है। उपन्यासों के विषय, पात्र और भाषा भी आंचलिक होने के पहले सार्वदेशिक हों, तभी श्रेयस्कर है।

खण्ड १

(ख) कूर्मांचल के कहानीकार

गोविन्दवल्लभ पन्त

गोविन्दवल्लभजी पन्त का रचनाकाल उनके विद्यार्थी-जीवन से ही आरम्भ होता है। उनकी प्रथम कहानी 'कला की विजय' ('आज', वाराणसी) जुलाई, १९२२ में प्रकाशित हुई। ऐतिहासिक दृष्टि से पन्त जी 'विकासकालीन भावमूलक आदर्शवादी परम्परा की कहानियों की रचना करनेवाले मनीषियों—जयशंकर प्रसाद, राधिकारमणप्रसाद सिंह, रायकृष्ण दास आदि में से हैं।'[1] पन्त जी के दो कहानी-सग्रह, 'एकादशी' (१९२४ ई०) और 'संध्याप्रदीप' (१९३१ ई०) हैं। इसके बाद विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः १२५ कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। पन्त जी का कहानी-क्षेत्र ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक तथा सामाजिक आदि रहा है। प्रारम्भिक रचनाओं में 'जूठा आम', 'मिलन मुहूर्त', 'प्रियदर्शी' ('एकादशी' में संकलित) तथा 'संध्याप्रदीप', 'साहित्यिक छल', 'गीत प्रतियोगिता', 'फटा पत्र' ('संध्याप्रदीप' में संकलित) प्रतिनिधि कहानियाँ हैं; 'गुरु की खोज' (सरस्वती, १९३६), 'करामात' (सरस्वती, जनवरी, १९४०), 'काली बिल्ली' (आज, सितम्बर, १९४४), 'गृह-युद्ध' (आज, दिसम्बर, १९४५), 'साड़ी की लपेट' (संगम, नवम्बर, १९४७), 'सुधी निकोटिन' (संगम, १९४९), 'भिक्षालाक्ष' (धर्मयुग, मई, १९५१), 'कागज की बोतल' (हिन्दुस्तान, सितम्बर, १९५३), 'मूर्तिपूजा', (धर्मयुग, मई, १९५४), 'सन्देह की चाभी' (हिन्दुस्तान, जुलाई, १९५५), 'अल्ला दिया' (हिन्दुस्तान, जून, १९५५), 'मोह का दण्ड' (आजकल, मार्च, १९५७), 'स्पर्धा' (आजकल, दिसम्बर, १९५७), 'गुस्से के रंग' (त्रिपथगा, अप्रैल, १९५९) सामाजिक एवं मानवतावादी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं, तो 'तैमूर लंग' (सरस्वती, जनवरी, १९२७), 'राजद्रोही का धन' (मध्यप्रदेश संदेश), 'प्रियदर्शी' और 'मिलन मुहूर्त' प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। इनके अतिरिक्त 'राजा नल की कथा' (संगम, दिसम्बर, १९५०) आदि पन्तजी की पौराणिक कहानियाँ हैं।

पन्तजी की प्रारम्भिक कहानियों में भावात्मक आदर्शवाद की बहुलता है, जिनमें कवित्व एवं कल्पना की प्रचुरता है। अधिकांश कहानियों के कथानक इतिवृत्तात्मक शैली में हैं और घटनाओं का विकास नाटकीय ढंग से होता है। 'जूठा आम' एक ऐसे प्रेमी की कथा है जो अपनी प्रियतमा के दर्शन आम की गुठली से उत्पन्न वृक्ष में पाता है। इस कथा का विकास दैवगत संयोग से होता है। माया और कहानी के नायक 'मैं' में सच्चा आकर्षण है। वे दोनों एक-दूसरे को अव्यक्त ढंग से प्रेम करते हैं। एक दिन माया के मुँह से आम चूसते समय अचानक गुठली फिसल पड़ती है। माया को अचानक यह ध्यान आता है कि वह गुठली 'मैं' के चौके में गिरेगी। इसलिए वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ती है और गुठली के साथ ही वह भी चौके पर गिर कर मर जाती है। 'मैं' उस गुठली को माया के प्रेम का प्रतीक मानकर अपने जीवन में वैराग्य ले लेता है। कालान्तर में उसी गुठली से एक

---

१. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० १४८

का पौधा होता है। उसकी देख-भाल कर वह उसे वृक्ष में परिणत होते देखता है और उसकी छाया तथा फल से सन्तोष पाकर वह अपना शेष जीवन व्यतीत करता है। 'फटा पत्र' और 'गीत प्रतियोगिता' भी इसी प्रकार की कवित्वपूर्ण शैली में है तथा भावुकता की प्रचुरता में इनका वातावरण काव्यमय-सा हो गया है। विशेषकर प्रकृति चित्रण की भाषा तो अत्यन्त ही कवित्वपूर्ण हो गई है। "सूर्यास्त हो चुका था। सम्मुखवर्ती हिमश्रेणी में दिनपति की सुवर्ण किरणें झिलमिला रही थी। दूर के पर्वतों में नीले और बैंगनी रंग की छाया पड़ रही थी।"[1] "इनकी भाषा कवित्वपूर्ण है किन्तु बाह्याडम्बरपूर्ण अथवा कृत्रिम नहीं। कल्पना, भावात्मकता, असम्भव घटनाओं के आधार पर नवीनता की सृष्टि, परिमार्जित भाषा इनकी कहानियों की विशेषताएँ हैं।"[2]

पन्तजी की कहानी-कला में विकास भी मिलता है। बाद की कहानियों की घटनाएँ नाटकीय एवं काल्पनिक-सी न लगकर स्वाभाविक प्रतीत होती है और वातावरण अधिक कवित्वपूर्ण एवं भावात्मक आदर्शवादी न होकर जीवन की यथार्थ एवं शाश्वत समस्याओं से मेल खाता है और यत्र-तत्र मानवतावादी दृष्टिकोण झलकता है।

'सुश्री निकोटिन' में धूम्रपान के दुर्गुणों का बहुत ही स्वाभाविक ढंग से चित्रण किया गया है। 'मोह का दण्ड' कहानी की कथावस्तु एक तिब्बती खानाबदोश परिवार के जीवन पर आधारित है। खानाबदोश सिरतन दोर्जे और उसका बेटा लोंबो भिक्षावृत्ति से अपना जीवनयापन करते है। वे ऊंठाधूरा दर्रे से होकर भारत आते हैं। मार्ग में उन्हें एक दूसरा तिब्बती परिवार भी मिलता है। उस परिवार की कन्या कोंबो से लोंबो का मोह होता है। परिणामतः इसी मोह के चक्कर में वह अपने पिता के प्राणों से हाथ धो बैठता है और यही उसके मोह का दंड होता है। 'स्पर्धा' कहानी मानवतावादी भावभूमि में खड़ी है। कहानी की नायिका गुलाबो अपने विवाह की शर्त रखती है कि जो व्यक्ति विकराल उत्ताल तरंगों से पूर्ण घोरा नदी को तैर कर, मन्दिर में पहुँचकर पहले उसका हाथ पकड़ेगा, उसी से वह विवाह करेगी। उस प्रतियोगिता में भाग लेनेवालों की संख्या घोरा नदी की विकरालता को देखकर अधिक नहीं होती। चनन, चतुरा प्रख्यात तैराकों के अतिरिक्त एक साधारण कोटि का तैराक महिपाल भी भाग लेता है। परन्तु वास्तविक स्पर्धा चनन और चतुरा में ही होती है। चतुरा घोरा नदी को पार कर मन्दिर पर पहुँच जाता है परन्तु पीछे मुड़कर उसे चनन कहीं भी नहीं दिखाई देता। वह किसी दुर्घटना से सशंकित होकर चनन को खोजने के लिए वापस आता है, तो देखता है कि चनन के लंगोटे की रस्सी किसी मजबूत तार से बुरी तरह से उलझी हुई है। वह चनन की सहायता कर उसकी प्राणरक्षा करता है। इतने में महिपाल तीसरा प्रतियोगी गुलाबो का हाथ पकड़ लेता है। चनन आश्चर्यपूर्वक चतुरा की कृतज्ञता प्रकट करते हुए जब कहता है कि विजय का पुरस्कार छोड़कर भी तुम चले आए तो चतुरा गौरवपूर्ण शब्दों में उत्तर देता है—"नारी का प्रेम फिर मिल सकता है लेकिन एक मित्र का प्रेम, मित्र को इस तरह मृत्यु के चक्कर से बचा लेने का आनन्द, वह कितनी बड़ी चीज है, दोस्त ? मैंने उसे प्राप्त कर लिया।"

ऐतिहासिक कहानियों में 'प्रियदर्शी' कहानी में असम्भव घटनाओं के आधार पर अशोक, भिक्षु तथा सिपाहियों की चारित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन किया गया है। चरित्र-चित्रण प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया है। 'मिलन मुहूर्त' में उपगुप्त और वासवदत्ता के प्रेम

१. संध्याप्रदीप, पृ० ६१
२. हिन्दी कहानियों की विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० १६८-६६

की संवेदनापूर्ण कहानी है। इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण भी इसी ढंग का हुआ है। कथावस्तु की घटनाएँ अधिकतर नाटकीय तथा संयोग पर आश्रित हैं। 'तैमूर लंग', 'सबसे बड़ा रत्न', 'राजद्रोही का धन' प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। 'राजद्रोही का धन' कहानी में शिवाजी और औरंगजेब की इतिहास-प्रसिद्ध भेंट तथा शिवाजी के औरंगजेब के कारागार से छूटने की कथा इतिवृत्तात्मक ढंग से कही गई है।

पन्त जी प्रमुखतया नाटककार हैं। उनकी नाट्यकला प्रत्येक कहानी अथवा कृति में स्पष्ट झलकती है। घटनाओं का गठजोड़ प्रायः नाटकीय ढंग से ही करते हैं तथा पात्रों के सम्वाद नाटकीय ढंग के छोटे-छोटे और प्रभावोत्पादक होते हैं। ऐतिहासिक कहानियों का क्षेत्र कोई एक विशेष काल या युग का न रहकर इतिहास के विभिन्न कालों की विभिन्न घटनाएँ रही हैं और पन्त जी अब भी निरन्तर हिन्दी कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि में लीन हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पन्त की पाँच कहानियाँ—'पानवाला', 'उस बार', 'दम्पति', 'बन्नू' और 'अवगुंठन'—'पाँच कहानियाँ' नामक संग्रह में संगृहीत हैं। इन कहानियों में सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के सुकुमार कवि का मन-विहंग कल्पनालोक को त्याग कर जीवन के यथार्थ धरातल पर अवतरित होता है। वैसे कथा-साहित्य की ओर पन्त जी की रुचि कवि-जीवन के प्रारम्भिक काल से ही रही है। आठवीं कक्षा में पढ़ते समय इन्होंने 'हार' नामक एक उपन्यास लिखा था। प्रस्तुत रचना 'ग्राम्या' से पहले की रचना है। हम इसे "पन्तजी की प्रगतिशील रचनाओं की पूर्व-भूमिका स्वीकार कर सकते हैं। इन्हीं कहानियों के द्वारा पन्त जी ने लोक-जीवन में प्रवेश किया। 'ग्राम्या' की जनता ग्रामीण है और प्रस्तुत कहानी-संग्रह की जनता नागरिक।"[1]

'पानवाला' कहानी में समाज और व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित होने वाली विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का संश्लेषण और विश्लेषण है। कहानी का नायक पीताम्बर निम्न वर्ग का पात्र है।' सृष्टिकर्ता ने उसे निर्माण करने में किसी प्रकार का संकोच या संकीर्णता न दिखाई थी। "दुःख, दैन्य और दुर्भाग्य के जीवन-प्रवाह के तट पर ठूँठ की तरह खड़ा उसके तीक्ष्ण, कटु आघातों से लड़ता हुआ पीताम्बर उस अभाव-वाचक स्थिति पर पहुँच गया है, जहाँ पर आशा, तृष्णा, लोभ, जीवनेच्छा, सौन्दर्य, स्पर्धा, मोह, ममता, उग्र आदि भाववाचक विभूतियों के अत्याचार-उत्पात का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता ...उसका समस्त विश्वास मात्र के विश्वास से उठ गया।"[2] समाज की विकट परिस्थितियाँ उसके मनोबल को समाप्त कर देती हैं और अब "समाज की दुर्बलता को वह अपनी दुर्बलता, उसके दोषों को अपने ही दोष समझने लगा। वह अपनी ही आँखों में गिर गया।"[3] प्रस्तुत कहानी में कहानीकार की दृष्टि सामाजिक व्यवस्था के उस खोखलेपन

१. ज्योति विहग, पृ० २६५
२. पाँच कहानियाँ, पृ० १५-१६
३. वही, पृ० २३

पर गई है, जिसने सभी को पीताम्बर की तरह निर्जीव बना दिया है। लेखक ने इस कहानी में पीताम्बर के माध्यम से व्यक्ति का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक अध्ययन और समाज का पूरा दर्शन किया है।

'उस बार' कहानी में आधुनिक शिक्षा प्राप्त कुछ अविवाहित नवयुवकों के प्रणय-व्यापार का चित्रण है। प्रेम अन्ततः एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न स्वभावों में भिन्न-भिन्न रूप में काम करता है। सुबोध, सतीश, गिरीन्द्र, नलिन द्वारा प्रेम का भिन्न-भिन्न रूप प्रकट हुआ है। इस कहानी के सभी पात्र धनी वर्ग के हैं। गिरीन्द्र और नलिन व्यावहारिक युवक हैं। वे प्रेम को शिक्षा की तरह जीवन का एक साधन मानते हैं। गिरीन्द्र अपने प्रेम की झूठी कहानियाँ कह कर अपनी मित्रमण्डली का मनोविनोद करता है, परन्तु अपनी प्रेमिका को सबके सामने प्रकाशित नहीं करता। वह चरित्रहीनता का केवल अभिनय मात्र करता है। वह हमारे युवकों में प्रचलित आधुनिक छैलापन को कुंठित नहीं करना चाहता था, क्योंकि हमारा बेकार, ज्ञान-संदिग्ध युवक समाज शिष्ट और शालीन कहे जाने में झेंपता है।

सतीश और सुबोध सरल स्वभाव और भावुक युवक हैं। लेखक के शब्दों में, "सतीश के प्रेम का प्रवाह शरीर से हृदय की ओर, सुबोध का हृदय से शरीर की ओर था। एक फ्रायड के सिद्धान्तों का नमूना था, दूसरा प्लेटो के। यह नहीं कि एक प्रेमी था, दूसरा कामीमात्र—दोनों में आदर्श-भेद था।"

सतीश और सुबोध के प्रेम-व्यापार से कथा आरम्भ होती है। सतीश विजया से प्रेम करता है परन्तु दोनों के स्वभाव मे वैषम्य है। सतीश के स्वभाव में जितनी चंचलता है, विजया उतनी ही अधिक स्थिरचित्त, प्रेम की अधिक गम्भीर परिभाषा में विश्वास रखनेवाली, प्रेम को एक सुव्यवस्थित, सम्मानित गार्हस्थ्य का भाग, सर्वोज्ज्वल भाग माननेवाली शिक्षित लड़की है। इसलिए स्वभावतः सतीश उसे अपने रोमान्स का खिलौना नहीं बना सकता है और वह सतीश की पूर्व-धारणाओं को अस्त-व्यस्त कर देती है।

सुबोध का प्रेम-व्यापार सरला से होता है। वह स्वतंत्र, क्रियात्मक एवं चंचल है। सुबोध से उसका अगाध प्रेम है। वह उसके लिए मर-मिटने को भी तैयार है परन्तु सुबोध की अभावग्रस्त स्थिति और सरला की सुसम्पन्नता की स्थिति—दोनों के मार्ग का बाधक बन कर नैराश्यपूर्ण अन्त होता है।

'दम्पति' एक मिडिल पास डाकखाने के क्लर्क और उसकी अशिक्षित ग्रामीण पत्नी पार्वती की कथा है। दोनों में भाव, वैभव तथा रूप नहीं है, एक साधारण कहानी है परन्तु कहानी का अन्त सुखद है।

'वन्नू' एक शिवालय के ज्ञानवृद्ध तपोनिष्ठ एकलिंग स्वामी मन्दिर के पुजारी का शिष्य विनोदानन्द है। इसी शिवालय मे सन्तप्त-हृदय विधुर दीनानाथ को शरण मिलती है और पत्नी-वियोग के दुःख की वेदना कम होने पर वह कुछ समय बाद अपने जीवन की एकान्तिकता को नष्ट करने के लिए वहाँ विभिन्न प्रकार के फलदार वृक्षों, पुष्पों को लगाना शुरू करता है। एक दिन उसे अपनी भाभी अपनी दुधमुंही बालिका कला सहित आती हुई दिखाई देती हैं। वे भी वहीं रहते हैं। कालान्तर मे कला और विनोदानन्द में प्रणय-व्यापार होता है और एकलिंग शिव मन्दिर के आजीवन ब्रह्मचर्य का नियम भी तोड़ दिया जाता है। दोनों विवाह के पावन सूत्र में बँध जाते है। प्रस्तुत कथा में वन, फलों, फूलों का चित्रण उत्कृष्ट कोटि का है।

'अवगुंठन' कहानी में पर्दा-प्रथा का विरोध किया गया है। नव-शिक्षित रामकुमार अपनी सद्य-परिणिता पत्नी सरला को अन्तःपुर की अवगुंठनवती वधू के रूप में नहीं, बाहर बैठक की सहेली के रूप में देखना चाहता है। अपनी पत्नी का परिचय अपने मित्र सतीश से कराता है। सरला को सतीश का स्वभाव अच्छा लगता है, परन्तु कुछ घटनाओं के कारण सतीश के हृदय पर चोट लगती है। सतीश की उदासी के कारण रामकुमार को आत्म-निरीक्षण का अवसर मिलता है और वह अनुभव करता है कि 'सबसे बड़ा अवगुंठन उसकी आत्मा के ऊपर पड़ा है, पत्नी का वह अवगुंठन केवल उसकी छाया मात्र है। अपने हृदय का अवगुंठन हटाए बिना वह अपनी पत्नी की सुख-स्वाधीनता का उपभोग नहीं कर सकता' और सतीश को गले लगाता है। कहानी के आरम्भ में कुछ विचारों की बोझिलता है परन्तु अन्त बहुत ही सरस है।

लेखक का कवि-हृदय प्रस्तुत कहानियों में भी स्पष्ट झलकता है। घटना-निर्माण पर ज़ोर देने की अपेक्षा कथाकार भावात्मक चित्रणों की ओर अधिक झुकता हुआ-सा दिखाई देता है। ये कहानियाँ कहानी से अधिक शब्दचित्र हैं। कवि-हृदय की सरसता और लोक-हृदय की स्वाभाविकता के सम्मिश्रण से ये कहानियाँ प्रेमचन्द की सरलता और सादगी को नवीनता प्रदान करती हैं। पात्रों के मनोभावों, वेशभूषा, आकृति-चित्रण तथा प्रकृति-चित्रण जिन-जिन स्थलों पर हुआ है, वहाँ भाषा अत्यधिक काव्यमय हो गई है, जिससे कहानियाँ भाव-प्रधान बन गई हैं और ऐसे स्थल गद्यकाव्य के सुन्दर नमूने बन गए हैं। ऐसे स्थलों से कहानी के विकास में अवरोध उत्पन्न हुआ है। इनके सभी पात्र यथार्थवादी हैं जिनका चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक ढंग से किया गया है। भाषा काव्यमयी, आलंकारिक, तत्सम-प्रधान है और लोकोक्तियों तथा उर्दू के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है।

इलाचन्द्र जोशी

"ऐतिहासिक दृष्टि से संक्रान्ति युग के समस्त कहानीकारों में जोशी जी प्रथम कहानीकार हैं, जिन्होंने इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को लेकर कहानी लिखना आरम्भ किया। इनकी सर्वप्रथम कहानी 'सजनवा'[1] उसका प्रमाण है।"[2] जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक कहानियों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं। जोशी जी की कहानियों के निम्नलिखित संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—(१) रोमांटिक छाया, (२) खंडहर की आत्माएँ, (३) डायरी के नीरस पृष्ठ, (४) महापुरुषों की प्रेम-कथाएँ, (५) आहुति, (६) ऐतिहासिक कहानियाँ, (७) धूमलता, (८) होली और दीवाली। विषय की दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी की कहानियाँ दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक।

'रोमांटिक छाया,' 'खंडहर की आत्माएँ,' 'डायरी के नीरस पृष्ठ,' 'आहुति,' 'धूमलता' तथा 'दीवाली और होली' में संगृहीत कहानियाँ वर्गीकरण की दृष्टि से

---

१. हिन्दी गल्पमाला, भाग २, अंक ८, मार्च, १९२०, पृ० ३[illegible]
२. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० २७५

मनोवैज्ञानिक वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से ये सामाजिक कहानियाँ हैं। 'महापुरुषों की प्रेम-कथाएँ' और 'ऐतिहासिक कहानियाँ' में संगृहीत कहानियाँ ऐतिहासिक हैं।

"इलाचन्द्र जोशी व्यक्ति और समाज के ह्रासोन्मुख जीवन का विश्लेषण और उसकी निरपेक्ष आलोचना करनेवाले कहानीकारों में माने जाते हैं। मध्यवर्गीय समाज का नग्न चित्रण और व्यक्ति के एकान्तिक अहं-भाव की भावना पर बौद्धिक प्रहार इनकी कहानियों की विषयवस्तु की विशेषताएँ है।"[1] क्योंकि जोशी जी की धारणा है कि "आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यों ज्यों बढ़ती चली जा रही है, त्यों-त्यों उसका अहंभाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है। अपने तृप्त न होने वाले अहं-भाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब उसे पग-पग पर स्वाभाविक सफलता नहीं मिलती है तो वह बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्मविनाश की योजना में जुट जाता है।"[2] जोशी जी की कहानियों में व्यक्ति और समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं का विवेचन, वर्णित समाज का नग्न एवं यथार्थ चित्रण और व्यक्ति के अहं का विश्लेषण मिलता है। इनके दृष्टिकोण में अन्तर्जगत् और बाह्य-जगत् का सुन्दर सामंजस्य है। वस्तुत:, "मनोवैज्ञानिक विषय के निर्वाचन के दृष्टिकोण से जोशी जी आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक है। इनकी कथाओं में चोर, जुआरी, लम्पट, हत्यारे पात्रों की भरमार है जिनकी किसी न किसी मनोविकृति के कारण व्यक्तित्व का पूर्णरूपेण संगठित विकास न हो सका।"[3]

'रोमांटिक छाया' की 'किडनेप्ड' कहानी फ्रायड के भाई-बहन के प्रेम पर आधारित है। कहानी की नायिका सम्मोहिनी किसी न किसी युवक से प्रेम करती है परन्तु उनसे अधिक घनिष्ठता होने पर वे विवाह का प्रस्ताव रखते है जिसे वह ठुकरा देती है। यहाँ तक कि दो युवक उससे प्रेम के कारण निराश होकर आत्महत्या भी कर डालते हैं। इसके बाद वह जिस युवक से प्रेम करती है उससे विवाह कर लेती है, परन्तु वह उसके आभूषण, धन आदि चुराकर चम्पत हो जाता है।

'चिट्ठी-पत्री' कहानी में एक आधुनिक वातावरण में पली तथा कैम्ब्रिज में शिक्षित नारी के अहं का विश्लेषण किया गया है तथा उसके अन्तर्मन की हीनभाव-ग्रन्थि की व्याख्या की गयी है। विवाह के बाद अपनी अहं की तृप्ति एवं हीन-भाव पर विजय पाने के लिए वह प्राचीनपंथी वातावरण से समझौता ही नहीं कर लेती अपितु उसकी वकालत भी करती है। परन्तु एक दिन अपने पति से लात खाकर उसका अहं चरमावस्था पर पहुँच जाता है और परिणामत: वह बीमार होकर मर जाती है। डॉ० कैलाश अपने मित्र को पत्र लिखकर उसकी मनोदशा का स्पष्ट चित्रण करते हैं, "एक मनोवैज्ञानिक डॉक्टर की हैसियत से मैं यह कहूँगा कि दीर्घकाल-व्यापी मानसिक पीड़न पति की लात से चरमावस्था को पहुँच जाने के कारण उसके अज्ञान चेतन में एक आघात रोग ने आश्रय पकड़ लिया।"

'क्रय-विक्रय' कहानी में एक ऐसे व्यक्ति की 'नपुंसक ईर्ष्या' का विश्लेषण किया गया है जो अपनी पद-वृद्धि व आर्थिक लाभ के लिए अपनी पत्नी को सम्पन्न व्यक्तियों तथा

---

१. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० २८६-९०
२. विवेचना, पृ० १२४
३. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २५८

उच्च पदाधिकारियों से सम्पर्क बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देता है। वह इस बात को भी बड़ी सहिष्णुता से निगल जाता है कि उसका पुत्र उसका न होकर अवैध है। परन्तु अपनी पत्नी को सुरेन्द्र जैसे सरल-स्वभाव, निरीह, गरीब युवक से दो-चार बातें करते देखकर उसकी ईर्ष्या प्रचंड रूप धारण कर लेती है।

'रोमांटिक छाया' में एक अपाहिज, आलसी, बेकार, शराबी, मित्रों से माँगकर, लोगों की जेब काटकर जीनेवाले समाज-विध्वंस आचरण में निरत युवक की कथा है। इस कहानी में उन मनोवैज्ञानिक कारणों की व्याख्या की गई है जिनसे उसकी ऐसी अवस्था हुई। 'प्रेम और घृणा' एक ऐसे लम्पट पुरुष की कथा है जिसका व्रत ही नारियों के कौमार्य या सतीत्व के साथ खिलवाड़ करना है। 'आत्महत्या या खून' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसके पीछे हत्या के अपराध में पुलिस दस वर्षों से पड़ी है, परन्तु वह शराब की तरंग में आकर ऐसे रहस्य का उद्घाटन कर स्वीकार करता है कि उस नारी ने आत्महत्या नहीं की थी, वरन् उसने ही उसे दूसरे से प्यार करते देख उसकी हत्या कर डाली थी। 'पागल की सफ़ाई' में पागल-से दीख पड़नेवाले व्यक्ति के मुख से ही उसकी कुछ विचित्र खामख्यालियों, चेष्टाओं तथा हरकतों के वास्तविक रहस्यों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गई है। 'विद्रोही' एक अस्थिर चित्तवृत्ति तथा आवारा, नारियों के जीवन के साथ खिलवाड़ करनेवाले, लोगों से पैसा माँगकर शराब और वेश्याओं के पीछे रहनेवाले, हरफनमौला, धनाढ्यों के घर नौकरी कर उनके धन को बरबाद करनेवाले तथा उनके पुत्रों को कुमार्गगामी बनानेवाले व्यक्ति की कथा है। इस कहानी की राधा भी अपनी दबी महत्त्वाकांक्षाओं की विकृत रूप से पूर्ति करनेवाली नारी है। उसने पर्याप्त धन अर्जित किया है। अपने कल्पनालोक में वह अपने को रानी समझने के लिए आकुल है। इसलिए वह राजा की प्रेमिका का अर्थ लौकिक रूप में रानी लगाती है और इससे अपने अचेतन की तुष्टि प्राप्त करती है। 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' में एक ठाली व्यक्ति के जीवन का विश्लेषण है जो अपनी दिनचर्या का वर्णन करते हुए इस निश्चय पर पहुँचता है कि संसार परिवर्तनशील है, असत्य है। इसलिए जीवन भी असत्य है। 'मिस्त्री' स्त्री-जाति से असन्तुष्ट व्यक्ति की कथा है जो स्त्री-जाति को स्वभावतः कंजूस और उसके प्रति किए गए उपकार को शीघ्र भूलनेवाली—स्वीकार करता है तथा जिन्हें छोटे-बड़े किसी से लज्जा नहीं आती। 'रक्षित धन का अभिशाप' में बताया गया है कि बुरे साधन द्वारा कमाये गए धन का व्यक्ति कभी भी उपभोग नहीं कर सकता। वह उसकी रखवाली मात्र कर सकता है। ठाकुर बलवीरसिंह मोहरों के घड़े का सदुपयोग न स्वयं कर सकता है और न उसकी सन्तान ही। 'रोगी' में ह्रासोन्मुख समाज का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसमें रोगग्रस्त एक व्यक्ति के चिड़चिड़े और शंकालु स्वभाव और उसकी स्त्री श्यामा की चारित्रिक दुर्बलता का चित्रण किया गया है जो रोग-शैया पर पड़े पति का ध्यान न करके डॉक्टर के प्रति प्रेम प्रदर्शित करती है। 'एक शराबी की आत्मकथा' में स्त्री-चरित्र का मनोविश्लेषण करते हुए बताया गया है कि स्त्री-चरित्र का जानना असम्भव है। कमला अपने पति के साथ बाहर से मीठी बातें करती है जबकि हृदय में गुप्त प्रेम छिपाए है। 'होली' में विधवा जीवन, 'परित्यक्ता' में पति-पत्नी का असफल प्रेम और 'स्वामी आलोकानन्द' में ढोंगी और दम्भी के कपटपूर्ण आचरण, 'प्रेतात्मा' में सास-बहू के सम्बन्ध और हिन्दू परिवारों के भयावह जीवन तथा 'जारज' में चरित्रहीन स्त्री के व्यवहार का चित्रण किया गया है।

जोशी जी की प्रत्येक कहानी मनोवैज्ञानिकों के लिए वृत्तेतिहास है जिसे 'किडनेप्ड' कहानी का एक पात्र भी स्पष्ट स्वीकार करता है—"आप स्वभावतः यह सोचते होंगे कि मै सीधी-सी बात को बेकार के लिए इस तरह घुमा-फिराकर कहना चाहता हूँ पर असल में मेरी मानसिक उलझनें कुछ ऐसी अनोखी है कि बिना मनोवैज्ञानिक व्याख्या के मेरे जीवन की किसी भी घटना का सच्चा स्वरूप आपको नहीं मिल सकता।"[1] और यह कथन जोशी जी की प्रत्येक कहानी पर घटता है। कुछ कहानियाँ तो मानो उन मानसिक विकारों की बात को ही सामने रखकर लिखी गई हैं, जिन्हें मनोविद् असामान्य मनोविज्ञान कहते है। इसलिए साधारण पाठक इन कहानियों का उतना आनन्द नही उठा सकता जितना मनोविज्ञान का ज्ञाता। मनोविदो को तो इन कहानियों में एक अतिरिक्त आनन्द भी मिल सकता है।

जोशी जी ने अपनी मनोवैज्ञानिक कहानियों का आधार मध्यमवर्ग, ह्रासोन्मुख समाज एवं व्यक्ति को लिया है जिनमें मुख्य पात्र के जीवन-परिचय, जीवन-सम्बन्धी विभिन्न घटनाओं और वर्णनों को लिया गया है। इस प्रकार की कहानियों में 'चरणों की दासी', 'होली', 'अनाश्रित', 'रक्षित धन का अभिशाप', 'रोगी', 'परित्यक्ता', 'जारज', 'एकाकी', 'दुष्कर्मी', 'पतिव्रता या पिशाची' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। लेखक ने चरित्र-विश्लेषण, प्रवृत्ति और पात्र के जीवन के घटनाचक्रो तथा कार्य-व्यापारों के माध्यम से एक ओर व्यक्ति, जीवन और उसकी सामाजिकता पर व्यग्य, दूसरी ओर व्यक्ति-चरित्र का विश्लेषण किया है। 'मैं', 'मिस एल्किन्स', 'रात्रिचर', 'पागल की सफाई', 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' कहानियों के कथानक अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक हैं। इन कहानियों में व्यक्ति के अहं का विश्लेषण और अहं की एकांतिकता पर प्रहार किया गया है। 'मैं' और 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' के कथानकों का निर्माण केवल भावों, मनोद्वेगो के विश्लेपण से हुआ है। इनमे न तो कोई घटना-क्रम है, न कार्य-व्यापार। केवल आत्मविश्लेषण के आधार पर कहानी निर्मित हुई है। कुछ कहानियों—'मिस एल्किन्स', 'पागल की सफाई', 'रात्रिचर' आदि—में व्यक्ति के अहं के विश्लेषण के साथ कथानक एकसूत्रात्मक ढंग से विभिन्न घटनाचक्रों और कार्य-व्यापारों से निर्मित हुआ है।

जोशी जी के पात्रों में कोई न कोई मनोवैज्ञानिक असाधारणता मिलती है, कोई जुआरी है, किसी को हिस्टीरिया का फिट आता है तो किसी को हत्या करने की धुन है। पात्रों का चयन जोशी जी ने प्राय. सभी वर्गों से किया है—विशिष्ट अथवा असाधारण पात्रों में कापालिक, रात्रिचर, प्रेतात्मा, शराबी, एकाकी आदि हैं; सर्वसाधारण तथा मध्यमवर्ग में रोगी, परित्यक्ता, बिन्दी, मोहन, रंजन, चरणों की दासी, महेन्द्र, द्वारिका, तारा आदि है।

जोशीजी की कहानियों में 'मैं' का रूप गर्वग्राही है, चरित्र-विधान में 'मैं' सबसे बलिष्ठ, सुदृढ़ है—"इसके विकास, मनोविश्लेषण और एकांतिकता के प्रहार में जोशी जी पूर्ण सफल और मनोवैज्ञानिक सिद्ध हुए हैं। चरित्र-विधान का प्रमुख और सर्व-सुलभ अंग नायक है। पात्रों का चरित्र-चित्रण जोशी जी ने चेतन और अवचेतन जगत् की अनेक कुंठाओं, ग्रंथियों का उद्घाटन करते हुए पात्र के मानस के सूक्ष्म प्रेरक सूत्रों के माध्यम से किया है।"[2] पात्रों का मनोविश्लेषण दो प्रकार की प्रणालियों से किया गया है—(१) आत्म-विश्लेषण, (२) निरपेक्ष विश्लेषण। पहले मे पात्र स्वयं ही व्यक्तित्व-प्रधान है परन्तु दूसरे में कहानीकार

१. रोमांटिक छाया, पृ० ७३
२. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० २७६

की मनोवैज्ञानिक वृत्ति उभर आयी है। जोशी जी के सामान्य तथा मध्यमवर्गीय पात्रों का विश्लेषण अधिक आकर्षक हुआ है, इन्होंने चरित्र-चित्रण तथा मनोविश्लेषण करते समय पात्रों के रूप, रंग, मुखाकृति, कार्य-कलाप, विचारधारा का परिचय दिया है परन्तु "जब किसी पात्र के मनोभावों की व्याख्या करने लगते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कहानी की बागडोर कथाकार के हाथों से छूटकर मनोविश्लेषक के हाथों में आ रही है। कथाकार मनोवैज्ञानिक व्याख्याता का रूप धारण करता जा रहा है।"[1]

जोशी जी ने अपनी कहानियों को विभिन्न शैलियों में लिखने तथा विभिन्न प्रयोगों और शिल्प-विधानों में बाँधने का प्रयत्न नहीं किया है। उन्होंने प्रमुखतया आत्म-कथात्मक शैली का प्रयोग किया है और कुछ कहानियों में ऐतिहासिक और पत्रात्मक शैली का भी। सभी अहं-विश्लेषण-प्रधान कहानियाँ आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई हैं। पात्रों के स्वगत-भाषण, संवाद और आत्मकथा के माध्यम से ये व्यक्ति-चरित्र का अध्ययन करके उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म सूत्रों का उद्घाटन और अहं का विश्लेषण करते हैं। सामाजिक एवं व्यक्तिपरक कहानियाँ ऐतिहासिक शैली में लिखी गई हैं। इन कहानियों में वर्णनात्मक कथोपकथन के साथ-साथ घटनाचक्रों का क्रमिक प्रतिफलन और कार्यों का स्वाभाविक विश्लेषण है। 'चौथे विवाह की पत्नी', 'चिट्ठी-पत्री', 'दो चित्र' कहानियाँ पत्रात्मक शैली में लिखी गई हैं। संवाद घटनाओं को प्रगतिशील बनाते हैं तथा पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाते हैं। प्रस्तुत कहानियों की भाषा संस्कृत शब्दावली प्रधान है, परन्तु उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों तथा मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का यथास्थान प्रयोग करने में संकोच नहीं किया है। बौद्धिक आधिक्य के कारण इनकी भाषा गम्भीर, संयत और परिमार्जित है।

हिन्दी के कथाकारों में जोशी जी का नाम अग्रणी है। वे मनोवैज्ञानिक उपन्यास व कहानियों के प्रतिनिधि कथाकार हैं। कूर्मांचल के लेखकों में तो जोशी जी ही एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने मानव-मन के अन्तस्तल में पैठकर उसकी ग्रंथियों का विश्लेषण किया है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जोशी जी ने केवल मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर सामाजिक कहानियों और उपन्यासों का ही सृजन किया है, इन्होंने ऐतिहासिक कहानियों की भी सफलतापूर्वक रचना की है।

जोशी जी की ऐतिहासिक कहानियाँ—'महापुरुषों की प्रेम-कथाएँ' और 'ऐतिहासिक कहानियाँ' में संगृहीत हैं। 'महापुरुषों की प्रेम-कथाएँ' में 'अम्बपाली के महाप्रेमिक', 'मीरा की स्वर्गीय प्रेमाकांक्षा', 'शार्लोट ब्रोंटे का हताश प्रेमिक', 'महाकवि चण्डीदास की हरिजन प्रेमिका', 'दास्तोएव्स्की' का प्रेम-जीवन', 'नादिरशाह की अमर प्रेमिका सितारा', 'बायरन और उसकी प्रेमिका', 'श्रीमती एनी बीसेन्ट और बर्नार्ड शा', 'शरत्चन्द्र का प्रेम-जीवन', 'गेटे का असफल प्रेम', 'एक जापानी वेश्या का अपूर्व प्रेम', 'आत्म-त्यागमय पवित्र प्रेम', तथा 'भरत और राम के अलौकिक प्रेम' संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रेम का दुःखान्त इतिहास', 'प्रेम की मनोवैज्ञानिक आलोचना' भी हैं, जिसमें प्रेम का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। 'ऐतिहासिक कहानियाँ' में 'प्रतिहिंसा', 'ईरान का व्यापारी', 'गढ़ बीठली', 'कन्नौज की सुन्दरी', 'कुतुबुद्दीन ऐबक', 'देवल देवी', 'तैमूर लंग की उदारता', 'राना साँगा', 'मारवाड़ का राजा मालदेव', नौ रोज', 'अमीरसिंह', 'छत्रसाल', 'मल्हार-राव होलकर', 'गोरा-बादल', 'चौहानों की वीरता' आदि कहानियाँ सम्मिलित हैं। इनकी पन्द्रह ऐतिहासिक कहानियाँ 'ऐतिहासिक कहानियाँ' नाम के संग्रह में संगृहीत हैं। लेखक

---

१. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान.

ने यद्यपि अधिकांश कहानियाँ लोक-प्रचलित घटनाओं का आधार लेकर ही लिखी हैं तथापि इनका पृथक् अस्तित्व है क्योंकि जिन घटनाओं का चित्रण इन कहानियों में किया गया है वे लोक-प्रचलित नहीं, किन्तु साहित्यकार की अपनी खोज हैं या कल्पनाप्रसूत हैं। ये कहानियाँ अधिकांशतः मुगलकाल की ही हैं, केवल संग्रह की प्रथम कहानी 'प्रतिहिंसा' मौर्य-काल से सम्बद्ध सिकन्दर के भारत-आक्रमण की है। इस कहानी में भारत के उत्तर-पूर्वी सीमान्त पर जुलिया जाति के लोगों का राज्य बताया गया है। शंकर वहाँ का शक्ति-शाली राजा है जो सिकन्दर का सामना बड़ी वीरता से करता है परन्तु अन्त में हार जाता है। सिकन्दर अपने साथ लौटते समय शंकर की सुन्दर पुत्रवधू को ले जाता है।

मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक कहानियों के अतिरिक्त इलाचन्द्र जोशी ने सामाजिक कहानियाँ भी लिखी हैं। 'आहुति' आठ सामाजिक कहानियों का संग्रह है। शैली के दृष्टिकोण से इन कहानियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) वर्णनात्मक शैली : (१) आहुति, (२) फोटो, (३) प्लैनचेट, (४) चार आने पैसे, (५) सरदार, (६) प्रेतात्मा।

(ख) पत्रात्मक शैली : (१) दो मित्र, (२) चौथे विवाह की पत्नी।

'आहुति' और 'चार आने पैसे' बेकारी के शिकार युवकों की लोमहर्षिणी कथा है। 'आहुति' का नायक रामनाथ बेकारी से विवश होकर गिरहकट का धन्धा ग्रहण कर लेता है परन्तु मार्था से स्नेहिल व्यवहार पाने पर इस धन्धे को छोड़ने की प्रतिज्ञा करता है। 'चार आने पैसे' का नायक बेकारी से तंग आकर रेल की पटरी से कटकर आत्महत्या कर लेता है।

'प्लैनचेट' में लेखक ने फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त व प्रेतात्मा के वार्ता करने की विद्या का प्रयोग किया है। लाला शंकरदयाल अपनी पत्नी ब्रजेश्वरी के देहान्त पर बहुत दुःखी होते हैं और वे उस दिवंगत आत्मा से बातचीत का उपाय ढूँढते हैं और एक मशीन 'प्लैनचेट' का अनुसन्धान करते हैं परन्तु मशीन में प्रेतात्मा दिखने के बदले स्वप्न में ही सब कुछ बता जाती है। 'सरदार' जमींदारी के प्रति क्रान्तिकारी युवक की कथा है जो जमींदार के आतंक से डाकू बनकर उसी की लड़की का अपहरण करता है, फिर मुक्त कर देता है, परन्तु उसका किसी न किसी प्रकार पीछा नहीं छोड़ता, जब तक वह स्वयं आत्महत्या नहीं कर डालती। 'प्रेतात्मा' में भावनात्मक आदर्शवाद की स्थापना तथा भूत-प्रेतों की कथा है जिसे एक प्राइमरी स्कूल का हेडमास्टर आत्मकथात्मक ढंग से सुनाता है। शाहजहाँपुर रियासत के मैनेजर की पत्नी अपनी सास तथा विधवा ननद के पाशविक व्यवहार से तंग आकर मर जाती है। उसकी प्रेतात्मा उसकी सास और ननद को भी खा डालती है तथा उस मकान में रहनेवाले को भी।

'दो मित्र' कहानी पत्रात्मक शैली में लिखी गई है जिसमें तीन पत्र इलाहाबाद के पुलिस सुपरिन्टेंडेंट शिवदयाल और चार पत्र कामताप्रसाद के हैं। इसमें नरेन्द्र (कामता प्रसाद का पुत्र) और लज्जा (शिवदयाल की कन्या) का विवाह नाटकीय ढंग से दिखाया गया है। पत्रों के माध्यम से आजकल के युवक और युवतियों के स्वभाव और चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। 'चौथे विवाह की पत्नी' में केवल एक ही पत्र है जो विमला अपनी सहेली भामा को लिखती है जिसमें रामेश्वरी के जीवन की मार्मिक गाथा कही गई है। रामेश्वरी एक निम्न-मध्यमवर्गीय परिवार की कन्या है, जिसे परिस्थितियों के अधीन एक कंजूस ठेकेदार से विवाह करना पड़ता है। पति का शुष्क एवं कटु व्यवहार नारी के कल्याणी हृदय को राक्षसी-हृदय में बदलता है। उसका एक पुत्र पैदा होता है और मर जाता है। पति भी मर जाता है और अन्त में वह विक्षिप्त हो जाती है।

भोलादत्त जोशी

'मन्दिर की चाबी' भोलादत्त जोशी की बारह कहानियों—'मन्दिर की चाबी', 'अपनी-अपनी समझ', 'देवता का साँझा', 'आंसू के फल', 'भाभी की बात', 'माहवारी', 'स्रोतस्विनी', 'पथिक', 'श्री राग की होली', 'मोड़े की करामात', 'सुगन्धि', 'प्रगतिवादी कौन ?'—का संग्रह है। जोशी जी का रचनाकाल १९३८ से आरम्भ होता है। इस संग्रह में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों को संगृहीत किया गया है।

प्रस्तुत संग्रह की सभी कहानियाँ सामाजिक धरातल पर वर्णनात्मक ढंग से लिखी गई हैं। 'देवता का साँझा' अलमोड़ा के पेन्शनियर सूबेदार बलवीरसिंह की देवता के नाम लगाई गई बकरी के गुम हो जाने पर हँगामे की कथा है। 'मन्दिर की चाबी', 'अपनी-अपनी समझ', 'आँसू के फल' आदि भी इसी कोटि की कहानियाँ हैं। 'मोड़े की करामात' भूत-प्रेतों की कथा है। 'भाभी की बात' एक पारिवारिक कथा है जिसमें एक बाल-विधवा के जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है। यशवन्ती की देवरानी लता बाल-विधवा है जिसे उसका पिता ससुराल की प्रताड़ना से बचाने के लिए अपने पास रखता है परन्तु यशवन्त लता के पिता को हृदयस्पर्शी शब्दों में समझाती है—"लता अभी उन्नीस वर्ष की है। आप वृद्ध हो गए हैं। उसकी आयु-पर्यन्त आप उसका साथ नहीं दे सकते। क्या यह आप उचित समझते हैं कि वह भाई-भावजों के बीच दुःखी जीवन व्यतीत करे, घुल-घुलकर प्राण दे दे। मैं जो कुछ भी कह रही हूँ उसका मुझे भली प्रकार ज्ञान है। मैंने अपनी विधवा भाभी को देखा है। मैं भी विधवा हूँ और मुझे वैधव्य जीवन का कटु अनुभव है।"[1] इतना ही नहीं, उसका अपने परिवार पर भी पूरा प्रभाव है, नियंत्रण है। वह अपने देवर को लता के प्रति दायित्व एवं व्यवहार के लिए दृढ़ संकल्प करने को सचेत करती हुई कहती है—"आज से तुम लता को भाभी न कह सकोगे। यह तुम्हारी छोटी बहन हुई। तुम मुझे वचन दो कि तुम इससे सगी बहन का रिश्ता आजीवन निभाओगे।"[2] 'माहवारी' एक भावात्मक कहानी है। कहानी के नायक महेशचन्दर को रानीखेत के मोटर-ड्राइवर नियाजअली खाँ की माँ अपना गुम हुआ बेटा समझती है और गले लगाकर गिर पड़ती है। बस इसी भाव से विभोर होकर महेशचन्दर जीवन-पर्यन्त नियाजअली खाँ को सगा भाई मान कर माहवारी रुपये भेजता रहता है।

जोशी जी की कुछ कहानियों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वे यथार्थ जीवन से दूर काल्पनिक जगत् की अधिक हैं। हमें आधुनिक समाज में न तो कहानियों में जैसे चित्रित पात्र ही मिलते हैं और न वैसा व्यवहार। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार कहानी कला व शैली के प्रति कुछ जबरदस्ती कर रहा है अथवा कहानीकार को कथा-साहित्य-सृजन की ओर ढकेला जा रहा है।

---

१. मन्दिर की चाबी, पृ० २३
२. वही, पृ० २४

हरिकृष्ण त्रिवेदी

त्रिवेदी जी कूर्मांचल के सर्वश्रेष्ठ पत्रकार हैं। साहित्यकार के रूप में उन्हें बहुत कम लोग ही जानते हैं। त्रिवेदी जी की लगभग दो दर्जन कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। बचपन से ही ये प्रकृति-प्रेमी रहे हैं। इनका कहना है, "जब मैं बहुत छोटा था तब आकाश को देखकर यह सोचता था कि इसका अन्त कहाँ है ? इस दुनिया को किसने बनाया ? कौन इसका संचालन कर रहा है ?···" शायद यही कारण है कि जब इन्होंने अध्ययन आरम्भ किया तो साहित्य और विज्ञान दोनों ने ही इन्हें आकर्षित किया। कॉलेज की पढ़ाई के बाद जब त्रिवेदी जी इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग का प्रशिक्षण ले रहे थे, तो उन्होंने अपनी पढ़ाई त्याग कर स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भाग लिया। गाँव में घूम-घूमकर जन-जीवन का व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त किया, राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वर कुमाऊँ के दूर-दूर के गाँवों में पहुंचाया। ग्रामीणों के निश्छल प्रेम, उनकी सरलता और वीरता से त्रिवेदीजी को प्रोत्साहन मिला और साढ़े सात मास की जेलयात्रा भी की। ग्रामीणों की हीन दशा को देखकर त्रिवेदी जी के मन में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि उनके उद्धार के लिए दो कार्य आवश्यक हैं—(१) ब्रिटिश शासन का अन्त, (२) आर्थिक क्रान्ति। इस आन्दोलन में अपने साथियों के साथ त्रिवेदी जी ने जैसा भी कार्य किया तथा अपने उपरोक्त दो विश्वासों की कार्यान्विति के लिए जो संकल्प किए, इसी की पृष्ठभूमि पर इनकी प्रथम कहानी 'सन्देश' है। इस कहानी में कूर्मांचल के जन-जीवन का चित्रण तो है ही, दारिद्र्यावस्था में पड़े हुए उन हजारों नर-नारियों के उद्धार की मधुर सम्भावनाएँ भी हैं। ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध एकता की भावना का आह्वान है। यह कहानी राष्ट्रीय चेतना की श्रेष्ठ कहानियों में गिनी जा सकती है।

'हिस्टीरिया' कहानी हिन्दू-मुस्लिम दंगों पर आधारित है। वस्तुतः साम्प्रदायिकता एक शाश्वत समस्या बन गई है। भारत विभाजन इसका अन्त एवं समाधान नहीं था। इसका अन्त तभी हो सकता है जब भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में कथा के नायक रहमान के समान उच्च विचारक हों जो मानवता की रक्षा के लिए सब कुछ सह सकता है और अन्त तक संघर्षों से जूझता रहता है। लेखक ने दंगे का चित्रण बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। शैली इतनी परिष्कृत रही है कि इससे किसी भी सम्प्रदाय की भावना को ठेस नहीं लग सकती।

त्रिवेदी जी सक्रिय राजनीतिक जीवन में अधिक समय तक न रहे। इसके बाद ही उन्होंने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाता के रूप में पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। डेढ़-दो साल तक यह कार्य करने के बाद डॉ० हेमचन्द्र जोशी तथा इलाचन्द्र जोशी द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित तथा सम्पादित 'विश्ववाणी' में चले गए। जोशी-बन्धुओं के सान्निध्य में पत्रकारिता-क्षेत्र में बहुत कुछ सीखा। वैसे पत्रकारिता के लिए त्रिवेदी जी को उनके भाई स्वर्गीय मथुरादत्त त्रिवेदी से, जो कि स्वयं एक उच्च कोटि के लेखक तथा पत्रकार थे, बड़ी प्रेरणा मिली। 'विश्ववाणी' के बाद त्रिवेदी जी आगरा से प्रकाशित 'सैनिक' पत्र में सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य करने लगे। यहीं रह कर इन्होंने सुभाष बाबू की जीवनी लिखी। उस समय श्री बोस कांग्रेस के अध्यक्ष थे। सम्भवतः यह पुस्तक हिन्दी में सुभाष

१. श्री त्रिवेदी का एक पत्र, २.४.६३

बाबू की प्रथम जीवनी थी और इसका बहुत स्वागत हुआ।

तीन-चार वर्ष 'सैनिक' के सम्पादन में योग देने के बाद त्रिवेदी जी बनारस में 'हंस' में कार्य करने लगे। वहीं रहकर बंगला के प्रसिद्ध लेखक प्रबोधकुमार सान्याल की 'महाप्रस्थानेर पथे' पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद किया जो 'महाप्रस्थान के पथ पर' नाम से प्रकाशित हुआ।

बनारस से त्रिवेदी जी दिल्ली आ गए। 'दैनिक हिन्दुस्तान' में उप-सम्पादक के रूप में नियुक्त हुए और इस समय संयुक्त सम्पादक हैं। बीस वर्ष से भी अधिक समय से त्रिवेदी जी इस पत्र में कार्य कर रहे है। वर्षों से त्रिवेदी जी राजनीतिक तथा आर्थिक विषयों पर ही अपने पत्र में लिखते रहे हैं। इन्होंने कुछ कहानियाँ तथा अच्छे निबन्ध भी लिखे हैं। 'डायरी के कुछ पृष्ठ' शीर्षक कहानी त्रिवेदी जी की एक मनोवैज्ञानिक कहानी कही जा सकती है। किन्तु 'पत्रकार पी—' शीर्षक कहानी जो 'हंस' में छपी थी, जीवन की वास्तविकता के ताने-बाने में बुनी गई है। उदयशंकर के संस्कृति-केन्द्र पर रचित 'जीवन और कला' तथा 'जीवन-विज्ञान—विज्ञान की सर्वोत्तम शास्त्र गीता' ये दो चुने हुए निबन्ध हैं। दूसरा निबन्ध तो 'जीवन-विज्ञान' नाम से एक पुस्तिका के रूप में भी बाद में प्रकाशित हुआ।

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' ने विभिन्न विषयों को लेकर कहानियों का सृजन किया। हिन्दी-कथा-साहित्य में वैज्ञानिक कहानियों की रचना बहुत कम अथवा नाम मात्र को ही हुई है। वैष्णव जी अपने विद्यार्थी जीवन में विज्ञान के मेधावी छात्र रहे हैं। उनकी विज्ञान के प्रति अभिरुचि ने ही विज्ञान और साहित्य का सुन्दर समन्वय किया है। वैष्णव जी ने विज्ञान के शुष्क एवं नीरस सिद्धान्तों को अपनी कला का सुन्दर आवरण देकर सरस बनाया है और वे कथा-साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग बन गए हैं। इनकी वैज्ञानिक कहानियों में बुद्धि-पक्ष और हृदय-पक्ष दोनों का संयत और संतुलित सामंजस्य हुआ है तथा वे किसी न किसी लक्ष्य अथवा वैज्ञानिक सिद्धान्त को लेकर लिखी गई हैं। सामाजिक कहानियों में घटना, पात्र व चरित्र-चित्रण आदि में भी लेखक की वैज्ञानिक दृष्टि यत्र-तत्र झलकती है।

विषयवस्तु के दृष्टिकोण से यमुनादत्त वैष्णव की कहानियों का वर्गीकरण निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है :

१. वैज्ञानिक कहानियाँ—अस्थिपंजर (कहानी-संग्रह)।
२. सामाजिक कहानियाँ—(१) भेड़ और मनुष्य (कहानी-संग्रह), (२) शैल-गाथा (कहानी-संग्रह)।
३. ऐतिहासिक कहानियाँ—(१) अभिशप्त रुद्राक्ष,[1] पत्थर की लकीरें[2]।

---

१. सरिता, अंक १३०
२. प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ, पृ० १४३

४. यात्रा सम्बन्धी कहानियाँ—(१) माना, (२) भारत के बदरीनाथ, (३) सीमान्त का अन्तिम गाँव।

५ शिकार सम्बन्धी कहानियाँ—साही का शिकार[1]।

६ जासूसी कहानियाँ—(१) केदारनाथ के मार्ग पर, (२) डॉक्टर और नर्स।

अस्थिपंजर में सोलह कहानियाँ संगृहीत हैं। इस कहानी-संग्रह की कहानियाँ केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तों के ही आधार पर न होकर अन्य विषयों पर भी लिखी गई है जिनकी कथा, वर्णन, घटना-सृजन, पात्रों के चरित्र का अंकन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया है। 'अस्थिपंजर' कहानी एक ऐसे डॉक्टर की कथा है जो बाह्य रूप से अपनी पत्नी के देहान्त पर किंचित् भी दुःखी नहीं दिखाई देता, पूर्ववत् अपनी प्रयोगशाला में कार्य करता दिखाई देता है परन्तु उसके अन्तर्मन का दुःख तथा मानसिक आघात उसमें मानसिक विक्षिप्तता ले आती है। वह अपनी पत्नी के प्राणवायु को एक अस्थिपंजर में लाने का प्रयोग करता है, जो उसकी पागलपन की एक निशानी है। 'कुत्ता' कहानी में पागलपन की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। एक अनुसन्धानकर्त्ता अपने अनुसन्धान-कार्य में इतना तल्लीन रहता है कि वह चेतन अवस्था में भी अचेतन रहता है। यद्यपि कहानी में एक ऐसे युवक की कथा है जो कुत्ते के मस्तिष्क में घृणा और अहंकार का कोष ढूँढ़ता है। इस बात को जानने की उत्कंठा उसके पागलपन की निशानी है। वस्तुतः उसका पागलपन पागल कुत्ते के काटने के फलस्वरूप होता है। 'हड़ताल' कहानी में एक ऐसे युवक की गाथा है, हड़ताल के कारण जिसके परिवार की आर्थिक स्थिति दयनीय हो जाती है। 'वैज्ञानिक की पत्नी' में एक ऐसे वैज्ञानिक के अनुसन्धान का उल्लेख है, जो भोजन के बिना प्राणों को स्थिर रखना चाहता है और यह प्रयोग वह अपनी पत्नी के प्राणों की बलि देकर करता है। लेखक इस कथा में वैज्ञानिकों को सांसारिक बातों से पूर्णतया अनभिज्ञ, जिनमें बुद्धि है, पर हृदय नहीं, स्वीकार करता है। 'दो रेखाएँ' कहानी में एक ऐसे वैज्ञानिक के प्रयोगों का चित्रण है, जो वैज्ञानिक आविष्कार में अपने प्राण तक खो बैठता है परन्तु उसके श्रम का कुछ भी फल नहीं मिलता। 'इजा' एक ईसाई नर्स की मानसिक दुर्बलता का वैज्ञानिक चित्रण है। 'घबराहट' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है, जिसमें बताया गया है कि पाप अपने मुख से बोल उठता है। 'सोच' कहानी में स्त्री की हीन भावना की मनोवैज्ञानिक व्याख्या है। 'डॉक्टर और नर्स' तथा 'केदारनाथ के मार्ग पर' जासूसी कहानियाँ हैं, जिनमें घटनाओं की प्रधानता है।

'दारोगा की द्विविधा' में पुलिस-विभाग के हथकंडों, भ्रष्टाचार-जनित घटनाओं का पर्दाफाश किया गया है तथा एक ईमानदार दारोगा के मनोद्वन्द्व का सुन्दर चित्रण है। 'बड़ा मुकदमा' कहानी में व्यापारी कम्पनियों में झूठे खाते रखकर सरकार को धोखा देना तथा आयकर का झूठा हिसाब देना आदि घटनाओं का चित्रण है। 'भेड़ और मनुष्य' में वाक्जाल के ताने-बाने से बुने हुए छिद्रमय भारतीय दंडविधान पर करारी चोट की गई है, जिसमें एक व्यक्ति, जिसका व्यवसाय ही भेड़-बकरी मारना है, लायसेन्स-प्राप्त बूचड़ है, परन्तु उसे छः माह के भेड़ के बच्चे को मारने के अपराध में तीन माह की कठोर सजा हो जाती है जबकि धीवर जाति के निर्धन व्यक्ति की हत्या करने पर एक जमींदार साफ छूट जाता है।

वैष्णव जी ने सामाजिक कहानियाँ सोद्देश्य लिखी हैं। समाज की किसी न किसी

१. सरिता, अंक १६०

समस्या का वैज्ञानिक ढंग से सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्रण किया है। समाज-विरोधी विभिन्न तत्त्वों पर अपनी कुशल और पैनी दृष्टि की लेखनी चलाई है।

वैष्णव जी की ऐतिहासिक कहानियों 'पत्थर की लकीरें' और 'अभिशप्त रुद्राक्ष' की कथा कूर्मांचल के इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों से ली गई है। 'पत्थर की लकीरें' कहानी कूर्मांचल के इतिहासप्रसिद्ध बूढ़े दीवान हरकदेव जोशी और ईस्ट इंडिया कम्पनी की शर्तों के आधार पर लिखी गई है। 'अभिशप्त रुद्राक्ष' में मुगल बादशाह की सहायता के लिए कूर्मांचल का तत्कालीन चन्दवंशी राजा अपनी सेना को पानीपत के मैदान मे भेजता है। उसकी सेना अद्वितीय वीरता से विजय प्राप्त करती है। सेना का नायक बलवीर नेगी को चन्द राजा सम्मानित करना चाहता है, परन्तु दीवानों की द्वेष-भावना उसे सफल नहीं होने देती।

ऐतिहासिक कहानियों में लेखक ने अपनी अन्वेषक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। हरकदेव जोशी तथा बलवीर नेगी के विषय में आज भी अनेक धारणाएँ हैं, परन्तु लेखक ने जिस प्रकार प्रमाणों-सहित अपनी कथा को प्रस्तुत किया है, उससे अनेक भ्रान्तियों का भी समाधान होता है। कूर्मांचल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखनेवाले केवल मात्र लेखक वैष्णव जी ही हैं, जिनका यह प्रयास हर प्रकार से स्तुत्य है।

'साही का शिकार' शिकारी जीवन की कहानी है। इस प्रकार की कहानियों में शिकारी के अद्भुत साहस तथा वीरतापूर्ण घटनाओं का उल्लेख रहता है तथा इनमें घटनाओं की प्रचुरता रहती है। इस दृष्टिकोण से ये कहानियाँ जासूसी कहानियों के निकट की होती हैं। वैष्णव जी के पात्र आधुनिक शस्त्रों से लैस नहीं हैं और न उन्हें शिकार करने की कला तथा शिकारियों की तरह जाल बुनना ही आता है। वे तो सीधे-सादे, हृष्ट-पुष्ट पर्वतीय लोग हैं, जिनके लिए लाठी या कुल्हाड़ी ही स्वचालित राइफल से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कहानी के नायक मोतीराम ने अनेक बाघ-भालुओं का शिकार किया है। लाठी, कुल्हाड़ी तथा कुश्ती ही उसके मात्र अस्त्र हैं। ऐसे हिंसक जन्तुओं से मल्लयुद्ध में उसके शरीर में अनेक घावों के निशान भी हैं। साही का शिकार करने के लिए वह उड्यार के दरवाजे पर पिरूल इकट्ठा कर आग लगाता है। आग बुझ जाने पर वहाँ से एक हिरन भाग निकलता है जिससे कुचल कर उसका अन्त हो जाता है। इस कथा में पर्वतीय क्षेत्रों में हिंसक पशुओं को मारने की साहसपूर्ण विधियों तथा वीरतापूर्ण कार्यों का चित्रण प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

"इनकी कहानियों में कला-संस्थान सम्बन्धी स्वतन्त्र विशेषताएँ हैं जिनमें कथावस्तु का विकास वैज्ञानिक ढंग से होता है। कथा के सब भाग—प्रस्तावना, मुख्यांश, चरमावस्था तथा पृष्ठभाग—इन कहानियों में सुगठित रूप से मिलते हैं।"[1] लेखक ने अपनी कहानियों के पात्रों को सभी वर्गों से लिया है तथा यथार्थवादी धरातल पर सभी को चित्रित किया है। उनमें गुण, अवगुण दोनों हैं। पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। पात्रों का परिचय उनकी आयु, रूप-रंग, वेश-भूषा, आकृति, दिनचर्या आदि द्वारा किया गया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक आत्मकथात्मक ढंग से हुआ है। कथा की घटनाएँ भी पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने में सहायक हुई हैं। वैज्ञानिक कहानियों में पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग की प्रचुरता है। सभी कहानियाँ किसी न किसी उद्देश्य से लिखी गई हैं और लेखक अपने उद्देश्य को प्रस्तुत करने में सफल हुआ है।

---

१. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० ३७०

शोभाचन्द्र जोशी

एकलव्य (१९४७)

'एकलव्य' शोभाचन्द्र जोशी की प्रथम कृति है। इसमें ग्यारह कहानियाँ संगृहीत हैं जिनमें दो—'एकलव्य' और 'कालिदास के दो चित्र'—ऐतिहासिक हैं, शेष आधुनिक युग की सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। 'एकलव्य' में एकलव्य की गुरुभक्ति को कोरे आदर्शवाद की सनक कहा गया है। एकलव्य अपना अँगूठा काटकर गुरुभक्ति की दक्षिणा के रूप में प्रदान कर स्वयं अनुभव करता है कि—"एक ही क्षण में उसने वर्षों की साधना को नष्ट कर दिया। आदर्शवाद के नशे में वह यथार्थ के सत्य को भूल गया।"[1] एकलव्य ने धनुर्विद्या सीखने के लक्ष्य को बताते हुए जो शब्द कहे हैं वे आधुनिक युग के लिए भी प्रेरणादायक और सत्य है। इन शब्दों में स्वयं लेखक की विद्रोही आत्मा भी बोलती हुई दृष्टिगत होती है—"आर्य ! मनुष्य के समाज में अनाचार का प्रवेश हो गया है। लोग मानवधर्म को भूल रहे है। धर्म, जाति और राष्ट्र तथा वर्णभेद के जंजाल में फँसकर मनुष्य पशुता की ओर जा रहा है। ज्ञान और शक्ति का उपयोग मनुष्य मात्र के लिए न होकर थोड़े से व्यक्ति विशेषों के लिए होने लगा है'''मैं अपनी शक्ति से परतन्त्रता के इन बन्धनों को तोड़ने का प्रयास करूँगा।"[2]

'कालिदास के दो चित्र' में लेखक ने कालिदास को राजकवि और विरही कवि के रूप में चित्रित किया है। राजकवि के रूप मे वह गुप्तवंश के प्रमादी सम्राट् कुमारगुप्त की कापुरुषता देखकर राजनीतिक काव्य न लिखने का व्रत लेता है और उसका विरही रूप जाग उठता है। कश्मीर की धरती उन्हें पुकारती है और कवि स्वप्न देखता है, 'हिमाच्छादित पर्वतश्रेणी, उसकी छाया में बना एक छोटा-सा ग्राम, प्रान्तवर्ती सरल वृक्षों के वन में एक युवती बैठी है।' स्वप्न भंग होते ही कवि विरह में विह्वल हो उठता है। आषाढ़ के बादलों को देखकर उसकी विरह-वेदना 'मेघदूत' बनकर फूट पड़ती है।

बनारसीदास चतुर्वेदी इन दो चित्रों से इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि उन्होंने पुस्तक की भूमिका में स्वीकार किया है कि "प्रयत्न करने पर भी हम 'एकलव्य' और 'कालिदास के दो चित्र' जैसा नहीं लिख पाते।"

शोभाचन्द्र जोशी के अन्य चित्रों में आधुनिक समाज में व्याप्त अनाचार, अन्याय और अत्याचार के प्रति उनकी तीव्र वेदना है, अनुभूति है और एक विद्रोही का स्वर है जिसमें समाज के ठेकेदारों को ललकारने की शक्ति है। 'वह कौन थी' एक ऐसी नारी की कथा है, जो परम्परागत संस्कारों से बुरी तरह जकड़ी हुई है, किन्तु फिर भी उसके भीतर विद्रोह की चिनगारी है, जो अपने अधिकार की रक्षा के लिए किसी भी समय एक भीषण ज्वाला का रूप धारण कर सकती है।

'बहुजन सुखाय' मगन कैप्टेन का संस्मरण है जो दूसरों को खुश करने के लिए प्रसन्नता से स्वयं यातनाएँ झेलता है। लोग उसकी बेवकूफी में आनन्द लेते हैं और वह उन्हें आनन्द देने के लिए बेवकूफी करता है। उनके कहने पर वह आधा सेर लाल मिर्च खा जाता है। इससे उसे बड़ा कष्ट होता है और वह मरते-मरते बचता है किन्तु लोग

१. एकलव्य, पृ० ६
२. वही, पृ० ५

उसमें भी पैशाची आनन्द प्राप्त करते हैं। 'जरा-सी बात' एक ऐसी नारी का चित्र है जो पति से कठोर व्यवहार पाने पर उसे और भी अधिक प्यार करती है। इस पर वह कहती है, "सिवाय कभी-कभी मारने-पीटने के उन्होंने मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है। इतने सीधे हैं, इतने बुद्धू हैं, इतने बेवकूफ हैं। स्त्री को और क्या चाहिए, मार खाती हूँ सो उनका पुरुषत्व उग्र रूप से मुझे प्यार करता है, स्त्री रेशम के-से नाजुक प्यार की अपेक्षा पत्थर का-सा ठोस प्यार अधिक पसन्द करती है।"[1] 'भावुकता' दूसरे महायुद्ध में मोर्चे पर जाने वाले एक ऐसे सैनिक का शब्दचित्र है जिसकी तीन महीने पहले ही शादी हुई थी और जो रास्ते में ही रेलगाड़ी से गिरकर अपने द्वन्द्व से मुक्ति पाने का मार्ग ढूंढ़ता है। 'लावारिस' नैनीताल में अंग्रेजों की विलासप्रियता और दीन पर्वतीय लोगों की दयनीय स्थिति को चित्रित करने वाला एक मर्मस्पर्शी संस्मरण है। एक पहाड़ी बालक भीख माँगते-माँगते माल रोड पर आ जाता है और सिर से पैर तक यूरोपियन वेश में सज्जित इस देश के एक साहब के हाथों खूब पिटता है, क्योंकि माल रोड (ठंडी सड़क) पर गरीबों को घूमने का अधिकार नहीं है, और अन्ततः भूख से विवश होकर वह लड़का आत्महत्या कर लेता है। 'आवाजें' मन्दिरों की आड़ में नित्यप्रति होने वाले कुकर्मों की एक झाँकी प्रस्तुत करती है। 'जीवन-मरण' सहोदर भाई की मृत्यु पर लिखा गया एक संस्मरण है जिसमें जीवन और मृत्यु के अनेक पहलुओं पर मर्मस्पर्शी विचार प्रकट किए गए हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' एक स्वप्न का चित्रण है जिसमें लेखक एक भिखमँगे को मजदूरी करने का उपदेश देता है, किन्तु भिखमँगा कहता है कि मजदूरी कहाँ मिलती है। लेखक की नौकरी छूटने पर वह भिखमँगे की बात का स्पष्ट अर्थ समझता है। 'अवांछनीया' एक ऐसी कुरूपा स्त्री की कथा है, जिसका विवाह बड़ी कठिनाई से होता है, परन्तु पति द्वारा अपमानित किए जाने पर वह उसे छोड़ देती है और उस समय तक पति के घर नहीं जाती, जब तक पति अन्धा होकर उसके द्वार पर आकर क्षमा-याचना नहीं करता। 'पठान' एक प्रतिशोध के प्यासे किन्तु साथ ही स्वच्छ हृदयवाले पठान का चित्र है। पठान अपनी बहन के हत्यारे की खोज में भारतवर्ष की खाक छानता है, किन्तु जब एक दिन वह हत्यारे से मिलता है तो उसकी बीवी को देखकर वह अपना इरादा बदल देता है, क्योंकि उसकी सूरत उसकी बहन से मिलती है। 'चार चित्र और मेरा प्रश्न' में लेखक के सामने जो चार चित्र झूलते हैं वे इस प्रकार हैं : (१) एक लड़का जो बिना प्रयोजन मालिक कह कर राम-राम करता है, (२) एक लँगड़ा देहाती जो गिर में चोट लगने पर भी फरियाद करने का साहस नहीं कर सकता, (३) पंडित जी के यजमान जो सदियों से ब्राह्मण कहलानेवाले एक मनुष्य के आगे झुकते आये हैं और (४) एक अंग्रेज बालिका जो हर 'काले आदमी' से वैसे ही सलाम की आशा करती है जैसे मुन्नू (अपने नौकर) से उसे मिलती है। इन चित्रों को देखने के बाद लेखक के मन में प्रश्न उठता है कि "आनेवाले युग में क्या ये लोग अपने हिस्से में आयी हुई शक्ति का भार वहन कर सकेंगे? जिनके मन, बुद्धि और नेत्रों पर शताब्दियों के कुसंस्कार, दीनता, दासता और दुर्बलता ने परदा डाल रखा है?"[2] "क्या वे लोग मानव-इतिहास के शुभ प्रातःकाल के, सौभाग्यपूर्ण स्वाधीनता के प्रिय दर्शन भी कर सकेंगे?"[3] 'शिवनन्दन' लेखक के ही शब्दों में एक दानवी मानव का रेखाचित्र है जिसके अन्दर हृदय नाम की एक

---

१. एकलव्य, पृ० ३०
२. वही, पृ० ६२
३. वही, पृ० ६८

तिकोनी चीज भी थी। उम्रभर उसने रोटियाँ बेलने के अतिरिक्त कोई काम न किया और न सीखा। जीवन उसका एक ही लक्ष्य से बँधा था और वह यह कि उसका लड़का हो और मामा की सम्पत्ति उसे मिल जाए। बड़ी मुश्किल से उसे दोनों आँखों से अन्धी पत्नी मिली, उसने एक के बाद एक तीन सन्तानें दीं, किन्तु तीनों लड़कियाँ और तीसरी के जन्म पर वह स्वर्ग सिधार गई और इसके साथ ही शिवनन्दन अपने जीवन का एकमात्र काम 'रोटियाँ बेलना' भी भूल गया और भीतर ही भीतर जैसे मर गया।

जोशी जी के पास एक अच्छे साहित्यकार की अनुभूति, करुणा, सहृदयता और ईमानदारी है और साथ ही अभिव्यक्ति की क्षमता भी। निस्सन्देह वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है और मानव-इतिहास का शुभ प्रात. जागृति के उस युग को मानते है, "जब धन, साधनों और उत्तरदायित्व का समान बँटवारा होगा, जब शक्ति एक जगह पर, एक व्यक्ति अथवा अल्पसंख्यक व्यक्तियों में केन्द्रित न होकर अधिक से अधिक व्यापक होगी, जब हममें से प्रत्येक व्यक्ति प्रकाश के लिए परमुखापेक्षी न रहकर स्वय ही प्रकाशपुंज बनने का प्रयत्न करेगा।" किन्तु यह मान्यता उनके लेखन-कार्य तक ही सीमित नहीं थी, वे हृदय के समस्त आग्रह के साथ ऐसा मानते थे।

सप्तर्षि-लोक (१९४८)

'सप्तर्षि-लोक' शोभाचन्द्र जोशी का दूसरा कहानी-संग्रह है। इसमें ग्यारह उत्प्रेक्षा-प्रधान कहानियाँ संगृहीत हैं जिसमें पौराणिक कहानियों को, उनका लोक-सम्मत रूप बदलकर लेखक ने अपनी भावनाओं के अनुसार परिवर्तित करके प्रस्तुत किया है। बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में "सप्तर्षि-लोक के प्रत्येक रेखाचित्र में एक विद्रोही की आत्मा बोल रही है—'एक ऐसे विद्रोही की जो मानव-समाज के बीच की असमानताओं को दूर करने के लिए व्यग्र है, जो नारी को उसके कल्याणकारी रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उत्सुक है, जो कवियों और लेखकों के कंठ को उन्मुक्त रखने का आकांक्षी है, जो अन्यायों, अनाचारों तथा अत्याचारों का—चाहे वे मदोन्मत्त शासकों की ओर से हैं अथवा मूर्ख जन-साधारण की ओर से—विरोध करने के लिए तड़पड़ा रही है।"[1] भाषा, भाव-प्रवाह के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए चतुर्वेदी जी ने कहा—"भाषा में जबरदस्त प्रवाह है और पहाड़ी नदियों की तरह पाठकों के पैर उखाड़ने की ताकत भी। कोई भी व्यक्ति जिसके हृदय में गम्भीर अनुभूति न हुई हो, ऐसी जानदार भाषा नहीं लिख सकता।"[2] स्वयं चतुर्वेदी जी उच्चकोटि के विद्वान लेखक हैं। वे भी इस बात को स्वीकार करते है, "सच बात तो यह है कि हम स्वयं इतने बढ़िया स्कैच कभी न लिख पाते।"[3] शोभाचन्द्र जी का अल्पायु में ही देहावसान हो जाने से हिन्दी साहित्य जगत् को महान् क्षति हुई है। फिर भी यदि साहित्यकार का उसकी प्रकाशित कृतियों की संख्या के आधार पर मूल्यांकन किया जाता हो तो जोशी जी को साहित्यकार की संज्ञा नहीं दी जा सकेगी, किन्तु यदि नरोत्तमदास 'सुदामाचरित्र' और बिहारी केवल 'सतसई' लिखकर साहित्यकार का अमर पद पा सकते हैं तो जोशीजी को भी निःसन्देह केवल 'सप्तर्षि-लोक' के आधार पर उच्चकोटि के साहित्यकार स्वीकार करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है।

---

१. सप्तर्षि लोक और उसका लेखक, पृ० ८
२. सप्तर्षि लोक, पृ० ६
३. वही, पृ० ११

प्रस्तुत संग्रह की सर्वप्रथम कथा 'सप्तर्षि-लोक' है जिसमें लेखक ने राज्याश्रित साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों, साम्यवादियों, समाजवादियों तथा अराजकतावादियों पर करारी चोट की है। कथा की मौलिक पृष्ठभूमि 'महाभारत' के अनुशासन पर्व से ली है। उशीनगर के वंशज राजा वृषदर्भि के कर्तव्यभ्रष्ट हो जाने से जब भयंकर अकाल पड़ा तो राजा अपनी यशलिप्सा के लिए सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कार्यकर्ताओं को राज्याश्रय में आने को आमन्त्रित करता है। सप्तर्षियों को छोड़कर सभी राज्याश्रय ग्रहण कर लेते हैं। इसी कथा को नये भावों से भर कर वृषादर्भि और सप्तर्षियों के वार्तालाप में वर्तमान काल के उन सभी बुद्धिजीवियों पर करारी चोटें की है, जो सरकार की मिथ्या यश एवं चाटुकारिता में अपना तन-मन अर्पण कर चुके हैं। सप्तर्षि वृषादर्भि को सम्बोधित करते हुए, पथभ्रष्ट साहित्यकारों को उनके कर्तव्य की ओर उन्मुख करते हैं—

"हम लोग तो कवि है—साहित्यिक हैं। हम प्रकृति के उच्चारण हैं—उसकी अभिव्यंजना हैं। प्रकृति में आनन्द हो तो हम प्रफुल्लित हो जाते है, दुःख हो तो हमारे गीतों में करुणा का पारावार आन्दोलित हो उठता है। फूल खिलते हैं तो हम हँसते हैं, पत्तियाँ झूमती हैं तो हम नाच उठते है—बवंडर उठता है तो हम चीत्कार करने लगते है।"[1] वृषादर्भि अन्य साहित्यकारों और कवियों की भाँति सप्तर्षियों को भी राज्याश्रय ग्रहण करने को कहता है। इस पर सप्तर्षि राजा को कवियों की व्याख्या एवं आत्मा का परिचय देते हैं और उसे भी राजकर्तव्य की ओर सचेत करते हुए कहते हैं कि यदि वस्तुतः आप हितेच्छु हैं तो जाइए हमारे उन सहस्त्रों समान-धर्मी बुद्धिजीवियों से कहिए कि विश्व में जहाँ कहीं असत्य है उसका खंडन करें। आपका राजस्व, सार्वभौमिक सत्ता, शस्त्रबल, प्रासाद, मुकुट, राजदण्ड, भोगविलास—ये सब असत्य हैं, अचिरन्तन हैं। शाश्वत तो मनुष्यता है, जो आज भूखी है, उत्पीड़ित है। आप नंगे सिर, नंगे पाँव, वल्कल वस्त्र धारण कर उसी की शरण जाइए। भूखों को अपने हाथों खिलाइए। रोगियों की परिचर्या कीजिए। उनके बालकों को दूध पिलाइए। तभी उशीनगर के वंश की रक्षा हो सकेगी।"[2] सप्तर्षि राजा को उसके वास्तविक कर्तव्य के प्रति ही सचेत नहीं करते अपितु राजकर्तव्य के परिणामों की ओर भी संकेत करते हैं, "जनता की भूख का दूसरा नाम क्रान्ति है। क्रान्ति का वाहन है साहित्य। क्रान्ति की शत्रु है राजसत्ता···जनार्दन का सुदर्शन आज तक किसी ने नहीं रोका!"[3]

'यम की परम्परा' दूसरी कहानी है जिसके पूर्वार्द्ध में कठोपनिषद् की कहानी है पर उत्तरार्द्ध में लेखक की अपनी कल्पना की उपज है। प्रस्तुत कहानी में मरने के नियम की लेखक ने नूतन व्याख्या की है। इस कहानी में लेखक ने नचिकेता और यम के उपाख्यान के माध्यम से शहीदों की परम्परा का वर्णन किया है। यम इस सृष्टि के प्रथम शहीद हैं जिन्होंने मृत्यु का वरण करके इस सृष्टि के रोग-पीड़ित प्राणियों के लिए मृत्यु का सुखद द्वार खोला है। यम नचिकेता से कहता है—"मेरे उदाहरण का अनुगमन करनेवाले अनेक मनुष्य वसुन्धरा पर उत्पन्न होने लगे···इन लोगों का एकमात्र उद्देश्य जगत् का कल्याण करना है और उसकी सिद्धि का उनका एकमात्र मार्ग मृत्यु है। ये लोग स्वयं अपने प्राण देकर एक सत्य की स्थापना विश्व में करते चले जाते हैं—देववाणी में उन्हें 'तथागत' कहते हैं। यवनों की भाषा में वे 'शहीद' या 'मार्टर' कहे जाते हैं। मैं उन सबको 'यम'

१. सप्तर्षि-लोक, पृ० ९
२. वही, पृ० ११
३. वही, पृ० १४

कहता हूँ।"[1] फिर लेखक कृतघ्न समाज पर करारी चोट करता है जो उन महान् आत्माओं को बिलकुल भूल जाता है, जिन्होंने देश, समाज, राष्ट्र, जाति के उद्धार के लिए अपने प्राणों की बलि दी है—"शहीदों की इस टोली पर विधाता का एक शाप है। ये जिस देश में उत्पन्न होते हैं और जिनके लिए प्राणों का उत्सर्ग करते है, वे ही लोग इन्हें ठीक-ठीक नहीं समझ पाते।"[2]

'कुम्भकर्ण की बात' तीसरी कहानी है। यह कहानी पूर्णतया आधुनिक व्यक्तिवादी भावनाओं तथा उसके मूलतः होनेवाले युद्धों की तीव्र आलोचना है। व्यक्तिवादी भावनाओं के कारण ही द्वितीय विश्वयुद्ध की लपटों मे अपार जनसंहार हुआ था और आज भी इस के कारण युद्ध के भीषण बादल मँडराए हुए हैं। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने व्यक्तिवाद के प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त की है। कुम्भकर्ण अपने अग्रज रावण से कहता है—"जब व्यक्ति पूरे समाज से हटकर अहंता प्राप्त कर लेता है—वह पहला लक्षण होता है समाज के क्षय का। उसका अर्थ होता है कि समाज की समवेत जीवनशक्ति नष्ट हो चुकी है।"[3] समाज अथवा राष्ट्र में व्यक्तिवाद का उभरना समाज अथवा राष्ट्र के लिए विनाशकारी है। इसलिए इन अकल्याणकारी तत्त्वों को रोकने के लिए समाज की भी भर्त्सना करता हैं—जो समाज, जो राष्ट्र अपने नेताओं को दुष्कर्म करते देखकर भी चुप रह सकता है उसे जीने का, पनपते रहने का अधिकार नहीं।"[4]

'कर्मनासा' मानव-जाति के चिर अतृप्ति की कहानी है। इसमें ब्राह्मणों पर करारी चोट की गई है। इस कहानी में सदेह स्वर्ग की कामना करने वाले त्रिशंकु की कहानी को नये ढंग से कहा गया है। इसके दो पात्र है, विश्वामित्र और त्रिशंकु। विश्वामित्र ब्राह्मणत्व के दम्भ के प्रति विद्रोह की साकार मूर्ति है और त्रिशंकु अन्धविश्वासों और अन्ध-परम्पराओं के आगे नतमस्तक न होनेवाला साहसी कर्मयोगी, जो स्वर्ग-नरक की कपोल-कल्पित कथाओं पर तब तक विश्वास करने के लिए तैयार नहीं है, जब तक अपनी भौतिक आँखों से स्वर्ग को देख नहीं लेता। विश्वामित्र उसे इस संसार में नरक के दर्शन कराता है और इसी संसार में स्वर्ग की रचना भी करता है, किन्तु उनके उस भू में रचित स्वर्ग को ऊँचे कहे जानेवाले देवता (ब्राह्मण) साम्प्रदायिकता का बीज बोकर नष्ट कर डालते हैं। विश्वामित्र दुःख-दारिद्र्य, अभाव और नरसंहार भरी इस सृष्टि को ही नरक कहता है और फिर दोनों ऐसे देश (स्वर्ग) का निर्माण करते हैं जिसमें न तो कोई धनवान् था, न कोई निर्धन। शक्ति का संचय किसी एक व्यक्ति या वर्ग के हाथ में नहीं था। प्रत्येक मनुष्य समाज के प्रति उत्तरदायी तो था किन्तु वैयक्तिक विषयों में स्वतन्त्र था।"[5]

'सूतपुत्र' में कुन्ती के प्रति कर्ण के प्रेम, ग्लानि और घोर उपेक्षा-भरे उद्‌गार उत्कृष्ट गद्यकाव्य के रूप में प्रकट हुए हैं। इस गद्यकाव्य की छटा को दिनकर के 'रश्मिरथी' के काव्य के समकक्ष निस्संकोच रखा जा सकता है। कुछ स्थानों में तो जोशीजी, दिनकर की अपेक्षा अधिक गहराई में उतर गए हैं। "पुरुष तो सृष्टि का एक लघु सत्य है। वह क्रूर प्रवृत्तियों का केन्द्र है। सदा विनाश की ओर उसकी

१. सप्तर्षिलोक, पृ० २५
२. वही, पृ० २६
३. वही, पृ० ३०
४. वही, पृ० ३२
५. वही, पृ० ५१

भावनाएँ उन्मुख रहती है। किन्तु नारी साक्षात् स्नेहशक्ति है—जगद्धात्री है। पुरुष प्रत्येक वस्तु को तोड़-मरोड़ करना चाहता है, नारी बिखरे तृणों से नीड़ की रचना करती है। पुरुष ममता-राज्य का त्याग करना चाहता है, नारी निखिल चराचर सृष्टि को अपनी गोद में समेट लेना चाहती है।"[1]

'शिखंडी की आत्मकथा' में सूतपुत्र की ही भाँति पुरुष और नारी की तुलना कर नारीत्व की उदात्त भावनाओं का गुणगान किया गया है और दोनों में यह सिद्ध किया गया है कि संसार में नारीत्व ही कल्याण का एकमात्र मार्ग है और पुरुष की तुलना में नारी श्रेष्ठ है। भीष्म शिखंडी से कहता है—"तुम पूर्वजन्म में नारी थे। तुम्हारे हृदय में प्रतिहिंसा, घृणा, द्वेष इत्यादि तामस विकारों के लिए स्थान नहीं होता। नारी प्रेम, दया, करुणा और वात्सल्य की देवी है। पुरुष से वह कहीं श्रेष्ठ है।"[2]

'कुम्भकर्ण की बात' के ही समान 'अश्वत्थामा' में आधुनिक भावनाओं से ओत-प्रोत तथा राष्ट्रवाद और उसके परिणामस्वरूप होनेवाली अशान्ति एवं युद्धों की तीव्र आलोचना है।

'अहंकार का जन्म' का मूल स्रोत पंचतन्त्र की 'पुनर्मूषिकोभव' आख्यायिका है। तपस्या, तपोधन मानव के दम्भ का प्रतीक है जो अपनी प्रसुप्त रक्त-पिपासा की तृप्ति के लिए चूहे को सिंह तो बना लेता है किन्तु फिर जब सिंह उसे ही खाने दौड़ता है तो वह उसे मूषिका नहीं बना सकता। सिंह तपोधन से कहता है—"वह तपस्या नहीं थी तपोधन। वह तो मानव प्रकृति का विकार था, संसार के दूसरे मनुष्यों के प्रति एक प्रच्छन्न घृणा और निम्न भावना की प्रक्रिया थी। तू अपने समाज की सामान्यता से उठकर अतिमानवता प्राप्त करना चाहता था।"[3] "अरे मूर्ख, तूने यह क्यों नहीं सोचा कि दया की वह तेरी भावना प्रच्छन्न घृणा थी—अपने से निम्न योनि के पशुओं के प्रति क्रूर उपेक्षा का ही दूसरा रूप थी।"[4]

'जनता का शत्रु' कहानी द्वारा लेखक की मनोवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक एक ऐसे वर्गहीन अराजक समाज में विश्वास करता है, जिसकी स्थापना प्रेम तथा पारस्परिक सहानुभूति के आधार पर की गई हो। प्रस्तुत कहानी में दुःख और पीड़ा को संसार की सबसे बड़ी शक्ति कहा गया है। दुःख का मूर्त रूप सैनिक से कहता है, "कि यदि वह (दुःख की शक्ति) प्राप्त की जा सके तो यह तुम्हारी मानव-सृष्टि, यह तुम्हारा समाज राष्ट्र, यह लोक और गणतन्त्र एक क्षण के भीतर मिलकर एकाकार हो जाएँ।"[5] मानव-समाज के प्रति करारी चोटें करते हुए लेखक कहता है—"जितना अन्याय मनुष्यों के समाज में होता है, उतना चराचर सृष्टि में कहीं नहीं होता। दूसरे प्राणियों को देखो, कोई भेदभाव नहीं।" "सत्य तो है मनुष्य! सत्य है मनुष्यता। प्रत्येक मनुष्य अपने-आप मे सर्वतोन्मुखी सम्पूर्णता लिए हुए है। उसे किसी भी शासनतन्त्र की आवश्यकता नहीं है।"

'एकलव्य' में भीलकुमार एकलव्य की गुरुभक्ति को मूर्खता कहा गया है। क्योंकि

---

१. सप्तर्षि-लोक, पृ० ६४
२. वही, पृ० ८७
३. वही, पृ० ६७
४. वही, पृ० ६८
५. वही, पृ० १११

वह ऊँचे वर्ग के पाखंडी, नृशंस लोगों के षड्यन्त्र को नहीं जान सका। वह संस्कार और भावनाओं से प्रेरित होकर यथार्थ की ओर से आँखें मूँद लेता है। जिस लक्ष्य के लिए वह देश छोड़कर हस्तिनापुर आया था, अपमानित हुआ था और वर्षों तक असहाय अवस्था में बिना मार्गदर्शक के साधना करता रहा, आवेश में एक ही क्षण में वह उसे भूल गया और अपने अँगूठे को काटकर गुरु-दक्षिणा दे देता है।

'पतन के मार्ग पर' में भी नारी को जग-कल्याणी एवं पुरुष से श्रेष्ठ बताया गया है। इसमें विश्वामित्र-मेनका के साक्षात्कार की कहानी है, किन्तु मेनका नारी है और पुरुष के जीवन में नयी शक्ति का संचार करती है। मेनका भी कहती है—"मैं तुम पर स्नेह का अँचल बिछा दूँगी। तुम्हारी म्रियमाण देह में नयी शक्ति का स्रोत बहाऊँगी।"[१] "मैं नारी हूँ, पुरुष की मर्यादा हूं जो उसे भटकने नहीं देती। तुमने आसपास मृत्यु का सृजन किया है। मैं यहाँ जीवन का सन्देश फूँकने आयी हूँ। तुम्हारी तपस्या असत्य के बल पर चल रही है। इससे संसार का अमंगल होगा। मैं नूतन प्राणों का स्पन्दन भर दूँगी तुममें और तुम्हारे संसार में।"[२]

'सप्तर्षि-लोक' की प्रत्येक कहानी में एक विद्रोही की आत्मा बोल रही है– एक ऐसे विद्रोही की जो मनाव-समाज के बीच की असमानताओं को दूर करने के लिए व्यग्र है, जो नारी को उसके कल्याणकारी रूप में ही प्रतिष्ठित करने के लिए उत्सुक है। लेखक ने प्राचीन पात्रों को नये साँचे में ढालने का सफल प्रयत्न किया है। लेखक की भावनाओं और क्षमताओं का यथार्थ दिग्दर्शन करानेवाली इस पुस्तक को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि यदि यह लेखक कुछ समय और जीवित रहता तो हिन्दी साहित्य भंडार को अनेक इसी प्रकार की उत्कृष्ट रचनाओं से समृद्ध करता।

बुद्धिहीन (१९५१)

शोभाचन्द्र जोशी की तृतीय कृति 'बुद्धिहीन' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। यद्यपि आकार (१०४ पृष्ठ) की दृष्टि से इसे लघु उपन्यास भी कहा जा सकता है किन्तु कथानक तथा शिल्प-विधान की दृष्टि से इसे लम्बी कहानी ही स्वीकार करना अधिक समीचीन होगा।

कहानी का नायक मनोहर एक कुंठाग्रस्त युवक है। लड़कियों से झेंपने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे उसमें कुण्ठा का रूप ले लेती है। उसके साथी उसकी इस कुण्ठा का खूब मजाक उड़ाते हैं। एक दिन वे मनोहर का परिचय एक ऐसी मुखर लड़की से कराते हैं जिससे उसे प्यार और स्नेह के बदले अपमान और उपेक्षा मिलती है। मनोहर इससे और भी अधिक विकारग्रस्त हो जाता है। इस घटना के कुछ दिन बाद मनोहर के पड़ोस में एक बैंक-मैनेजर (बूढ़े पंडित जी) रहने लगते हैं। उनकी कन्या रजनी की सूरत उस लड़की से मिलती-जुलती है जिसने मनोहर को अपमानित किया था। एक ओर बैंक-मैनेजर से सद्-भावना पाकर दोनों परिवारों में पर्याप्त घनिष्ठता हो जाती है, दूसरी ओर मनोहर रजनी को वही लड़की समझकर मन-ही-मन घृणा करता है। रजनी उसकी ओर आकृष्ट होती है और हर प्रकार से उसकी सेवा-सुश्रूषा करने का अवसर ढूंढती रहती है; यहाँ तक कि एक बार

१. सप्तर्षि-लोक, पृ० १४२
२. वही, पृ० १४१

मनोहर के बीमार होने पर रजनी की दिन-रात की सेवा से ही उसके प्राणों की रक्षा होती है, किन्तु कुण्ठाग्रस्त मनोहर स्वास्थ्य-लाभ होने पर भ्रमवश रजनी को घृणा करना नहीं भूलता और उसे अपमानित करता है। प्यार एवं स्नेह की भूखी रजनी को उससे प्रताड़ना, घृणा और कटुता मिलती है। रजनी के स्नेहमय कोमल हृदय पर इससे बड़ा आघात पहुँचता है। वह भयंकर रोगग्रस्त होकर संसार से चल बसती है। मनोहर को जब अपने भ्रम का ज्ञान होता है कि जिस लड़की ने उसका अपमान किया था वह विपुला थी, रजनी नहीं; तो पश्चात्ताप से दग्ध होकर वह रजनी से क्षमा माँगना चाहता है किन्तु उसकी मानसिक विकृति के कारण रजनी को संसार से विदा होना पड़ता है। वह उसे जीवनपर्यन्त तड़पने के लिए छोड़ जाती है।

'बुद्धिहीन' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। जोशी जी पर अँग्रेजी मनोविश्लेषणवादी कथाकार स्टीफन ज्वीग का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने स्टीफन ज्वीग की चार लम्बी कहानियों का अनुवाद भी किया है, जो 'शतरंज के खेल' में संगृहीत हैं। प्रस्तुत कथा का स्रोत भी इन्हीं कहानियों में यत्र-तत्र मिलता है। विषय-चयन एवं कथा-शैली के दृष्टिकोण से भी स्टीफन ज्वीग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। प्रस्तुत कहानी में कथा के नायक मनोहर के विकृत अहं का विश्लेषण है, जिसका चित्रण करने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। मनोहर झेंपू प्रकृति का युवक है। नारी-समाज से तो वह खुलकर बात भी नहीं कर सकता। "स्त्रियाँ (उसे) एक विराट रहस्य प्रतीत होती थीं। उनसे डर लगता। उनके सान्निध्य से बचने की इच्छा होती, किन्तु फिर भी किसी एक के निकट रहने की उत्कण्ठा जाग उठती।"[1] उसके साथी उसकी इन विरोधाभासपूर्ण भावनाओं का उपहास कर उसे अपने विनोद का साधन बनाते हैं। एक बार सान्निध्य-प्राप्ति के लोभ में, उसका परिचय एक ऐसी मुखर युवती से कराते हैं, जो उसे अपमानित करती है और परिणामस्वरूप उसकी विकृति उग्र रूप धारण कर लेती है वह स्त्री-जाति से घृणा करने लगता है—"जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैंने जीवन का ध्येय बना रखा है कि स्त्रियों की छाया से कोसों दूर रहूँ। इसलिए नहीं कि वे महत्तर हैं किन्तु इसलिए कि उनकी क्षुद्रता कीचड़ से भी अधिक अस्पृश्य है।"[2] वह आत्म-केन्द्रित होकर अपनी कल्पित बुराइयों के विचार से अन्दर-ही-अन्दर दग्ध होता रहता है। रजनी के पिता के साथ बात करते हुए उसकी विकृतियाँ स्पष्ट झलकती हैं—"मैं घोर नीच और पाखण्डी हूँ। मेरे हृदय में समूचे संसार के प्रति घृणा और द्वेष भरा हुआ है। ऊपर से निर्दोष निष्कपट दीखता हूँ परन्तु मेरे अन्दर अगणित काले साँपों का विष भरा हुआ है।"[3]

रजनी मनोहर के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार रखती है, हर प्रकार से उसके हित के विषय में सोचती है और उस पर आकृष्ट भी है, परन्तु रजनी के प्रेमपूर्ण कटाक्षों और उससे बहस में पराजित होकर उसके अहं को चोट पहुँचती है तो उसका "अन्दर का पशु तिलमिला उठता है।"[4] स्नेहमयी रजनी उसकी बीमारी में उसकी सेवा करती है और उसकी अथक सेवा से ही उसके प्राणों की रक्षा भी होती है परन्तु उसके विकृत अहं और शंकालु प्रवृत्ति का शिकार बनती है रजनी, जिसको सेवा और प्रेम के बदले मिलती है घृणा, प्रताड़ना

---

१. बुद्धिहीन, पृ० ५-६
२. वही, पृ० ४४
३. वही, पृ० ६२
४. वही, पृ० ४६

और लांछन ! वह एक बार रजनी को स्पष्ट शब्दों में कह भी देता है—"मेरे मर जाने पर सबसे अधिक हर्ष तुम्हें होता...तुमने मुझे क्यों जिलाया ? इसलिए कि मेरे मर जाने से तुम्हारे खेलने का, निरन्तर उत्पीड़ित करने का एक खिलौना नष्ट हो जाता।"[१] भोली-भाली, निश्छल, स्नेहमयी बाला के कोमल हृदय पर मनोहर के इन शब्दों से आघात ही नहीं होता, अपितु उसे भयानक बीमारी भी आ धर दबाती है और मनोहर के अहं, उसकी मानसिक विकृति और शंकालु प्रवृत्ति के कारण ही उसे संसार से बिदा होना पड़ता है।

'बुद्धिहीन' एक मानसिक विकारग्रस्त युवक की कहानी है जो आत्म-प्रवंचना और आत्म-प्रताड़ना में छटपटाता हुआ अपने जीवन को तो निरर्थक बना ही देता है परन्तु दूसरों के लिए भी भयंकर दुःख का कारण बनता है।

तारा पांडे

उत्सर्ग (१९३७)

इस कहानी संग्रह में श्रीमती तारा पांडे की तेरह कहानियाँ संकलित हैं, जिनमें से अधिकांश 'हंस' जैसी उच्च स्तर की साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इस संग्रह की भूमिका में उपन्यास-सम्राट् प्रेमचंद ने लिखा है कि "इन कहानियों में नारी अपने भिन्न-भिन्न रूपों में दर्शन देती है। कहीं वह स्नेहमयी माता के रूप में नज़र आती है, कहीं शीलमयी बहन के रूप में और कहीं प्रेममयी पत्नी के रूप में। नारी-हृदय की कोमल आशाएँ और निराशाएँ, वेदनाएँ और अभिलाषाएँ, अपनी सम्पूर्ण मर्यादाओं के साथ इस तरह चित्रित की गई हैं कि चित्त प्रसन्न हो जाता है।"[२]

तारा पांडे मूलतः कवयित्री हैं। यह उनका एक-मात्र कहानी-संग्रह है। कविता की तरह उनकी कहानियों में भी मध्यवर्गीय भारतीय नारी की प्रेम, त्याग, सहिष्णुता आदि भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। जैसा कि उत्सर्ग शीर्षक से ही प्रकट है इन कहानियों का प्रधान विषय नारी का उत्सर्ग ही है। भारतीय नारी का सबसे व्यापक गुण अथवा अवगुण यह उत्सर्ग ही रहा है। चुपचाप भीतर ही भीतर सुलगकर दूसरों की सेवा करे जाना, उन्हें स्नेह बाँटते जाना उसका स्वभाव रहा है और इसके कारण वह साहित्य में करुणा का आलंबन ही बनी है। 'उत्सर्ग' कहानी में सोना अपने भाई के सुख के लिए ससुराल में जाकर घोर अपमान सहती है और अन्त में प्राण त्याग देती है। 'बिमाता' कहानी में रजनी बिमाता बनकर अपने पति के घर जाती है और अपनी सौत के बच्चे का प्यार पाने के लिए अपने तमाम सुखों को क़ुर्बान कर देती है। 'त्याग' में एक संतति-विहीन दम्पति का एक अनाथ बालक के लिए किया गया त्याग दिखाया गया है। 'वन्ध्या' कहानी में एक वन्ध्या नारी सौत से अपमानित होने पर भी उसके लड़के की जान बचाने के लिए

---

१. बुद्धिहीन, पृ० ८७
२. उत्सर्ग, भूमिका

पूरी शक्ति लगा देती है। 'सौंदर्य' कहानी एक ऐसी नारी की दुःखभरी कथा है जो चेचक से कुरूप हो जाने पर अपने पति की घृणा की पात्री बन जाती है।

जिस समय ये कहानियाँ लिखी गई थी उस समय नारी का यह करुण रूप ही साहित्यकारों को अधिक प्रिय था। 'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' वाली नारी समाज को आँसुओं में भले ही डुबो दे, किन्तु वह समाज को आगे बढ़ाने में बहुत कम योग देती है। उसके लिए विद्रोहिणी नारी की आवश्यकता है जो अन्याय को चुपचाप न सहकर उनके विरुद्ध आवाज उठाए। आश्चर्य की बात है कि पूरे कहानी-संग्रह में एक भी नारी अन्याय का प्रतिकार करती हुई नहीं दिखाई पड़ती। सम्भवतः यह उस समय की परिस्थितियों का ही प्रभाव है जब विद्रोह से अधिक कष्ट-सहन ही देश-भर का जीवन-दर्शन बना हुआ था।

गौरा पन्त 'शिवानी'

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, विशेषकर 'धर्मयुग', 'सारिका', 'रागरंग', 'लहर', 'नवनीत' आदि में गौरा पन्त 'शिवानी' की कहानियाँ प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। इनके दो उपन्यास भी १९६० के बाद प्रकाशित हो चुके हैं। अपने शोध-प्रबन्ध में केवल १९६० से पूर्व प्रकाशित रचनाओं को सम्मिलित किये जाने के कारण शिवानी की सभी रचनाओं का उपयोग उठाने से वंचित रहना पड़ा है। इनकी कहानियाँ प्रमुखतया भारतीय पारिवारिक जीवन पर आधारित होती हैं, जो अधिकांशतः कूर्मांचल के उच्चवर्गीय ब्राह्मण-परिवारों के धर्म, जाति, सम्प्रदाय, वर्ग, रीति-रिवाज आदि मान्यताओं को लेकर चलती हैं। विभिन्न परिस्थितियों में परिवार के सदस्यों के व्यक्तिगत या पारस्परिक आचार व्यवहार पर प्रकाश डालना तथा उनका विश्लेषण व व्यवस्था करना लेखिका का प्रमुख लक्ष्य रहता है। 'त्रिकोण' कहानी एक धनीमानी परिवार की गाथा है। नरेश के तीनों भाई अच्छे व्यवसाय व उच्च पदों पर आसीन हैं। नरेश भी आई० ए० एस० में सम्मान-सहित सफल होता है इसलिए तीनों भाभियाँ उसका विवाह अपनी छोटी बहनों या अपने मायके की निकटस्थ कन्या से करने के लिए योजनाएँ बनाती हैं। उस पर अपना जाल डालती हैं। यहाँ तक कि उसकी एक भाभी तांत्रिक की भी सहायता लेने का उपक्रम जुटाती है। 'बन्द घड़ी', गिरीश और माया के कलहपूर्ण दाम्पत्य जीवन तथा दोनों के पारस्परिक तनाव की कहानी है। कहानी की नायिका माया सब कामों से निपटकर बच्चों के स्कूल से आने से पहले ही आत्महत्या करने का निश्चय करती है परन्तु घड़ी बन्द हो जाती है और समय के भ्रम के कारण वह अपनी योजना पूरी नहीं कर पाती और उसका पति और बच्चे आ जाते हैं। उसका स्नेह और ममता छलछला उठता है और वह अपने मस्तिष्क से सम्पूर्ण दुर्भावनाओं को हटा देती है। 'बिच्छू-बूटी' कहानी एक भाग्य की आहत कन्या की करुण गाथा है। कथा की नायिका कनककुमारी एक धनी जमींदार की कन्या है जिसका विवाह एक जज के पुत्र रंजन के साथ आठ वर्ष की आयु में हो जाता है। बाल्यकाल में दोनों बाल-साथी के रूप में साथ ही खेलते हैं, साथ ही पढ़ते हैं और साथ ही लड़ते-झगड़ते

हैं। उन्हें वस्तुत: सामाजिक सम्बन्ध का ज्ञान किंचित्मात्र भी नहीं रहता। समय तथा उम्र के साथ-साथ कनककुमारी में नारी के सहज गुण-लज्जा, सकोच आदि का आविर्भाव होता है। रंजन को भी उससे कोई शिकायत नहीं होती। दोनों प्रेममय जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु कनककुमारी अकस्मात् घटनावश लँगड़ी हो जाती है। स्वार्थी पति दूसरा विवाह कर लेता है और वह बेचारी मृत्युपर्यन्त अपने भाग्य की विडम्बना का सामना करने के लिए भक्तिमार्ग ग्रहण कर लेती है। 'लाटी' कहानी में बानो, एक कैप्टन की पत्नी के जीवन की करुण गाथा है। कैप्टेन जोशी विवाह के बाद युद्धक्षेत्र में चला जाता है और दो साल बाद आने पर ज्ञात होता है कि उसकी पत्नी क्षय रोग से ग्रस्त है। वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसकी सेवा-शुश्रूषा करता है परन्तु बानो को जब ज्ञात होता है कि अब उसका जीना असम्भव है तो वह एक रात भागकर आत्महत्या करने के लिए नदी में कूद पड़ती है। कैप्टेन भी शोक भूलकर दूसरी शादी कर लेता है। एक बार जब नव-दम्पति भुवाली में चाय पी रहे थे तो उसे 'वैष्णवियों के दल में दिखाई देती है वही बानो जिसकी जीभ नदी में कूदने से कट गई थी और वैष्णव गुरु ने उसे बचाया था। कैप्टेन के मन में टीस-सी उठती है परन्तु परिस्थितिवश वह कुछ कर नहीं पाता है और मन मसोसकर ही रह जाता है।

शिवानी ने अपनी कहानियों में पति-पत्नी के सुखमय जीवन का ही वर्णन किया है। उनके पात्र उच्च वर्ग के ही हैं—आई० ए० एस०, आई० सी० एस, जज, जमींदार, जिनकी पारिवारिक जिन्दगी सुख-चैन व आराम से कटती है परन्तु भारतीय समाज में ऐसे परिवार अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। वस्तुत: शिवानी जैसी प्रतिभाशालिनी लेखिका का ध्यान अभी भारत के यथार्थ जीवन की ओर नहीं गया, ऐसा प्रतीत होता है। अपनी कहानियों का आधार उन्होंने अधिकतर कूर्मांचल के उच्च वर्ग के ब्राह्मणों – पन्त, पाण्डे, जोशी—को ही लिया है और उनके ही जातिगत संस्कारों का चित्रण किया है जो आजकल भी उन लोगों मे दिखाई देते हैं। सभी पात्र समाज के एक विशिष्ट वर्ग के हैं और वह वर्ग है भारत का उच्च वर्ग—जन्म का भी, धर्म का और समाज का भी। पात्रों का चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक ढँग से हुआ है। उनकी आयु, वेशभूषा, आकृति का चित्रण तो सुन्दर नख-शिख वर्णन का उदाहरण बन गया है। पंकज कहानी की नायिका का परिचय देती है—"सलोनी अब सोलह वर्ष की थी। बाएँ हाथ में छोटी-सी घड़ी, लम्बी-लम्बी मोटी दो चोटियाँ कटोरी-सी बड़ी आँखें और शरीर में लचीलापन जैसे हवा में झूमती गेहूँ की बाली हो। एक-एक अंग में ईश्वर ने जादू की छड़ी-सी छुआ दी थी कि बोटी-बोटी फड़कती थी, आँखों में ऐसा नशा था कि देखनेवाला देखता ही रहे पर आँख न भरे।"

भाषा तत्सम-प्रधान है परन्तु आधुनिक शिक्षित पात्रों के मुख से अँग्रेजी के शब्द भी यत्र-तत्र मिलते हैं।

कथा में प्रवाह है तथा घटनाएँ और पात्र कथा-विकास में सहायक हैं।

जीवनप्रकाश जोशी

जीवनप्रकाश जोशी कूर्मांचल के नवोदित कहानीकार हैं। इन्होंने कविता, उपन्यास, आलोचनात्मक कृतियों के अतिरिक्त कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं जिनमें 'जवानी मस्तानी' (वीणा), 'मजदूर' (वीणा—अगस्त, १९५४), 'गायक' (वीणा), 'उपासना' (वीणा—जुलाई, १९५४) तथा 'गुड़िया का विवाह' (सैनिक समाचार) प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। जोशीजी समाज की आडम्बरपूर्ण रूढ़ियों के प्रति करारी चोट करते हैं। 'जवानी मस्तानी' कहानी की नायिका छबीली एक हरिजन कन्या है, जो अपने जन्मगत संस्कारों के कारण दबी हुई है। यौवनावस्था की चंचलता में भी किसी उच्च जाति के व्यक्तियों से बोल तक नहीं सकती। परन्तु मन्दिर के पुजारी, जिसे समाज देवता-स्वरूप समझता है, की पाशविक काम-वासना का शिकार होती है, वह भगिन की भोली-भाली छोकरी छबीली। इस प्रकार पुजारी-वर्ग या कुलीन-वर्ग की कुत्सित वृत्तियों पर जोशी जी ने करारी चोट की है। 'गुड़िया का विवाह' आत्मकथात्मक शैली में एक ऐसी नारी के मनोभावों की व्याख्या है, जो दो बच्चों की माँ होने के बाद भी अपने बाल-साथी के प्रेम को अपने अन्तर्मन में संजोये रहती है।

जोशीजी मूलतः कवि हैं इसलिए उनका कवि-हृदय भावुकता के प्रवाह में कभी-कभी कथा-प्रसंग को छोड़कर एक गद्य-काव्य की रचना-सी करने लगता है, जिससे रचनाएँ भाव-प्रधान हो गई हैं। पात्र समाज के प्रायः सभी वर्गों से चुने गये हैं और पात्रों का चरित्र-चित्रण, [illegible] शैली में किया गया है। जोशीजी की भाषा काव्यमयी एवं [illegible]।

शम्भूप्रसाद शाह

मेरा बाप : मेरा दुश्मन

'मेरा बाप : मेरा दुश्मन' में शम्भूप्रसाद शाह की ग्यारह कहानियाँ हैं। विषय-वस्तु के दृष्टिकोण से सभी कहानियाँ सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। कहानीकार ने वर्तमान काल की सामाजिक कुरीतियों का चित्रण कर समाज की आन्तरिक स्थिति का पर्दाफाश किया है। सामाजिक चित्रण में शाहजी ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है परन्तु मर्यादा का भी ध्यान रखा है। सभी कहानियाँ सोद्देश्य लिखी हैं। आजकल के नवयुवक लेखकों की भाँति यथार्थ के नाम पर नग्न या अश्लील चित्रण इनकी किसी भी कहानी में परिलक्षित नहीं होता।

'स्टेनो' कहानी में मिस दास दफ्तर में काम करती हैं और उनका 'बॉस' अमेरिका

में पला भारतीय है जिसके लिए 'वासना और स्त्री-सम्बन्ध' भोजन और थियेटर देखने की तरह स्वाभाविक है। निर्धनता के कारण नौकरी के लिए विवश हुई मिस दास जब उसकी कल्पना के विपरीत निकलती है तो वह उसे नौकरी से निकाल देने की धमकी देता है। मिस दास की आँखों में उस समय जो आँसू प्रकट होते हैं उन्हें देखकर मिस्टर लाल (बॉस) को लगता है, "ये मिस दास के आँसू नहीं, भारतीय संस्कृति और नारीत्व के आदर्श की पराजय के अन्तिम चिह्न हैं।" फिर नोटबुक पर झुकी हुई मिस दास उसे ऐसी लगती है "जैसे भारतीय नारी का सनातन शील और नारीत्व पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के समक्ष नतमस्तक हो गया हो।" इस कहानी में मिस्टर लाल का हृदय-परिवर्तन बड़े सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक ढँग से दिखाया गया है।

'मेरा बाप : मेरा दुश्मन' मनोविज्ञान पर आधारित कहानी है किन्तु इसमें एक बात को, बिना उसके मूल सत्य या कारण को बताए बहुत दूर तक खींचा गया है। बाप नयी सन्तान होने पर पुरानी सन्तान से केवल उपेक्षा नहीं, घृणा भी करने लगता है। फलस्वरूप उसके दो लड़के घर से भाग जाते हैं, किन्तु लेखक यह नहीं बताता कि पिता के दिल में वह कौन-सी कुंठा या भावना थी जिससे वह इस प्रकार का व्यवहार करता है। मनोवैज्ञानिक कहानियों की सार्थकता तब है जब मानसिक गुत्थियों के पीछे प्रसुप्त भावनाओं को सामने लाकर, उन गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया जाए। इस कहानी में बेटे की मानसिक गुत्थियों को तो समझाया गया है किन्तु भयंकर मानसिक रोग से पीड़ित बाप को यों ही छोड़ दिया गया है।

प्रेम जीवन की महत्त्वपूर्ण वृत्ति है और उसके मोहक चित्र इन कहानियों में मिलते हैं किन्तु प्यार को केवल भोग की वस्तु मानने से जो कलुष हृदय में पैदा होता है उसकी तीव्र अभिव्यक्ति 'आँसू और आशीर्वाद' कहानी में हुई है जिसके अंत में कहानीकार कहता है —"आज हम अपने हृदय के कलुष के कारण हर लड़की को प्रेमिका और हर व्यक्ति को चरित्रहीन समझते हैं जैसे हम भूल गये हैं कि भाई-बहन का भी कोई रिश्ता होता है।" इस कहानी में लेखक सहज धर्म और संयम के बीच छटपटाता दिखाई पड़ता है और एक स्थल पर तो कहानी के नायक का स्खलन देखकर यह भी लगता है कि शायद वह अपने विश्वास से डिग गया है किन्तु अन्त में उसने बात सँभाल ली है।

विवाह-सम्बन्धों में नारी-हृदय की उपेक्षा और शरीर की सुन्दरता की मांग दिन-प्रति दिन बढ़ती जा रही है। इस संकुचित मनोवृत्ति पर कटु प्रहार करने के लिए 'काली लड़की दस हजार रुपये' कहानी लिखी गई है। समाज के नासूर की शल्य-चिकित्सा के प्रभाव को स्थायी बनाने के लिये ट्रेजेडी का यहां सार्थक प्रयोग किया गया है। 'दिल्ली के मकान-मालिक' में दिल्ली की मकान-समस्या पर रोचक और प्रभावशाली ढंग से प्रकाश डाला गया है। अन्य सभी कहानियों में भी साहित्य के अनिवार्य गुण—रसमयता का पूर्ण निर्वाह हुआ है। सभी कहानियां सोद्देश्य लिखी गई हैं। सभी कहानियों के पात्र जीवन के यथार्थ धरातल पर हैं जिनका चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक ढंग से किया गया है। कथोपकथन, घटना एवं पात्र चरित्र-चित्रण में सहायक हैं।

जहां तक भाषा-शैली का प्रश्न है, मैं समझता हूं कि साहित्य के अनन्य साधक श्री गोविन्दवल्लभ पन्त के ये शब्द उसका दिग्दर्शन कराने के लिए पर्याप्त हैं—"उनमें कहने

---

१. मेरा बाप : मेरा दुश्मन—भूमिका।

की कला है, कहने के लिये वस्तु है और कहने का अपना ढंग है जो उनकी कहानियो को एक विशिष्टता प्रदान करता है।"

शान्ति जोशी

माटी की गन्ध (१९६०)

शान्ति जोशी की बारह कहानियों का संग्रह है। ये कहानियां पारिवारिक जीवन, विशेषकर परिवार में नारी के सम्मुख उपस्थित समस्याओं पर आधारित है। 'अभिशाप' की नायिका एक अविवाहित अध्यापिका है। उसे अपना एकाकी जीवन अभिशाप-सा प्रतीत होता है इसलिए वह ग्रीष्मकालीन अवकाश में अपनी जीजी के पास जाती है तो उसे ज्ञात होता है कि विवाह के पश्चात् नारी का अपना व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। केवल पुरुष की इच्छा की कठपुतली बनकर रहना उसके जीवन का चरम लक्ष्य होता है जिसे वह एक अभिशाप समझती है। 'अनुभव का बोध' कहानी में अनमेल विवाह की शिकार 'पत्नी' की करुण गाथा है। इसमें नारी-हृदय की आकांक्षाओं का चित्रण कर यह बताया गया है कि धन ही नारी के सुख का साधन नहीं, उसे इसके अतिरिक्त अन्य वस्तु की भी आवश्यकता होती है। 'वह किसी की न थी' कहानी में एक ऐसी श्रद्धामयी, मानवता की साक्षात् प्रतिमा नारी की कथा है जो किसी को दुखी-पीड़ित नहीं देख सकती। उसके लिए सभी अपने हैं परन्तु समाज की शंकालुवृत्ति और लाँछन उसके जीवन को विषम नहीं तो कटु अवश्य बना देते हैं। 'प्रकृति का पुत्र' में पुरुष के अन्तर्मन में विद्यमान आदि-मानव की अहं वृत्ति का चित्रण किया गया है। "तुम एकमात्र मेरी हो और मेरा तुम पर पूर्ण अधिकार है—जब कोई भी अन्य व्यक्ति तुमसे बोलता है तो मुझे प्रतीत होने लगाता है कि हमारे प्रेम के बीच में एक दीवार खड़ी हो रही है।"[१] 'कालचक्र' में दहेज-प्रथा पर व्यंग्य किया गया है। "डॉक्टर भैया" में एक ग्रामीण बुढ़िया के भोलेपन का चित्रण है जिसमें वह साहित्य के डॉक्टर को चिकित्सक डॉक्टर समझती है।

इनकी कहानियों के घटनाक्रम व कथा-प्रवाह में स्वाभाविकता अधिक नहीं दिखाई देती तथा कथोपकथन की भाषा में कृत्रिमता झलकती है।

शैलेश मटियानी

शैलेश मटियानी कूर्मांचल की नयी पीढ़ी के मात्र कहानीकार हैं जिन्होंने इतने कम समय में इतनी अधिक ख्याति अर्जित की है। यद्यपि शैलेश मटियानी ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक—साहित्य की सभी विधाओं पर लिखा है परन्तु ये मूलतः कथाकार ही हैं। इनका कथाकार का जीवन लगभग सन् १९५२ से आरम्भ होता है, बूढ़ी दादी की कथाओं

---

१. मेरा बाप : मेरा दुश्मन – भूमिका
२. माटी की गंध, पृ० ४९

का अवलम्ब लेकर। इस सम्बन्ध में स्वयं लेखक ने भी कहा है कि "मेरे लेखक-जीवन की नींव में दादी के मुख से निकली लोक-कथाओं की ईटे पड़ी हैं।"[1] दादी के मुख से सुनी लोक-कथाओं को कला का आवरण देकर मटियानी लेखक-जगत् में प्रविष्ट हुए। ये कथाएँ 'कुमाऊं की लोक-कथाएँ', 'बारामण्डल की लोक-कथाएँ' आदि नामों से १२ संगहों में प्रकाशित हैं। यद्यपि ये कथाएँ कथाशिल्प के दृष्टिकोण से अधिक महत्त्व नहीं रखती हैं, फिर भी लेखक की रचना-प्रक्रिया के विकास-क्रम को समझने के लिए पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन संग्रहों के माध्यम से कुमाऊं का लोक-जीवन भी उद्घाटित होता है।

इनकी अन्य कहानियों में मुख्यत: बम्बई के फुटपाथों का जीवन और कुमाऊँ की मिट्टी एवं वहां के सामाजिक, धार्मिक जीवन का चित्रण मिलता है। इनमें लेखक के संघर्षमय जीवन, क्रान्तिकारी विचारधारा,आवेश एवं आक्रोशपूर्ण भावनाओं की छाप है। साथ ही लेखक की गहरी पैठ, चित्रात्मक आंचलिकता एक विशिष्ट वातावरण का सृजन करती है और पाठक को दूर कुमाऊं के गांवों मे ले चलती है परन्तु यह गहरी पैठ, चित्रात्मक शैली वैचारिक न होकर शब्दों के 'सरकारामे' तक ही सीमित रह गयी है, फिर भी शैलेश की अद्भुत क्षमता बेजोड़ है। जिस अचल को उसने लिया है उसका पूरा चित्रण किया और वह चित्रण अलंकार-आभूषणों की सीमा लाँधकर काश हृदय के समीप पहुँच पाता और बुद्धि के भी कुछ पास तो शैलेश और शैलेश का योग गोर्की तथा गोर्की के योगदान की तरह विशेष महत्त्व रखता। ऐसा प्रतीत होता है कि शैलेश के लिए कहने से अधिक महत्त्वपूर्ण 'कहा जाना' है, चूँकि उसमें सामर्थ्य है—वह सामर्थ्य जो एक कुशल जुलाहे में होती है। इसी से वह अपना ताना-बाना इतना बारीक जोड़ता है कि पाठक की सारी शक्ति, सारी दृष्टि ताने-बाने पर ही उलझ जाती है। शैलेश कुशल कारीगर है, जिसे शब्द ढालने का अभ्यास है; परन्तु उच्चकोटि के साहित्य-सृजन के लिए शब्दकार अथवा शैलीकार होना ही पर्याप्त नहीं। शैलेश की कहानियां एक बड़ी सम्भावना के रूप में उभरी थीं परन्तु वे पर्वतीय नारियों के आवरण एवं अनावरण तक ही रह गईं। यद्यपि शैलेश ने पर्वतीय पृष्ठभूमि के अतिरिक्त कुछ अन्य कहानियां भी लिखी हैं पर वे भी अपना दूरगामी प्रभाव छोड़ने में असमर्थ रही हैं। शैलेश की कहानियों में वस्त्रों के पात्र हैं। उनकी परत दर परत हटाने के बाद अन्त में कुछ भी हाथ आ पाना सम्भव नहीं। ऐसा लगता है कि लेखक एक तालाब में तैरता रहा और अन्त में उसी में डूब गया। जिस तेजी के साथ शैलेश कहानीकार के रूप में उभरा था वह उस तेजी का निर्वाह कर अपना विकास नहीं कर पाया। साहित्य में शब्दों के अतिरिक्त कुछ और भी तत्त्व होते हैं, जो साहित्य को अमरता का स्वर देते हैं इसीलिए शैलेश की कहानियों का रूपान्तर सम्भव नहीं। यदि रूपान्तर किया भी जाए तो उसमें कुछ भी हाथ आ पाना कठिन है। वस्तुत: विश्व—साहित्य की परिसीमा में प्रवेश वही साहित्य पा सकता है जिसमें जीवन्त तत्त्व हो। भारतीय कथाकारों के साहित्य में इस तत्त्व का सर्वथा अभाव ही दीख पड़ता है। सबसे पहले हमारे सम्मुख प्रेमचन्दवादी कथा-साहित्य आया। इसके बाद लेखक शहरी जीवन के त्रिकोणात्मक प्रेम की रट लगाने लगे और अब उससे भी,एक कदम आगे शहरों से दूर ग्रामों के अंचल में आ दुबके और वहां लोक की संस्कृति, लोकजीवन तथा आंचलिकता के नाम पर नग्न चित्रण एवं अश्लीलता में अधिक रस लेने लगे। ऐसा लगता है कि उन्हें भारतीय ग्रामों का अन्धकार पक्ष ही अधिक दिखाई देता

१, मेरी तैंतीस कहानियाँ,पृ० ६

है। मेरी राय में आंचलिकता कोई विधान नहीं है बल्कि विधा की ओर संकेत मात्र है जिसे पकड़ने में कथाकार असफल रहे। परन्तु इस असफलता का कारण विधा का कमजोर होना नहीं बल्कि साहित्यकार का दुर्बल होना है। इतनी क्षमता उसमें नहीं कि वह संक्रमण को झेलकर कुछ सर्जन कर सके।

विनोदचन्द्र पांडे

स्वयंवर (१९५८)

निम्न मध्यमवर्ग के जीवन पर बहुत कुछ लिखा गया है और बहुत कुछ कहा भी गया है। वस्तुतः यह सत्य है कि निम्न मध्यमवर्ग समाज का बहुत बड़ा भाग है, जिसकी ओर से आँखें मूंदी नहीं जा सकतीं। हिन्दी साहित्य में समाज के उस वर्ग का चित्रण प्रायः नाम मात्र को ही हुआ है, जिनका जीवन विलास एवं ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में ही व्यतीत होता है। समाज के इस वर्ग का चित्रण करने वाले कूर्मांचलीय कहानीकारों में विनोदचन्द्र पांडे प्रमुख हैं।

इनकी ग्यारह कहानियां, जो सन् १९५८ या इससे पूर्व लिखी गई थीं, 'स्वयंवर' संकलन में प्रकाशित हुई है। इनमें से अधिकांश कहानियाँ उच्च माध्यमिक वर्ग से सम्बन्धित हैं। थोड़ा-सा विभेद होते हुए भी प्रायः सभी कहानियों में समान प्रवाह प्रतीत होता है। उच्च मध्यम वर्ग में भी 'एतबार', 'मीना','स्वयंवर','म्युजियम', 'एडमीशन' और किसी सीमा तक 'सीता'कहानी एक ही भावभूमि की परिक्रमा-सी करती हुई लगती हैं, जिनके अधिकांश पात्र कॉलेज या यूनिवर्सिटी या उसके बाद नयी-नयी अच्छी नौकरियों से सम्बंधित हैं। इनके सभी पात्र धनी, उद्योगपति, उच्चपदाधिकारी हैं। 'एतबार' कहानी बड़े अच्छे ढंग से मध्यमवर्गीय परिवार एवं उनके मध्यमवर्गीय पुराने संस्कारों का चुभता व्यंग्य है। यद्यपि यह कहानी ओ' हेनरी के स्टाइल के काफी नजदीक है,फिर भी कहानी में आकर्षण है और एक ताजगी भी,जो पाठक को अन्त तक साथ ले चलती है। 'मीना' में भी यद्यपि स्टाइल वही है, फिर भी वह स्टाइल अखरता नहीं है। घटनाएं नाटकीय प्रणाली से प्रस्तुत होती हैं, कुछ-कुछ चौंकाती हैं और इसी चकाचौंध में अपना एक प्रभाव भी छोड़ जाती हैं। 'निराशा' कहानी भी इस परम्परा को तोड़ नहीं पायी है। 'स्वयंवर' आज के भौतिकवादी समाज पर एक व्यंग्य है कि किस प्रकार एक आधुनिक कन्या अधिक ओहदेवाले वर्ग को चुनकर अपनी व्यवहार-बुद्धि का परिचय देती है। वस्तुतः वहां पर मनुष्य, प्रतिभा, रुचि या अरुचि के लिए कोई भी स्थान न होकर मात्र स्थान पैसा और तरक्की के लिए है। 'मजबूरी' का नायक कॉलेज और यूनिवर्सिटी की परिधि के पार पहुँचकर एक अच्छा अफसर है। एक साधारण क्लर्क की 'असाधारण' समस्या के प्रति उसका दृष्टिकोण कितना तर्कसंगत है और साथ ही मानवीय भी यह

विशेष रूप से इस कहानी में प्रतिबिम्बित हुआ है। 'एडमीशन' कॉलेज के वातावरण की याद दिलाकर आज के इस वैचारिक संक्रमण की ओर इशारा करती है। 'सीता' कहानी बड़े स्वाभाविक ढंग से आरम्भ होती है। वही यूनिवर्सिटी और सर्विस के संधि मध्य की कहानी, जो अनेक उतार-चढ़ाव के साथ-साथ अपना असर छोड़ती चली जाती है। 'मुर्दाबाद' कहानी दिल्ली और मुरादाबाद अर्थात् मुर्दाबाद की एक साधारण-सी घटना है, जो साधारण होते हुए भी एक उगते युवक की उगती भावनाओं को देखते हुए कम असाधारण नहीं है।

पांडेजी ने जिस समय इन कहानियों को लिखा हिन्दी-कथा-साहित्य में वह एक बहुत बड़े परिवर्तन का समय था। प्रेमचन्द, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्रवादी कहानिया कुछ-कुछ धुँधला रही थीं, कहानी के प्लाट अपने आकार और प्रकार दोनों में ही परिवर्तन ला रहे थे। सचमुच वह परिवर्तन-काल अपने समय का एक ऐतिहासिक क्षण था। निर्मल वर्मा, रामकुमार आदि काफी लोग कहानी के कहानीपन से मुक्त होने की परिक्रिया से गुजर रहे थे। पांडेजी की कहानियाँ इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि कुछ कहानियां ओ' हेनरी या मोपासाँ के अधिक निकट हैं—कहानीपन के कारण, परन्तु उनमें एक बहुत बड़ा परिवर्तन दीखता है, वह परिवर्तन है—प्लाट से सम्बन्धित कम और वर्णन अर्थात् वास्तविक वर्णन, जिसे सजीव वर्णन कह सकते हैं, के वह बहुत समीप। कहानियां एक सहज स्वाभाविक ढंग से आरम्भ होती हैं और हौले-हौले अपना प्रभाव छोड़कर समाप्त हो जाती हैं। यही सहजता और स्वभाविकता इन कहानियों की सबसे बड़ी खूबी है। वस्तुतः यही एक प्रश्न है जो कहानी के कहानीपन की समाप्ति की ओर इशारा करता है।

व्यंग्य और सहज व्यंग्य पांडेजा की कहानियों को एक दूसरे धरातल पर खड़ा करता है। वस्तुतः जिस समय ये कहानियां लिखी गयीं हिन्दी कहानियां बहुत-सी विशेषताओं तक नहीं पहुंच पायी थीं। गहरे अनुभव-वर्णन की स्वभाविकता और चुटीला व्यंग्य, इन्हें समकालीन कहानियों से कहीं आगे ले आता है। यदि लेखक चमत्कार के पीछे न भागता और कहानियों को कुछ और सँवार सकता तो निस्सन्देह ये कहानियां हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखने में सफल हो पातीं।

आज हिन्दी साहित्य में जिसे 'नई कहानी' और 'उससे अगली कड़ी'—अकहानी—प्रतिकथा—आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है उसके बहुत से गुण पांडेजी की उन कहानियों में हैं जो आज से बहुत समय पूर्व लिखी गई थीं, शब्दों का संतुलन और नये बिम्ब कहीं-कहीं पर एक साकार चित्र-सा उपस्थित कर देते है। कुल मिलकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये कहानिया किसी एक स्तर पर सर्वसाधारण हिन्दी लेखकों की कहानियों से कुछ-कुछ भिन्न हैं। यदि कहानियां नाटकीयता से मुक्त होतीं और अपनी सहजता एव सहज सम्वेदना की मादकता बढ़ा सकती तो वह अपने में एक विलक्षण योगदान होता। लगता यह है कि इस नयेपन का प्रमुख कारण जहाँ तक लेखक की नयी दृष्टि है किसी हद तक वहां विदेशी साहित्य का प्रभाव झलके बिना नहीं रहता। इस प्रभाव से कहानियों में शिथिलता नहीं आयी बल्कि एक वेग ही उत्पन्न हुआ है जो हिन्दी कहानियों में अपने ताजेपन के कारण काफी असर कर सकता है।

पांडेजी की इन कहानियों में विकास की सीढ़ी नहीं दिखाई देती। इन कहानियों में वैचित्र्य का भी अभाव है। सभी कहानियों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि इन कहानियों में एक ही पात्र है जो विभिन्न रूपों में पाठक के सामने

आता है, इसलिए सम्पूर्ण संग्रह में एकरसता होने के कारण पाठक ऊब का अनुभव करने लगता है। इन कहानियों में एक विचित्र संयोग यह भी है कि इनमें नये और पुरानेपन के दोनों धरातल साथ-साथ चलते हैं। एक ही कहानी कहीं पर किसी रूप में अद्भुत प्रतीत होती है किन्तु दूसरे ही क्षण उसका पिछड़ापन साफ झलके बिना नहीं रह पाता। फिर भी एक अच्छी सम्भावनाओं की शुरूआत तो है ही। कभी यदि हिन्दी साहित्य में निष्पक्ष समालोचना का युग आया तो निस्सन्देह इन कहानियों का मूल्यांकन नई कहानी के सूत्रधारों से कम नहीं आँका जा सकेगा।

शेखर जोशी

कोसी का घटवार

'कोसी का घटवार' शेखर जोशी की दस कहानियों—दाज्यू, उस्ताद, कविप्रिया, बन्द दरवाजे : खुली खिड़कियाँ, किं करोमि जनार्दन, कोसी का घटवार, जी हजरिया, पद्मा की कहानी, शुभो दीदी—का संग्रह है। कहानी-संग्रह के पूर्व-कथन के अनुसार लेखक ने कहानी लिखने की प्रेरणा एवं उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए कहा है—"पर्वतीय प्रदेश के प्रति अपनी निजी आत्मीयता तथा उर्वर कल्पना वाले लेखकों द्वारा पर्वतीय नारी के अयथार्थ और बीभत्स चित्रण ने इस दिशा की कहानियों को लिखने की प्रेरणा दी है।" वस्तुतः लेखक ने अपनी कहानियों में अपने कथन का निर्वाह करने का प्रयास किया है।

'दाज्यू' एक निर्धन पर्वतीय डोट्यालगाँव के निर्धनता से अभिशप्त बालक की कथा है जो दिल्ली के एक होटल में 'बॉय' का काम करता है। कहानी उसके भावुक हृदय के स्पंदनों की झंकार है जिसे मध्यमवर्गीय परिवार का जगदीश बाबू झंकृत करता है। उसे जब ज्ञात होता है कि उसके होटल में खाने वाला जगदीश बाबू भी अलमोड़ा का ही है तो स्वदेशी के दर्शन मात्र से ही उसके हृदय में अपने माता-पिता का स्नेह उमड़ उठता है और यह स्नेह उनकी अनुपस्थिति में जगदीश बाबू पर केन्द्रित होता है। वह हर समय उसे 'दाज्यू' कहकर पुकारता है परन्तु उसका ऐसा आत्मीय व्यवहार मध्यमवर्गीय बाबू को अखरने लगता है और वह उसे फटकारते हुए कहता है—"दाज्यू-दाज्यू क्या चिल्लाते रहते हो दिन-रात ! किसी की प्रेस्टिज का खयाल भी नहीं है तुम्हें !" उसके बाद उसके मुख में मुसकान न रही और न रहा 'क्या लाऊं, दाज्यू' वाक्य। एक बार जगदीश बाबू अपने मित्र हेमन्त सहित उसी होटल में भोजन करने आए। हेमन्त को वह पहाड़ी प्रतीत हुआ। पूछने पर उसने इतना मात्र कहा—'बॉय कहते हैं सा' ब मुझे:' और उसकी आंखों के सामने विगत स्मृतियाँ घूमने लगती हैं।

'कोसी का घटवार' कहानी एक पेन्शन-प्राप्त हवलदार गुसाईं की कथा है, जो अब एक घराट बनाकर वहीं अपना शेष समय व्यतीत करता है। जब गुसाईं युवक था, वह अपने ग्रामवासी हवलदार की सेना में भर्ती हुआ। उस समय लछमा से उसकी आत्मीयता बढ़ी थी।

१. कोसी का घटवार, पृ० १५

जो आत्मसमर्पण में परिवर्तित हुई। परन्तु माता-पिता उसकी शादी किसी और से कर देते हैं। गुसाईं को बड़ा जबरदस्त धक्का लगता है और वह अपनी वार्षिक छुट्टी में भी जाना बन्द कर देता है। परन्तु वह पन्द्रह वर्ष के बाद पेन्शन लेकर घर आता है तो अपने दिन बिताने के लिए कोसी में एक घराट बना लेता है। वहीं अपने एकाकी जीवन के क्षणों को व्यतीत करता है। लछमा भी कुछ दिन बाद विधवा हो जाती है। जेठ, जेठानी के कटु व्यवहार से तंग आकर वह अपने चाचा के पास ही रहती है परन्तु वहां भी उसकी दशा ऐसी है "जिसका भगवान नहीं होता उसका कोई नहीं होता। जेठ, जेठानी से किसी तरह पिण्ड छुड़ा कर यहाँ माँ की बीमारी में आयी थी। वह भी मुझे छोड़कर चल बसी। एक अभागा मुझे रोने को रह गया है। उसी के लिए जीना पड़ रहा है, नहीं तो पेट पर पत्थर बाँध कर कहीं डूब मरती। जंजाल कटता।"[1]

गुसाईं की करुणा सहज ही में उमड़ती है बालक के प्रति। वह उसे गुड़-रोटी देता है। लछमा को कुछ आर्थिक सहायता भी देना चाहता है परन्तु वह ग्रहण नहीं करती। फिर भी अपने आत्मसंतोष के लिए पिसान के अपने हिस्से में से लछमा के आटे में दो-तीन सेर आटा रखकर सन्तोष की सांस लेता है।

गुसाईं को यह संदेह होता है कि लछमा ने उससे विश्वासघात किया था। वह अपने उन शब्दों—"गंगनाथ ज्यू की कसम, जैसा तुम कहोगे, मैं वैसा ही करूंगी"[2]को भूल गई। इसलिए गंगनाथ ज्यू के कोप के कारण ही उसे ये बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं। फिर भी गुसाईं के अन्तःकरण में लछमा के प्रति दुर्विचार नहीं। वह उसका हित चाहता है। उसकी असहाय स्थिति का लाभ न उठाकर उसका कल्याण चाहता है, सहायता करना चाहता है और उसे सलाह देता है—कभी चार पैसे जुड़ जायँ तो गंगनाथ का जागर लगाकर भूल-चूक की माफी माँग लेना। पूत परिवार वालों को देवी-देवता के कोप से बचा रहना चाहिए।"[3]

इसी प्रकार 'पद्मा की कहानी', 'शुभो दीदी' आदि कहानियों में लेखक ने अभिशप्त जीवन की यथार्थ गाथा चित्रित की है। प्रस्तुत संग्रह की कुछ कहानियां उत्कृष्ट कोटि की कहानियों में रखी जा सकती है। जोशीजी ने सभी कहानियां वर्णनात्मक शैली में लिखी हैं, कथोपकथन सुन्दर एवं सजीव हैं। भाषा भावानुकूल एवं वातावरण-सृजन में सहायक है। आंचलिक शब्दों का प्रयोग अपरिहार्य स्थिति में ही किया गया है जिससे भाषा बोझिल न बन कर सरस बनी है।

हिमांशु जोशी

नयी पीढ़ी के कथाकारों में हिमांशु जोशी ने सबसे अधिक कहानियां लिखी हैं। लेखक ने समाज को जैसा देखा, जैसा सुना और उसको जैसा अनुभव किया, उसका चित्रण संयत शब्दों में सफलतापूर्वक किया है। 'साहित्य समाज का दर्पण है'—वह जोशी की कहानियों

१. कोसी का घटवार, पृ० ८४
२. वही, पृ० ७६
३. वही, पृ० ९९

में पूर्णतया चरितार्थ होता है। जिस क्षेत्र विशेष से लेखक का सम्बन्ध रहा है उसके अतिरिक्त भी लेखक ने कुछ इनारे-किनारे छूने का प्रयत्न किया है। लेखक की अंत:प्रेरणा, जो कुछ भी लिखने के लिए प्रेरित करती है, उसे लिखने के प्रयास में उन्हें सफलता मिली है।

लेखक ने सामाजिक, आर्थिक हर तरह के पहलुओं पर अलग-अलग ढंग से सोचने का प्रयास किया है। अधिकतर पात्र या अधिकांश कहानियां मध्यमवर्ग के संघर्षमय जीवन को प्रतिबिम्बित करती हैं, पिसता हुआ मध्यमवर्ग व निम्नवर्ग तो प्रमुख हैं ही, इनके अतिरिक्त धनी वर्ग की जिन्दगी को भी कहीं-कहीं चित्रित करने का प्रयास किया है। उसमें कुछ व्यंग्य का भी पुट है, लेकिन वह कोरा व्यंग्य न होकर कुछ संवेदना, कुछ पीड़ा, कुछ सहानुभूति लिए रहता है। इसलिए चुभन अधिक गहरी रहती है।

जोशीजी के शब्दों में : 'कहानी जीवन का प्रतिबिम्ब है जिसे पढ़कर पाठक भीग न जाए, बह न जाए, कुछ सोचने के लिए विवश न हो जाए, वह कहानी कहानी नहीं। लेकिन आज लेखकों की हर कहानी ऐसी नहीं होती। इसका कारण है आत्ममंथन का अभाव और व्यक्ति या समाज की समस्याओं के प्रति अधिक पैनी दृष्टि का अभाव।

"आदमियों के जंगल में', 'जीने के लिए', 'वह कैदी', 'कपास के फूल,' 'अभाव', 'बुझे दीप', 'खंडित राहें', 'बूंद पानी', 'आँखें', 'साये तिनकों के' कहानियां इस दृष्टि से कुछ अधिक प्रभावित करती हैं।

'आदमियों के जंगल में' आज की यंत्रवादी सामाजिक प्रवृत्ति पर एक आघात है। एक सुशिक्षित तरुण किस तरह दूर शहर में किसी आश्रित के सहारे रहता है। एक तरफ आदमियों की दौड़ है, भागा-भागी है, दूसरों को कुचलकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति है, दूसरी तरफ़ शकुन्तला है, जिसे जितेन भैया से सहानुभूति है, निश्छल पावन स्नेह है, जो कल्पना करती है कि जितेन भैया को नौकरी मिलेगी, फिर घर से ताई को बुला लेंगे, फिर सब साथ रहेंगे। दूसरी ओर एक के बाद एक कड़ियां टूटती जाती हैं। आर्थिक विषम परिस्थितियों और इस सहज स्नेह का परिणाम उसे इस कदर सालता है कि एक दिन पागलपन की पराकाष्ठा में पहुंचकर बावला-सा सड़कों पर भागता है। बच्चे उस पर पत्थर फेंकते हैं और वह दूर ओझल हो जाता है। कहानी पढ़कर पाठक के मन में कुछ खलबली-सी मच जाती है और वह कुछ सोचने के लिए विवश हो जाता है।

'अभाव' भी इसी कोटि की कहानी है। अभाव से ग्रस्त एक मध्यवर्गीय परिवार किस तरह जीवन-यापन करता है, उसका चित्रण है। अभाव पैसे का है, अभाव सेक्स का है, अभाव दुनिया की सहानुभूति का है। लगता है पांच आदमियों का परिवार एक रेगिस्तान से होकर गुजर रहा है। 'आँखें' एक संयुक्त परिवार की कहानी है। एक रिटायर्ड बूढ़ा बाप किस तरह से अपना, अपनी पत्नी तथा अपनी विधवा बहू का भरण-पोषण करता है। शेष लड़के भी जवान हैं, कमाते हैं और साथ रहते हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इन दुखियों को विलग-सा कर दिया है। स्वार्थपरता की आँधी में लोग इस तरह बह जाते हैं कि किसी के प्रति सहानुभूति नहीं रहती। बूढ़ा बाप निष्फल आक्रोश में किस तरह बेबस छटपटाता है। अंधी पत्नी, विधवा बहू और उसके अनाथ बच्चे जिस दयनीयता में अपने दिन व्यतीत करते हैं सचमुच कहानी पढ़कर एक भंवर-सा खड़ा हो जाता है।

'जीने के लिए' उस नारी की कहानी है जिसका सर्वगुणसम्पन्न होते हुए भी अपने व्यसनी पति के लिए अधिक महत्त्व नहीं। नियति उसे पग-पग पर आपत्तियाँ लाकर खड़ी

कर देती है। इसके बावजूद वह संघर्ष करती हुई जीवन-यापन करती है। गरीबी में परिवार से वह परित्यक्त है। शराबी पति भी चल बसता है। फिर भी वह नियति के इस आघात को सहती है। आजीविका के लिए दिन-रात सिलाई की मशीन खटखटाती है, पर दया की भीख नहीं मांगती और ऐसा प्रतीत होता है कि वह उस दशा में भी प्रसन्न है। लड़का गुजर जाता है, फिर भी वह हिम्मत नहीं हारती। नियति की इस मार को भी वह सिर-माथे ले लेती है। इस तरह जीवन में जो भी विषमताएं उसे मिलीं, वह किस सहजता से स्वीकार करती है केवल जीने के लिए।

'गंधर्वों की कहानी' इनसे कुछ भिन्न है। दक्षिण भारत के मध्यमवर्ग की आर्थिक दासता से पिसती, सुदूर प्रदेश में आजीविकोपार्जन करने वाली एक वर्किंग गर्ल की कहानी है जिसका जीवन एक ओर वासना और दूसरी ओर आर्थिक विषमता के पाटों में पिसता रहता है। लेखक की संयत भाषा के चित्रण में पाठक अश्लीलता की ओर नहीं जाता, उसे आक्रोश नहीं होता। उसे दुःख होता है इस समाज पर जिसने उन्हें यह सब सहने के लिए विवश किया। 'एक सेविका की कहानी' भी इसी ढंग की है।

'बूंद पानी' 'पर के लिए स्वयं का विसर्जन' भावना-निहित एक मानवतावादी कहानी है। एक साधारण आय वाला बाबू पत्नी की फटी साड़ी, छोटे बच्चों के फटे कपड़े, रूखी रोटियों के बावजूद भी अपने असहाय भाई के लिए कितने त्याग की भावना रखता है इसका बड़ा मार्मिक चित्रण है। इसी के ठीक विपरीत बड़ा भाई अपनी संन्यासी प्रवृत्ति के बावजूद किस तरह उस आर्थिक अभावग्रस्त परिवार की सहायता करना चाहता है। इसके वर्णन नाटकीय-से लगते हैं।

सामाजिक कहानियों के अतिरिक्त जोशी जी ने राष्ट्रीय भावना-प्रधान कहानियों का भी सृजन किया है जिनमें 'अन्तिम सत्य', 'दो हाथ जमीन', 'अग्निदीक्षा' और 'बुझता तारा' प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

'अन्तिम सत्य' रेशम की नगरी में रहने वाले दीन-हीन भारतीय जनता के प्रतिनिधि, एक सुविख्यात देशभक्त और फिर बाद में मिनिस्टर साहब, की कहानी है। पाप का घड़ा जब कुछ भरने लगता है, उमर जब कुछ ढलने लगती है तो जीवन की इस संध्या में उन्हें एक विचित्र अनुभूति होती है। उन्हें अपने भ्रष्टाचारजन्य काण्डों के भंडाफोड़ की शंका होती है और यह परिस्थिति उन्हें अपने गत जीवन की ओर झांकने को विवश करती है—'वर्षों जेल गए, नारे लगाए, घर-फूंक तमाशा देखा; गांव-गांव, घर-घर घूम अलख जगायी और गांधीजी के कदम से कदम मिलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन में आगे बढ़े और दूर तक चले गए। आजादी मिली, सत्ता मिली, सम्मान मिला, सम्पत्ति मिली, जिसकी चकाचौंध ने उनकी बूढ़ी आँखें अंधी कर दीं, वे भूल गए अपने अतीत, अपने वर्तमान और भविष्य को। अन्तर्द्वन्द्व चलता है, उन्हें दिवा-स्वप्न दिखाई देते हैं कि उनकी प्रतिष्ठा मिट गई, यश चला गया, गांव लौटकर कोई उनको पूछता नहीं। इस सम्भावित संकट को बूढ़ी देह सह नहीं पाती, अपने को धिक्कारती, कोसती हुई इस दुनिया से चल बसती है। सत्य प्रकट होना था परन्तु उससे पहले ही प्रकट हो गया अन्तिम सत्य। आज के सत्ता-मदोन्मत्त शासक वर्ग अर्थात् मिनिस्टर वर्ग पर एक करारी चोट और ललकार है, उन्हें ही नहीं पाठक को भी सोचने के लिए मजबूर करती है कि हमारे पथ-प्रदर्शक कहाँ तक पथभ्रष्ट हैं और देशभक्ति की आड़ मे शोषण-भक्षण किस हद तक हो रहा है।

जोशीजी की कहानियाँ हृदयस्पर्शी होने क साथ-साथ एक भावुक या

चाँटे की-सी तिलमिलाहट भी छोड़ती हैं। 'साँप' एक कैमिस्ट की कहानी है जो दवा के साथ-साथ सड़ी-गली दवाइयां पिलाकर रोगियों को डसता भी है। कैमिस्ट की मानवता, धर्म, सहानुभूति, कर्तव्य, आस्था सब पैसे पर टिका हुआ है। वह हर तरह से पैसा बटोरना चाहता है और साँप की-सी थाती छोड़कर चला जाना चाहता है। लेकिन अन्त में भूल से मंजिल पर पहुँचते-पहुँचते रुक जाता है—अपने ही बच्चे को, जिसके लिए वह यह कर्म-अकर्म कर रहा था, उसे ही डस लेता है।

'जहर या जिन्दगी' में जहर शोषण का प्रतीक है। चट्टानों को तोड़कर दुर्गम पहाड़ों पर सड़कें बनती हैं, मजदूर दिन-रात खून-पसीना बहाते हैं,जागते हैं, काम करते हैं और जोखिम मोल लेकर मर जाते है। परन्तु इनकी मौत नगण्य है जैसे कि वे इसी के लिए पैदा हुए थे। लेकिन दूसरी ओर ठेकेदार है, जो पैसा बटोरते हैं, यश अर्जित करते हैं और सफलता का श्रेय पाते हैं। लेखक ने दिखाया है कि शोषण के जीवन या शोषण की नींव पर या शोषण के सहारे हमारी प्रगति का राजमार्ग नहीं बन सकता। बनेगा भी तो ढह जायेगा, समाप्त हो जाएगा।

'काँटा' रामफेर की कहानी है। वह बूढ़ा है, घण्टा बजाता है, गाता है, आज ही नहीं गाता, पहले भी गाता था। घर-घर जाकर, आजादी का बिगुल बजाता था। आजादी मिलने पर अवसरवादी लोग चीलों की तरह झपटे लेकिन बूढ़ा रामफेर हमेशा तटस्थ भाव से देखता रहा। वह देखता है कि यह उच्चतम न्यायालय है तराजू के आकार का, परन्तु वह क्या तोलता है? इसके पलड़े क्या सचमुच समान हैं? उसने मन्दिर भी देखे हैं परन्तु बिरला मन्दिर में उसकी कोई आस्था नही, क्योंकि उनका मन्दिर दीन-मजदूरों के शोषण से ही बना है। वह पहले भी गाता था, गांव लौटकर अब भी गाता है, डप्पा बजाता है, पहले भी गाता था—

चाहे सुखी रहे, चाहे रंज रहे,
तू अपने घरै, हम अपने घरै।

लोग कहते हैं कि रामफेर, फिरंगी चले गए हैं, फिर यह किसके लिए? लेकिन वह गाता जाता है। लोग कहते हैं—रामफेर, तू पागल हो गया है, फिर भी वह गाता जाता है। क्योंकि उसे भली-भाँति ज्ञात है भारत की सच्ची स्वाधीनता अभी नहीं मिली है।

'ठंडा सूरज' एक व्यंग्यात्मक आंचलिक कहानी है, आज की न्याय-व्यवस्था पर एक करारी चोट है। किस तरह से एक निरपराध गरीब किसान को दूसरे के पाप की सजा भुगतनी पड़ती है, इसका मार्मिक चित्रण लेखक ने सफलतापूर्वक किया है।

लेखक के मतानुसार आंचलिक कहानी वह है "जिसमें किसी अंचल विशेष की माटी की गंध हो, उस समाज विशेष का प्रतिरूप हो। अंचल विशेष होते हुए भी जो जग-विशेष की हो। केवल अंचल विशेष या शैली रख देने से ही कोई रचना आंचलिक नहीं हो जाती।"

'माटी माटी' भी आंचलिक कहानी है लेकिन कूर्मांचल की पृष्ठभूमि पर नहीं। बिरजू एक बावरा-सा बालक इसका नायक है। हमारे सामाजिक कर्मों की इसमें झलक है। बिरजू नौटंकी में जाता है। कन्हाई महाराज की लीला देखता है और घर लौटकर कन्हाई बनने का प्रयास करता है। बिगमुआ के बैल चराता है इसलिए कि कन्हाई गाय चराते थे। उन्हें माखन-मिश्री मिलती थी लेकिन इस बावले कन्हाई को गुड़ की डली भी मुश्किल से मिलती है। रामलीला होती है, मोर पंखों और काली कमलिया का मोह छूट जाता है। रामभक्त हनुमान का वह अनन्य उपासक बन जाता है। रस्सी की पूंछ बनाता है। गदा कंधे पर

रखता है लेकिन उसकी आस्था, उसका विश्वास उस दिन टूटकर तार-तार हो जाता है जब वह देखता है लीला का रावण, गांव का प्रधान, मरने के बाद फिर जिन्दा है। अपने मकान के तिमजिले में बैठकर भोले-भाले किसानों को तंग कर रहा है। वह आवेश में बौरा जाता है। अब रावण की लंका नहीं, वह पहले झूठे राम की अयोध्या जलाने पर आतुर हो जाता है। गांव छोड़ भाग जाता है लेकिन एक दिन फिर लौट पड़ता है, अब दाढ़ी है, लंगोट है और आँख पर चश्मा है। बाबा के भूदान का नारा लगाता है, जमीन मांगता है पर इस पगले को जमीन नहीं मिलती, मार मिलती है, और अन्त में छटपटाता हुआ बिरजू बाबा दम तोड़ देता है। उसकी असहाय बूढ़ी मां उसके हाथ में मिट्टी रख उसकी माटी की लालसा को शान्त करती है।

प्रस्तुत कथा में वर्तमान सामाजिक शोषण और उसके अहिंसक समाधान के आगे लेखक ने एक प्रश्नचिह्न लगा दिया है। इसलिए कहानी एक गाँव की, एक प्रदेश की, देश की न रह कर आज के इस विषमताग्रस्त मानव की कहानी है।

'गीली माटी' काली कुमाऊं में रहने वाले मणिहार (मनिहार) मुसलमानों से सम्बद्ध है। दलित निम्नवर्ग की दासता और उसका मानवतावादी समाधान प्रस्तुत करना कहानी की प्रमुख विशेषता है। हरपतिया बाँस की टोकरियाँ बुनता है, अछूत है इसलिए वह शोषित है और इसीलिए सबसे अलग रहता है। उसके ही निकट के लोगों की उसके प्रति सहानुभूति नहीं, आत्मीयता नहीं, तनिक भी अपनापन नहीं, लेकिन जब वह विवश होकर बाल-बच्चे वाली एक परित्यक्ता मनिहारिन से शादी करता है तो उसके समाज में एक भूचाल-सा आ जाता है। सारा समाज ज्वालामुखी बनकर तप्त लावे के समान उसे घेर लेता है। अब शोषितों में भी वह शोषित है, दलितों के बीच वह दलित है, निरपराधी है, फिर भी अपराधी है, अछूतों के लिए भी वह अछूत है। हरपतिया के इस बहिष्कार का चित्रण उभर-उभरकर छ जाता है। लेकिन अन्त में मनिहारिन उसकी यह सब दशा देखी नहीं पाती और इसलिए न चाहते हुए भी उससे अलग होने की इच्छा प्रकट करती है तो उसकी सारी मानवता, सारा न्याय, सारी सहानुभूति, सारा साहस एक साथ जाग उठता है। वह उस समाज को छोड़ देता है, उस प्रदेश को छोड़ देता है, लेकिन स्वीकार की हुई उस विजातीय परित्यक्ता को नहीं त्यागता।

'तर्पण' रूढ़िग्रस्त पर्वतीय समाज की कथा है। एक निर्धना, विपन्ना अपने दिवंगत पति के तर्पण के लिए कितना संघर्ष करती है, इसका लोमहर्षक चित्र खिंच-सा जाता है। समाज यानी थोथा समाज, थोते रिश्ते, थोथी सहानुभूति सब एक-एक कर दांत उभार कर सामने आते हैं, पति की तेरहवीं के दिन तर्पण के लिए उसे दो दाने चावल तक उपलब्ध नहीं होते। ब्राह्मण उसे कोसकर चले जाते हैं लेकिन फिर भी वह गंगा-तट पर जाती है। अपने दिवंगत पति की आत्मा की शान्ति के लिए मिट्टी का पिण्डदान चढ़ाती है, मिट्टी की गाय का गोदान करती है। निर्धन विधवा का चित्रण जोशीजी ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से किया है।

लेखक ने अपने वातावरण से कहीं-कहीं दूर देखने की चेष्टा भी की है। यों तो अमानवतावादी कोई भी रचना नहीं है, आनी मानवता का शाश्वत स्वर हर रूप-रंग में कहीं न कहीं उभरकर ही आता है, लेकिन इसमें लेखक ने कुछ और गहनता में पैठने की चेष्टा की है। पृष्ठभूमि भी सीमित नहीं असीमित है। 'अनागरिका', 'मुरासाकी : पीले फूल', 'पचीसवाँ घंटा', 'धागे' प्रतिनिधि मानवतावादी कहानियां हैं।

'पचीसवां घंटा' मनुष्य के महाप्रलय की कहानी है। उद्योगीकरण अर्थात् मशीनीकरण की अन्तिम परिणति महाविनाश है। मनुष्य अपने ही हाथों अपनी ही मौत का आह्वान करता है। पहले मनुष्य मशीनों का भाग्यविधाता बनता है लेकिन बाद में मशीनें मनुष्य का भाग्य निर्धारण करने लगती हैं। प्रलय का बड़ा अजीब-सा वर्णन जैसे सारी सृष्टि जल गई, कोई भी शेष न रहा हो लेकिन प्रलय की भार पर एक मरणासन्न नारी की चीख सुनाई देती है जो मरणोन्मुख होती हुई भी सृष्टि को नया स्वर देती है। इसीलिए प्रलय के बाद भी एक मानव स्वर, नवजात शिशु का स्वर, इस ब्रह्माण्ड में गूँजने लगता है।

'मुरासाकी : पीले फूल' हिरोशिमा-नागासाकी की भस्मीभूत धरती की मर्मान्तिक कहानी है। मुरासाकी अणु-परीक्षणों की विषाक्त वायु से पीड़ित है लेकिन अन्तिम समय तक वह अनुष्ठा पर से अपनी आस्था नहीं खोती।

'अनागरिका' सचमुच अनागरिका है। किसी यूरोपीय माँ और भारतीय रजवाड़े के पिता की उपेक्षिता कन्या यूरोप में रहती है लेकिन किसी देश की भी वह नागरिका नहीं। विलासी पिता से उसे घृणा है, लेकिन भारत के प्रति आस्था है, श्रद्धा है और प्रेम है। वह सर्वसुन्दरी है, यूरोप के रंगमंचों की रानी है, लक्ष्मी उसके चरणों पर लोटती है। लेकिन फिर भी वह अन्दर से अपने को भिखारिन-सी अनुभव करती है। अपने समय की विश्वविख्यात सुन्दरी एक दिन विरक्त हो जाती है और स्विट्जरलैंड के किसी एकान्त गांव में अपने अन्तिम दिन बिताती है। परन्तु अब उसे कोई पूछता तक नही जबकि सम्पूर्ण यूरोप उसके चरणों पर लोटता था।

यों तो लेखक की सभी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक हैं, लेकिन मनोवैज्ञानिक की संज्ञा देनी हो तो 'दंश', 'रक्त-रंग', 'कागज के टुकड़े', 'रक्त की रेखाएँ', 'चौराहा' आदि प्रमुख हैं। पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में लेखक ने मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का अन्धानुकरण न कर टकसाली छाप नहीं दी है अपितु पात्रों, घटनाओं का विश्लेषण स्वाभाविक ढंग से किया गया है। मनोविज्ञान के सिद्धान्त स्वतः ही कथा के अंग बन गए हैं जिनसे कथा में और भी अधिक रोचकता आ गई है।

'स्वभाव' सच्चे अर्थों में मनोवैज्ञानिक कहानी है। एक अबोध बालिका 'गिलहरी' गांव से शहर में आती है। सयानी है लेकिन अबोधता, निश्छलता, सरलता के कारण वह अपने को निरीह ही मानती है। उसके अन्तर्मन में हीनता-ग्रन्थि उग्र रूप से कार्य करती है। इसलिए वह ऐसी ही हरकत करती है जो आज के सजग नर-नारी के लिए विस्मयबोधक हैं। वह अपने भैया के दोस्त के घर कुछ दिन रहती है और भैया के दोस्त को दोस्त समझती है लेकिन लोगों के लिए वह सब एक समस्या बन जाती है। एक स्वभाव उसका है क्योंकि वह बालिका है। एक स्वभाव पत्नी का है क्योंकि वह पत्नी है। एक स्वभाव उसके भैया का है, क्योंकि वह पुरुष है। इन तीनों का चरित्र मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कसौटी पर खरा उतरता है। इसी तरह 'कितने किनारे', 'रक्त की रेखाएँ', 'कागज के टुकड़े' भी हैं। 'वही सहजता है देश' वारूदम में देश की तरह पाठक को स्वाभाविक ढंग से प्रभावित करते हैं। 'चौराहा' एक सम्बन्ध-विच्छेद किए हुए दम्पति के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। वे जीवन की घटनाओं की आंधी में एक-दूसरे से दूर चले जाते हैं। कभी भी न मिलने की उन्होंने सौगंध खायी है लेकिन नियति की विडम्बना दूर शहर में जाकर फिर उन्हें साथ ले आती है, पड़ोसी बनाकर। दोनों में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व फिर हो उठता है। सोया हुआ ज्वार पुनः जाग उठता है। पत्नी को कारें, कोठियाँ, न जाने क्यों फीके-फीके-से लगते हैं।

वह त्यक्त पति की ओर इतनी अधिक आत्मीयता से झुकती है और पति भी समान रूप से आकृष्ट होता है। अन्ततः वह परेशान होकर शहर छोड़कर भागने लगता है कि उसके जाने से पहले चौराहे पर एक लाश गुजर रही होती है। लोग कहते है—कल रात हृदय-गति रुकने से मर गई। इस कथा में दोनों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण मार्मिकता से हुआ है।

लेखक का क्रमिक विकास कहानी के क्षेत्र में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पहले की रचनाओं में वैविध्य होते हुए भी एक लम्बी उड़ान-सी नजर आती थी। वह उड़ान उद्देश्य के कभी-कभी परे भी निकल जाती थी लेकिन कुछ समय से लेखक का ध्यान भाषा की स्वाभाविकता, शैली की विविधता, संवादों की सहजता की ओर अधिक गया है। लेखक की बाद की रचनाएँ इस दृष्टिकोण से बहुत ऊंची उठती हैं।

संवाद, कथा, शिल्प की दृष्टि से भी लेखक में क्रमिक विकास परिलक्षित होता है। संवाद धीरे-धीरे आकर्षक, चुटकीले, संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक होते गए है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात संकेतात्मक एवं संयत रूप में कहना लेखक की प्रवृत्ति रही है।

जगदीशचन्द्र पाण्डेय

जगदीशचन्द्र पाण्डेय की प्रथम कहानी 'तृषिता'[1] है। इसके बाद विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग पचीस कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी है, जिनमें 'पत्थर की प्रतिमा', 'यह नई बस्ती है', 'पिता-पुत्र', 'चोर', 'पुरखिदा', 'फासला', 'इवनिंग न्यूज', 'परिवृत्ता' और 'मोतिमा' इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से ये सभी कहानियाँ सामाजिक धरातल पर उतरती है।

'चोर' कहानी में उच्च शिक्षा प्राप्त अजय बेकारी की दशा में अपनी रुग्ण माता की चिकित्सा के लिए धन न जुटा सकने पर अन्त में चोरी का सहारा लेता है। इस कहानी में मनुष्य की वे परिस्थितियाँ अंकित की गई हैं, जो उसे कुमार्ग पर चलने के लिए विवश करती हैं। 'पत्थर की प्रतिमा' में एक पत्थर-हृदय अफसर की कहानी है जो एक क्लर्क को उसके बीमार बच्चे को डॉक्टर के पास ले जाने के लिए केवल दो घंटे की छुट्टी तक नहीं देता। इसमें एक क्लर्क के विवशतापूर्ण जीवन का सुन्दर खाका खींचा गया है। 'तृषिता' कहानी में सारणी अपने अवैध पुत्र को जंगल में फेंक देती है परन्तु जब उसका मातृत्व भड़कता है तो वह उसे लाने के लिए जाना चाहती है। इसमें सारणी के मनोद्वन्द्व का मर्मस्पर्शी चित्रण है। 'पुरखिदा' आंचलिक कथा है, जिसमें कथानायक पुरखिदा किसी प्रकार अपने पुत्र तिलुवा को मैट्रिक तक पढ़ाता है परन्तु मैट्रिक पास होने पर न तो उसे कोई नौकरी ही मिलती है और न वह खेती का काम

---

१. धर्मयुग, ४ मई, १९५९

ही कर सकता है। इस प्रकार लेखक ने आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पर व्यंग्य किया है। 'इवनिंग न्यूज' में तेरह वर्ष का बालक रामू अपनी एकमात्र अन्धी बहन का सहारा, समाचारपत्र बेचकर अपना तथा अपनी बहन का जीवन सम्मानपूर्वक व्यतीत करने के लिए संघर्ष करता है। 'मोतिमा' भी आँचलिक कथा है, जिसमें नवविवाहिता वधू फूल-देही की संक्रान्ति को अपने मायके जाना चाहती है परन्तु उसकी निर्दयी सास उसे नहीं भेजती है। वह सिसकती हुई अपने मायके के संस्मरणों को ही स्मरण कर संतोष प्रकट करती है।

पाण्डेयजी के पात्र यथार्थवादी हैं, जो अपने जीवन में किसी न किसी परिस्थिति में जकड़े हुए छटपटाते हुए नजर आते हैं। अधिकांश पात्र आर्थिक संकट में फँसे कराहते हुए दिखाई देते हैं। उनमें विवशतापूर्वक सहने का साहस है पर समाधान की शक्ति नहीं। पात्रों का चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक ढंग से किया गया है। किसी-किसी कहानी में पात्रों की विवशता का इतना अधिक चित्रण किया गया है कि कथा-प्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और चित्रण अटपटा और अस्वाभाविक-सा लगता है। भाषा आम बोलचाल की है जिसमें व्याकरण की दृष्टि से अनेक त्रुटियाँ हैं। कथोपकथनों की भाषा भी कहीं-कहीं कृत्रिम-सी लगती है। आँचलिक शब्दों का प्रयोग भी अस्वाभाविक एवं अटपटा-सा लगता है। प्रसंगानुकूल तथा अपरिहार्य अवस्था में ही उनका प्रयोग न कर उनके साथ जबरदस्ती की गई है जिससे वे कृत्रिम-से लगते हैं।

चन्द्रादत्त पांडे

चन्द्रादत्त पांडे ने लगभग एक दर्जन कहानियाँ लिखी हैं, जो 'विशाल भारत' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इनकी कहानी-कला पर शोभाचन्द्र जोशी का प्रभाव है और इस कथन की पुष्टि लेखक ने भी की है।[1] इनके पात्र भी शोभाचन्द्र जोशी के पात्रों के समान क्रान्तिकारी होते हैं और सामाजिक दुराचार के प्रति अपने हृदय में विद्रोह की ज्वाला संजोए रहते हैं।

देवकीनन्दन पांडे

देवकीनन्दन पांडे दिवाकर ने लगभग पचास कहानियाँ लिखी हैं। अधिकांश हास्यरस की कहानियाँ हैं। इनकी कहानी-कला पर यशपाल का प्रभाव है।[2] इनकी

१. पत्र—३ मार्च, १९६१
२. पत्र—१६ मार्च, १९६१

कहानियों में साधारण हास्य-विनोद का भाव न होकर व्यंग्य का पुट भी रहता है जिससे कहानी के महत्त्व एवं मूल्य में गम्भीरता आ जाती है।

पुराने कथाकारों में स्वर्गीय मथुरादत्त पांडे (ऐतिहासिक कहानियाँ), मथुरादत्त जोशी (हास्यपूर्ण कहानियाँ), दयानन्द जोशी, भवानीदत्त जोशी, जीवनचन्द्र जोशी, यशोदा जोशी, विद्या जोशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

समसामयिक विषयों पर लिखने वाले कथाकारों में श्रीमती जयन्ती पंत, गौरी पंत, मनोहरश्याम -जोशी, बलवन्त मनराल, मोहनचन्द्र जोशी, नित्यानन्द, हरीश तिवारी आदि उल्लेखनीय हैं।

खण्ड ३

कूर्मांचल के नाटककार

गोविन्दवल्लभ पन्त

सामान्य विशेषताएँ

कथावस्तु : प्रसाद-युग के नाटककारों ने सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की रचना की। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समसामयिक, व्यक्तिगत, सामाजिक समस्याओं पर नाटकों की रचना की। प्रसाद ने जहाँ केवल इतिहास से कथावस्तु ग्रहण की, वहाँ पन्त ने ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सामाजिक तीनों प्रकार के नाटकों में राष्ट्रीय संघर्ष की विविध धाराएँ प्रवाहित की हैं। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में प्रसाद एवं प्रेमी की भाँति पन्तजी की दृष्टि ऐसे पात्रों एवं प्रसंगों की अवतारणा करने की रही है, जो राष्ट्रीय भावना का संचार कर उसे संघर्षशीलता प्रदान कर सकें। पन्तजी ने अपने नाटकों के ऐतिहासिक तथ्यों को प्राणवान और जीवन्त बनाने के लिए कल्पना का सहारा भी लिया है। 'राजमुकुट' का कथानक थोड़े से परिवर्तनों के साथ प्रायः 'प्रेमी' के नाटक 'रक्षाबन्धन' सा ही है, परन्तु 'प्रेमी'जी के नाटक 'रक्षाबन्धन' का उद्देश्य 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' है लेकिन पन्तजी के 'राजमुकुट' में देश के अत्याचारी शासक के विरुद्ध जनता को एक होकर क्रान्ति करने की प्रेरणा है। 'अन्तःपुर का छिद्र' नाटक में भी लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ कल्पना का प्रयोग कर तत्कालीन जनजीवन और राजपरिवारों की स्थिति का सजीव चित्रण किया है। इस नाटक की कथा का नायक वत्सराज उदयन संस्कृत से लेकर हिन्दी तक अनेक नाटकों में नायक के रूप में चित्रित किया जा चुका है। हिन्दी में प्रसाद के 'अजातशत्रु' तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'वत्सराज' नाटकों का उदयन ही नायक है। किन्तु उदयन के जीवन की घटना को लेकर पन्तजी सामन्ती राजा के बाहरी दिखावे के भीतर उसके अन्तःपुर के छिद्र को भी उद्घाटित करते हैं। 'राजमुकुट' के समान यह नाटक भी सामन्ती खोखलेपन तथा राजदरबार के आन्तरिक जीवन को स्पष्ट करता है। इस नाटक में ब्राह्मण और बौद्ध-धर्म का संघर्ष भी दिखाया गया है। इसमें ऐतिहासिक वृत्त के प्रतिपादन के साथ पद्मावती और मागधी के मन में होने वाले अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण भी मिलता है। नाटककार ने दोनों रानियों के मन में होने वाले संघर्ष तथा उदयन के मन पर पड़ने वाले प्रभाव का ही प्रधान रूप से चित्रण किया है। इससे नाटक का वातावरण काफी भावुक बन गया है। 'वरमाला' और 'ययाति' पन्तजी के पौराणिक नाटक हैं। "वरमाला एक कोमल भावपूर्ण रचना है, जिसमें मीठे गीतों का प्राचुर्य है।"[1] इन पौराणिक नाटकों के द्वारा इन्होंने प्राचीन संस्कृति को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सामाजिक नाटकों में पन्तजी ने व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं और संघर्षों का आदर्शवादी दृष्टिकोण ग्रहण किया है यद्यपि कथावस्तु यथार्थ जीवन पर आधारित है। 'अंगूर की बेटी' में लेखक ने प्रभावोत्पादक ढंग से मदिरा पीने के दोष का अंकन कर इस व्यसन को छोड़ने का सुन्दर उपाय भी बताया है।[2] 'सिन्दूर बिन्दी' में भारतीय नारी

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० १२६

२. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० २७५

के जीवन की एक अत्यन्त ही गम्भीर समस्या को लिया है। किसी धूर्त के द्वारा छली गई अथवा परिवार तथा समाज की परिस्थितियों के कारण अनेक नारियाँ अनजान में पथभ्रष्ट होकर समाज, माता-पिता और नाते-रिश्तेदारों द्वारा बहिष्कृत कर दी जाती हैं। ऐसी नारियाँ आजीवन न चाहते हुए भी जघन्यता का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश कर दी जाती हैं। इस नाटक की नायिका विजय एक ऐसी ही नारी है जिसे समाज में उचित स्थान दिलाकर स्वस्थ और सभ्य जीवन व्यतीत करने की सुविधाएँ प्रदान करना समाज का एक बहुत बड़ा दायित्व है और इस दायित्व की पूर्ति के लिए इस नाटक के नायक कुमार जैसे युवकों की बड़ी आवश्यकता है। कुमार के चरित्र में आज के युवक के लिए लेखक ने युगपरक आह्वान किया है।

पात्र, चरित्र-चित्रण : पन्तजी ने अपने नाटकों के पात्र जीवन के विभिन्न पहलुओं से लिए हैं और उनमें अपने-अपने क्षेत्र व वर्ग का प्रतिनिधित्व करने की पूर्ण क्षमता है। पात्रों का चरित्र कथा की घटनाओं के घात-प्रतिघात से स्वाभाविक और सरल रूप से विकसित होता है। पन्तजी के पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व की अपेक्षा बहिर्द्वन्द्व अधिक दिखाई देता है। इनके पात्रों में न तो प्रसाद के पात्रों के समान मानसिक अन्तर्द्वन्द्व दिखाई देता है और न लक्ष्मीनारायण मिश्र के पात्रों की भाँति मनोवैज्ञानिक चरित्र। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें मनोभावों का अभाव है। पन्तजी के पात्र अपने जीवन की परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए विकास करते हैं और उस संघर्ष में आशा-निराशा, हर्ष-विषाद के मनोभावों की मार्मिकता भी है। उनके पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व का अभाव होते हुए भी अस्वाभाविकता या कृत्रिमता नहीं है। जिस आदर्श की ओर उन्होंने अपने पात्रों को उन्मुख किया है वह आदर्श भी उनके चरित्रों पर थोपा हुआ-सा नहीं लगता है वरन् ऐसा प्रतीत होता है कि यह उनके जीवन के संघर्ष का प्रतिफल है और वे संघर्ष करते हुए इसे अपने जीवन का आदर्श बना लेते हैं। पन्तजी के प्रायः सभी पात्र आदर्शवादी हैं परन्तु उनका आदर्श यथार्थ के धरातल पर खड़ा है क्योंकि लेखक ने अपने नाटकों की कथा-गठन के द्वारा उस आदर्श के प्रतिफलन की स्वाभाविक परिस्थितियों का सफलता के साथ निर्माण किया है। अगर लेखक ऐसा न कर पाता तो उसके नाटकों का आदर्श एक थोथा आदर्श बनकर रह जाता।

प्रभाव

संस्कृत नाट्यकला का प्रभाव : यद्यपि पन्तजी को प्रसाद-युग का नाटककार माना जाता है किन्तु उनकी नाट्यकला प्रसाद की नाट्यकला से भिन्न रूप से विकसित हुई है। संस्कृत, पाश्चात्य नाट्यकला के स्वस्थ समन्वय से अपनी नाट्यकला को स्वतंत्र रूप से विकास करने का प्रयास पन्तजी की नाट्यकला के मूल में विद्यमान है। पन्तजी ने संस्कृत नाट्यकला के कुछ तत्वों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर उनका नवीनीकरण करने का प्रयास किया है। संस्कृत नाटकों के मंगलाचरण का पन्तजी ने अपने नाटकों में नवीन ढंग से प्रयोग किया है। उन्होंने मंगलाचरण को कथा का एक अंग बनाकर पात्रों या पात्र के द्वारा अपनी जीवन की मंगल-कामना के रूप में प्रस्तुत किया है। 'वरमाला' में नाटक की एक नारी पात्र वैशालिनी प्रथम दृश्य के आरम्भ में ही एक गीत गाती है। यह गीत प्राचीन मंगलाचरण का ही नवीन रूप है। 'राजमुकुट' में भी मंगलाचरण का प्रयोग इसी रूप में हुआ है। 'अंगूर की बेटी' नाटक में सन्ध्या के समय दीप जलाते हुए कामिनी का गीत मंगल-कामना ही है। इस प्रकार मंगलाचरण को दृश्य के प्रारम्भ में ही प्रस्तुत कर कथा का अंग बना दिया है। 'अन्तःपुर

का छिद्र' के सभी पात्र नाटक के आरम्भ में सामूहिक रूप से मंगलाचरण करते हैं। सामूहिक मंगल-कामना की प्रणाली पारसी रंगमंच का प्रभाव है। भरतवाक्य को भी लेखक ने कथा का अंग बनाकर प्रस्तुत किया है। 'राजमुकुट' में उदयसिंह के राजतिलक के अवसर पर जो गीत गाया गया है, वह संस्कृत-नाटकों के भरतवाक्य का ही नवीन रूप है। प्रसाद की भाँति पन्तजी भी स्वगत-कथनों से अपना पीछा नहीं छुड़ा सके। इनके प्रारम्भिक नाटकों में स्वगत-भाषण अधिक हैं परन्तु नाट्यकला के परिमार्जन के साथ-साथ स्वगत-भाषणों की संख्या भी कम होती गई है।

पाश्चात्य नाट्यकला का प्रभाव : पन्तजी की नाट्यकला पर अंग्रेजी नाट्यकला का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। 'राजमुकुट' की शीतल सेनी शेक्सपियर की 'मैकबेथ' की भाँति महत्त्वाकांक्षिणी नारी है, जो अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए रक्तपात, वध हत्या और भीषण षड्यंत्र संचालित करती है। 'वरमाला' और 'ययाति' के प्रेम-व्यापारों पर शेक्सपियर के रोमांटिक नाटकों का प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तु-योजना तथा टेकनीक पर भी अंग्रेजी नाट्यकला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने संस्कृत-नाटकों की रस-निष्पत्ति को न अपनाकर संवेदनात्मक अन्विति, कौतूहल और मानसिक संघर्ष की सफल योजना अपने नाटकों में की है। अंक एवं दृश्य-विभाजन भी पाश्चात्य नाट्यकला से प्रभावित है।

पारसी रंगमंच का प्रभाव : पन्तजी ने कथानक के विकास में आकस्मिकता, कौतूहल का सुन्दर समन्वय किया है। पारसी नाटकों की तरह इनके नाटकों में गीतों की भरमार, मारकाट तथा तलवारों की खनखनाहट है।

चलचित्रों का प्रभाव : सिनेमा में जिस प्रकार स्वप्न-दृश्य दिखाया जाता है उसी प्रकार स्वप्न के प्रसंग पन्तजी के नाटकों में मिलते हैं, जो साधारण रंगमंच पर प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। हाँ, छाया-चित्र की सहायता से इन्हें प्रस्तुत किया जा सकता है।" इस प्रकार के स्वप्न-दृश्य 'वरमाला' के तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में हैं। 'अंगूर की बेटी' के दूसरे अंक का सातवाँ दृश्य भी अत्यन्त जटिल है जो रंगमंच पर नहीं दिखाया जा सकता, केवल चलचित्र की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है। ऐसे दृश्य एक रंगमंचीय दोष बन गए हैं।

कौतूहल

नाटकीय आकस्मिकता एवं कार्य-व्यापार के गठन और गति की दृष्टि से कौतूहलता पन्तजी के नाट्यकला-विकास का एक अगला चरण प्रस्तुत करती है। कथावस्तु और चरित्र-चित्रण सीधे और सरल होते हुए भी द्रुत गति से विकास करते हैं और सारी घटनाएँ उद्देश्य की ओर स्वाभाविक रूप से अग्रसर होती हैं। जिज्ञासा, आकस्मिकता, विस्मय एवं कौतूहल की आरोही-अवरोही गति से नाटक आगे बढ़ता है जिससे दर्शक या पाठक मंत्रमुग्ध होकर 'आगे क्या होगा' की प्रतीक्षा में बँधा नाटक देखता या पढ़ता चला जाता है और ऊब का अनुभव नहीं करता। पन्तजी के नाटकों में एक प्रकार की रहस्य-ग्रन्थि भी होती है जिसका अत्यन्त आकस्मिक रूप से उद्घाटन होता है। सारी कथा उसी रहस्य-ग्रन्थि से ग्रन्थित होती है और उसके सहारे ही कथा एवं चरित्रों का विकास होता है। यह रहस्य-ग्रन्थि भी कौतूहल, विस्मय, आकस्मिकता और जिज्ञासा की वृद्धि करती है।

भाषा-संवाद

पन्त जी के संवादों में सजीवता और नाटकीयता है। इनके संवादों में कथा-अभीष्ट को उद्घाटित करने वाले चरित्रों का विकास करने तथा कथा को गति प्रदान करने की शक्ति है। ऐतिहासिक नाटकों की भाषा प्रसाद की अपेक्षा सरल है रहस्यात्मकता और दार्शनिकता की जटिलता इनमें नहीं है। सामाजिक नाटकों की भाषा तो जनसाधारण की भाषा है। 'पंतजी की भाषा में एक कोमल गीति-भावना मिलती है। इस भावुकता में छायावाद का सूक्ष्म अन्तःविश्लेषण तो नहीं हैपरन्तु संस्कृत गीति-काव्य की तरलता निःसन्देह है। एक हल्के रोमांस का स्पर्श और उससे चंचल होकर मुसकराती हुई भाषा उनके नाटकों का सर्वस्व है। प्रकृति के प्रति उनका सहज मोह---उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन भी प्रकृति-चित्रण है।'[1]

प्रसाद के नाटकों की अपेक्षा पन्तजी के नाटक रंगमंच के अधिक उपयुक्त हैं। इनके नाटकों का दृश्य-विधान अत्यन्त सरल है और संवादों में भी अधिक नाटकीयता है। पन्तजी को रंगमंच का व्यावहारिक अनुभव है और उनके नाटक पूर्णतः रंगमंच की वस्तु हैं। पन्त का रचनाक्रम अभी जारी है और उनके कई नाटकों का सफल प्रदर्शन भारत सरकार के गीत एवं नाटक प्रभाग द्वारा किया जाता है। पन्तजी के प्रकाशित नाटकों का विशद विवेचन आगे किया गया है।

'वरमाला'

वरमाला की कथा मुख्यतः नायक (अवीक्षित) और नायिका (वैशालिनी) के अन्तर्द्वन्द्व को लेकर चलती है। वैशालिनी के स्वयंवर में अपने भाग्य की परीक्षा करने को अन्य राजकुमारों के साथ-साथ अवीक्षित भी आता है, वह वैशालिनी पर बुरी तरह मुग्ध है। वह स्वयंवर से पहले ही वैशालिनी से उद्यान में भेंट करने का प्रयास तथा प्रणय-निवेदन करता है, किन्तु उसे पता चलता है कि वैशालिनी उसके नाम से भी घृणा करती है। स्वयंवर के अवसर पर अवीक्षित वैशालिनी का अपहरण कर लेता है। वह अकेला ही राजकुमारों और [illegible] करके वैशालिनी पर अधिकार करता है, किन्तु उसकी वीरता [illegible] और वैशालिनी की घृणा में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अपहृता वैशालिनी जंगल में एक स्थान पर अपने तीर से नक्र को मारकर अवीक्षित की प्राण-रक्षा करती है। घृणा के पात्र के प्रति वैशालिनी का यह दयापूर्ण व्यवहार उसके मानसिक द्वन्द्व की ही अभिव्यक्ति है। तभी वैशालिनी के पिता की सेना आ पहुंचती है और अवीक्षित आहत होकर विजित हो जाता है।

अवीक्षित के बंदी होते ही दोनों के स्वभाव का एक बहुत ही मनोरंजक पहलू सामने आता है। वैशालिनी की घृणा प्रेम में बदल जाती है, किन्तु अवीक्षित वैशालिनी को प्यार करने की अपेक्षा उससे दूर भागना चाहता है और अपने को बंदी, कायर, दुर्बल कहकर अपनी भर्त्सना करता है। अवीक्षित के पिता वैशालिनी के पिता के राज्य पर चढ़ाई करते हैं और उसको पराजित कर देते है। दोनों राज्यों के बीच सन्धि होती है और उसकी एक शर्त है वैशालिनी तथा अवीक्षित के विवाह की स्वीकृति। किन्तु अवीक्षित आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करके चला जाता है। वैशालिनी उसके वियोग में तड़पती है और एक दिन संन्यासिनी बनकर जंगल में चली जाती है। वहाँ वह एक राक्षस के फन्दे में फँस जाती है,

१. आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० १२७

किन्तु ठीक समय पर अवीक्षित राक्षस को मारकर उसकी रक्षा करता है। इस तरह अपने बाहुबल से वैशालिनी को प्राप्त कर अवीक्षित उसे स्वीकार करता है और दोनों का मिलन होता है।

इस नाटक में दो ही चरित्र मुख्य है। इन दो चरित्रों के माध्यम से लेखक ने स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम-घृणा, मान-अपमान प्रवृत्ति और अहं के द्वन्द का सुन्दर विवेचन किया है। प्रेम मानव-व्यापारों में सबसे रहस्यमय व्यवहार है। शायद इसीलिए हजारों काव्य लिखे जा चुकने के बाद भी यह विषय सदैव नया रहता है। साहित्यकार और पाठक दोनों इससे नहीं अघाते हैं। वास्तव में प्रेम की दुनिया इतनी विचित्र है, उसका उद्गम और अन्त इतना रहस्यमय है, कि संसार के महान् साहित्यकार भी उसकी पूरी व्याख्या तथा चित्रण नहीं कर पाए हैं।

पुरुष जिस स्त्री से प्रेम करने लगता है उसकी घृणा, क्रोध, खीझ, सभी कुछ उसके लिए आकर्षक बन जाते हैं। इसका कारण पुरुष का वह अहं है जो नारी को अबला मानकर चलता है। जब नारी घृणा या क्रोध से पुरुष के प्यार का अपमान करती है तो पुरुष के अहं को ठेस लगती है और वह उस पर बलपूर्वक अधिकार करने की चेष्टा करता है। नारी के द्वारा किया हुआ अपमान पुरुष के लिए सर्वथा असह्य है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'पंचवटी' में 'मान करती हैं अपमान नहीं नारियाँ' कहकर इसी तरह के विचार प्रकट किए हैं। पुरुष अहंवश नारी को अपने अधिकार की वस्तु मानता है, इसलिए वह जिस नारी के अधीन होता है उसे प्यार नहीं कर सकता। नारी की भी यह महत्त्वाकांक्षा होती है कि वह अपने अधीन पुरुष को पति बनाए। इसीलिए प्रायः नारी की दया प्रेम में परिणत होते दिखाई देती है, किन्तु उसकी यह महत्त्वाकांक्षा बहुत कम फलती देखी गई है। जहाँ परम्परा से जकड़े हुए अहं और पोषित अहं की टक्कर हो वहां विजय पोषित अहं की ही होती है। कुछ भी हो, इससे मानव-प्रेम का थोथापन प्रकट होता है और उसके द्वारा भी वह अपने अहं की ही तुष्टि करना चाहता है।

पन्तजी ने अवीक्षित और वैशालिनी के चरित्रों द्वारा नर और नारी के इस अहं की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। अवीक्षित वैशालिनी से प्रेम करता है किन्तु उसके पिता का बंदी बन जाने पर वह वैशालिनी के अपमान की याद करके उससे दूर हो जाता है। उधर अवीक्षित द्वारा अपहृता वैशालिनी उससे घृणा करती है, किन्तु जब वह उसकी दया का पात्र हो जाता है तब उसके दिल में उसी अवीक्षित के प्रति प्रेम उपजता है। इस तरह नर और नारी के अहं की टक्कर होती है और परिणाम वही होता है जो प्रायः होता आया है। अर्थात् पुरुष का अहं विजयी होता है और नारी समर्पण करती है। अवीक्षित वैशालिनी को राक्षस से बचाकर उस पर अपना अधिकार सिद्ध करता है और अबला नारी को अपनी हार स्वीकार करनी पड़ती है क्योंकि प्रेम नारी की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

अभिनेयता नाटक का सबसे पहला गुण है। किन्तु हिन्दी में सुव्यवस्थित रंगमंच के अभाव के कारण अभिनेयता के सम्बन्ध में बड़ी भ्रांतियां फैली हुई हैं। यत्र-तत्र जो नाटक अभिनीत होते हैं वे उन शौकिया मण्डलियों द्वारा खेले जाते हैं जिन्हें हिन्दी-साहित्य से विशेष रुचि नहीं होती। उनमें बहुत कम साहित्यिक नाटक होते हैं। अधिकतर प्रहसन खेले जाते हैं और उनका प्रमुख उद्देश्य सिनेमा की तरह हल्का मनोरंजन करना होता है। हिन्दी-प्रेमियों की उदासीनता के कारण ही हिन्दी का अभी तक कोई रंगमंच नहीं बन सका। इसके लिए रंगमंचीय नाटकों के अभाव को कारण बताना एक बहाना है।

सिनेमा के अनुकरण पर रंगमंच को अधिकाधिक यथार्थ बनाने की प्रवृत्ति नाटक के लिए बड़ी घातक है और यह नाटक को ही ले डूबेगी। वातावरण के यथार्थ चित्रण में रंगमच सिनेमा की होड़ नहीं कर सकता। सिनेमा भिन्न-भिन्न समय पर लिए गए असख्य चित्रो का संग्रह मात्र है और रंगमच पर जीते-जागते कलाकारो को अभिनय करना पड़ता है। नाटक जीवन की जीवित अनुकृति है किन्तु सिनेमा जीवन की अनुकृति के निर्जीव चित्रो का संग्रह है। रंगमच में अधिकाधिक यथार्थता के आग्रह ने नाटक को बड़े-बड़े शहरों के आलीशान और बहुसाधन-सम्पन्न नाट्य-गृहों तक सीमित कर रखा है। नाटक अब जनता की चीज नही रहा है। इसके अतिरिक्त इस नवीन प्रवृत्ति ने नाटक को दो या तीन सेटों मे बाँधकर नीरस बना दिया है। पन्तजी के अधिकाश नाटक अभिनेय हैं। यह दूसरी बात है कि उनमें से एकाध ही आधुनिकतम रंगमंच के अनुकूल हों, किन्तु यदि कोई इन्हें छोटे शहरों या कस्बों में सामान्य साधनों से खेलना चाहे तो बड़ी आसानी से खेल सकता है।

वरमाला की दृश्य-योजना इस प्रकार है :

पहला अंक—पहला दृश्य	उपवन
दूसरा दृश्य	स्वयवर-मंडप
तीसरा दृश्य	वन
चौथा दृश्य	विदिशा का राजप्रासाद
दूसरा अंक—पहला दृश्य	वैशालिनी का कक्ष
दूसरा दृश्य	विलास कक्ष
तीसरा अंक—पहला दृश्य	आश्रम
उपदृश्य पहला	कक्ष
उपदृश्य दूसरा	वैशालिनी का उपवन
उपदृश्य तीसरा	वन प्रांत
दूसरा दृश्य	वन-पथ
तीसरा दृश्य	सघन गिरि कानन नीचे नदी

ऊपर की दृश्य-योजना से स्पष्ट है कि साधारण रंगमंच पर परदो की सहायता से इसे खेलने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हो सकती। परन्तु रंगमंच पर यह नाटक कितनी बार खेला गया है इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं।

इस नाटक में शास्त्रीय एवं आधुनिक नाट्यकला का सुन्दर समन्वय है। यहाँ पुराने नाटकों की तरह मंगलाचरण और गीत-योजना आदि का प्रयोग किया है। तीसरे अंक के पहले दृश्य में नाटककार ने तीन उपदृश्य भी रखे हैं जिनके प्रदर्शन के लिए नाटककार के संकेतों के अनुसार ऐसे अत्यन्त आधुनिक रंगमंच की आवश्यकता है जिसमें दृश्य-परिवर्तन शीघ्रता से हो सके। ऐसा तो उसी रंगमंच पर किया जा सकता है जिसमें सिनेमा के सदृश्य 'फ्लैश बैकों' को दिखाने के लिए पर्याप्त यांत्रिक साधन हों।

नाटक में अभिनेयता लाने के लिए नाटक की भाषा सरल और साधारण लोगों की समझ में आने वाली होनी चाहिए। उसके कथोपकथन छोटे किन्तु सशक्त, सजीव और प्रभावशाली हों। नाटकीय और भावपूर्ण स्थलों की समुचित योजना भी नाटक की अभिनेयता के लिए बहुत आवश्यक है। वही नाटक रंगमंच पर सफल हो सकता है जिसमें दर्शक

थोड़ी देर के लिए भी ऊब और नीरसता का अनुभव न करें। इस दृष्टि से 'वरमाला' पूर्ण सफल नाटक है। शुरू से अन्त तक ऊब या नीरसता वाला कोई प्रसंग नहीं है। प्रत्येक दृश्य में कथोपकथनों या घटनाओं की नाटकीयता और कुतूहल का यथार्थ ध्यान रखा गया है। पहले अंक का पहला और चौथा दृश्य और तीसरे अंक का अंतिम दृश्य कथोपकथनों की दृष्टि से बड़े रोचक हैं। अन्य दृश्यों को अभिनय और घटनाओं से आकर्षक बनाया गया है।

नाटक में कुल तीन गीत हैं जो गेय हैं; प्रसंगानुकूल हैं; पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करते हैं और नाटक की कथा को आगे बढ़ाते है।

देश-काल का चित्रण प्रसंग के अनुकूल ही हुआ है और जहाँ तक उद्देश्य का प्रश्न है नाटक पढ़ने के बाद यही लगता है कि नाटककार का लक्ष्य भारत के स्वर्णिम इतिहास की झांकी प्रस्तुत करने के साथ-साथ मानव-प्रेम के रहस्यों का उद्घाटन करना है और इसमें वह पूर्ण सफल हुआ है।

'अन्त:पुर का छिद्र'

'अन्त:पुर का छिद्र' ऐतिहासिक नाटक है। सिद्धार्थ और देवदत्त की इतिहास-प्रसिद्ध स्पर्धा इस कथा का स्रोत है। कौशाम्बी के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ सम्राट् वत्सराज उदयन बौद्धकालिक इतिहास का एक ऐसा पात्र है जिस पर कई साहित्यिक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस नाटक की घटना कौशाम्बी के राजप्रासाद के अन्त:पुर तक सीमित है। उदयन की बड़ी रानी पद्मावती सिद्धार्थ पर श्रद्धा रखती है और छोटी रानी मागंधिनी सिद्धार्थ के विरोधी देवदत्त की मतानुयायी है। पद्मावती सिद्धार्थ के लिए इतनी लालायित है कि वह अमिताभ को राजप्रासाद में लाने के लिए वत्सराज उदयन से कई बार प्रार्थना कर चुकी थी। भक्तिविभोर पद्मावती अमिताभ के दर्शनों की नयी युक्ति निकालती है। वह अन्त:पुर की दीवार में छिद्र करती है जिससे कि वह रोज राजपथ पर आते-जाते सिद्धार्थ के दर्शन कर सके। मागंधिनी उससे जलती है। अत: जब उसे यह पता चलता है तो वह मौका पाकर महाराज उदयन के कान भरती है। उदयन बड़े ही धैर्यवान् और विवेकशील महाराज हैं इसलिए मागंधिनी की विषाक्त चर्चा से वे अप्रभावित रहते हैं। किन्तु मागंधिनी एक और षड्यंत्र खेलती है। वह मालिन से मूच्छित सांप मंगवाती है और उसे उदयन की उस वीणा में रख देती है जो पद्मावती के पास रहती थी। इस प्रकार सांप रखने का अपराध उसी पर लगाने में सफलता पाकर मागंधिनी उदयन के हृदय को पद्मावती के प्रति विषाक्त कर देती है। महाराज उदयन मागंधिनी के साथ जाकर पद्मावती को अन्त:पुर के छिद्र से राजपथ की ओर देखते हुए देख लेते हैं और दो तीर मारकर उसका अन्त करना चाहते हैं किन्तु लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है और उसी समय मालिन आकर खबर देती है कि सांप मागंधिनी ने मंगाया था और वह उसी सांप के डसने से मर गई। उदयन को अपने अविवेक पर पश्चाताप होता है और उसी समय अमिताभ चूके हुए बाण को लेकर प्रासाद में प्रवेश करते हैं। उदयन और पद्मावती दोनों बुद्ध की शरण में जाते हैं।

यह मुख्यत: तीन पात्रों का नाटक है। वत्सराज उदयन अपने इतिहासप्रसिद्ध रूप में हैं जिनका जीवन संगीत से तदाकार हो गया है। कला ने उनके हृदय को शांत, गम्भीर और कलुषरहित कर दिया है। देवदत्त और सिद्धार्थ के बीच चल रहे द्वन्द्व में वे निर्द्वन्द्व

बने रहते हैं और दोनों पक्षों की सचाई को पकड़ने में प्रयत्नशील रहते हैं। राजदरबार के वादविवाद और जनता के आवेशपूर्ण मत-विमत के बीच भी उनका धैर्य और विवेक बना रहता है।

मागंधिनी अत्यन्त दुष्टतापूर्वक षड्यन्त्र रचकर पद्मावती को उनकी नजरों में गिराना चाहती है किन्तु वे पद्मावती के चरित्र के सम्बन्ध में शंका करने का कोई कारण नहीं देखते हैं। दूसरी बार मागंधिनी एक मूर्च्छित साप हस्ति-स्कन्ध वीणा में रख देती है और महाराज को बताती है कि यह कुकृत्य पद्मावती ने उनका अन्त करने के लिए किया है तो भी वे यकायक उस पर क्रोधित नहीं हो जाते हैं बल्कि स्वयं पद्मावती के कक्ष में चुपके से जाकर देखना चाहते है कि पद्मावती के भाव क्या है। किन्तु षड्यंत्रों ने, विशेषकर स्त्रियों द्वारा रचे गए षड्यंत्रों ने, बड़े-बड़े धैर्यवानो को परास्त कर दिया है। वत्सराज भी उस जाल के शिकार हो जाते हैं, किन्तु वास्तविकता का पता चलते ही अपने अविवेक पर पश्चाताप करते हुए बुद्ध की शरण जाते हैं।

पद्मावती सीधी सरल प्रकृति की नारी है। वह पतिपरायणा और कोमल एवं भावुक हृदय की नारी है। सिद्धार्थ के दैवीगुणों से वह सहज ही आकृष्ट हो जाती है। वह हृदय से पवित्र है इसलिए अपनी सबसे बड़ी शत्रु मागंधिनी पर भी विश्वास करती है और उसे बताती है कि अमिताभ के दर्शनों के लिए वह क्या करना चाहती है। मागंधिनी उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचती जाती है किन्तु वह उनसे बेखबर रहती है। पद्मावती का जीवन मन और आत्मा की पृथक् सत्ता को सिद्ध करने वाला है। वह तन-मन से उदयन की है और आत्मा की प्यास बुझाने के लिए अमिताभ की ओर आकृष्ट होती है।

मागंधिनी असाधारण प्रकृति की नारी है। यों तो सौतिया-डाह सभी नारियों में देखा जाता है, किन्तु उसके वशीभूत होकर पति के जीवन को खतरे में डालने वाले कृत्य करना एक भयानक बात है। फिर वत्सराज की तरह धीर, गम्भीर और विवेकशील पति को अधीर और अविवेकशील बनाने वाली नारी सामान्य स्तर की नहीं हो सकती।

यह नाटक संकलनत्रय के सिद्धान्त के बहुत निकट है। इसकी कथा कौशाम्बी के राजप्रासाद तक और घटनाकाल तीन दिनों तक सीमित है। इसलिए यह अभिनय की दृष्टि से पन्तजी के अन्य नाटकों की अपेक्षा सरल है। पद्मावती के पहले अंक के पहले, दूसरे अंक के दूसरे और तीसरे अंक के चौथे दृश्य के संवाद और 'स्वगत-भाषण' काफी लम्बे हैं किन्तु पद्मावती के अन्तर्द्वन्द्व और उसकी स्थिति को देखते हुए इन्हें अनावश्यक नहीं कह सकते। आजकल स्वगत-भाषणों को नाटक में अस्वाभाविक माना जाता है, किन्तु स्वाभाविकता या यथार्थता के उपासक यह भूल जाते हैं कि नाटक तो क्या, किसी भी कला से कृत्रिमता को पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता। स्वागत-भाषण कलाकारों को अपनी कला के प्रदर्शन का बहुत सुन्दर अवसर देते हैं।

संगीत इस नाटक का महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि इसका नायक इतिहासप्रसिद्ध संगीतप्रिय व्यक्ति है। बिना वीणा के वत्सराज उदयन का जीवन एक छाया मात्र है। सभी गीत सुन्दर बन पड़े हैं और उनकी योजना कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाने वाली और भावोद्रेक में सहायक है।

'राजमुकुट'

'राजमुकुट' पन्तजी का सर्वाधिक लोकप्रिय ऐतिहासिक नाटक है। नाटक का कथानक

राजपूताना के इतिहास की सर्वप्रसिद्ध घटना 'पन्ना के त्याग' पर आधारित है। सुरा-सुन्दरी में डूबे हुए महाराणा विक्रम के व्यवहार से सरदारों में असंतोष फैल जाता है और महाराणी की दासी के कुल में उत्पन्न होने वाली शीतलसेनी इस अवसर का लाभ उठाती है। वह अपने पुत्र बनवीर को विक्रम के विरूद्ध भड़का देती है। बनवीर सरदारों की सहायता से महाराणा विक्रम को बन्दी बना लेता है और फिर अपनी माँ के कुचक्र से उत्तेजित होकर महाराणा की हत्या कर देता है। अब उसका लक्ष्य बनता है महाराणा का छोटा भाई उदयसिंह। किन्तु पन्ना दाई अपने पुत्र चन्दन की बलि देकर उसे बचा लेती है। पन्ना और बालक उदयसिंह को कमलमीर के दरबार में शरण मिलती है। कालान्तर में मेवाड़ के सरदारों को उदयसिंह के जीवित होने का पता चलता है। वे बनवीर के अत्याचारों से असंतुष्ट होते है अतः कमलमीर के दरबार में एकत्र होकर मेवाड़ पर हमला करते हैं। बनवीर का पतन होता है और उदयसिंह महाराणा बनते हैं।

बनवीर की माँ शीतलसेनी एक महत्त्वाकांक्षिणी नारी है जो दासी के स्तर से ऊपर उठती है, किन्तु इस पतन के लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह तो स्वयं षड्यन्त्र का शिकार है, इसीलिए नाटक के अन्त में पन्ना दाई के आदेशानुसार उसका वध न करके उसे बन्दी बनाया जाता है और ऐसा करना सर्वथा उपयुक्त ही हुआ है। वैभव का प्रतीक राजमुकुट मनुष्य के पतन का कारण होता है। बनवीर का चरित्र इसका प्रमाण है। राजमुकुट का आकर्षण कितना प्रबल होता है इसकी साक्षी पहले अंक के चौथे दृश्य के प्रारम्भ में स्वयं बनवीर देता है—"अहो, स्वर्णनिर्मित हीरक खचित राजमुकुट! तुम्हारा आकर्षण बड़ा प्रबल है। तुम्हारे स्पर्श ने मुझे भी न जाने क्या कर दिया। तुमने मुझे समझाया, संसार में मैत्री कुछ भी नहीं, मित्र कोई भी नहीं। राजधानी का प्रत्येक मनुष्य मेरे विचार पर बोलता है, मेरे संकेत पर नमता है, मैं बहुत ऊंचा चढ़ गया हूं।"[१]

बनवीर की माता शीतलसेनी कुटिल नारी है। एक दासी के स्तर से ऊपर उठकर वह राजमाता बनने का स्वप्न देखती है। वह इतनी महत्त्वाकांक्षिणी है कि वह जो कुछ करती है राजमाता बनने के लिए करती है, पुत्र-प्रेम के लिए नहीं। उसका चरित्र कैकेयी के चरित्र जैसा होते हुए भी उससे बहुत नीचा है। वह पुत्र-प्रेम के लिए नहीं, अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए, अपने अपमान का बदला लेने के लिए, राजवंश को निर्मूल करने का षड्यन्त्र रचती है। नाटक के अन्त में पेड़ से गिरने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है और यह उसके अपराधों का उचित दंड है।

ऐतिहासिक नाटक इतिहास में जान फूंकने का काम करता है और प्रस्तुत नाटक में इस कर्तव्य को पूरी तरह निभाया गया है। नाटक में नौ महत्त्वपूर्ण पात्र हैं—सात पुरुष पात्र और दो नारी पात्र। सभी चरित्रों का समुचित चित्रण करने में नाटककार सजग रहा है।

राणा विक्रम नायक है, सुरा-सुन्दरी में डूबा हुआ, अपने राजकीय कर्तव्यों से पराङ्मुख और राजनीति में अकुशल। उसकी इन त्रुटियों के कारण सरदारों में असंतोष फैलता है। शीतलसेनी आसानी से उसे अपने कुचक्र का शिकार बना लेती है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण नाटक के प्रथम संवाद में ही स्पष्ट हो जाता है—"मनुष्य का

१. राजमुकुट, पृ० ४३

जीवन बहुत ही छोटी वस्तु है। मेरे सुख की इच्छाएं इसी जन्म में क्यों न पूरी हों। मै अपने मन मे क्यों चिन्ता का मैल जमने दूँ।"[१] लेकिन विलासी या राजनीति में अकुशल होते हुए भी उसमें नायक के गुणों का अभाव नहीं है। वह वीर है और मृत्यु का वरण भी चाव से करता है। वह स्त्री-वेश में कारागार से भागकर जान बचाना नहीं चाहता है।

बनवीर नाटक का खलनायक है। किन्तु वह परिस्थितिवश खलनायक बनता है। मानव की सहज अच्छाइयों-बुराइयों से युक्त बनवीर पहले विक्रम का हितैषी था और राजमुकुट का लोभ उसके मन में नहीं था। किन्तु बाद में माँ शीतलसेनी के कुचक्र का शिकार होकर वह नीच, लोभी, हत्यारा, महत्त्वाकांक्षी बन जाता है।

पन्ना दाई का चरित्र नाटक का सबसे बड़ा आकर्षण है। उसके पति बहादुरसिंह के अवतरण से पन्ना का चरित्र सर्वांगपूर्ण हो गया है। वह साधारण स्तर के समाज की एक दुखियारी है जिसका पति युद्ध में एक हाथ कट जाने के बाद तांत्रिक हो गया था। वह राजमहल में दाई का काम करती है और अपने पुत्र चन्दन के साथ उसी के समवयस्क राजकुमार उदयसिंह का पालन-पोषण करती है। वीरता, निर्भीकता, सच्चरित्रता और राज-भक्ति उसके ऐसे गुण हैं जिनके कारण वह एक साधारण स्तर की नारी होते हुए भी नाटक के सभी पात्रों पर छा जाती है। राणा विक्रम उसे माँ की तरह मानता है। वयोवृद्ध सरदार कर्मचन्द उसकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए तैयार है। उसके शब्दों में ऐसी शक्ति है कि विरोधी सरदार विक्रम को क्षमा करने के लिए और उसे फिर से राणा बनाने के लिए तैयार हो जाते हैं। अपने पुत्र की बलि देकर राजकुमार उदय की रक्षा करके तो वह त्याग का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करती है जो अन्यत्र दुर्लभ है। यह उसकी केवल राजभक्ति ही नहीं थी, मानवता का महान् आदर्श भी था। इसलिए आज के युग में भी जबकि राजभक्ति अधिक सम्माननीय चीज नहीं रह गई है, उसकी कथा हृदय के कलुष धोकर उसे पवित्र करने वाली है।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त धर्मचन्द, जयसिंह, बहादुरशाह आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण भी सफलतापूर्वक किया गया है। बहादुरशाह सच्चा वीर और देश-भक्त है। युद्धभूमि में विकलांग हो जाने के कारण वह तांत्रिक बनकर किसी सिद्धि में लग जाता है। भाग्य-विडंबना से उसके साथी काली की नरबलि के लिए जिस बालक को पकड़ कर ले आते हैं, वह उसके पुत्र चन्दन के वेश में उदय होता है। उदय के पास वह अपने नाम का तावीज देखता है और उदय जब अपना नाम चन्दन बताता है तब उसका दिल धक् से रह जाता है। वह उसे अपना पुत्र मानकर बलि रोक देता है। अगले ही दृश्य में कमलमीर के दरबार में पन्ना जब इस रहस्य का उद्घाटन करती है कि वह बालक उदयसिंह है तब बहादुरसिंह मानवता से पतित होकर दानवता की ओर अग्रसर होता है किन्तु वह पतित नहीं हो पाता और नाटक का चिर-स्मरणीय पात्र बन जाता है।

कर्मचन्द वीर है, राजभक्त और राजनीति-कुशल सरदार है। राजवंश का प्रत्येक व्यक्ति उसका सम्मान करता है। जब राणा विक्रम अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता है तब वह उसे बन्दी बनाने को तत्पर हो जाता है, किन्तु जब विक्रम अपनी भूलों पर पश्चाताप करके अपने आपको सुधारने की प्रतिज्ञा करता है तब वह फिर से उसे महाराणा बनाने के लिए तैयार हो जाता है—भले ही शीतलसेनी के कुचक्र के कारण वह इस प्रयास में सफल नहीं हो पाता।

१. राजमुकुट, पृ० १२

धर्मचन्द का पुत्र जयसिंह देशभक्त और क्रान्तिकारी युवक है। वह राणा विक्रम के विरुद्ध विद्रोह का नेता बनता है। वह समझौता करना नहीं जानता। वह पितृभक्त है परन्तु अपने पिता सरदार कर्मचन्द के कहने पर भी वह राणा विक्रम के प्रमाद और उससे पैदा होनेवाली बुराइयों को नजरअन्दाज करने के लिए तैयार नहीं होता। बाद में पूरी राजशक्ति से सम्पन्न बनवीर को राजसभा में वह जिस तरह से फटकारता है वह उसकी वीरता और क्रान्तिकारी भावना का प्रमाण है—"तुम तलवार का भय दिखाते हो, बनवीर! तुम बालक हो, तुम मेरा सामना नहीं कर सकते। मैं बँधा हुआ महाराणा विक्रम नहीं हूँ, सोता हुआ बच्चा उदय नहीं हूँ, अकेले राह चलता हुआ वृद्ध सरदार कर्मचन्द नहीं हूँ। मैं राज्यारोहण की ऐसी तृष्णा को धिक्कारता हूँ। इस तलवार के साथ मैं तेरे मेवाड़ का त्याग करता हूँ।"[1] और बनवीर द्वारा प्रस्तावित मंत्रीपद का तिरस्कार करके वह मेवाड़ छोड़कर चला जाता है।

राजकुमार उदयसिंह में अल्पवयस्कता में भी मेवाड़ का भावी राणा बनने के गुण दिखाई पड़ते हैं। वह उदार है, दयालु हृदय है; बड़े भाई विक्रम के प्रति उसे बड़ी श्रद्धा है; वृद्ध सरदार कर्मचन्द और पन्ना दाई के प्रति उसके हृदय में आदर-भक्ति के भाव हैं। तीसरे अंक के तीसरे दृश्य में उसका यह कथन उसके वीर हृदय का सुन्दर परिचय देता है—"(बहादुरसिंह से) मैं उस हत्यारे बनवीर से नहीं डरता। अब मैं पर्याप्त बलशाली हो गया हूँ। क्या आप मुझे इतने वर्षों से रणकौशल नहीं सिखा रहे हैं? क्या मैं आपका आलसी शिष्य हूँ?"[2]

रणजीत एक पद-लोलुप अवसरवादी व्यक्ति है। छंदावत सरदार एक वीर योद्धा और देशभक्त है। कमलमीर का राजा आशाशाह एक उदार, न्यायप्रिय और विश्वसनीय मित्र है। नाटक में इनके चरित्र के विस्तार का विशेष स्थान नहीं, तथापि जितना भी चरित्र-चित्रण यहाँ हुआ है उसमें नाटककार को पर्याप्त सफलता मिली है।

अठारह दृश्यों, चौदह महत्त्वपूर्ण पात्रों और तेरह गीतों वाले इस नाटक को खेलने में कुछ कठिनाइयाँ भी अवश्य हो सकती हैं तथापि यह एक अभिनेय नाटक है और रंगमंच पर अनेक बार सफलतापूर्वक खेला भी जा चुका है। इसकी अभिनेयता पर किसी को सन्देह नहीं हो सकता है। जो नाटक आधुनिकतम शहरी रंगमंच पर कम से कम सेटों में खेला जा सके, केवल उसी नाटक को अभिनेय नहीं कहा जा सकता। संकेतात्मक रंगमंच के लिए उसकी दृश्य-योजना कोई कठिन समस्या नहीं है। नाटक में अन्य भी अनेक बातें हैं जो इसे दर्शकों के समक्ष पूर्ण सफल बनाने की गारंटी देती हैं। इसमें रसात्मक प्रसंगों की योजना इतनी अच्छी है कि कोई भी दृश्य नीरस नहीं होने पाया है और कलाकारों को अपनी कला का प्रदर्शन करने का पूरा अवसर मिलता है। कारागार में विक्रम की हत्या, महल में पन्ना दाई का अपने पुत्र की बलि देकर उदयसिंह को बचाना, पन्ना का अपने हाथों से पुत्र चन्दन का दाह-संस्कार करना, तांत्रिक की गुफा में और फिर कमलमीर के दरबार में बहादुरशाह के साथ हुई भाग्य-विडंबना, इत्यादि स्थल दर्शकों को

---

१. राजमुकुट, पृ० ६०

२. वही, पृ० १०५

रसमग्न करने में पूरी तरह समर्थ है। बहादुरशाह वाले प्रसंग ने तो नाटक में 'सत्य हरिश्चन्द्र' का-सा आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।

आजकल नाटकों में गीतों की योजना स्वाभाविक नहीं मानी जाती। यथार्थ रंगमंच की दृष्टि से गीतों का अभाव भी सफल नाटक का आवश्यक लक्षण माना जाता है। किन्तु इन मान्यताओं ने नाट्य-साहित्य को जिस दुर्गति तक पहुँचा दिया है वह किसी से छिपी नहीं है। हिन्दी का ही नहीं, संसार की अन्य समृद्ध भाषाओं का नाट्य-साहित्य भी सिनेमा और टेलीविजन की स्पर्धा में लड़खड़ाकर अन्तिम सिसकियाँ ले रहा है। यदि इसे यथार्थवादी रंगमंच, बहुमूल्य साधनों से सम्पन्न रंगशाला और शहरों के सम्पन्न वर्ग के पंजों से छुड़ाकर सरल, सादे और मुक्त वातावरण में नहीं लाया गया तो इस विधा का केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही रह जाएगा।

अच्छे गीत नाटक का बड़ा आकर्षण होते हैं यदि उन्हें अच्छी तरह से गाया जा सके। पृष्ठभूमि के रिकार्ड संगीत पर लट्टू दर्शक नाटक में गीतों की भले ही आवश्यकता न समझें किन्तु यदि नाटक ग्रामीण जनता या छोटे कस्बों में खेला जाता है तो उसमें गीत आकर्षक हो जाते हैं। मुझे तो लगता है कि 'पृथ्वी थियेटर' के द्वारा या अन्य शहरी संस्थाओं के द्वारा आधुनिक रंगमंच पर खेले गए नाटक उन थियेटरों के बाहर नीरस एवं असफल ही सिद्ध होंगे।

रंगमंच की दृष्टि से इस नाटक में एक कमी खटकती है और वह है हास्य का अभाव। तीन-साढ़े तीन घंटे के नाटक में कुछ-कुछ समय बाद हास्य की योजना भी आवश्यक है। नाटक का विस्तार भी अभिनय की दृष्टि से एक बड़ी बाधा है।

प्रस्तुत नाटक इतिहास की सर्वविदित घटना को लेकर लिखा गया है। जयशंकर प्रसाद की तरह पन्तजी ने इतिहास की खोज करने के बाद नाटक नहीं लिखे। प्रसाद के नाटकों का लक्ष्य विस्मृत इतिहास को सामने लाना था, किन्तु पन्तजी के नाटक सर्वविदित ऐतिहासिक प्रसंगों में जान फूँकने के लिए लिखे गए हैं। ऐतिहासिक नाटककार की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यह है कि वह इतिहास को विकृत न करे, किन्तु नाटक में पूर्णता या रसात्मकता लाने के लिए वह कुछ पात्रों या प्रसंगों की कल्पना भी कर सकता है। पन्तजी ने भी इस अधिकार का प्रयोग किया है। बहादुरशाह के तान्त्रिक होने का प्रसंग और शीतलसेनी के चरित्र की योजना काल्पनिक ही हैं।

'अंगूर की बेटी'

यह मद्यपान के दुष्परिणामों को चित्रित करने वाला एक उपदेशात्मक सामाजिक नाटक है। सिनेमा-डायरेक्टर माधव की कुसंगति में पड़कर मोहनदास को शराब की लत पड़ जाती है। एक दिन वह माधव की फिल्म-कम्पनी के शेयर खरीदने के लिए अपनी पत्नी कामिनी से गहने माँगता है, किन्तु वह अस्वीकार कर देती है। नशे में वह उसके सिर पर शराब की बोतल दे मारता है। पत्नी बेहोश हो जाती है और वह उसके सारे गहने निकाल लेता है। उसे बेहोश छोड़ कर माधव के साथ बाहर निकल आता है। उनके जाने के बाद मोहनदास के घर में आग लग जाती है। एक कृष्णभक्त साधु बनवारी बाबा कामिनी को बचाकर उसके पिता के घर पहुँचा देता है, किन्तु मोहनदास उसे आग में जलकर मरी हुई समझ कर निश्चिन्त हो जाता है।

मिस विन्दु अभिनेत्री बनने के चक्कर में माधव के जाल में फँसती है। यद्यपि वह विनायक नाम के एक वकील से प्रेम करती है किन्तु वह अपने 'कैरियर' के बारे में स्वतन्त्र रहना चाहती है, और होटल में मोहनदास तथा माधव की योजनाओं और चर्चाओं में भाग लेती है। उसके पिता हरिहर उसके ऐसे व्यवहार पर क्रोधित होकर उसको घर से निकाल देते हैं। बनवारी बाबा बिन्दु को होटल से अपने साथ ले जाता है, माधव मोहनदास की जेब से उसकी पत्नी के गहने चुरा लेता है और उस समय माधव की ढीली अँगूठी मोहनदास की जेब में गिर जाती है।

धनहीन मोहनदास मोहताज हो जाता है और उसे शरण मिलती है एक नये होटल के मालिक विनोद बाबू के आश्रम में। वस्तुतः उसकी पत्नी ही पुरुष वेश में विनोद है। बाबा बनवारी की सत्प्रेरणा से बिन्दु भी वहीं काम करने लगी है। कुछ समय बाद जब उसे पता लगता है कि उसकी जेब से गहने माधव ने चुराए हैं तो वह माधव से मिलने होटल में जाता है। वहाँ दोनों में मार-पीट हो जाती है जिसमें मोहनदास के हाथ से पिस्तौल चल जाती है। यद्यपि निशाना चूक जाता है किन्तु पुलिस उसे पकड़ लेती है। विनायक वकील मोहनदास को मुक्त करा लेता है। उस पर लगाया गया कामिनी की हत्या का आरोप भी कामिनी के जिन्दा प्रकट होने पर निर्मूल सिद्ध हो जाता है। उधर विनायक माधव पर चोरी का अपराध लगाकर तलाशी का हुक्म प्राप्त करता है। माधव प्रतिमा के साथ धोती की मदद से खिड़की के रास्ते निकलकर भाग जाता है। भागते-भागते उनकी मोटर दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है जिसमें माधव तो मर जाता है किन्तु प्रतिमा बच जाती है। वह कामिनी के सभी आभूषण वापस कर देती है। कामिनी उन आभूषणों को विनायक-बिन्दु की शादी के अवसर पर भेंट दे देती है। मोहन की बुरी लत को उसकी पत्नी ने धीरे-धीरे कम कर छुड़ा ही दिया।

सिनेमा-कथानक की तरह इसके कथानक में वे सभी बातें हैं जो लोकप्रियता के लिए आवश्यक मानी जाती हैं। इसमें प्रेम है, स्त्री का पुरुष के वेश में अभिनय करने का चमत्कार है, पिस्तौल के लिए छीना-झपटी है, खिड़की के रास्ते नीचे उतरने की बात है और फिर मोटर-दुर्घटना है। वास्तव में इस कथानक को लेकर प्रचलित फार्मूले के अनुसार एक सफल चलचित्र बनाया जा सकता है।

भूमिका में कहा गया है कि "यह नाटक स्टेज पर भली-भाँति खेला जा सकता है।" किन्तु रंगमंच की सफलता के लिए किसी नाटक में जो कतिपय सीमाएं होनी चाहिए उनका इसमें अभाव है। उदाहरण के लिए इसकी दृश्य-योजना निम्नलिखित प्रकार से है—

अंक पहला —
- मोहनदास की बैठक और पाठशाला
- रॉयल होटल—मोहनदास के मकान के निकट
- न्यू होटल
- रॉयल होटल

अंक दूसरा —
- न्यू होटल
- न्यायालय
- रॉयल होटल
- खिड़की से नीचे कूदना
- पुल के पास मोटर-दुर्घटना

तीसरा अंक
- न्यू होटल
- पीपल के पेड़ के नीचे
- न्यू होटल
- हरिहर का मकान

इतने दृश्यों को पर्दों की सहायता से प्रदर्शित भी नहीं किया जा सकता है। दृश्य हू-ब-हू हों ऐसा आग्रह नहीं किया जा सकता। किन्तु इतना तो होना ही चाहिए कि जो कुछ दिखाया जाय उसमें दर्शक को उस वातावरण का बोध या अनुभूति करने की क्षमता हो। रंगमंच की साजसज्जा नाटक में उद्दीपन का काम करती है। यह दर्शकों को यथार्थ वातावरण से कुछ देर के लिए हटाकर काव्य के वातावरण में ले जाती है। इसीलिए यह अनिवार्य कार्य करने की क्षमता तो रंगमंच पर दिखाए गए दृश्यों में होनी ही चाहिए।

नाटक लिखने की कला साहित्य की अन्य विधाओं से इसलिए कठिन मानी जाती है कि इसमें नाटककार को अपनी बात कहने के लिए ऐसे स्थलों और कार्य-व्यापारों का चयन करना पड़ता है जो रंगमंच पर दिखाए जा सकते हों। प्रस्तुत नाटक के छठे और सातवें दृश्य में ऐसे कार्य-व्यापार हैं जिनका रंगमंच पर दिखाया जाना सम्भव नहीं है। जैसे—"रॉयल होटल की पिछली खिड़की से धोती की सहायता से प्रतिमा और माधव का मोटर की छत पर कूदना, फिर मोटर स्टार्ट कर भाग जाना, फिर दूधवाले का आकर साइकिल पर बैठ घंटी बजाते हुए चले जाना'''और निर्जन वन से जाती हुई सड़क, निकट एक नदी, समय—रात, नदी का पुल टूट गया है, टूटे हुए पुल के आगे एक लट्ठे से सड़क रोक दी गई है। लट्ठे के बीचों-बीच एक काठ का बक्स लटकाया गया है। बक्स के आगे खुले भाग पर लाल काँच लगा है। उसमें बड़े अक्षरों में 'खतरा—आगे रास्ता नहीं है' लिखा गया है और वहाँ गधा चरता हुआ आता है (रात के समय); वह लट्ठे पर गर्दन खुजलाता है। (क्या गधे को रंगमंच पर लाने और लट्ठे से गर्दन खुजलाने के लिए प्रशिक्षित करना किसी नाटक-कम्पनी या क्लब के लिए सम्भव है ? इसके बाद बक्स नीचे गिरता है और लैम्प बुझ जाता है। माधव और प्रतिमा मोटर पर चढ़े आते हैं और मोटर लट्ठे को तोड़कर टूटे हुए पुल से नदी में गिर पड़ती है।

यह कार्य-व्यापार चित्रपट पर ही दिखाया जा सकता है, रंगमंच पर नहीं। किन्तु रंगमंच की इन त्रुटियों के अतिरिक्त अन्य बातों में नाटक रोचक एवं शिक्षाप्रद है। यही कारण है कि यह काफी लोकप्रिय हुआ है। कथा की रोचकता के साथ-साथ पात्रों के चरित्र में उतार-चढ़ाव सफलतापूर्वक दिखाया गया है। माधव और प्रतिमा का, खलनायक और खलनायिका के रूप में सुन्दर चित्रण हुआ है। इसी प्रकार मोहनदास का शराबी के रूप में, बिन्दु का महत्त्वाकांक्षी नारी के रूप में, कामिनी का सद्गृहिणी के रूप में सुन्दर चित्रण हुआ है। संवाद पात्रों के अनुकूल सजीव और प्रभावशाली हैं। बीच-बीच में हास्य का पुट नाटकों में आवश्यक होता है और प्रस्तुत नाटक में इसकी कमी नहीं है। उदाहरणार्थ—"मोहनदास मैं कभी ज्यादा नहीं पीता, जब ज्यादा पी लेता हूं तो बेहोश नहीं होता। जब बेहोश होता हूं तो कभी नाली में नहीं गिरता। जब नाली में गिरता हूं तो किसी बड़े भारी खानदानी कुत्ते को छोड़ और किसी की तान

नहीं कि मेरा मुँह चाट सके।"[1]

मोहनदास जैसे शराबी व्यक्ति की शराब छुटाने की विधि सुन्दर प्रणाली से दिखाई गई है। नशाबन्दी का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत नाटक में सफलतापूर्वक निभाया गया है। शराब के दोष और उसके निराकरण (समस्या का समाधान) दोनों का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है।

'ययाति'

इस नाटक की रचना पौराणिक कथा के आधार पर की गई है। शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और महाराज वृष की पुत्री शर्मिष्ठा में अनबन हो जाती है जिसके परिणाम-स्वरूप शर्मिष्ठा को दासी के रूप में देवयानी की सेवा करनी पड़ती है। उधर ययाति कुएँ में गिरी हुई देवयानी को बाहर निकालता है और उसका हाथ छू जाने के कारण उसे देवयानी को अपनी रानी बनाना पड़ता है। शर्मिष्ठा से पहले ही ययाति का विवाह हो चुका होता है किन्तु वह शापग्रस्त होकर ययाति के महल में दासी बनकर रहती है।

महाराज ययाति की वृद्धावस्था में भी कुछ कामनाएँ अतृप्त रह जाती हैं इसलिए वह अपने पुत्रों से बारी-बारी कहता है कि वे एक साल के लिए अपनी जवानी से उसके बुढ़ापे को बदल लें। इस सौदे के लिए और कोई तैयार नहीं होता, केवल शर्मिष्ठा का सबसे छोटा पुत्र पुरु अपनी जवानी से पिता का बुढ़ापा बदल लेता है। ययाति अपनी कामनाओं को तृप्त करने के लिए पांच नर्तकियों और राजगुरु के साथ गंधमादन पर्वत की एक गुफा में चला जाता है। यहाँ उसकी भेंट विश्वाची नामक अप्सरा से होती है। विश्वाची के आते ही नर्तकियों को वापस भेज दिया जाता है और ययाति तथा विश्वाची एक साल के लिए पति-पत्नी की तरह वहाँ रहने लगते हैं। उनके पीछे राज्य में अव्यवस्था फैल जाती है, वर्णाश्रम धर्म अस्त-व्यस्त हो जाता है। पुरु पिता के परामर्श के अनुसार सभी क्षत्रियों को खेतों में काम करने के लिए भेज देता है। किसी तरह वह राज्यविप्लव को बचाता है। एक साल बाद विश्वाची शाप की अवधि पूरी हो जाने पर स्वर्ग लौट जाती है। पुरु फिर युवा हो जाता है और ययाति का बुढ़ापा लौट आता है। पुरु अपने पिता को राजमुकुट सौंपकर किसान-कन्या मालती के साथ (जिसके साथ उसका गान्धर्व विवाह हुआ था) खेतों में काम करने के लिए चला जाता है।

पुराण-प्रसिद्ध इस कथा में कई सुन्दर रूपक जुड़े हुए हैं। ज्ञान (देवयानी) और कर्म (शर्मिष्ठा) का वैमनस्य मनुष्य (ययाति) को अशांत बनाए रहता है। जब राजा कामनाओं का दास हो जाता है, वर्णाश्रम-धर्म में अव्यवस्था फैल जाती है, भ्रष्टाचार बढ़ते हैं, और राज्य-विप्लव होने लगते हैं मानव-मानव के बीच, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेयसि, पिता-पुत्र आदि के जो सम्बन्ध हैं वे सब शारीरिक हैं, आत्मा इन सबसे अलग है। जब पुरु की जवानी लेकर ययाति जवान हो जाता है तो शर्मिष्ठा और देवयानी उसे किसी भी तरह अपना पति मानने के लिए तैयार नहीं होतीं। किसान-कन्या मालती जब ययाति के कहने पर राजदरबार में आती है तो अपने प्रिय पुरु को वृद्धावस्था में देखकर घृणा से मुँह फेर लेती है।

इस नाटक का प्रमुख आकर्षण है इसके विचार जो विभिन्न स्थलों पर बिखरे हुए हैं। संसार के प्रपंचों का आश्रय यह नश्वर शरीर ही है, आत्मा इससे पृथक् रहती है,

---

१. अंगूर की बेटी, पृ० ३५

इसीलिए ये सम्बन्ध निस्सार हैं। राजा जब कामनाओं का दास हो जाता है तो वर्णाश्रम व्यवस्था में उथल-पुथल हो जाती है और विप्लव का जन्म होता है। शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध—ये पाँच कामनाएं, मनुष्य की पांच इन्द्रियों के विषय हैं। सब कामनाओं का मूल भूख है।

रंगमंच की दृष्टि से इस नाटक की कथावस्तु बड़ी रोचक है। शरीर-परिवर्तन का चमत्कार, पुरु को ययाति और ययाति को पुरु समझने की विडंबना, विश्वाची अप्सरा का आगमन और प्रस्थान आदि बातें नाटकीय दृष्टि से काफी आकर्षक हैं।

कथावस्तु के अतिरिक्त इसके कथोपकथन भी रोचक और व्यंग्यपूर्ण हैं। वास्तव में कथोपकथनों में हास्य का जो पुट दिया गया है उसके कारण नाटक की नीरसता बहुत कुछ दूर हो गई है। अन्यथा यह रंगमंच के लिए बहुत दुरुह हो जाता। बीच-बीच में जो व्यंग्य कसे गए हैं वे बड़े चुभते हुए और प्रेक्षकों का मनोरंजन करने वाले हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है :

ययाति : मेरे राज्य में जो वर्णाश्रम धर्म बिगड़ गया, उसे किसने बिगाड़ा ?

अधपगला : कौन बिगाड़ सकता है ? अपने आप। सैकड़ों वर्षों के व्यवहार से बर्तन घिस गए। पंडित के वेद को दीमक चाट गई। सैनिक की तलवार में मोर्चा लग गया। वैश्य की तुला घिस गई और सेवक की भावना में छेद हो गया।"[1]

ययाति : तलवार से भूमि खोदकर हम चारों दिशाओं में विधान का बीज बोते हैं। हम विधान के विधायक हैं। हम उसकी पकड़ में नहीं आ सकते।

ययाति (पुरु) के सामने कोटपाल जब अपराधियों को ले जाता है उस समय के प्रश्नोत्तर बड़े रोचक हैं क्योंकि वे आधुनिक जीवन पर भी पूरी तरह घटित होते हैं।

रंगमंचीय नाटक के लिए हास्य बहुत आवश्यक है। अधिकांश दर्शक नाटक या सिनेमा मनोरंजन के लिए देखते हैं। उनके मनोरंजन का ध्यान रखते हुए हल्की और सस्ती चीजें देना अच्छे लेखक का काम नहीं है. फिर भी नाटककार को इस बात का ध्यान तो अवश्य रखना पड़ता है कि दर्शक शुरु से आखिर तक बैठे रहें। प्रस्तुत नाटक में शर्मिष्ठा के दोनों बड़े पुत्रों का अभिनय हास्यपूर्ण है। गुरुदेव भी हास्य के ही आलंबन बन जाते हैं। अन्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी नाटककार की हास्य प्रकृति हमेशा सक्रिय रही है।

दृश्य-योजना की दृष्टि से तो यह नाटक पन्तजी के अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक सफल है। इसमें कुल चार अंक हैं और प्रत्येक अंक में केवल एक-एक दृश्य है। सारा नाटक राजमहल और चैत्ररथ-वन की गुफा—इन दो सेटों पर खेला जा सकता है।

'सुजाता'

यह एक सामाजिक नाटक है जिसमें पर्दे की प्रथा, पुरुष की नारी के प्रति संदेह-भावना और भूत-प्रेतों में अन्धविश्वास जैसी बुराइयों के दुष्परिणामों को दिखाया गया है। सुजाता का पति विजय एक स्कूल-मास्टर है जो सुजाता के चरित्र पर शंकालु है। वह घर से बाहर जाते समय उसे ताले में बंद कर जाता है। उसका पड़ोसी डॉ० बिसन सुजाता को इस कैद से छुड़ाने के लिए एक चाल चलता है। सुजाता के पिता की बीमारी

१. ययाति, पृ० १०८

का बहाना कर वह उसे अपने साथ कार में बिठाकर ले जाता है। शहर से बाहर जाकर सुजाता को उसके षड्यंत्र का पता चलता है तो वह उसके बंधन से भागने की कोशिश करती है। इसी कशमकश में मोटर-दुर्घटना हो जाती है। डॉक्टर घायल होकर अस्पताल पहुंच जाता है और सुजाता अपने को कलंकिनी मानकर पिता के घर चली जाती है।

इधर विजय सुजाता को मृत घोषित कर देता है और उसका पुतला जला देता है। कई दिनों की भूखी-प्यासी सुजाता अपने पिता के यहां काफी दिनों बाद पहुंच पाती है, तब तक उसकी मृत्यु की खबर सब जगह फैल चुकी होती है। पिता उसे भूत समझकर घर से निकाल देते हैं। वह फिर वापस अपने पति के घर आ जाती है किन्तु विजय उसे पागल कहकर निकाल देता है। तब तक विजय दूसरी शादी कर लेता है। उसकी दूसरी पत्नी रेखा उस पगली सुजाता को शरण देती है। उसे नौकर बदरी, डॉक्टर बिसन और पगली की बातों से विश्वास हो जाता है कि वह सुजाता ही है। वह उसे घर में महा-राजिन बनाकर रखती है। विजय के आगे वह घूंघट निकालती है। विजय धीरे-धीरे उसकी ओर आकृष्ट होता है। आखिर एक दिन विजय अपने पाप को स्वीकार कर लेता है और मिलने के लिए आतुर होता है किन्तु मिलने से पहले सुजाता को सांप काट लेता है और डॉक्टर बिसन उसका विष चूसते-चूसते स्वयं भी विष का शिकार हो जाता है।

यह नाटक दुखान्त है और दुखान्त भी ठीक शास्त्रीय अर्थ में जहां पुरुषार्थ और दैव का संघर्ष होता है, पुरुषार्थ सफल होता-सा दिखाई देता है किन्तु सफलता के कुछ समय पहले दुर्दैव हावी हो जाता है और इस तरह करुणा और त्रास का भाव पुष्ट होता है। यही ट्रेजेडी का आधार है।

इस नाटक की दृश्य-योजना सरल है। प्रत्येक अंक में तीन-तीन दृश्य हैं जिन्हें पर्दों की सहायता से आसानी से दिखाया जा सकता है। लेखक की नाटकों की अभिनेयता के संबंध में जो धारणा है उसके अनुसार यह नाटक रंगमंच के अनुकूल है। भूमिका में उन्होंने कहा है—

"नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है...सच्चा नाटक अपने-आप में मनोरंजन है। मनोरंजन का लक्ष्य बनाना नहीं पड़ता उसे। वह सीधे प्रचार और उपदेश का भी माध्यम नहीं है। कोरे उपदेश सुनना कोई नहीं चाहता। नाटक सिद्धान्तों का कर्म में अनुवाद करता है।

"...रिवॉल्विंग स्टेज को नाटक का चरम विकास समझना ठीक नहीं। कथानक, भाव-भाषा की उलझन और जटिलता को साहित्य नाम देना भी एक विकृति है। इन दोनों जंजालों से बाहर निकले बिना नाटक सर्वसाधारण की सम्पत्ति न हो सकेगा।"

ये लेखक की मान्यताएं हैं। वस्तुतः आज नाटक सर्वसाधारण की वस्तु नहीं रह गया है। वह एक 'क्लास' की चीज है। रंगमंच पर यथार्थप्रियता के आग्रह ने नाटक को बहुत सीमित कर दिया है।

'सुजाता' नाटक में वे सभी बातें हैं जो एक सफल नाटक के लिए आवश्यक हैं। भाषा सर्वसाधारण की समझ में आने वाली है। कथानक आद्योपान्त रोचक है और कुतूहल अंत तक बना रहता है। प्रत्येक पात्र अपने में पूर्ण है। पात्रों की संख्या भी सीमित है। दो नारी पात्र हैं और पांच पुरुष पात्र। संवाद छोटे, सरल और प्रभावोत्पादक हैं।

विविध भावों का समावेश नाटक में आवश्यक है क्योंकि यह एकांकी या कहानी से भिन्न है जिसमें एक ही भाव का चित्रण किया जाता है। नाटक में

विविधता, विशालता तथा स्फीतता होनी चाहिए तथा रंगमचों की सेट-पद्धति के कारण नाटकों से ये गुण धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं।

प्रस्तुत नाटक में विभिन्न रुचि वाले दर्शकों के लिए पर्याप्त विविध सामग्री है। इसमें शृंगार, हास्य, भयानक, करुण आदि अनेक भावों का चित्रण है। इन गुणों के साथ-साथ समाज के रोगों की शल्य-क्रिया करने और समाज के उत्थान के लिए भी पर्याप्त सामग्री है; जैसे निम्नलिखित संवाद—

पड़ोसिन : "यह उन्हीं की युगों से प्रसारित विचारधारा है, अब लोहे की दीवार बन गई। हम ढाह देंगी उसे। पुरुष और नारी गृहस्थी के ये दो चक्र, इनमें से एक छोटा और दूसरा बड़ा होगा तो गाड़ी की सहज-सरल गति में अंतर पड़ जाएगा।"[1]

प्रतिबिम्ब (विजय की आत्मा विजय के अहं को सम्बोधन करके कहती है) : "तू आदिकाल की गुफाओं का निवासी। आखेट की बर्बरता नहीं गई है अभी तक तेरी। तू बहुविवाह में प्रीति रखने वाला, तू एक पति पर प्राणों को निछावर करने वाली नारी का मूल्य नही जान सकता।"[2]

सुजाता का भाई अपने पिता से : "इस तरह बहकाई गई नारी को जो अपवित्र समझता है उस समाज की कालिमा सबसे गहरी है। अगर उसने ऐसी नारी का आदर करना न सीखा तो एक दिन सारा हिन्दुत्व डूब जाएगा इस अत्याचार में।"[3]

डॉक्टर बिसन : "वह चली गई हिन्दु धर्म के पापों का इतिहास लिखने, वह चली गई उसके कोढ़ के कीटाणु बनने के लिए, वह चली गई उसकी समाधि खोदने के लिए।"[4]

'विषकन्या' (एकांकी संग्रह)

पन्तजी ने सामान्य नाटकों के अतिरिक्त अनेक एकांकी भी लिखे हैं। इनके कुछ एकांकी 'विषकन्या' संग्रह में संगृहीत हैं। अन्य एकांकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं। एकांकी-लेखन के दृष्टिकोण से पन्तजी का रचनाकाल 'एकाग्रता की परीक्षा' (सन् १९२०) से आरम्भ होता है। लेखक का विषय-चयन व्यापक एवं विस्तृत रहा है। इनमें ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, हास्य-रस-प्रधान व्यंग्यात्मक सभी कोटि के एकांकी मिलते हैं। लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण यत्र-तत्र झलकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक का मूल उद्देश्य मानव-चरित्र के मानवीय रूप का उद्‌घाटन करना रहा है। इसमें वह सफल भी हुआ है।

पन्तजी के एकांकी नाटक भी सामान्य नाटकों की भाँति पूर्णतः रंगमंच की वस्तु है। कहने का तात्पर्य है कि कला, भाषा एवं अभिनेयता की दृष्टि से इनके सभी एकांकी सफल रंगमंचीय हैं और साथ ही इनका साहित्यिक पक्ष भी सशक्त है। इनमें नाटककार की

---

१. सुजाता, पृ० १
२. वही, पृ० ४
३. वही, पृ० २७
४. वही, पृ० ३४

मार्मिक कल्पना और प्रखर प्रतिभा के विभिन्न रूपों में दर्शन होते है। ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियों में कुछ काल्पनिक पात्रों की परिकल्पना भी की गई है। इन्होने अपने पात्रों का विकास सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है और पात्र, दृश्य-योजना, घटनाओं का सुन्दर सामंजस्य हुआ है।

विषयवस्तु के दृष्टिकोण से पन्तजी के एकांकियों का निम्नलिखित वर्गों में विभाजन किया जा सकता है—

ऐतिहासिक एकांकी—विषकन्या, दो वर और एक अभिशाप, भस्मरेखा, अन्ध-विश्वास, काफिर की बद्दुआ। 'विषकन्या' में रूपवती अपराजिता महाराज चन्द्रविजय की हत्या का षड्यंत्र करती है।

पौराणिक एकांकी—एकाग्रता की परीक्षा, अवन्ती की कुबड़ी,एकाग्रता। 'एकाग्रता की परीक्षा' में गुरु द्रोणाचार्य द्वारा वन-प्रान्त में कौरव-पाण्डवों की धनुष-बाण-परीक्षा की घटना का चित्रण किया गया है। अर्जुन के चरित्र की एकाग्रता को स्पष्ट करना इसका उद्देश्य है। 'अवन्ती की कुबड़ी' में महाराज उदयन का अवन्ती में छल से पकड़ा जाना और अन्त में अवन्ती की राजकुमारी का विवाह दिखाया गया है।

सामाजिक एकांकी—परदातोड़क क्लब, अपराध मेरा ही, बड़े दिन का शिकार, जहरीला दांत, आधी रात का गायक, काला जादू, झखमारी, रुपया किसका, अतिथि-सत्कार, नागरिकता, सोने की छूत, बचत, डोरमैट, बदला, जानवर का शिकार, किचन गार्डन, बीमे की चोरी, मुसाफिरखाना, प्रेम-पत्र, रंगजाल, लौहपुरुष, जीवन का मूल्य, मन की चोट, महरी बनाम पत्नी, दीवार में छेद और साक्षात्कार।

पन्त जी ने सामाजिक एकांकियों में समाज की विकृतियों का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। 'अपराध मेरा ही' में प्रेम, घृणा, अभिमान, भय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। 'साक्षात्कार' में एक महात्मा द्वारा एक शिक्षित को ठगा जाना और फिर डॉक्टर द्वारा उसी महात्मा को वैसा ही प्रत्युत्तर देना चित्रित किया गया है। इसका अन्त अत्यधिक रोचक है। 'डोरमैट' में एक महिला अपने कमरे को साफ-सुथरा रखने के लिए अपने बच्चों को पड़ोसियों के घर में खेलने के लिए भेजती है ताकि पड़ोसी के बच्चे भी उसके घर न आएँ परन्तु एक बार उसका लड़का गुम हो जाता है, फिर वह महिला दरवाजे में डोरमैट रखकर बच्चों को स्वच्छता से रहने का अभ्यास कराती है। इसमें हृदय-परिवर्तन की घटना बहुत ही सफल एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से दिखाई गई है।

हास्य-व्यंग्यपूर्ण एकांकी—खूनी लोटा, १०४ डिग्री, सातरी फाटक, भूलभुलैया, फांसवर्ड वम्पर, गिरगिटवा, प्रतिभा का स्वयंवर, वह ताला, नया छाता, बुतपरस्ती, रोटी, कपड़ा और मकान, ऐश-ट्रे और मूर्तिपूजा।

'हर चीज की जगह' बालोपयोगी एकांकी है।

पन्तजी ने हास्यरस-प्रधान एकांकियों में भावात्मक-विस्मय तथा घटनात्मक-विस्मय का प्रयोग किया है। इन्होंने अपने एकांकियों में कहीं पर तो गम्भीर और कहीं पर हास्य व्यंग्य शैली में समाज की रूढ़ियों तथा जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं पर प्रहार किया है। 'खूनी लोटा' में एक सेठ के चरित्र की दुर्बलताओं का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। सेठ ऐसा वहमी है कि गेरू-मिश्रित जल को अपना खून समझ

बीमारी का स्वांग रचता है। '१०४ डिग्री' में माता का अपने बच्चे को १०४ डिग्री बुखार का वहम होता है जब कि थर्मामीटर का पारा पहले ही १०४ डिग्री पर रहता है। उसे बिना उतारे ही लगा दिया जाता है। इसमें हास्यात्मक परिस्थिति का सृजन किया गया है। 'पर्दातोड़क क्लब' में भी बड़ी कौतूहलपूर्ण हास्य-व्यंग्यमय स्थिति उत्पन्न की गई है।

पन्तजी ने नृत्य-नाटिकाएँ भी लिखी है। चूंकि ये नृत्य-नाटिकाएं भी एक ही अंक में अभिनीत की जा सकती हैं इसलिए इन्हें भी एकांकी के अन्तर्गत रखा जा सकता है। 'मोती की चोटी' और 'भगीरथ' इनकी सफल एवं लोकप्रिय नृत्य-नाटिकाएं हैं।

पन्तजी ने कठपुतली-एकांकी भी लिखे हैं। 'कायापलट' इनका प्रसिद्ध कठपुतली-एकांकी है।

ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियो में पन्तजी ने गीतों का भी प्रयोग किया है। आधुनिक जीवन से संबंधित एकांकियों में गीतों का प्रयोग नहीं है। कथानक सरल और सुलझे हुए है, जिसमें रोचकता की पूर्णतया रक्षा की गई है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में सजीवता एवं मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं जिनमे मानव की निगूढतम गुत्थियों का विश्लेषण मिलता है। उनमें चेतन तथा उपचेतन का संघर्ष उत्कृष्ट रूप से प्रकट होता है। इनकी शैली में ओज है, भाषा में प्रवाह है और अनुभवशीलता की छाप है।

सुमित्रानन्दन पन्त

'ज्योत्स्ना'

आधुनिक हिन्दी के नाट्यरूपकों में 'ज्योत्सना' का स्थान प्रमुख है। इसमें प्रकृति के शुभ्र वातावरण के बीच पंतजी ने अपने जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति की है। इस नाटक में भी वे नाटककार की अपेक्षा कवि-रूप में ही अधिक प्रकट हुए हैं। नाटक में कथावस्तु विशेष नहीं है। पहले अंक में हमें सन्ध्या तथा छाया के वार्तालाप से सूचना मिलती है कि राजा इन्दु पृथ्वी का शासन-भार अपनी पत्नी सम्राज्ञी ज्योत्स्ना को इस आशा से सौंपना चाहते हैं कि वह भूलोक में सुख और शांति का साम्राज्य स्थापित कर देगी। दूसरे अंक में राजा तथा रानी अपने राजसी वैभव के साथ उपस्थित होते हैं और सम्राट इन्दु, सम्राज्ञी ज्योत्स्ना को भूलोक का शासन-कार्य देकर वहां स्वर्ग का-सा वातावरण उपस्थित करने का आदेश देते हैं। तीसरे अंक में ज्योत्स्ना पवन तथा सुरभि के साथ मर्त्यलोक में उतरती हैं। पंतजी की ज्योत्स्ना के इस उन्मुक्त वातावरण के निर्माण तथा उनके जीवन-दर्शन पर मैटरलिंक के 'द ब्लू बर्ड' का स्पष्ट प्रभाव है। यह इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। मैटरलिंक के उपर्युक्त नाटक में 'द ब्लू बर्ड' सच्ची शान्ति तथा आनंद का प्रतीक है, जिसकी खोज जीवन में अकथनीय आनन्द को प्रदान करने वाली है। 'ज्योत्स्ना' में भी नवीन समाज तथा जीवन के निर्माण का चित्रण है। आधुनिक भौतिकवादी तथा अर्थप्रधान सामाजिक ढांचे से असंतुष्ट होकर 'ज्योत्स्ना' स्वर्गलोक से पृथ्वी पर नवीन-समाज के निर्माण का लक्ष्य लेकर आती है। स्वप्न, कल्पना, पवन और सुरभि उसके कार्य सम्पादन में विशेष सहायक होते हैं। रात्रि के द्वितीय पहर में ज्योत्स्ना के उद्देश्य की पूर्ति के अनुकूल वातावरण तैयार होता है। स्वप्न, कल्पना और सुरभि, पवन की सहायता से मानव-मन में नवीन समाज का एक दृश्य खींच आते हैं।

"सुन्दर विश्वासों से बनता है सुन्दर जीवन" नामक गीत से नवीन जीवन की भव्य भावभूमि निर्मित की गई है। कामना में आदर्शवाद की स्थापना में मानसिक भावनाओं का मानवीकृत रूप रखा गया है। 'ज्योत्स्ना' में प्रकृति के अनेक अंगों द्वारा अपने आदर्श की सिद्धि करता है। परन्तु इसमें पंत की कोमल कल्पना का रंग अधिक गहराई के साथ व्याप्त हुआ है, कार्य-व्यापार में कौतूहल तथा आकस्मिकता का समावेश नहीं हो पाया है, वरन् इस के विपरीत घटनाओं के बाहुल्य के कारण नाटक की गति में शैथिल्य का समावेश हो गया है। अंतिम अंक में अनेक प्रकार के गीत हैं। कहीं पवनदेव का सन्-सन् संगीत है, कहीं छाया का अवसादपूर्ण गीत है। तारों का टिमटिमाता संगीत मन को कोमल स्वप्न के पंखों पर घुमाता है, उधर ओस का चटुल तरल तराना है। इन सभी गीतों में प्रतीकात्मकता का परिचय प्राप्त होता है। इन के द्वारा कवि ने अपने अन्तर की कोमल कल्पना, सुकुमार भावनाओं तथा कमनीय शब्दचित्र-निर्माण की प्रतिभा का परिचय दिया है। जुगनुओं के गीत द्वारा उनके कार्य-कलाप का कितना मनोहर दृश्य अंकित किया गया है —

जगमग - जगमग हम जग का मग,
ज्योतित प्रतिपग करते जगमग !
हम ज्योति - शलभ, हम कोमल प्रभु,
हम सहज सुलभ दीपों के नभ !
चंचल, चंचल, बुझ - बुझ, जल - जल,
शिशु - उर थल-पल, हरते छल-छल ।[1]

इस तरह दृश्यों के विधान में कवि को पूर्ण सफलता मिली है । संध्या-ज्योत्स्ना, छाया और सुरभि का दृश्य-विधान अत्यन्त आकर्षक हुआ है । सुरभि का मूर्तिमान रूप अत्यन्त कमनीय है । आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'यदि पृथक् पृथक् दृश्यों को लिया जाय, तो कवि की कल्पना का मनोहर स्वरूप दिखाई देगा, परंतु सबको एक साथ रखने पर आदर्शों की भूलभुलैयाँ में कल्पना का अतिरेक एक भ्रान्ति उपस्थित करता है, यह निर्विवाद है ।"[2]

पंतजी ने विश्वबंधुत्व के आदर्श से प्रेरित होकर 'ज्योत्स्ना' में जीवन और जगत् के नवनिर्माण का भी स्वरूप उपस्थित किया है, उसमें अन्तर्राष्ट्रीयता तथा मानवतावाद का भी विशेष हाथ है । कवि ने 'गुंजन' में भी इस प्रकार के प्रगतिशील विचारों की झांकी उपस्थित की है । उसी की पूर्णता हम 'ज्योत्स्ना' में पाते हैं । जगत् की विषमता, रूढि-प्रियता तथा जड़ता को वे समूल विनष्ट करना चाहते थे । इसीलिए नाटक के तृतीय अंक में ज्योत्स्ना का परिचय जगत् के इस वातावरण से सोद्देश्य कराया जाता है ।

अन्त में, समता तथा विश्वबंधुत्व की स्थापना करने के लिए अनेक कोमल और स्वस्थ भावनाएँ प्रकट होती हैं, जिनमें भक्ति, शक्ति, दया, सत्य साधना, निष्काम धर्म, स्नेह और करुणा मुख्य हैं । इन्हीं की सहायता से ज्योत्स्ना पृथ्वी पर आनन्द का साम्राज्य स्थापित करके स्वर्ग को लौट जाती है । उसका लौटना मैटरलिंक के 'द ब्लू बर्ड' के उस पक्षी की भांति है जो अंतिम दृश्य में पिंजड़े का फाटक खोल कर अपने कोमल पंखों को फैलाकर उड़ जाता है । यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि मैटरलिंक के नाटक में कल्पना की प्रधानता होते हुए भी अनेक भ्रान्त दृश्यों तथा कार्य-व्यापारों की उतनी सघनता और अस्तव्यस्तता नहीं है, जितनी 'ज्योत्स्ना' में । फलतः उसकी कला एक उत्कृष्ट कोटि के रूप में निखर उठी है । पंत की 'ज्योत्स्ना' में नवनिर्माण की जो कल्पना है, वह यूरोपियन अधिक और व्यावहारिक कम है । यदि ध्यानपूर्वक उस पर विचार किया जाय, तो उसमें पश्चिमी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ेगा । पश्चिम के समाजवाद तथा मानववाद की पृष्ठभूमि में ही ज्योत्स्ना का जीवन-दर्शन समाहित है । समाजवाद से ही वर्तमान सामाजिक विषमता और व्यवस्था को हटाकर ऐसी संस्कृति के निर्माण की कल्पना की गई है, जिसमें मानवप्रेम के नवीन प्रकाश में राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, जाति और वर्ण के भूत-प्रेत सदैव के लिए तिरोहित हो गए हैं । देश-जाति के बंधनों से मुक्त मनुष्य केवल मनुष्य ही है । निरंतर साहचर्य, परस्पर सद्भाव एवं सह-शिक्षा के कारण आधुनिक युवक-युवती का प्रेम देह की दुर्बलता पर न रह कर, हृदय का बल एवं मन का संयम बन गया है ।

---

१. ज्योत्स्ना पृ० ४५
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५५२

ज्योत्स्ना अपने आदर्श की प्राप्ति के लिए मानव-जाति को जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर अग्रसर करने की चेष्टा में संलग्न है। इसके लिए वह मनुष्य को एकांगी बुद्धिवाद से ऊपर उठाना चाहती है। इसके लिए वह भेदभाव से रहित एक आदर्श समाज की स्थापना करने का प्रयत्न करती है। यहाँ पर यह कहना आवश्यक होगा कि इस आदर्श चरित्र के निर्माण में कवि की आशावादिता और भावुकता का प्रश्रय अधिक है। नाटकीयता की दृष्टि से कार्य-कौशिल्य अधिक तथा चरित्र-निर्माण में सजीवता की कमी है। फलत: रंगमंच की दृष्टि से यह एक सफल रचना नहीं कही जा सकती। अधिक से अधिक हम इसे कवि-कल्पना का एक दृश्य-रूप ही कह सकते हैं।

काव्य-रूपक

सुमित्रानन्दन पन्त के ११ काव्य रूपक तीन संग्रहों में प्रकाशित हैं। इन काव्य-रूपकों की सृष्टि लेखक ने रेडियो को ध्यान में रखकर की है और ये सभी रूपक आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं। इन रूपकों को गीतिनाट्य भी कहा जा सकता है क्योंकि इनकी कथा कविता और गीत के माध्यम से वर्णित की गई है। इसके साथ-साथ इनमें रेडियो नाटक की सभी विशेषताएं भी विद्यमान हैं। रेडियो नाटक मूल तत्त्वों की दृष्टि से साधारण नाटक के अनुरूप ही होता है श्रुति-आधार होने के कारण इसका आकार और प्रकार साधारण नाटक से भिन्न हो जाती है। इसकी शैली और शिल्प श्रव्य-कला की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए होती है। इसकी कथा इस रूप में प्रस्तुत की जाती है कि इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति ध्वनि, शब्द और संगीत द्वारा हो जाए। साधारण नाटक की भाँति इसमें प्रमुख और गौण पात्र होते हैं। इसके संवादों में स्वर का बहुत अधिक महत्त्व होता है। वातावरण ध्वनि-प्रभावों से निर्मित होता है और संगीत इस वातावरण की सृष्टि करता है। पन्तजी के काव्य-रूपकों की नाट्यकला भी ध्वनि-विस्तारण पर निर्भर है।

'रजत शिखर'

'रजत शिखर में' (१) रजत शिखर, (२) फूलों का देश, (३) उत्तर शती, (४) शुभ्र पुरुष, (५) विद्युत् वसना और (६) शरद चेतना रूपक संगृहीत हैं। पंतजी के ये सभी रूपक प्रतीकात्मक हैं।

'रजत शिखर' मनुष्य की अन्तश्चेतना का प्रतीक है और 'फूलों का देश' सांस्कृतिक चेतना का धरातल, 'उत्तर शती' स्वर्णयुग का समारम्भ, 'शुभ्र पुरुष' महात्मा गांधी के तपःपूत व्यक्तित्व, 'विद्युत् वसना' स्वाधीनता की चेतना और 'शरद चेतना'—प्रकृति-सौन्दर्य की कल्पना का प्रतीक है।

'रजत शिखर' के कवि का विश्वास है कि आज के समाज में सभी प्रकार का असंतुलन है और संतुलन के इसी अभाव में सम्पूर्ण जगत् में अशांति व्याप्त है। इस असंतुलन की समाप्ति अरविन्द विचारधारा ही कर सकती है। "फूलों का देश" रूपक में कवि ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि संसार में फैले हुए विभिन्न वादों—अध्यात्मवाद, भौतिकवाद, आदर्शवाद, वस्तुवाद में समन्वय कराने का काम केवल कलाकार या कवि का है।[1]

१. कवियों में सौम्य सन्त, पृ० १२८-२९

'उत्तर शती' काव्यरूपक में कवि बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नूतन युग के आरम्भ होने की भविष्यवाणी करता है।

टकराती हैं नव्य चेतना की हिल्लोलें,
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर।
हाहाकारों से, जयघोषों से समुच्छ्वसित,
विश्व क्रांति की ओर आरोहण करती॥[1]

'शुभ्र पुरुष' काव्यरूपक में महात्मा गांधी की प्रशस्ति की गई है। इसमें अरविन्द विचारधारा का प्रभाव नहीं दिखाई देता। 'विद्युत वसना' काव्य-रूपक में स्वाधीनता की चेतना को अरविंद दर्शन की ऊर्ध्वचेतना के साथ संयुक्त कर दिया है—

दुर्निवार कामना ! कौनसी महाशक्ति यह,
जन समुद्र को है ढकेलती युग तोरण से।
नव प्रभात के स्वप्न प्रज्वलित नव प्रदेश में,
जीवन का सौन्दर्य धरा का स्वर्णिम वैभव।
जहाँ हँस रह दिग् दिगन्त में जन जन हित।[2]

'शरद चेतना' काव्य-रूपक में कवि ने जीव का प्रकृति रूप में ब्रह्म से मिलने अथवा ऊर्ध्व चेतना से मिलने का प्रयास दिखाया है। 'रजत शिखर' काव्य-रूपक संग्रह में कवि ने श्री अरविन्द के विचारों को अभिव्यक्ति देने का स्तुत्य प्रयास किया है।

'शिल्पी'

इसमें 'ध्वंसशेष', 'शिल्पी' और 'अप्सरा' तीन काव्य-रूपक हैं। यह काव्य-रूपक भी प्रतीकात्मक है। 'शिल्पी' कलाकार का अन्तर्संघर्ष, 'ध्वंसशेष' नवजीवन निर्माण का स्वप्न और 'अप्सरा' सौन्दर्य-चेतना का प्रतीक है। "इन रूपकों में वर्तमान विश्व-संघर्ष को वाणी देने के साथ ही नवजीवन निर्माण की ओर इंगित करने का प्रयत्न किया गया है।" 'शिल्पी' रूपक के माध्यम से कवि व्यंग्य रूप में अपनी अभिनव कविता की ओर संकेत करता है। बाह्य और आभ्यंतर के समन्वय में ही जीवन का समग्र चित्र है। यहां पर भी पन्तजी का बाह्य और आभ्यंतर का संयोजन श्री अरविन्द के भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वयवादी विचार से प्रभावित है।

इन रूपकों में पन्तजी ने मुख्य पात्रों के अतिरिक्त राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, वैज्ञानिक और मनोविश्लेषक आदि की अवतारणा की है और राजनीति, दर्शन, विज्ञान और मनोविज्ञान ने विश्व को जिस रूप में प्रभावित किया है, उसका विश्लेषण करने का प्रयास किया है। एक स्थान पर बर्बर युग से आज तक का ऐतिहासिक विकास चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं कथानक का विकास संसार की स्थिति, जनता या किसी महान भावना के चारों ओर किया गया है। 'ध्वंसशेष' में विराट् पात्रों जैसे ईश्वर, प्रकृति, काल और सभ्यता की उद्भावना की गई है, अणु-विनाश जैसी भयंकर घटनाएं भी उन्होंने जुटाई हैं। प्राचीन मूर्तियों के माध्यम से कवि ने धर्म, अर्थनीति, विकासवाद आदि पर विस्तार से विचार प्रकट किये हैं। इस प्रकार इन रचनाओं में कवि के विचार का धरातल अत्यन्त विस्तृत रहा है। इन काव्य-रूपकों के अध्ययन से यह बात तो स्पष्ट हो जाती

१. रजतशिखर, पृ० ८१
२. वही, पृ० १३१

है कि इन दिनों पन्तजी की चेतना विश्व की वर्तमान विषम परिस्थितियों में उलझ रही थी और जीवन की व्यापक समस्याओं का वास्तविक समाधान खोजने में व्यस्त थी। समाधान मिला या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

'ध्वसशेष' के उपरान्त इनका दूसरा महत्त्वपूर्ण काव्य-रूपक है 'शिल्पी'। इसमें नित्य बदलती हुई वास्तविकता के भीतर से मानवात्मा के सत्य को मूर्तित करने के लिए कवि आकुल पाया जाता है। इनका शिल्पी एक मूर्ति बनाता है, फिर तोड़ता है, पर उसे संतोष नहीं मिलता। वह कहता है—

> **युग की आत्मा को, युग जीवन के प्रतीक को**
> **मुझे प्रतिष्ठित करना होगा मानव मन की**
> **युग निर्मम पाषाण-शिला पर कला स्पर्श से,**
> **तभी सफल होगा मेरा यह स्वप्न शिल्प का।[1]**

और एक दिन आता है कि उसकी साधना सफल होती है।

'सौवर्ण'

पन्तजी का तीसरा काव्य-रूपक 'सौवर्ण' है। इसमें उन्होंने मानव-मूल्यों पर गंभीरता से विचार किया है। इसके लिए उन्होंने अनादि-काल से लेकर वर्तमान संक्रांति काल तक की विश्व-सभ्यता का विवेचन किया है और इस दिशा में पूर्व और पश्चिम दोनों की उपलब्धियों और सीमाओं की चर्चा की है।

लेखक का मत है कि भारतीय दर्शन निषेधों का प्रतीक है। इसलिए वे भारत-वासियों के अविकसित जीवन के लिए मध्य-युग के जीवन-दर्शन को दोषी ठहराते हुए, आधुनिक वैज्ञानिक युग की अनेक विषमताओं की ओर प्रेरित करते हैं। राजनीतिक दृष्टि से विविध शिविरों में विभाजित विश्व की स्थिति भी उनसे छिपी नहीं है। इन सबके समाधान के लिए एक क्रांतिदृष्टा कवि को माध्यम बना कर कवि ने अपने जीवन-दर्शन का परिचय दिया है और एक नये व्यक्ति की कल्पना की है जो भविष्य में लोक-जीवन का सच्चा प्रतिनिधि होगा। इसी लोक-पुरुष को उन्होंने 'सौवर्ण' की संज्ञा से अभिहित किया है। इस प्रकार 'सौवर्ण' मानव-मूल्यों के उद्धार की कहानी है।

---

१. शिल्पी, पृ० १६

खण्ड ४

कूर्माचल के निबंधकार और आलोचक

हेमचन्द्र जोशी

डॉ० हेमचन्द्र जोशी हिन्दी जगत् के लब्धप्रतिष्ठित एवं उच्चकोटि के विद्वान्, लेखक, भाषाविद्, कोशकार एवं पत्रकार हैं। कूर्मांचल में राष्ट्रीय आन्दोलन के सूत्रपात-कर्ताओं में भी ये अग्रणी रहे हैं। यद्यपि जोशी जी इतिहास तथा वाणिज्य के विद्यार्थी रहे हैं परन्तु हिन्दी साहित्य को ही इनका योगदान उन विषयों की अपेक्षा अधिक रहा है। सन् १९२५ में जोशी जी जब जर्मनी में थे तब भाषाशास्त्र की ओर झुके। इसके बाद उन्होंने पेरिस, आस्ट्रिया, आदि स्थानों में ध्वनिशास्त्र तथा भाषाशास्त्र का अध्ययन किया और सात वर्ष तक रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया। डॉ० जोशी देशी-विदेशी पचास भाषाओं के ज्ञाता हैं।

सम्पादन-कार्य के प्रति जोशीजी की रुचि विद्यार्थी जीवन से ही रही है। जब जोशी जी अलमोड़ा में हाई स्कूल के छात्र थे उस समय उन्होंने एक हस्तलिखित पत्रिका 'अरुणोदय' नाम से निकाली। इस पत्रिका में सुमित्रानन्दन पंत, इलाचन्द्र जोशी तथा गोविन्दवल्लभ पंत की रचनाएँ होती थीं। बर्लिन विश्वविद्यालय से एम० एम० की उपाधि लेने के बाद जोशी जी ने पेरिस विश्वविद्यालय से 'ऋग्वेद में वर्णित आर्थिक एवं राजनीतिक विचारधारा' पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद इन्होंने सन् १९३५ में कलकत्ता से 'विश्ववाणी' नामक पत्रिका निकाली। सन् १९४९ में 'धर्मयुग' के भी सम्पादक रहे।

डॉ० जोशी के भाषाशास्त्र पर कई लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी का भाषा-विज्ञान, आदि-आर्य देवनागरी वर्णमाला, आदि-आर्यभाषा तथा व्युत्पत्ति-कोश इनकी मौलिक कृतियाँ हैं। रिचर्ड पिशेल कृत जर्मन भाषा में प्राकृत भाषाओं का व्याकरण का हिन्दी अनुवाद 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' और मैक्समूलर के 'लेक्चर्स ऑन द लैंग्वेज' का हिन्दी अनुवाद 'भाषाविज्ञान पर भाषण' डॉ० जोशी की अनूदित कृतियाँ हैं। स्वाधीनता के सिद्धान्त, भारत का इतिहास, विक्रम, यूरोप—जैसा मैंने देखा इनकी अन्य कृतियाँ हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त

'गद्यपथ'

यह सुमित्रानन्दन पन्त के निबन्धों का संग्रह है। प्रथम खंड में पन्तजी के काव्य-ग्रन्थों की प्रस्तावनाएँ और दूसरे खंड में आकाशवाणी से अधिकतर प्रसारित उनकी वार्ताएँ संकलित हैं।

निस्सन्देह, काव्य के मर्म के पारखी पण्डितजन ही होते हैं किन्तु मर्म की पकड़ के लिए उन्हें जिन विविध प्रकार के साधनों का सहारा लेना पड़ता है उनमें रचनाकार का आत्म निवेदन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। प्रत्येक साहित्यकार एक विशेष प्रकार की परिस्थितियों में पला होता है और एक विशेष व्यक्तित्व को लेकर साहित्य के रंगमंच पर आता है। उसके इस विशेषत्व को समझने के लिए आलोचकों को सदैव ही इस बात की आवश्यकता अनुभव होती रही है कि रचनाकार ने अपने विषय में क्या कहा है। वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी, शेक्सपियर, गेटे आदि सभी महान् साहित्यकारों के निजी वक्तव्यों को उनके अध्ययन के लिए अनिवार्य माना जाता रहा है। प्राचीन कवियों में प्रत्यक्ष आत्मनिवेदन की प्रथा नहीं थी किन्तु आधुनिक कवियों को प्रस्तावनाओं अथवा भूमिकाओं के रूप में अपनी ओर से स्पष्टीकरण देने की पूरी सुविधा प्राप्त है और यह साहित्य पठन-पाठन में उपयोगी ही सिद्ध हुई है।

पहला निबन्ध 'प्रवेश' 'पल्लव' की भूमिका है। सन् १९२६ में प्रकाशित इस निबन्ध में तत्कालीन साहित्य-परिस्थितियों का सुन्दर विवेचन हुआ है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली की स्पर्धा का उल्लेख करते हुए पन्तजी एक स्थान पर कहते हैं—"हमें भाषा नहीं, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है, पुस्तकों की नहीं, मनुष्यों की भाषा, जिसमें हम हँसते-रोते, खेलते-कूदते, सांस लेते और रहते हैं। × × × हम ब्रज की इस जीर्ण-शीर्ण, छिद्रों से भरी, पुरानी छींट की चोली को नहीं चाहते, इसकी संकीर्ण कारा में बन्दी होकर हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है।"[१] इस दृष्टि से इस निबन्ध का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। किन्तु इससे अधिक यह निबन्ध अलंकारों तथा छंदों के विशद-विवेचन के लिए स्थायी मूल्य का है।

'पर्यालोचन' निबन्ध 'आधुनिक कवि' (भाग दो) की भूमिका के रूप में लिखा गया है। 'प्रवेश' में जहाँ कवि ने काव्य के बहिरंग पर विचार किया था, 'पर्यालोचन' में काव्य के अंतरंग पर विचार किया गया है। पन्तजी को जिन जिन स्रोतों से काव्य प्रेरणा मिली है, जिन-जिन दर्शनों ने उनकी विचारधारा को प्रभावित किया है, उनकी यथातथ्य जानकारी प्राप्त करने के लिए यह निबन्ध बहुत उपयोगी है। हम देखते हैं कि पन्तजी ने प्रकृति के लालित्यपूर्ण चित्रण से कविता आरम्भ की। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रकृति के विभिन्न दृश्यों का चित्रण हुआ है। प्रकृति को उन्होंने सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है। यदि द्रुमों की मृदु छाया को छोड़ और प्रकृति की माया को तोड़ कवि के लोचन बाला के बाल-जाल में उलझने को तैयार नहीं थे तो उसका कारण यह था कि कवि के बाल-मानस पर ही प्रकृति के मनोहारी दृश्य हार गए थे। प्रकृति के उग्र रूप की ओर (परिवर्तन आदि कविताओं में) उनकी दृष्टि तब गई जब वे स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के दर्शनों से प्रभावित होकर इस चराचर जगत् को यथातथ्य रूप में देखने लगे। मार्क्स के दर्शन से प्रभावित होकर उन्होंने हिन्दी साहित्य की धारा को प्रगति वाद की ओर मोड़ दिया। भारत के ग्रामों को मानव-लोक न कहकर अपरिचित नरक कहने का कारण जताते हुए वे लिखते हैं, "मैंने ग्राम जनता को रक्त-माँसमय जीवों के रूप

१. गद्यपथ, पृ० ११

में नहीं देखा है, एक मरणोन्मुखी संस्कृति के अवयव स्वरूप देखा है और ग्रामों को सामन्त युग के खण्डहर के रूप में।"[१]

मार्क्स के अतिरिक्त फ्रायड आदि अन्य पाश्चात्य-दर्शनों का अध्ययन करने के बाद कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मध्ययुगीन सामन्तकालीन संस्कृति से चिपके रहकर भारत उन्नति नहीं कर सकता। नारी को प्रतिष्ठित मानवी न मानकर योनि मात्र मानने वाली मध्ययुगीन संस्कृति के विषय में कवि आक्रोशपूर्ण शब्दों में कहता है—"सच तो यह है कि हमें अपने देश के युग-व्यापी अन्धकार में फैले इस मध्यकालीन संस्कृति के तथाकथित उर्ध्वमूल अश्वत्थ को जड़ और शाखा सहित उखाड़कर फेंक देना होगा।"[२]

भारत के अध्यात्म दर्शन और मार्क्स के भौतिक दर्शन से प्रभावित होकर भी पन्त जी को दृश्य-जगत् से विराग और मार्क्स की रक्त-क्रान्ति दोनों ही सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े हैं।

'उत्तरा' की भूमिका के रूप में लिखे गए 'प्रस्तावना' निबन्ध में पन्तजी ने उन भ्रांतियों का निराकरण किया है जो 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' को लेकर कुछ आलोचकों द्वारा फैलाई गई थीं। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के बाद पन्तजी का काव्य अरविन्द-दर्शन की ओर विशेष रूप से झुका तो प्रगतिवादी आलोचकों ने उन्हें प्रतिगामी कहना शुरू किया। पन्तजी इन आलोचकों को उत्तर देते हुए लिखते हैं—"हम पश्चिम की विचारधारा से इतने अधिक प्रभावित हैं कि अपनी ओर मुड़कर अपने देश का प्रशान्त गम्भीर प्रसन्न-मुख देखना ही नहीं चाहते। हम इन सदियों के खडहर का बाहरी कामनीय रूप देखकर क्षुब्ध एवं विरक्त हो जाते हैं और दूसरों का बाहर से सँवारा हुआ मुख देख कर उनका अनुसरण करने लगते हैं।"[३]

भारतीय संस्कृति की ओर उनकी काव्य-दिशा को मोड़ने में अरविन्द-दर्शन के साथ गांधी-दर्शन का भी हाथ रहा है। एक स्थल पर पन्तजी लिखते हैं कि "सत्य और अहिंसा को मैं अंतः संगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता हूँ।"[४]

अन्य निबन्धों में 'मेरा रचनाकाल,' 'मैं और मेरी कला,' 'आज की कविता और मैं' पन्तजी के काव्य को समझने के लिए बहुत उपयोगी हैं। 'यदि मैं कामायनी लिखता' शीर्षक निबन्ध में 'कामायनी' की कई दृष्टियों से आलोचना की गई है। कथ्य और शैली की अनेक त्रुटियों को दिखाने के बावजूद पन्तजी ने 'कामायनी' की महानता को निश्छल रूप से स्वीकार किया है। वे लिखते हैं—"कामायनी हिमालय-सी दुर्लंघ्य न हो पर श्रद्धा और मनु की समरस तन्मयता की पावन समाधि ताजमहल-सी आश्चर्यजनक अवश्य है।"[५] "छायावाद केवल सम्मोहन ही बनकर रह जाता यदि प्रसादजी उसमें 'कामायनी' जैसी महान् काव्य-सृष्टि की अवतारणा न कर जाते।"[६]

ये उद्‌गार न केवल 'कामायनी' के महत्त्व में अभिवृद्धि करते हैं अपितु पन्तजी की विशाल-हृदयता को भी प्रकट करते हैं।

---

१. गद्यपथ, पृ० ७१
२. वही, पृ० ६८
३. वही, पृ० ६५-६६
४. वही, पृ० ६७
५. वही, पृ० १५५
६. वही, पृ० १५६

इलाचन्द्र जोशी

इलाचन्द्र जोशी ने अपने चिन्तन, उपन्यास-कला, चरित्र-चित्रण तथा मनोवैज्ञानिक शैली के सम्बन्ध में अपने विचारों का विश्लेषण तथा विवेचन 'विवेचना, 'विश्लेषण,' 'साहित्य-चिन्तन,' साहित्य-सर्जना' और 'देखा-परखा' में किया है। ये निबन्ध उनकी साहित्यिक मनोवैज्ञानिक मान्यताओं, 'जीवन तथा जगत् के प्रति उनके दृष्टिकोण को विस्तार के साथ अभिव्यक्त करते है, जिनमें आधुनिक युग-चेतना, पूँजीवादी संस्कृति, मनोवैज्ञानिक ज्ञान की सीमाओं, व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन, यथार्थवादी शैली, नारी-स्वतत्रता, नायक के स्वरूप, मार्क्सवाद तथा मनोविश्लेषणवाद की विचारधारा, भावी उपन्यास के उद्देश्य, सुधारवादी तथा आदर्शवादी उपन्यासकार के अभाव पर प्रकाश डाला गया है।

जोशीजी की धारणा है कि आधुनिक पूँजीवादी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता व्यक्ति का अहंभाव है, उन्नीसवीं तथा बीसवीं शती के पाश्चात्य लेखकों ने भी व्यक्ति की आत्म-चेतना और अहंभाव के दर्शन की रचना कर डाली थी और वे व्यक्ति के अहं के चित्रण को कला का महान् उद्देश्य मानने लगे थे, व्यक्ति की आत्म-चेतना के आगे समष्टि-चेतना का तनिक भी महत्त्व नहीं था। व्यक्ति के अहं को सारे विश्व का केन्द्र स्वीकार किया जाने लगा था, यह एकान्तिक दृष्टिकोण जोशी के मतानुसार सामन्ती युग की विरासत थी, जिसे पूँजीवादी युग में अधिक पुष्ट कर लिया था। यह संस्कार आज भी बुद्धि-जीवी मध्यवर्गीय समाज के मस्तिष्क पर छाया हुआ है। यह अहंवादी संस्कार सहज में उखड़ने वाली वस्तु नहीं है। जनवादी दृष्टिकोण अपनाने में यह संस्कार सबसे बड़ी बाधा है। पूंजीवादी युग की दूसरी विशेषता उसका आदर्शवादी तथा सुधारवादी दृष्टिकोण है। इसका जोशीजी ने अपने उपन्यासों में विरोध किया है। प्रेमचन्द का सुधारवाद तथा शरतचन्द्र का आदर्शवाद जीवन की समस्याओं का समाधान करने में असफल रहा है। चरित्रहीनों के प्रति सहानुभूति जगाने की चेष्टा भारत में शरतचन्द्रकालीन उपन्यासकारों की विशेषता रही है। शरतचन्द्र का एकमात्र उद्देश्य अकर्मण्य, आलसी, आत्म-केन्द्रित और चरित्रहीन नायकों के अधःपतन को गौरवान्वित करना रहा है। आधुनिकतम कलाकार यदि अपनी कथाओं में चरित्रहीन और रोमांसवादी पात्रों की अवतारणा करता है, तो केवल इसीलिए कि वह अपने मनोवैज्ञानिक अस्त्र से उनकी आत्मा को छूकर उनके घोर अहंभाव-पूर्ण, कवित्वमय प्रेम को प्रकाश में लाना चाहता है। परन्तु शरतचन्द्र के उपन्यासों में भग्न-प्रेम की मोहमयी खुमार अहंभाव को पुष्ट करने वाले आदर्शवादी जीवन-दर्शन की परिचायक है। वह सुलानेवाली लोरी है, जगाने वाला शंखनाद नहीं है।"[1] यह आधुनिक पूंजीवादी संस्कृति का परिणाम है। मरणोन्मुख तथा हताश समाज में असामाजिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। जोशीजी की दृष्टि में इससे उपन्यास के विषय का ह्रास हुआ है, उसकी कला का निखार हुआ है तथा भावनाओं में संकोच आया है। हिन्दी में शरत् साहित्य के प्रचार तथा प्रभाव ने, उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण ने इस सिद्धान्त का प्रचलन कर दिया है कि पापी से प्रेम करना चाहिए तथा पाप

१. विवेचना, पृ० ८६-६०

से घृणा। इसका कारण यह है कि दलितों और पतितों के प्रति सहानुभूति रखना मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है जो युगचेतना के अनुकूल है और जड़ नीतिवादी दृष्टिकोण के प्रतिकूल है, परन्तु व्यक्ति उच्च आदर्शों को तथा अपनी विकृत अहंवादी आकांक्षाओं को चरितार्थ करने के लिए भी अधीर हो उठता है। वह अपने ही अहं की तृप्ति करता हुआ स्वयं को झुठलाने की भी क्षमता रखता है।[1] जोशीजी का विश्वास है कि युग के दृष्टिकोण ने शरत् को भरमा दिया था और वे युग के आदर्श के ऊपर उठ नहीं पाए। उन्होंने नारी के सम्बन्ध में जो आदर्श परम्परा से प्राप्त किया था, उससे आगे बढ़ने का उनमें या तो साहस नहीं था या उस आदर्श से अधिक उन्नत और परिष्कृत रूप की कल्पना कर सकने की उनमें क्षमता नहीं था।[2] उन्होंने नारियों को ऐसी परिस्थितियों में डाला है कि उन सबको अहंवादी, आवारा, उच्छृंखल तथा रोमांटिक पुरुषों की दासता करने को बाध्य होना पड़ा है। पार्वती, सावित्री आदि नारियों के चरित्र इस धारणा को पुष्ट करते हैं। शरत् ने अपने आत्म-परायण तथा मनोविकारग्रस्त पात्रों को आदर्श रूप दिया है और उनके प्रति अपना आन्तरिक पक्षपात बताया है।[3] इस दृष्टिकोण को जोशीजी समाजघातक समझते हैं, अन्य लेखक दलितों तथा पतितों को सहानुभूति की आँख से देखते आए हैं, परन्तु उन्होंने यह सिद्ध नहीं किया है कि चूंकि पात्र समाज का विरोध न कर सके, इसलिए वे सामाजिक व्यक्ति हैं। जोशीजी यह चाहते हैं कि पात्र अपनी संकीर्ण भावनाओं, मानसिक विकृतियों तथा सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध करें, परम्परागत अंध-संस्कारों से उत्पन्न मकड़ी के जालों को साफ करें ताकि व्यक्ति समाज को अधिक आन्तरिकता से स्वीकार कर सकें। आदर्शवाद प्रगति के पथ पर बाधा बनकर आता है।[4]

इस तरह जोशीजी पूँजीवादी संस्कृति की मान्यताओं का विरोध करते हुए निजी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हैं। वह समझते हैं कि उनके सभी उपन्यासों का उद्देश्य व्यक्ति के अहंभाव की एकान्तिकता पर निर्भय प्रहार करना रहा है। 'लज्जा,' 'संन्यासी,' 'पर्दे की रानी,' 'प्रेत और छाया,' 'निर्वासित' आदि उपन्यासों में उन्होंने इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। आधुनिक समाज में अहंभाव बौद्धिक विकास के कारण भयंकर रूप धारण करता जा रहा है। उनका कथन है कि व्यक्ति को अहंभाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में स्वाभाविक असफलता मिलती है। वह अपने विनाश के साथ संसार का विनाश भी चाहने लगता है। नारी को इस विनाशात्मक क्रिया का सबसे पहला शिकार बनना पड़ता है। आज का पुरुष बुद्धिवादी होने के कारण अपनी इस मनोवृत्ति से भी परिचित रहता है। इसलिए उसके भीतर विस्फोटक संघर्ष मचते रहते हैं।[5] इसके चित्रण को वे मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की संज्ञा देते हैं। उनका विश्वास है कि भारतीय नारी बुद्धिवादिनी होने के कारण विद्रोह की सामूहिक घोषणा करेगी। वह वास्तविकता को समझकर व्यक्ति और समाज के अत्याचारों का सामना पूरी शक्ति से करने के योग्य अपने को बना रही है। वर्तमान युग में अहंवाद और बुद्धिवाद का संघर्ष व्यक्तियों में भीषण रूप में चल रहा है। यह ठीक है कि व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन का

१. विवेचना, पृ० १००
२. वही, पृ०-१०२
३. वही, पृ० १०७
४ वही, पृ० १०६
५. वही, पृ० १२१

जितना गहरा प्रभाव पुरुष पर पड़ा है उतना उसने नारी के दृष्टिकोण को प्रभावित नहीं किया है। इसलिए जोशीजी भी नारी का पक्ष लेकर अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। वह आशा करते है कि भावी नारी पुरुषों के अहं का शिकार नहीं बनेगी। इसलिए वे शरत् के नारी पात्रों की संस्कारयुक्त तथा परम्परागत दासता को व्यक्तिगत तथा सामाजिक दृष्टिकोण से स्वस्थ नहीं समझते है। उनके त्याग को सामन्ती संस्कृति का अवशेष मानते हैं। त्याग, तपस्या आदि पर बल देना परम्परावाद है।[1]

जोशीजी की धारणा है कि बाहरी जीवन की अपेक्षा भीतरी जीवन का सत्य ही वास्तविक है। मनोविश्लेषण स्वयं में कोई वाद नहीं है। वह एक शैली है, जिसके आधार पर जीवन के मूल तत्वों की खोज और छानबीन अधिक सम्भव है। जोशीजी ने आधुनिक मनोविज्ञान के नये सिद्धान्तों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखा है—"फ्रायड, युंग और एडलर ने मनोविज्ञान से सम्बन्धित कुछ ऐसे नये सिद्धान्तों की खोज की जिसने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्रचंड क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर दी।"[2] फ्रायड के सम्बन्ध में उनका कथन है —"उसने मनोवैज्ञानिक आधार पर अवचेतन मन सम्बन्धी सिद्धान्त की स्थापना की और वैज्ञानिक पद्धति से ही उसका विश्लेषण और विवेचन किया। इस कोरे वैज्ञानिक युग में उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या अत्यन्त लोकप्रिय हो उठी। उसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि उसने यौन-प्रवृत्ति को मानव-मन तथा मानव-जीवन की मूल परिचालिका शक्ति माना है। उसका कहना है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य यौन-प्रवृत्ति के खुले प्रदर्शन को सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय, अतएव नैतिक दृष्टि से घृणित समझने लगा और वह उस विशेष प्रवृत्ति से सम्बन्धित मनोवेगों को भरसक अपने मन के भीतर दबाते रहने का प्रयत्न करता चला आता है। वे दमित मनोवेग एकदम लुप्त नहीं हो जाते, वे उनके सचेत मन के नीचे मन के अवचेतन भाग में एकत्रित होते रहते हैं। उसके दमित मनोवेगों में कभी-कभी भूकम्प आ जाता है या मंथन होने लगता है। सचेत तथा अवचेतन मन के बीच द्वन्द्व मचता है जिसके फलस्वरूप विविध मानसिक उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं। फ्रायड के अनुसार हमारे स्वभाव की जितनी भी विकृतियाँ है, उनका मूल कारण दमित यौन-प्रवृत्ति है।[3] जोशी फ्रायड के मत का महत्त्व तो स्वीकार करते है, परन्तु "वे इससे पूरी तरह सहमत नहीं हैं। उनके विचारानुसार युंग का मत सत्य के अधिक निकट है और वह भारतीय आध्यात्मिक मनोविज्ञान के लिए कोई नया सिद्धान्त नहीं है।"[4] युंग का कहना है कि मानव के अवचेतन मन का महत्त्वपूर्ण निर्माण सामूहिक और सामाजिक कारणों से समष्टिगत रूप से हुआ, व्यक्तिगत रूप से नहीं। आदिकाल से सभ्यता के विकास के साथ मानवीय चेतना में जो प्रवृत्तियां उभरती चली गई, उनमें परिवर्तन होते चले गए। पुरानी मूल प्रवृत्तियों का विनाश नहीं हुआ, वे सामूहिक मानव के अवचेतन मन में दब गई और संस्कार रूप से अवशिष्ट रह गई। युंग के मत की व्याख्या करते हुए जोशीजी कहते हैं कि साधारण अवस्था में सचेत मन को पुरानी प्रवृत्तियों का पता नहीं चलता, पर असाधारण अवस्था में वे पूरे वेग से उभरती हैं और सचेत मन में भारी हलचल मचा देती है। युंग के सिद्धान्त को वे फ्रायड के सिद्धान्त से आगे बढ़ा हुआ मानते हैं, परन्तु उनकी धारणा निजी अनुभवों के आधार पर इससे

१. विश्लेषण, पृ० १७१
२. वही, पृ० १०६
३. वही, पृ० १०७
४ वही, पृ० १०८

भिन्न है। मानवीय मन का विभाजन केवल दो या तीन खण्डों में नहीं किया जा सकता। मानव का मनोलोक असंख्य स्तरों में विभक्त है। जिन मनोवेगों का दमन किया जाता है, वे मनोलोक के अनेक स्तरों में जाकर घुल-मिल जाते हैं। असाधारण अवस्था में अनेक स्तर एक-दूसरे से टकराते हैं और सचेत मन पर हमला करते हैं। इस तरह अन्तस्तल में भूकम्प की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके ज्ञान का यह फल होता है कि मन में विकार नहीं उत्पन्न होता है। साहित्य में मनोविश्लेषण का यही महत्त्व है।[1] जोशीजी मनोविश्लेषण को एक अस्त्र के रूप में अपनाते हैं, जिसके द्वारा आत्मकामी अथवा असामाजिक प्रवृत्तियों की चीर-फाड़ कर व्यक्ति को मानसिक उलझनों से मुक्त करने का प्रयास करते हैं। उनका विचार है कि अन्तर्जीवन का प्रभाव बाह्य जीवन से अधिक गहरे तथा व्यापक रूप में पड़ता है। इसलिए भीतरी जीवन बाहरी जीवन की मूल शक्ति है। मानवीय व्यक्तित्व का पूर्ण विकास तभी सम्भव है जब बाहरी तथा भीतरी जीवन में समन्वय स्थापित हो सके। वह मन की एक स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते हुए, अन्तर्जीवन के विश्लेषण को पूरा महत्त्व देते हुए दोनों में सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं। फ्रायड की विचारधारा को जोशीजी इसलिए भी स्वीकार नहीं करते कि उसका लक्ष्य जीवन की ओर नहीं, मरण की ओर है; रचना की ओर नहीं, ध्वंस की ओर है। फ्रायडवादी होना एक बात है, उसके मनोवैज्ञानिक अस्त्र का प्रयोग करना दूसरी बात है। मनोविश्लेषणात्मक शैली समाज तथा व्यक्ति की परत में जमे हुए पूँजीवादी संस्कारों को जड़ से उखाड़ सकती है। यही मनोविश्लेषणवाद अथवा अन्तश्चेतनावाद की साहित्यिक उपयोगिता है। मनोविश्लेषण-शैली को दो भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनाया गया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का एक दल व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को अपनाकर व्यक्ति के अहं को इतना महत्त्व देता है कि उसके अहंभाव के पथ पर पड़ने वाली बाधाओं के विश्लेषण को ही साहित्य का अथ और इति मानता है। दूसरे दल का उद्देश्य सर्वथा उसके विपरीत है। उसका लक्ष्य अवचेतन के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा व्यक्ति के समाजघाती अहंभाव को ध्वस्त करने का होता है। यह अहंभाव व्यक्ति के सामूहिक जनता के साथ एक-रूप होने के पथ पर सबसे बड़ी बाधा है। अहंवादी संस्कार आज मध्यवर्गीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता है। उसका निराकरण जोशीजी की दृष्टि में साहित्य का महान् उद्देश्य है।[2] वास्तव में जोशीजी अपने गम्भीर चिन्तन तथा गहन अनुभूति के आधार पर व्यक्ति और समाज की समस्याओं का विश्लेषण तथा समाधान करना चाहते हैं। इसलिए उनका दृष्टिकोण मार्क्सवाद और मनोविश्लेषणवाद के समन्वय की ओर उन्मुख है। मार्क्सवाद बाहरी जीवन का विश्लेषण करता है तथा मनोविश्लेषणवाद भीतरी जीवन की चीर-फाड़ में व्यस्त है। उनका दृढ़ विश्वास है कि ये एक-दूसरे के पूरक हैं और इनके समन्वय से ही व्यक्ति तथा समाज का वास्तविक विकास हो सकता है।

जोशीजी के उपन्यासों में नायकों का स्वरूप उनके चिन्तन तथा दृष्टिकोण के अनुकूल है। उनके अधिकांश कथानायक दुर्बल स्वभाववाले हैं। वे समझते हैं कि उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यही है। इसके अनेक कारण हैं, उनमें एक कारण यह भी है कि आधुनिक युग की परिस्थितियाँ मानव को दुर्बल-स्वभाव तथा अस्तित्वहीन बना

१. विश्लेषण, पृ० १०६
२. साहित्य-चिन्तन, पृ० ५७

देती हैं। मध्यवर्गीय संस्कृति अपने ह्रासोन्मुख काल में अतिशय अन्तर्मुखी और वैयक्तिक हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप मानवीय व्यक्तित्व का स्वरूप सारहीन तथा कुण्ठाग्रस्त हो जाता है। उसके जीवन की व्यर्थता का करुण चित्र साहित्य मे अंकित होने लगता है। इसका दूसरा कारण यह है कि यथार्थवादी कलाकार दुर्बल नायकों की रचना कर सकता है। आधुनिक युग में केवल आदर्शवादी उपन्यासकार सबल चरित्रों अथवा नायको का निर्माण कर सकता है। प्रेमचन्द, जो सुधारवादी तथा आदर्शवादी कलाकार थे, सूरदास, चक्रधर, अमरकान्त, प्रेमशंकर आदि दृढ़-चरित्रों तथा सबल नायकों की रचना कर सके। जोशीजी की धारणा है कि उन्नीसवीं शती से लेकर आज तक के सभी श्रेष्ठतम यथार्थवादी उपन्यासों के नायक घोर दुर्बल-प्राण और निःसत्व रहे है। 'मादाम बावेरी' का नायक, बालजाक के उपन्यासों के नायक, रवीन्द्र के 'घर-बाहर' तथा 'कुमुदिनी' के नायक, शरत् के 'देवदास', 'चरित्रहीन', 'श्रीकान्त', 'गृहदाह', 'पथ के दावेदार' आदि अनेक उपन्यासों के नायक सभी दुर्बल-स्वभाव और अस्तित्वहीन हैं।[1] वास्तव में उनका अस्तित्वहीन होना युग-चेतना के अनुकूल है। आधुनिक गलनशील संस्कृति महाकाव्य के नायक को जन्म नही दे सकती, जिसमें दृढ़ निश्चय हो, अपार साहस हो, असीम आदर्शवाद हो और समाज को बदलने की शक्ति हो। आज मानव स्वयं को ऐसी परिस्थिति में जकड़ा हुआ पाता है जो उसे आत्मकेन्द्रित तथा आत्मरत बना देती है, जिसके कारण उसका सम्बन्ध समाज तथा बाहरी जीवन से कट जाता है या शिथिल पड़ जाता है।

इसलिए जोशीजी ने जान-बूझकर दुर्बल नायकों को चुना है। उनका विचार है कि सबल तथा सुधारवादी नायक वास्तविक जीवन में नही पाये जाते।[2] यद्यपि उनमें नायक को उज्ज्वल चरित्र और महान् रूप में चित्रित कर सकने की क्षमता है, फिर भी उन्होंने दृढ़-चरित्र तथा सबल नायकों की अवतारणा इसलिए नहीं की कि वे वास्तविक जीवन से बहुत दूर हैं, उनका अस्तित्व केवल काल्पनिक ससार में सम्भव है। मनो-विश्लेषण के ज्ञान ने भी मानवीय व्यक्तित्व के स्वरूप को बदल दिया है। प्रेमचन्द-परम्परा के उपन्यासकार, जो सुधारवादी तथा आदर्शवादी थे, अन्तर्मन के उन निगूढ़तम रहस्यों से अपरिचित थे जो अज्ञात रूप से सचेत मन को परिचालित करते रहते हैं। उस युग में सबल नायकों को उपन्यास की भूमि पर उतारा जा सकता था।[3] जोशीजी उस युग की मध्यवर्गीय सामाजिक परिस्थिति को भूल जाते हैं, जिसके कारण आदर्शवादी नायकों की सृष्टि की जाती थी। उस समय मध्यम वर्ग विकासशील था, आगे बढ़ रहा था। उसका विश्वास था कि वह प्रगति के पथ पर चल रहा है। आज उसके लिए परिस्थिति बदल चुकी है। अब वह ह्रासशील है इसलिए उसका दृष्टिकोण यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख है। प्रेमचन्द के नायकों का स्वरूप भी सूरदास से होरी बना, आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुआ। आज का कलाकार जीवन के कठोर यथार्थ के प्रति अधिक जागरूक है, व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन से अधिक प्रभावित है। वह जिस मनोविज्ञान को अपनाता है, जिन जटिल मानसिक गाँठों से अभिज्ञ है, उनके कारण निराशाओं तथा असंगत परिस्थितियों से भली-भाँति परिचित रहता है, अन्तश्चेतना की गतिविधियों को

---

१. साहित्य-चिन्तन, पृ० ९२
२. वही, पृ० ९३
३. वही, पृ० ९४

कला का आधार बनाने के कारण व्यक्तित्व की परख करता है, व्यक्ति के जीवन की कमजोरियों, भूलों तथा भ्रान्तियों का विश्लेषण करता है । आज का मानव रोगग्रस्त है। इसलिए उपन्यासों का नायक भी दुर्बल है। 'संन्यासी' का नन्दकिशोर, 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ, 'निर्वासित' का महीप इसी कोटि के नायक हैं, चाहे जोशी महीप को बाहर से दुर्बल तथा भीतर से सबल और नन्दकिशोर को बाहर से सबल और भीतर से दुर्बल नायक मानते हैं।[1] 'संन्यासी' का प्रधान पात्र व्यावहारिक दृष्टि से बड़ा सशक्त है, पर भीतर से अत्यन्त दुर्बल, क्षीणप्राण और जटिल विचारों से ग्रस्त है। इसके विपरीत महीप की दुर्बलताएं व्यावहारिक जगत् की हैं, अन्तर्जगत् में वह सप्राण और प्रबल पात्र है।[2] जोशीजी का मत है कि दुर्बल नायक का चरित्र-चित्रण करने में सूक्ष्म कला की आवश्यकता होती है।[3]

मोहनवल्लभ पन्त

पंडित मोहनवल्लभ पन्त हिन्दी भाषा और साहित्य के मूक-सेवी रहे हैं। संस्कृत के अगाध ज्ञान-भंडार के गहन अध्ययन से प्राप्त विनम्रता और निस्पृहता को लिए हुए, वे वर्षों लगातार रामचन्द्र शुक्ल तथा लाला भगवानदीन जैसे आचार्यों के साथ रहकर मूक-भाव से हिन्दी की अनन्य सेवा करते रहे। हिन्दी के वरीय आचार्यों में पंडितजी का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है।

पन्तजी का लेखन-विषय-क्षेत्र मुख्यतः आलोचना रहा है। यद्यपि उन्होंने साहित्येतर विषयों पर भी पुस्तकें लिखी हैं (इस प्रसंग में उनकी 'सदाचार सोपान' नामक पुस्तक उल्लेखनीय है) किन्तु मुख्य रूप से वे आलोचक, टीकाकार और सम्पादक के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'आलोचनाशास्त्र', 'भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच', 'रस-विमर्श' और 'तुलसी का अलंकार विधान' उनकी आलोचना-पुस्तकें हैं। हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके लगभग डेढ़ सौ लेख प्रकाशित हुए हैं जो शीघ्र ही पुस्तक-रूप में प्रकाशित होने वाले हैं। प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन और भाष्य के क्षेत्र में उन्होंने स्वर्गीय लाला भगवानदीन 'दीन' के साथ मिलकर महाकवि सूरदास कृत 'सूर पंचरत्न', बाबा दीनदयाल गिरि कृत 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' और गोस्वामी तुलसीदास कृत 'कवितावली' एवं 'दोहावली' का सम्पादन किया है तथा उनकी प्रामाणिक टीकाएँ लिखी हैं।

आलोचनाशास्त्र : 'आलोचनाशास्त्र' उनका सर्वांगपूर्ण आलोचना-ग्रन्थ है, यद्यपि यह पुस्तक विद्यार्थियों को दृष्टि में रखते हुए लिखी गई है। साहित्य के विभिन्न अंगोपांगों का विश्लेषण एवं विवेचन, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से साहित्य का प्राचीन-अर्वाचीन तथा पूर्वीय-पाश्चात्य वर्गीकरण और साहित्य की प्राचीनतम एवं नवीनतम विधाओं का सरल एवं स्पष्ट शब्दों

---

१. साहित्य-चिन्तन, पृ० ९६-९७

२. वही, पृ० ९७

३. वही, पृ० १०१

में परिचय आदि विशेषताएँ इस पुस्तक को साहित्य के पाठकों तथा रचयिताओं दोनों के लिए उपयोगी बना देती हैं। भूमिका में लेखक ने लिखा है कि मनीषी भरत से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अपने पूर्ववर्ती विद्वानों से पुस्तक-परम्परा या गुरु-परम्परा से उन्होंने जो कुछ सीखा है, उसे इस 'आलोचनाशास्त्र' में भाषानिबद्ध कर दिया है।[1] यह स्पष्टीकरण पूर्ववर्ती आचार्यों और गुरुजनों के प्रति श्रद्धा एवं विनम्रता का सूचक है। वैसे तो किसी भी विचार-प्रधान ग्रन्थ की रचना पूर्ववर्ती विद्वानों का आधार लिए बिना नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि परिवर्तनशील विश्व में सभी चीजें बदलती हैं, साहित्य का स्वरूप और उसके मानदंड भी बदलते हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि इस विश्व में ऋत् नियमों के साथ-साथ सत्य-नियम भी काम करते हैं और इसलिए कुछ तत्त्व ऐसे भी हैं जो शाश्वत कहे जा सकते हैं।

साहित्य में भी कुछ शाश्वत तत्त्व हैं। दृष्टिकोणों में परिवर्तन होने के कारण उनमें कुछ भिन्नता प्रतीत हो सकती है किन्तु वस्तुतः वे तत्त्व चिरस्थायी होते हैं। उदाहरण के लिये साहित्य का स्वरूप, उसकी प्रेरणाएं एवं लक्ष्य, रसास्वादन की प्रक्रिया को आज तक हजारों तरीकों से समझाया जा चुका है, फिर भी क्या, क्यों और कैसे के प्रश्न बने हुए हैं और उनका उत्तर देते समय शत-प्रतिशत मौलिकता का दावा यदि कोई लेखक करता है तो यह उसका प्रमाद ही होगा। वस्तुतः उसकी मौलिकता इसी बात में है कि उसकी निर्वचन-शैली अपनी हो तथा उसमें उसके निजी-चिंतन का यत्किंचित योगदान रहे। इस दृष्टि से 'आलोचनाशास्त्र' की मौलिकता असंदिग्ध है। इसमें प्राचीन काव्य-सिद्धान्तों को सरल एवं सुबोध शैली में समझाया गया है तथा कुछ नवीनतम विधाओं (जैसे चित्रपट-नाटिका, रेडियो-नाटिका, गद्यगीत, आत्मकथा आदि) का स्वरूप निर्धारण करने का भी मौलिक ढंग से प्रयत्न किया गया है। बाबू श्यामसुन्दर दास के 'साहित्यालोचन' और बाबू गुलाबराय के 'सिद्धान्त और अध्ययन' के बाद लिखे गये इस ग्रन्थ में पूर्ववर्ती ग्रन्थों की कई कमियों की पूर्ति हुई है। 'साहित्यालोचन' में पश्चिम के काव्य-सिद्धान्तों का संकलन मात्र हुआ है और 'सिद्धान्त और अध्ययन' में परिभाषाओं आदि की भरमार के कारण विषय काफी जटिल हो गया है। इन दोनों की तुलना में 'आलोचनाशास्त्र' में भारतीय और पश्चिमी काव्य-सिद्धांतों का पृथकतः सरल एवं सुबोध शैली में विवेचन हुआ है।

भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच': भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच' एक पांडित्यपूर्ण पुस्तक है जो भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' के स्वरूप तथा उसके महत्त्व का दिग्दर्शन कराती है। भारतीय रंगमंच के सम्बन्ध में कुछ पश्चिमी विद्वानों ने (तथा अंग्रेजी चश्मे से देखने वाले कुछ भारतीय विद्वानों ने भी) अनेक भ्रांतियाँ फैलाई हैं। यह पुस्तक उन भ्रांतियों का निराकरण करती है। इन लोगों ने संस्कृत भाषा के अपने अधूरे ज्ञान के कारण न केवल साहित्य के क्षेत्र में अपितु अन्य क्षेत्रों में भी वेदादि आर्ष ग्रन्थों के अनाप-शनाप अर्थ करके अजीब गोरखधन्धा खड़ा किया है जिससे इस देश को अपरिमित सांस्कृतिक क्षति हुई है। यदि भारतीय विद्वान् उनके मतों का प्रतिवाद करने मे अब तक असमर्थ रहे हैं तो उसका कारण एक तो यह था कि इसमें दासता-जन्य हीनभावना थी और दूसरा कारण यह कि भारतीय विद्वानों में से भी अधिकांश अंग्रेजी के माध्यम से ही अपने प्राचीन

१. आलोचनाशास्त्र—दो शब्द

शास्त्रों का अध्ययन करते रहे हैं। पंतजी संस्कृत भाषा और प्राचीन ग्रन्थों के अपने सूक्ष्म अध्ययन के कारण ही भारतीय नाटक साहित्य और रंगमंच सम्बन्धी अनेक भ्रांतियों का निराकरण करने में सफल हुए हैं।

वस्तुतः अधिकांश पश्चिमी विद्वानों का यह आग्रह रहा है कि भारत में जो कुछ भी अच्छा है उसका मूल भारत से बाहर किसी देश में (हो सके तो उस विद्वान् के अपने देश में) सिद्ध किया जाए। इस पूर्वाग्रह को लेकर विभिन्न क्षेत्रों में किए गए अनुसन्धानों का परिणाम यह हुआ है कि यहां के लोग, यहां की भाषा, वैदिक साहित्य, गणित ज्योतिष, आयुर्वेद जैसी विद्याए, यहां का धर्म और दर्शन सभी का उद्गम भारतेतर किसी देश में स्वीकृत कर लिया गया है। इसी पूर्वाग्रह को लेकर पश्चिम के अनेक विद्वानों ने पाश्चात्य नाट्यकला को भारतीय नाट्यकला का मूल सिद्ध करने का प्रयास किया है। इन विद्वानों में विंसिश, वेबर, प्रो० कीथ आदि प्रमुख हैं। प्रो० कीथ का कहना है कि सिकंदर के आक्रमण के बाद यूनान और भारत में सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो जाने के कारण यूनानी नाटकों से भारतीय नाटक रचना को प्रेरणा मिली। इन लोगों की युक्तियों को सबसे अधिक बल यवनिका शब्द से मिला जिसका संबंध वे यवन अर्थात् यूनान से जोड़ते थे। पन्तजी ने तर्क किया है कि संस्कृत के यवन, यवनी, यवनानी आदि शब्दों का रूप जवन, जवनी, जवनानी कहीं नहीं हुआ है, फिर यवनिका शब्द ही जवनिका क्यों हो गया? पाणिनि का उद्धरण देते हुए पंतजी ने इस शब्द की व्युत्पत्ति 'जु' धातु से की है जिसके अनुसार जवनिका का अर्थ है वेग के साथ खींचा जाने वाला पर्दा।[1] अतः नाव की पाल के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

सूत्रधार शब्द को लेकर भी कुछ लोगों ने भारतीय नाटकों को कठपुतलियों के खेल से विकसित सिद्ध करने का प्रयास किया है। पंतजी ने बताया है कि 'भरत मुनि के नाट्यशास्त्र को नाट्यसूत्र भी कहा जाता है और इसीलिए नाटक-निर्देशक को (जो इस शास्त्र में पारंगत होता था) सूत्रधार कहा जाता था।[2]

भरत के नाट्यशास्त्र के आधार पर इस पुस्तक में भारतीय रंगमंच के विभिन्न रूपों का तथा उनके आकार-प्रकार आदि का जो सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया गया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि भारतीय रंगमंच यूनानी रंगमंच की अपेक्षा प्राचीन, प्रौढ़ एवं विकसित था।

रस-विमर्श : 'रस-विमर्श' में भरत मुनि के रस-सूत्र की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं पर विचार किया गया है। लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त आदि आचार्यों के मतों का विश्लेषण एवं विवेचन स्पष्ट एवं सरल शैली में किया गया है। रसास्वादन की प्रक्रिया एक मनोवैज्ञानिक विषय है। मनुष्य की मनोवृत्तियों के साथ इसका सम्बन्ध होने के कारण यह प्रश्न साहित्य के विद्यार्थियों के लिए चिर नवीन है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का महत्त्व स्वतः स्पष्ट है।

तुलसी का अलंकार-विधान : इस पुस्तक में अप्रस्तुत योजना का महत्त्व और महाकवि तुलसी की एतद्विषयक विशेषताओं का पांडित्यपूर्ण ढंग से विश्लेषण किया गया है। साहित्यशास्त्र

---

१. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, पृ० ६४
२. वही पृ०, ६६

के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष का सोदाहरण विवेचन करने के कारण यह पुस्तक काव्य-प्रेमियों एवं छात्रों के लिए बहुत उपयोगी है।

"किसी भी साहित्यिक कृति के अध्ययन एवं मननपूर्वक उसका रस लेते हुए सभी दृष्टियों से उस कृति की स्पष्ट व्याख्या एवं निष्पक्ष-विवेचना कर उसके रसास्वादन में सहायता करना ही उस ग्रन्थ की समालोचना करना है।" समालोचना की उपर्युक्त परिभाषा स्वयं पंत जी की है। इसके अनुसार आलोचक का काम किसी रचना के गुण-दोषों को दिखाना मात्र नहीं होता, अपितु उस पर यह उत्तरदायित्व भी होता है कि वह काव्य के रसास्वादन में पाठक की सहायता करे। दूसरे शब्दों में वह कवि और पाठक के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाला होता है।[1] "काव्य की जिन बारीकियों, जिन निगूढ़ सौन्दर्य-स्थलों को औसत पाठक नहीं समझ पाता है उन्हें सुबोधगम्य बनना भी आलोचक का एक कर्तव्य होता है। इस कर्तव्य की पूर्ति के लिए टीकाएं और भाष्य लिखे जाते हैं।

पन्तजी को जिन ग्रन्थों का सम्पादन करने और टीकाएं लिखने का श्रेय प्राप्त है वे हिन्दी साहित्य के गौरव-ग्रन्थ हैं। महाकवि तुलसीदास कृत 'कवितावली' और 'दोहावली', महाकवि सूरदास कृत 'सूर पंचरत्न' और बाबा दीनदयाल गिरि कृत 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके मार्मिक सौन्दर्य-स्थलों का रसास्वादन करने में औसत पाठक बिना टीका की सहायता के असमर्थ होता है। इन चार टीका-ग्रन्थों मे से प्रथम दो में स्वर्गीय लाला भगवानदीन का नाम ही है और पंतजी ने परोक्ष में रहकर ही सारा काम किया है। भारतीय शिष्य परम्परा के नियमों को निबाहते हुए उनका ऐसा करना आवश्यक भी था। किंतु उनका यह परोक्ष योग दान कितना अधिक है यह बात 'कवितावली' की भूमिका के अंत में लिखे गए लाला भगवानदीन के निम्नलिखित शब्दों से प्रकट हो जाती है :

"अंत में मैं अपने प्रिय शिष्य मोहनवल्लभ पंत का भक्तिपूर्ण आभार प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता हूं जिसने इस टीका के लिखने में मेरे लेखक का काम करके मुझे सहायता पहुंचाई है। मैं उसे पढ़ देता था और उसे कह देता था कि इसे मेरी शैली में टीका-रूप लिख लाओ। वह लिख लाता और मैं उसे देखकर शुद्ध कर देता था। वही प्रति प्रेस में भेजी गई और उसी के अनुसार यह प्रति छापी है।

'सूर पंचरत्न' और 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' में लाला भगवानदीन के साथ-साथ पंतजी का नाम भी है। स्पष्ट है कि इन ग्रंथों में पंतजी का योगदान प्रथम दो पुस्तकों से भी अधिक रहा है।

उपर्युक्त पुस्तकें टीकाएं मात्र नहीं हैं। इन्हें सांगोपांग आलोचनाग्रन्थ कहा जा सकता है। प्रत्येक पुस्तक दो विभागों में विभक्त है। एक भाग के अन्तर्गत भूमिका है जिसमें काव्य-कृतियों की समग्र रूप से समालोचना की गई है और दूसरे भाग में टीका है। विस्तृत भूमिकाओं में काव्य-कृतियों पर हर पहलू से विचार किया गया है और गुण-दोष-विवेचन के अतिरिक्त इनका सामाजिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व निर्धारित किया गया है। ये भूमिकाएं 'तुलसी ग्रन्थावली' और 'जायसी ग्रन्थावली' की आचार्य शुक्ल द्वारा लिखित भूमिकाओं की तरह ही महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य हैं।

---

१. आलोचनाशास्त्र, पृ० २१८

'नहुष का स्वाध्याय' पन्तजी के टीका-ग्रन्थों की नवीनतम कड़ी है। श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित इस खंडकाव्य का विषय (जो मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' के समकक्ष रखा जाता है) किसी भी उत्कृष्ट आलोचक की लेखनी को बरबस आकृष्ट कर सकता है। गुप्तजी की काव्य-साधना अथवा कम से कम उनकी भाषा-साधना का इसे उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है। यहाँ भी प्रथम खंड में 'नहुष' काव्य की सर्वांगपूर्ण समीक्षा की गई है और दूसरे खंड में उसकी टीका है।

पन्तजी की आलोचना-शैली आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और लाला भगवानदीन की शैली से मिलती-जुलती है जो स्वाभाविक ही है क्योंकि इन्होंने इन विद्वानों के निकट रहकर ही साहित्य-मर्मज्ञता प्राप्त की है। शुक्लजी की तरह पन्तजी भी सर्वप्रथम किसी रचना को भारतीय काव्यशास्त्र के नियमों की कसौटी पर कसते हैं। रस-सिद्धान्त की शाश्वतता पर उनका अटूट विश्वास है और बौद्धिक युग की दुहाई देकर बौद्धिकला को रस की स्थानापन्न वस्तु माननेवाले अतिआधुनिक आलोचकों के साथ उनका मतैक्य नहीं है। वे 'कला कला के लिए' सिद्धान्त को अत्यधिक महत्त्व देकर सामाजिकता अथवा सामाजिक मूल्य की उपेक्षा करने के लिए भी तैयार नहीं हैं। 'आलोचनाशास्त्र' में 'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए पन्तजी ने लिखा है—

"सहित का दूसरा अर्थ है 'हित के सहित' (हितेय सहितम्)—इस अर्थ के अनुसार लोक-हित या लोक-कल्याण को साहित्य से पृथक् नहीं किया जा सकता है। अतः कोई भी रचना जो मानव के पशुत्व को जागृत करने वाली हो, जिससे क्षुद्र वासनाओं को उत्तेजना मिले उसमें 'सहित' का भाव या लोक-मगंल की भावना कैसे हो सकती है।"[1]

पन्तजी ने समालोचना के तीन उद्देश्य माने हैं : व्याख्या, विश्लेषण और मत-निर्धारण। इन उद्देश्यों के अनुरूप समालोचना भी तीन प्रकार की होती है—व्याख्या-प्रधान, सिद्धान्त-प्रधान (जिसमें कुछ पूर्व-निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार गुण-दोषों का विवेचन किया जाता है) और निर्णय-प्रधान (जिसमें समालोचक कृति के सम्बन्ध में मत निर्धारित करता है)। इसके अतिरिक्त उन्होंने आत्मप्रधान अथवा प्रभाववादी समालोचना को भी एक कोटि माना है जो रचना का सम्यक्-आलोचन न होकर उसके पठन से हुई प्रतिक्रिया की काव्यात्मक अभिव्यक्ति मात्र है।

तारा पांडे

तारा पांडे का साहित्य सर्जनात्मक रहा है। वह आलोचिका नहीं हैं—न जीवन के क्षेत्र में, न साहित्य के क्षेत्र में। उनका एक ही लेख[2] देखने में आया है। उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह इस ओर कदम बढ़ातीं तो शायद

१. आलोचनाशास्त्र; पृ० ४

२. प्रयाग महिला विद्यापीठ में आयोजित अखिल भारतवर्षीय तृतीय महिला कवि-सम्मेलन में किया गया भाषण।

इस क्षेत्र में भी उनकी कुछ देन होती। अपने लेख में लेखिका ने अनेक कटु सत्यों का उद्घाटन करते हुए कहा है—"काव्य-क्षेत्र में स्त्रियों का प्रवेश इस युग की यह एक विशेषता है। अभी कुछ दिन पहले तक पुरुष ही काव्य का निर्माता रहा है। फलतः पुरुष-निर्मित काव्यों में कोमल भावनाओं का प्रायः अभाव रहा है। पुरुष-समाज को सदा से जीवन-संग्राम में भाग लेते रहने, अपने परिवार और पेट की चिन्ता में व्यस्त रहने एवं सांसारिक झंझटों में लिप्त रहने के कारण जीवन के कठोर अनुभवों का सामना करना पड़ा है। उसे कोमल भावनाओं की ओर दृष्टिपात करने, गम्भीर विवेचन और मनन करने का अवसर कम मिला है। इसलिए हमारे प्राचीन काव्य अपूर्ण एवं एकांगी हैं।"[1] इस अभाव की पूर्ति आधुनिक युग की जागृत नारी को करनी है। इस ओर लेखिका ने प्राचीन काल में स्त्री के उच्च आदर्श एवं कर्तव्य-परायणता की ओर संकेत करते हुए वर्तमान काव्य-जगत् के प्रति महिला-वर्ग का ध्यान आकर्षित किया है—"काव्य-क्षेत्र में भी स्त्री-जाति की जिम्मेदारी बहुत अधिक है। यह गुड्डे-गुड़ियों का खेल नहीं है। कविता साध्य नहीं, किसी विशेष उद्देश्य का साधन है।"[2] प्रस्तुत लेख में तारा पांडे ने आधुनिक कवयित्री-वर्ग के लिए पथ-प्रदर्शिका का कार्य किया है। उन्होंने नारी के सामाजिक-पारिवारिक दायित्वों का विवेचन करते हुए उससे काव्य-क्षेत्र में भी अपने दायित्वों को निभाने का आग्रह किया है।

अम्बादत्त पन्त

'अपभ्रंश काव्य-परम्परा और विद्यापति' डॉ० अम्बादत्त पन्त का शोधग्रन्थ है। इसमें नौ अध्याय हैं। प्रथम छः अध्यायों में अपभ्रंश की उत्पत्ति, विकास, विभिन्न रूपों, क्षेत्रीय विभाजन आदि पर प्रकाश डाला गया है। अपभ्रंश-काल की धार्मिक-राजनीतिक अवस्थाओं, तथा परवर्ती अपभ्रंश साहित्य का विवेचन किया गया है और अपभ्रंश से हिन्दी का जन्म, ध्वनियाँ और रूपात्मक विकास आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

ग्रन्थ के अन्तिम दो अध्यायों में विद्यापति के काव्य का सम्यक् रूप से विवेचन किया गया है तथा अपभ्रंश साहित्य में उनके स्थान, समय तथा रचनाओं पर विचार किया गया है।

डॉ० जगदीशचन्द्र जोशी

जयशंकर प्रसाद के नाटकों पर शोधकार्य सर्वप्रथम १९४३ ई० में डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने डी० लिट० की उपाधि के लिए काशी विश्वविद्यालय से किया था। डॉ० शर्मा ने प्रसाद के सभी नाटकों का विवेचन शास्त्रीय ढंग से किया था।

---

१. 'चांद', अप्रैल, १९३७: वर्ष १५, खण्ड १, संख्या ६, पृ० ६७१-७२
२. वही, पृ० ६७५

उन्होंने केवल भारतीय नाट्य-प्रणाली की ही कसौटी में प्रसाद के नाटकों को परखा। परन्तु प्रसाद के जीवनकाल में पाश्चात्य सभ्यता भारतीय साहित्य, संस्कृति तथा जीवन को काफी प्रभावित कर चुकी थी। इसलिए स्वाभाविक है कि प्रसाद की नाट्य-कला पर भी पाश्चात्य नाट्य-प्रणाली का प्रभाव पड़ा हो। इस दृष्टिकोण से डॉ० जगदीशचन्द्र जोशी के शोध-कार्य में प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का विवेचन भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों नाट्य-प्रणालियों के आधार पर किया गया है। जोशीजी ने अपने शोध-ग्रन्थ में ऐतिहासिकता के वातावरण का ध्यान प्रमुखतया रखा है। इसलिए उन्होंने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इतिहास के स्वरूप, उनके उत्स का स्पष्टीकरण दिया है। उन्होंने प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों को सोद्देश्य सिद्ध किया है। उन्होने कथानक, ऐतिहासिक सत्य, काल-योजना और कालक्रम-दोष का अध्ययन किया है। जोशीजी ने ऐतिहासिक वातावरण का अनुशीलन भौगोलिक विवरण, सामाजिक परिस्थितियाँ, सामाजिक ढांचा, धर्म, देवता, लोक-विश्वास, प्रणय, विवाह, खान-पान, वस्त्र, आभूषण, उत्सव, क्रीड़ा-विनोद, युद्ध, शिक्षा, कला, संगीत, साहित्य के आधार पर किया है। राज्य-शासन और रणनीति का निरूपण भी किया गया है।

डॉ० त्रिलोचन पांडे

कुमाऊँ के लोक-साहित्य पर सर्वप्रथम अनुसन्धान करने वाले डॉ० त्रिलोचन पांडे का शोध-ग्रन्थ १९६० ई० के बाद प्रस्तुत किया गया, इसलिए यहाँ इसका विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है। त्रिलोचन पांडे ने 'गुप्त की काव्य-कला' और 'साकेत दर्शन'—दो आलोचनात्मक पुस्तकें भी लिखी हैं। दोनों पुस्तकें परीक्षार्थियों की सहायता की दृष्टि से लिखी गई हैं।

जीवनप्रकाश जोशी

जीवनप्रकाश जोशी की (१) हिन्दी साहित्य-मंजूषा, (२) जायसी और उनका पद्मावत, (३) हिन्दी गद्य के सोपान, (४) निबन्ध नवनीत इसी कोटि की कृतियां हैं। प्रस्तुत कृतियों में प्रतिपाद्य विषय के संबंध में लेखक-वर्ग ने न कोई नयी बात ही कही है और न ही उसमें किसी मत विशेष का प्रतिपादन अथवा खंडन किया है। इसलिए इन कृतियों पर विवेचन न कर केवल इनका उल्लेख मात्र किया गया है।

खण्ड ५

विविध

जीवन-चरित्र, संस्मरण, साक्षात् वार्ता, शब्दचित्र, बाल-साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ एवं अनूदित साहित्य

जीवन-चरित्र

साहित्य की अन्य विधाओं के समान जीवनी-साहित्य भी वर्तमान युग के साहित्य का विशेष अंग बन गया है। इसका वर्तमान स्वरूप नवयुग की चेतना का प्रतिफल है। इसका इतिहास भी साहित्य की अन्य विधाओं के समान प्राचीन है। प्राचीन काल के युगपुरुषों की जीवन-गाथाएं, वीरों के यशगीत, देवी-देवताओं की वन्दनाएँ, राक्षसों के कुकृत्यों का वर्णन, पूर्वजों के स्मृति-दिवस, ऐतिहासिक शिलालेख, ताम्रपत्र, स्मृतिचित्र आदि जीवनी-साहित्य के ही अंग-उपांग हैं और आज का जीवनी-साहित्य का प्रासाद इन्हीं पर खड़ा है।

साहित्य की अन्य विधाओं के समान युगधारा के साथ-साथ जीवनी-साहित्य के स्वरूप, कला, शैली आदि में परिवर्तन आया। जिन-जिन युगों से यह विधा गुजरी, उसका प्रभाव उसकी कला-शैली पर पड़ा। वीरपूजा के युग में जीवनी-साहित्य में निष्पक्षता का अभाव था और विशेषकर धार्मिक व प्रचारक उपदेशकों का एक साधन मात्र था। जीवनी-साहित्य की यही दशा रीतिकालीन युग तक रही। आधुनिक युग के विज्ञानवादी दृष्टिकोण ने वस्तुतः इसमें आमूल परिवर्तन किए। आज के जीवनी-साहित्य ने एक ऐसे निर्मल दर्पण का रूप ग्रहण कर लिया है जिसमें व्यक्तित्व का निर्दोष तथा वास्तविक चित्र देखा जा सकता है। जीवनी-साहित्य के अन्तर्गत जीवन-चरित्र, आत्मचरित्र, संस्मरण, डायरी तथा पत्र आते हैं।

वस्तुतः जीवनी-साहित्य इतिहास की एक शैली है। यद्यपि उपन्यास-कहानी की तरह यह भी वर्णनात्मक एवं आत्मकथात्मक शैली में होती है परन्तु कल्पना का नितान्त अभाव होता है। इसका सम्बन्ध मनुष्य-जातियों व राष्ट्र या देश से न होकर एक व्यक्ति से होता है जिसमें चरित्रनायक की भावनाओं, मुद्राओं, कार्यों और अपनेपन की छाप रहती है। इसलिए इसमें ऐतिहासिक सत्यता शत-प्रतिशत अनिवार्य है। ऐतिहासिक सत्यता के साथ-साथ जीवनी-साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी वांछनीय है। मनुष्य की मुद्रा और भावना, उसके मन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं और जीवन-क्रम में उसके मस्तिष्क के विकास का अध्ययन एक अत्यन्त ही गूढ़ विषय है। इसलिए चरित्रनायक के व्यक्तित्व, मानसिक क्रियाओं का अध्ययन और उनका सफल चित्रण जीवनी-साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा जीवनी-लेखन अधिक दुरूह कार्य है जोकि चरित्रनायक के विषय में लम्बे समय के अध्ययन एवं मनन के पश्चात् ही सम्भव हो सकता है। जीवनी-साहित्य तभी सफल माना जा सकता है जब चरित्रनायक के जीवन-भर के वृत्तान्तों को ऐसी रूपरेखा में प्रस्तुत किया जाय जिससे पाठक उस व्यक्ति के विषय में पूर्णतया जान सके और उसे भली-भांति समझ सके।

डॉ० चन्द्रावती सिंह के कथनानुसार जीवनी-साहित्य में एक वास्तविक व्यक्ति के जीवन का वृत्तान्त होना चाहिए जिसमें ऐतिहासिक सत्यता, जीवन-घटनाओं की वैज्ञानिक छानबीन, मनोदशा का तटस्थ एवं मानवीय विश्लेषण हो।

१. हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास, पृ० ३

जीवन-चरित्र और आत्मचरित्र में मौलिक अन्तर है। आत्मचरित्र का चरित्र-नायक ही लेखक होता है परन्तु जीवनचरित्र का लेखक चरित्रनायक नहीं होता। जीवन-चरित्र का लेखक नायक की मनोभावनाओं का अनुमान और निष्कर्ष, उसकी क्षमता, अनुभव और उसके मन की दशा का परिणाम होता है। आत्मचरित्र का लेखक उन घटनाओं और मनोभावों का पूर्ण ज्ञाता होता है। आत्मचरित्र लिखने में अपनी ख्याति, आत्मप्रशंसा और आत्मप्रचार की भावना भी निहित रहती है। इसलिए आत्मचरित्र के लेखक से तटस्थता की आशा कम ही की जा सकती है। परन्तु जीवन-चरित्र का लेखक चरित्रनायक के विषय में उतना अधिक नहीं जा सकता जितना कि आत्मचरित्र का लेखक।

मोहनवल्लभ पन्त

प्रो० मोहनवल्लभ पन्त द्वारा रचित 'साहित्य-स्रष्टा' में हिन्दी साहित्य के उन मनीषियों का संक्षिप्त परिचय है जिन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास में योग देकर उसे आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रमुख रखा है। इसमें लेखक ने हिन्दी साहित्य के आदि-काल से लेकर आधुनिक काल तक के प्रमुख कवियों तथा आलोचकों के जीवन का संक्षिप्त परिचय तो दिया ही है, साथ ही उनके प्रादुर्भाव तथा युग में उनके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है।

पुस्तक के सिंहावलोकन भाग में चन्द, कबीर, जायसी, मीरा, सूर, तुलसी, नरोत्तम-दास, केशवदास, रसखान, बिहारी, भूषण और भारतेन्दु के जीवन-चरित्र हैं। दूसरे भाग में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, डॉ० श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, प्रेमचन्द, सुभद्रा-कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा के जीवन-चरित्र हैं। प्रत्येक साहित्यकार का जीवन-चरित्र लिखते समय लेखक ने तटस्थता, निष्पक्षता और जीवनी-लेखक की नीर-क्षीर-विवेकी दृष्टि से काम लिया है; और साथ ही उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र में उनके व्यक्तिगत तथा साहित्यिक जीवन की प्रमुख घटनाओं का भी अंकन कर गागर में सागर भरने का स्तुत्य प्रयास किया है।

भारत के निर्माता

शतियों से दासता की शृंखला में जकड़ी हुई भारतमाता को मुक्त कराने के प्रयास में समय-समय पर भारतमाता के अनेक सपूतों ने अपना जीवन उत्सर्ग किया है। महा-राणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह आदि भारत माँ के वीर पुत्रों ने अपना जीवन इसी संघर्ष में लगाया है। सन् १८५७ से पूर्व देश की पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए शस्त्र-बल का प्रयोग हुआ था। सन् १८५७ की क्रान्ति अन्तिम सशस्त्र युद्ध था जिसका इतिहास झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के रक्त से लिखा गया। इस असफल क्रान्ति के बाद अंग्रेज सरकार ने सम्पूर्ण देश को निरस्त्र कर दिया ताकि भारतवासी पुनः स्वतन्त्रता के प्रयत्नों में सर्वथा असक्त रहें, परन्तु सौभाग्य से वीर-प्रसविनी भारतभूमि किसी भी युग में न वीरों से ही वंचित रही है, न नीतिज्ञों से ही। पिछली पराजय की निराशा में सोया हुआ देश फिर जाग उठा। इस शती के आरम्भ से ही देश के महापुरुष

प्रसुप्त देश के कानों में स्वतन्त्रता का शंखनाद कर देशवासियों को जगाने लगे। पर इस बार ऐसे साम्राज्य को अस्त करना था, जिसके राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। बिना लोहे के इतने विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य से लोहा लेना आसान न था। फलतः एक नये प्रकार की निरस्त्र-क्रान्ति का जन्म हुआ। मैं इस क्रान्ति का जन्म सन् १९१६ में उस दिन मानता हूं जब लोकमान्य तिलक ने घोषणा की थी—'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और हम उसे लेकर रहेंगे !"[1] फिर तो अनेक योद्धा एक के बाद एक रणभूमि में आए—शस्त्रबल लेकर नहीं, आत्मबल लेकर। इस बलशाली साम्राज्य को क्षत्रिय-बल से जीतना सम्भव न समझकर तिलक और उनके परवर्ती महापुरुषों ने ब्रह्मबल का प्रयोग किया और अन्त में इसी ब्रह्मास्त्र का सफल प्रयोग कर महात्मा गांधी ने अंग्रेजों से हार मनवा ही ली और उन्हें अपना साम्राज्य समेटना पड़ा।

'भारत के निर्माता' में प्रो० मोहनवल्लभ पन्त ने देश की स्वतन्त्रता के लिए आत्माहुति करने वाले इन्हीं महापुरुषों को स्मरण किया है। इस छोटी-सी कृति में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महामना मदनमोहन मालवीय, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, कस्तूर बा और ऐनी बेसेण्ट के त्यागमय एवं संघर्षपूर्ण जीवन का चित्रण तो है ही, उनके वीरतापूर्ण एवं देशभक्ति से ओतप्रोत कृत्यों का वर्णन भी है।

प्रस्तुत कृति में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

कुछ संस्मरण के सुन्दर स्थल भी हैं, जिनमें न तो तिथिक्रम को महत्त्व दिया गया है, न आद्योपान्त सभी जीवन-घटनाओं का ही समावेश किया गया है। प्रत्येक महापुरुष के जीवन से कुछ ऐसे प्रसंग चुनकर रख दिए हैं जिनका पाठकों के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ सकता है।

इलाचन्द्र जोशी

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वस्तुतः जीवन-चरित्र लिखना दुष्कर कार्य है। इसके लिए लेखक को चरित्रनायक के जीवन के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी होना ही पर्याप्त नहीं, उसके जीवन की घटनाओं का विश्लेषण-संश्लेषण करना भी नितान्त आवश्यक है। जोशीजी की मनोवैज्ञानिक दृष्टि ने इस कृति के माध्यम से कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन की घटनाओं का सुन्दर, स्वस्थ एवं ऐतिहासिक वर्णन किया है। कृति के प्रारम्भ में लेखक ने ठाकुर वंशावली का—रवीन्द्र की चार-पांच पीढ़ियों का—भूमिका भाग में वर्णन किया है; तदनन्तर रवीन्द्रनाथ के जन्म, बाल्यकाल, प्रारम्भिक शिक्षा, विदेश-यात्रा, कवि-जीवन आदि का वर्णन किया है। काव्य के क्रमिक विकास पर स्पष्ट ढंग से प्रकाश डाला गया है। इसमें

१. भारत के निर्माता, पृ० १०।

लेखक ने अपने चरित्रनायक के जीवन की सूक्ष्म घटनाओं का चित्रण तो किया है पर साथ ही साथ उसके पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, कलाकार, राजनीतिक आदि रूपों का भी वर्णन किया है। लेखक ने ऐतिहासिकता की पूर्ण रक्षा की है। अन्त में लेखक ने अपने चरित्रनायक का शैशव, प्रारम्भिक शिक्षा, हिमालय-यात्रा, साहित्यिक जीवन का आरम्भ, प्रणय-व्यापार, प्रथम विदेश-यात्रा, "युगनिर्वात्तिनी कविता का सूत्रपात, वैवाहिक जीवन, जमींदार के रूप में, कवि-जीवन और विश्व-कवि के रूप में वर्णन किया है।

उनके संगीतज्ञ, अभिनेता, दार्शनिक, धर्म एवं समाज-सुधारक, शिक्षा-विशेषज्ञ, राष्ट्रवादी एवं देशभक्त, मानवतावादी, वसुधैव कुटुम्बकम् के समर्थक, महान् गीतकार, प्रेम और सौन्दर्य के कवि और नोबल पुरस्कार-विजेता रूपों पर भी प्रकाश डाला गया है।

सुमित्रानन्दन पन्त

साठ वर्ष एक रेखांकन

'साठ वर्ष एक रेखांकन' श्री सुमित्रानन्दन पन्त का आत्मचरित्र है। पन्तजी ने इस छोटी-सी पुस्तिका में अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं, साहित्यिक जीवन के विकास और उस पर बाह्य प्रभावों का वर्णन किया है। प्रस्तुत पुस्तक पन्तजी के साठ वर्ष की आयु तक की जीवनी है। आज भी कवि के व्यक्तिगत जीवन की अनेक घटनाएँ ज्ञात नहीं हैं जिनका सम्बन्ध उनके काव्य-जीवन से रहा है जिनके अभाव में उनके काव्य को समझने में अनेक भ्रांतियाँ हो सकती हैं।

लेखक ने पुस्तक के प्रारम्भ में अपने बाल्य जीवन का वर्णन संस्मरणात्मक रूप में किया है। "जब स्मृतिपथ से मन को विगत की ओर ले जाता हूँ तो आँखों के सामने, जैसे, फूलों के किसी अम्लान स्तवक से अनेक रंग-गंध की पंखुड़ियाँ झरने लगती हैं—ऐसी प्रतीत होती हैं अब वे किशोर-जीवन की क्षण-मधुर घटनाएँ।"[1]

लेखक की इस कृति से प्रतीत होता है कि उनका वास्तविक नाम गुसाईंदत्त है जो उन्हें रुचिकर न लगा। "कौसानी की पाठशाला में मेरा नाम गुसाईंदत्त था। पिताजी ने माँ की मृत्यु के बाद मुझे एक गोस्वामीजी को सौंप दिया था, जिसके कारण मुझे भी लोग गोसाई या गुसाईं कहते थे। मेरे गले में एक रुद्राक्ष भी बँधा रहता था। अल्मोड़ा आने पर अपना नाम मैंने स्वतः ही सुमित्रानन्दन रख लिया था। मेरे बड़े भाई ने एक बार बचपन से कहा था कि बरेली कॉलेज में उनके किसी मित्र का नाम सुमित्रानन्दन था, जो उन्हें पत्र भी लिखा करते थे, उन्हीं के नाम से मैंने अपना नाम रखा।"

पन्तजी का कवि-जीवन पर्याप्त संघर्षमय रहा है। वस्तुतः वे स्वनिर्मित कवि हैं। स्वतन्त्रता-आन्दोलन में कवि ने विद्यालय छोड़ दिया और उसकी जीवनधारा में

1. साठ वर्ष एक रेखांकन, पृ० ४

एक नया मोड़ आया। उसके परिजनों का व्यवहार कैसा था, इस विषय में स्वयं कवि बताता है—

"इस छोटी-सी घटना ने मेरे जीवन की धारा को जैसे एकदम ही मोड़ दिया, और मुझे स्वतंत्र रूप से अध्ययन, चिन्तन तथा लेखन करने के अतिरिक्त और किसी कार्य के योग्य नहीं रखा। यह बड़ी विचित्र बात है कि परिवार के लोगों से—विशेषकर अपने भाइयों से—मुझे अपने जीवन में किसी प्रकार की भी सहायता, सहानुभूति या प्रोत्साहन नहीं मिला। हाँ, उन्होंने कॉलेज छोड़ने की घटना के अतिरिक्त और मेरा कभी किसी बात में विरोध नहीं किया। उनका मनोभाव इतना निष्क्रिय तथा ममताहीन रहा कि उन्होंने दूर से भी कभी मेरी देख-रेख की हो या मेरे विकास पर प्रसन्न-दृष्टि ही रखी हो, ऐसा मुझे नहीं प्रतीत हुआ। घर की ओर से तटस्थता के इस वृहत् निर्मम शून्य में मुझे अपने जीवन तथा कवि बनने की महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए स्वयं ही कठिन संघर्ष करना पड़ा।"[2]

स्वतन्त्रता-आन्दोलन में लेखक विद्यालय छोड़ने पर कारावास नहीं गया। इसका यह तात्पर्य नहीं कि लेखक के विचारों में इसके प्रति कोई आमूल परिवर्तन आ गया था। इसका स्पष्टीकरण करते हुए लेखक कहता है—

"मैंने देश के आन्दोलन में बाहर से तो कभी भाग नहीं लिया और न भाई की तरह मैंने कभी कारावास ही झेला, पर हमारे राष्ट्रीय जागरण के आन्दोलन का जो भीतरी पक्ष रहा है उससे मैं निरन्तर जूझता रहा हूँ और अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैंने उसका ऋण भी चुकाया है।"[1]

लेखक ने कवि-जीवन पर बाह्य प्रभावों एवं संघर्षों का वर्णन तटस्थ दृष्टि से किया है। इसमें आत्मविज्ञापन, आत्मप्रचार या आत्म-प्रशंसा की भावना छू तक नहीं पायी। संस्मरणात्मक स्थल गद्यकाव्य के सुन्दर नमूने बन पड़े हैं, विशेषकर कौसानी की प्रकृति-छटा, सीढ़ीनुमा खेत, सांप की केंचुली के समान टेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ी पगडण्डियों का वर्णन सुन्दर एवं गद्यकाव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं।

हरिकृष्ण त्रिवेदी

सुभाषचन्द्र बोस

श्री हरिकृष्ण त्रिवेदी ने सन् १९३८ में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जीवनी लिखी। उस समय नेताजी राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। नेताजी की यह जीवनी हिन्दी में सर्वप्रथम

---

१. साठ वर्ष एक रेखांकन, पृ० १५
२. वही, पृ० ३७
१. वही, पृ० ३७

। इसमें नेताजी की राष्ट्रीय भावनाओं, उनकी राजनीतिक मान्यताओं एवं जीवन-
र्शन का सम्यक्‌रूप से अंकन किया गया है। यद्यपि इसे हम नेताजी की पूर्ण जीवनी
हीं मान सकते हैं, फिर भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बड़ी महत्त्वपूर्ण कृति है। लेखक भी
स समय राष्ट्रीय कांग्रेस का सक्रिय कार्यकर्ता था। उसे नेताजी के निकटतम सम्पर्क में आने
ा सुअवसर मिला और उनके विषय में अधिकतम जानने का सुयोग भी। इससे इस कृति
 नेताजी के स्वभाव, व्यवहार, आदतें आदि का उल्लेख भी है। उनके उग्रतम
ष्ट्रीय रूप, दृढ़ अनुशासन एवं कूटनीतिक तथा राजनीतिक विचारधाराओं के विषय में कई
थ्यों एवं घटनाओं का वर्णन मिलता है। इससे इस कृति की प्रामाणिकता द्विगुणित हो गई है।
ाजकल त्रिवेदी जी हिन्दुस्तान दैनिक के संयुक्त सम्पादक हैं। दैनिक पत्र से सम्बन्धित होने
 कारण अब त्रिवेदीजी अधिकतर राजनीतिक एवं आर्थिक विषयों पर ही लिखते हैं,
द्यपि उनकी साहित्य-सेवा की लालसा अभी तक बनी हुई है।

संस्मरण

संस्मरण जीवन से सम्बन्धित कुछ असम्बद्ध घटनाओं का लेखा होता है, और इसे अधिकांशत. चरित्रनायक स्वयं लिखता है। जीवन मे समय-समय पर जो बातें अथवा घटनाएं घटी हों, उनका अलग-अलग वर्णन संस्मरण कहा जाता है। इसमे आत्म-चरित्र की एकता नहीं होती और न ही व्यक्तित्व का कोई चित्र उपस्थित हो सकता है। इसमें चरित्रनायक की कुछ मुख्य-मुख्य और प्रसिद्ध बातें जानी जा सकती है, उसके स्वभाव आदि के विषय में पूर्ण रूप से नही जाना जा सकता। किसी का संस्मरण जीवन-चरित्र-लेखक के लिए सामग्री का काम अवश्य दे सकता है, क्योंकि यह जीवन की कुछ घटनाओं का ऐतिहासिक उल्लेख मात्र है। वस्तुत: संस्मरण भी जीवनी का दूसरा रूप है। जिस प्रकार आत्मकथा में लेखक स्वयं अपने जीवन-वृत्तान्त को लिखता है उसी प्रकार संस्मरण में लेखक की अपनी ही जीवनी के उल्लेखनीय क्षणों का अंकन होता है। आत्मकथा में जीवनी का आद्योपान्त सुसम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किया जाता है परन्तु 'संस्मरण' सम्पूर्ण जीवन के कुछ विशिष्ट अंशों का उल्लेख रहता है। तत्वों की दृष्टि से यह जीवनी-साहित्य के अनुरूप होता है और शैली की दृष्टि से यह आत्मकथा के समीप होता है। प्रो० मोहनवल्लभ पन्त के मतानुसार—"जिस प्रकार उपन्यास जीवन की समग्रता का चित्र खींचता है और कहानी उसी जीवन के एक छोटे-से अंग का, उसी प्रकार जीवनी तो नायक के समस्त जीवन को अपने छोरों में बाँधती चलती है और संस्मरण उसके जीवन की एक झांकी को चित्रित करता है।"[1]

बाबू गुलाबराय के अनुसार : "संस्मरण भी रेखाचित्र की भाँति व्यक्ति से सम्बन्धित होते है। जहाँ रेखाचित्र वर्णनात्मक अधिक होते हैं, संस्मरण विवरणात्मक अधिक होते है। संस्मरण जीवनी-साहित्य के अन्तर्गत आते है। वे प्राय: घटनात्मक होते है किन्तु वे घटनाएं सत्य होती है और साथ ही चरित्र की परिचायक भी।"[2]

इलाचन्द्र जोशी

शरत्चन्द्र : व्यक्ति और कलाकार

इलाचन्द्र जोशी के साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल के संस्मरण 'शरत्चन्द्र : व्यक्ति और कलाकार' में हैं। लेखक का शरत्चन्द्र के साहित्यिक रूप से परिचय उनके

१. आलोचनाशास्त्र, पृ० १७२
२. काव्य के रूप, छठा संस्करण, पृ० २४१

प्रथम उपन्यास 'पल्ली समाज' से हुआ। जोशीजी को विद्यार्थी-जीवन में बंगला-साहित्य की तात्कालिक गतिविधियों और बंगला के मासिक पत्रों से शरत्चन्द्र की क्रान्तिकारी प्रतिभा का परिचय मिल चुका था। तदनन्तर शरत्चन्द्र की अनेक कृतियों—बड़ी दीदी, स्वामी, चरित्रहीन, देवदास, श्रीकान्त, दत्ता आदि—का अध्ययन करके उनसे लेखक काफी प्रभावित हुआ। विद्यार्थी-जीवन समाप्त करके कलकत्ता पहुँचने पर शरत्चन्द्र से मिलने की उत्कंठा लेखक के हृदय में बनी रही, जिसे एक वर्ष बाद वह पूर्ण कर सका।

प्रस्तुत पुस्तक में कलकत्ता-प्रवासकाल में शरत्चन्द्र के साथ अनेक भेंटों के संस्मरण हैं। इनमें शरत्चन्द्र के व्यक्तित्व, रहन-सहन, व्यवहार, प्रथम भेंट के प्रभाव आदि के अतिरिक्त साहित्यिक चर्चा का पर्याप्त रूप से उल्लेख है।

शरत्चन्द्र ने अपनी अधिकांश रचनाओं में वेश्याओं और तथाकथित अ-सती नारियों को नायिकाओं के रूप में चुना है, उनकी इस प्रवृत्ति के प्रति जोशीजी में मन में उत्कंठा बनी थी। प्रथम भेंट में ही इसका कारण पूछने पर शरत्चन्द्र ने बताया—

"मैं व्यक्तिगत रूप से ऐसे चरित्रों के घने सम्पर्क में आया हूं और इसी कारण मुझे अत्यन्त तीव्र रूप से यह अनुभव हुआ है कि वेश्याएं समाज में सबसे अधिक शोषित और अत्याचार-पीड़ित नारियां हैं। आर्थिक व्यवस्था से वे जिस प्रकार का गंदा और घृणित जीवन व्यतीत करती है, उससे उभरने के लिए वे जानकार या अनजान में समय-समय छटपटाती रहती हैं। उनका यह छटपटाना देखने का संयोग सबको सब समय नहीं मिलता। पर जब कभी-कभी किसी को किसी कारण से वह सुयोग मिल जाता है तब वह उसे जीवनभर नहीं भूल सकता। उसके अन्तर के उस मूक विद्रोह को वाणी देने का निश्चय मैं बहुत पहले कर चुका था और अपने उस मिशन को कार्यान्वित करने में मैंने कोई बात नहीं उठा रखी है।"[1] शरत्चन्द्र ने भारतीय नारी के सतीत्व के आदर्श तथा नारी-भावना के विषय में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए बताया है—

"मैं मानव-धर्म को सती-धर्म से बहुत ऊपर स्थान देता हूं। सतीत्व और नारीत्व ये दोनों आदर्श समान नहीं हैं। नारी-हृदय की मंगलमयी करुणा, उसकी जन्मजात मातृ-वेदना उसके सतीत्व से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। बहुत-सी ऐसी स्त्रियों को मैंने देखा है, जिनका किसी दूसरे पुरुष से कभी किसी प्रकार का शारीरिक-मानसिक सम्बन्ध नहीं रहा, तथापि उनके स्वभाव में अत्यन्त नीचता, घोर संकीर्णता, विद्वेष भावना और चोर-वृत्ति पायी गई है। इसके विपरीत ऐसी पतिताओं से मेरा परिचय रहा है जिनके भीतर मैंने मातृ-हृदय की निःस्वार्थ ममता और करुणा का अथाह सागर उमड़ता पाया है।"[2] अतियथार्थवादी उपन्यासकारों अथवा कहानीकारों के विषय में शरत्चन्द्र का मतभेद दिखाई देता है। उनका दृष्टिकोण है कि जीवन के सच्चे रूप को चित्रित करना प्रत्येक श्रेष्ठ कलाकार का कर्तव्य है पर नग्नता को केवल नग्नता के लिए प्रदर्शित करने तक ही कलाकार का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। नग्नता से रूढ़िपंथी सुधारवादियों की तरह कतराना कायरता है। साथ ही वे इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि सच्चा कलाकार जीवन की नग्नता का सही-सही आभास देने के उद्देश्य से रूढ़ि-यथार्थ को एक कारीगर की तरह तराश-तराशकर कलात्मक रूप में पाठक के आगे रखता है।

१. शरत्चन्द्र : व्यक्ति और कलाकार; पृ० १२
२. वही, पृ० १४

और इस पर आदर्श की रंगीनी चढ़ाकर एक अभिनव समन्वयात्मक कलाकृति प्रस्तुत करता है।

यद्यपि प्रस्तुत संस्मरणों में लेखक ने शरत्चन्द्र से हुए भेंट के अवसरों का उल्लेख करते हुए उनके व्यक्तिगत जीवन, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, प्रेम-संबंधी अन्य कार्य-व्यापारों पर हुई चर्चा का उल्लेख किया है परन्तु शरत्चन्द्र की उपन्यास एवं कहानी-कला का विकास, उन पर विदेशी साहित्यकारों का प्रभाव, तत्कालीन समाज एवं नारी के प्रति दृष्टिकोण के उल्लेख को प्राथमिकता दी है जिससे प्रस्तुत कृति एक साधारण संस्मरण न होकर बंगला-साहित्य के महान् साहित्यकार का साहित्यिक मानदंड एवं मूल्यांकन है। इसलिए ऐतिहासिक महत्व की अपेक्षा प्रस्तुत संस्मरण का साहित्यिक महत्त्व अधिक है।

पुस्तक के दूसरे खंड 'साहित्य और कला' के अन्तर्गत 'शरत् की प्रतिभा,' 'शरत् साहित्य,' 'शरत् की लोकप्रियता के कारण' शीर्षकों में उनके साहित्य का क्रमिक विकास एवं मूल्यांकन दिया गया है तथा अंत में अनेक जीवनीकारों द्वारा लिखे गए शरत्चन्द्र के जीवन-वृत्तों का उल्लेख करते हुए उनकी जीवनी दी है। शरत्चन्द्र से मिलने के बाद लेखक को उनके जीवन की घटनाओं की पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो गई थी, जिससे उन्होंने शरत्चन्द्र के जीवन-सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों के निराकरण के लिए उनकी प्रामाणिक जीवनी दी है।

ऐतिहासिकता, जीवन की असम्बद्ध घटनाओं का लेखा एवं चरित्रनायक का चरित्र-चित्रण संस्मरण की प्रमुख विशेषताएं हैं। इलाचन्द जोशी के प्रस्तुत संस्मरणों में ये सभी विशेषताएं मिलती हैं। उन्होंने शरत्चन्द्र के साहित्यिक दृष्टिकोण, प्रभाव, तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण आदि के विषय में जो भी संस्मरण दिए हैं उनसे तत्कालीन बंगला-समाज एवं साहित्य की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त होती है। शरत्चन्द्र के संघर्षमय जीवन, साहित्यिक रुचि एवं सरल जीवन का स्थान-स्थान पर लेखक ने सजीव चित्रण किया है।

हिमांशु जोशी

हिमांशु जोशी ने यदाकदा कुछ फुटकर संस्मरण लिखे हैं, जिनमें राजा महेन्द्रप्रताप, राहुल सांकृत्यायन, डॉ० रघुवीर, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ० नागिदास नागर, ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, उमाशंकर जोशी, नवीन गुजराल, काका कालेलकर, गोविन्दवल्लभ पंत आदि प्रमुख हैं। इन संस्मरणों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने एक अलग दृष्टिकोण से इनको देखा-परखा है। जोशीजी की तीव्र अनुभूति, सशक्त वर्णन, रोचकता एवं निष्पक्षता से ये संस्मरण अन्य संस्मरणों से भिन्न ही नहीं, अपितु जीवन्त भी हैं।

साक्षात् वार्ता

जीवनी-साहित्य का नवीनतम रूप साक्षात् वार्ता (इण्टरव्यू) है। जिस प्रकार 'संस्मरण' और 'डायरी' 'आत्मकथा' के रूप हैं, उसी प्रकार जीवनी-रूप के साथ इण्टरव्यू का सीधा सम्बन्ध है। जीवनी में ऐतिहासिक शैली से लिखा गया लेखक द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के जीवन का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। इण्टरव्यू में भी अन्य किसी व्यक्ति के चरित्र का विश्लेपण किया जाता है परन्तु शैली की भिन्नता इसे नया रूप प्रदान करती है। वस्तुत: इण्टरव्यू संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी और नाटकीय शैली का सम्मिश्रण है। इसमें लेखक जिस व्यक्ति का चरित्र चित्रित करता है उससे स्वयं मिलता है, परस्पर वार्ता-विनिमय के द्वारा उसके चरित्र की विशेषताओं के अनुसन्धान का प्रयत्न करता है। संवादों के समावेश से इसमें नाटकीयता उभरने लगती है। नाटक के दो पात्रों के समान दोनों अपने-अपने व्यक्तित्व एवं योग्यता आदि के अनुरूप वार्ता करते हैं।

इण्टरव्यू में प्रमुखत: एक पात्र की वार्ता का महत्त्व होता है। लेखक का इसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता। उसका उपयोग वह केवल वर्ण्य चरित्र के विश्लेपण में करता है। लेखक जब कोई प्रश्न वर्ण्य चरित्र के सम्मुख प्रस्तुत करता है तब वह जो उत्तर देता है उसी का महत्त्व होता है। इण्टरव्यू का वार्तालाप किसी सुसम्बद्ध घटनामाला के विकास-क्रम को गति प्रदान करने वाला नहीं होता। एक निश्चित प्रश्न का एक निश्चित उत्तर होता है परन्तु बीच-बीच में लेखक अपनी प्रतिक्रिया का भी वर्णन करने लगता है जिससे इसमें औपन्यासिक विश्लेपणात्मक शैली का समावेश भी होता रहता है। इण्टरव्यू में आलोचना का रूप भी मिलता है। लेखक की विश्लेपणात्मक उक्तियों में आलोचक की दृष्टि उभकती प्रतीत होती है।

अत: जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, नाटक, उपन्यास, आलोचना आदि सभी साहित्यिक रूपों की विशेषताओं को लेकर इण्टरव्यू विकसित होता है। हिमांशु जोशी द्वारा लिए गए अनेक इण्टरव्यू विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं जिनमें राजा महेन्द्रप्रताप, काका कालेलकर, नाटककार गोविन्दवल्लभ पंत, राहुल सांकृत्यायन, जैनेन्द्रकुमार, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ० रघुवीर, श्रीमती इन्दिरा गांधी के इण्टरव्यू प्रमुख हैं।

शब्दचित्र

रेखाचित्र या शब्दचित्र मे वर्णन का प्राधान्य रहता है। ये वर्णन लेखक के संस्मरणों से सम्बद्ध रहते हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु के चित्र बनाने में जो कार्य चित्रकार अपनी तूलिका एवं विभिन्न रंगों से करता है, वह कार्य लेखक शब्दों से करता है और शब्दों के ही माध्यम से वह वर्णित व्यक्ति या वस्तु को दूसरों के लिए आकर्षक बना देता है। प्रो० मोहनवल्लभ पन्त के अनुसार "शब्द-शिल्पी किसी अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति के बाह्य को देखता है और कुछ थोड़े से शब्दों में उसके सारे व्यक्तित्व को उतारकर रख देता है। विस्तृत प्रकृति को देखता है और जो भी पदार्थ सबसे अधिक प्रभावी लगता है उसका वैसा का वैसा चित्र वह शब्दों में बांध देता है।"[1] अतः साहित्य का वह रूप जिसमें किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष के भीतरी-बाहरी रूप का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि उसका एक चित्र-सा निर्मित हो जाय, रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है। शब्द-रेखाएं एक प्रकार से चित्र-रेखाएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं और ये रेखाएँ वस्तु, या व्यक्ति, का आकार-प्रकार पाठक के सम्मुख उपस्थित कर देती हैं।

शब्दचित्र के प्रमुखतया तीन तत्त्व होते हैं : (१) पात्र, (२) चरित्र, (३) जीवन-दर्शन।

जिस वस्तु या व्यक्ति का शब्दचित्र प्रस्तुत किया जाता है, वह पात्र कहलाता है। प्रो० मोहनवल्लभ पन्त ने अपनी कृति 'भारत के निर्माता' में भारत के उन महापुरुषों के शब्दचित्र अंकित किये हैं जिन्होंने अपने रक्त से स्वतंत्र भारत का इतिहास लिखा है। कुछ नमूने देखिये—

महामना मदनमोहन मालवीय : "शुभ्रवेश, पगड़ी, अचकन, सभी दुग्ध धवल। एक भी सिकुड़न या धब्बा जिनमे नहीं, सफेद चंदन का टीका—यह महामना मदनमोहन मालवीय का कभी न बदलने वाला परिधान था।"[2]

महात्मा गांधी : "उनका दुबला-पतला, तौल में सवा मन से भी कम शरीर मानो भारतीय राष्ट्र की दुबली-पतली काया थी। कपड़े के नाम पर एक लगोंटी और चादर मानो दरिद्रनारायण का जीता-जागता स्वरूप था। त्रिभुजाकार चेहरा, दन्तहीन बड़ा-सा मुख जिसमें सामने का केवल एक दांत शेष था जिस पर बहुधा गम्भीरता का साम्राज्य रहता था।"[3]

जवाहरलाल नेहरू : "लम्बा एकहरा शरीर, गौर वर्ण, प्रौढ़ व्यक्तित्व, युवक कहलाने में एकमात्र बाधक श्वेत केश, प्रतिभा और बुद्धि का द्योतक विशाल मस्तक, प्रभुत्व और समृद्धि का सूचक चौड़ा ललाट, तेजस्वी किन्तु स्नेह-भरे आयत नेत्र, चरित्र की दृढ़ता

---

१. आलोचनाशास्त्र, पृ० १५२
२. भारत के निर्माता, पृ० १०
३. वही, पृ० २६

प्रदर्शित करने वाली ऊँची नासिका, कला और सौन्दर्य की अभिरुचि व्यक्त करने वाले पतले-पतले ओष्ठ, पवित्र मुसकान से मिला हुआ सौम्य मुख, नख से शिख तक अपनी कीर्ति के समान ही निर्मल स्वच्छ श्वेत खादी के परिधान से सुशोभित, चिर युवक की-सी स्फूर्ति वाले ये पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं।"[1]

इन शब्दचित्रों में वर्ण्य व्यक्तित्व का चित्र पाठक के मानस-पटल पर रेखाचित्र के समान खिंच जाता है।

"तिलक की वाणी में ओज था। देश के उद्धार की भावना उन्हें विकल कर रही थी तथा उनकी रग-रग में राष्ट्रीयता प्रवाहित हो रही थी। उनका आत्मबल कितना ऊँचा था—"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।"[2] इन शब्दों से उनके अटूट विश्वास और आत्मबल का पता चलता है। समयानुकूल देश पर मर-मिटने वाले महापुरुष कम ही पैदा होते हैं। तिलकजी उन दिव्य-ज्योतियों में से हैं जिन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व बलिदान दिया। इसमें लेखक ने तिलक के व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन तथा चरित्र का सफल चित्रण किया है। प्रो० पन्त ही कूर्माचल के एकमात्र लेखक हैं जिन्होंने सुन्दर एवं सफल शब्दचित्र लिखे हैं।

नयी पीढ़ी के लेखकों में हिमांशु जोशी ने विनोबा भावे, दलाई लामा, सरदार पटेल के शब्दचित्र लिखे हैं।

१. भारत के निर्माता, पृ० ३८
२. वही, पृ० ३

बाल-साहित्य

हिन्दी का यह दुर्भाग्य रहा है कि बाल-साहित्य की ओर लेखकों तथा आलोचकों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाल-साहित्य की चर्चा तक न होना इस बात का द्योतक है कि यहाँ के विद्वानों ने भ्रमवश बाल-साहित्य को 'बचकाना साहित्य' ही समझ लिया था। प्रसन्नता की बात है कि पिछले कुछ वर्षों में न केवल अच्छे लेखकों ने बालकों के लिए साहित्य-रचना करने का प्रयास किया है बल्कि इस विषय पर कुछ विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान भी किए जा रहे हैं।

बाल-साहित्य बालकों के लिए लिखा गया साहित्य है। मूलत: यह साहित्य है और इसलिए साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए जितनी परिभाषाएं प्रचलित हैं वे बाल-साहित्य पर भी लागू होती हैं। स्वरूप, उद्गम, प्रेरणा, लक्ष्य, उपयोगिता आदि की दृष्टि से बाल-साहित्य और प्रौढ़-साहित्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है, अन्तर है तो केवल पाठकों की रुचियों तथा आस्वादन-क्षमताओं में। बाल-साहित्य के पाठक बालक होते हैं, जिन्हें अवस्था-क्रम से मोटे तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है—६ वर्ष से ९ वर्ष तक, ९ वर्ष से १२ वर्ष तक और १२ वर्ष से वयस्कता तक। इस प्रकार का वर्गीकरण बच्चों के मनोवैज्ञानिक विकास को देखते हुए किया गया है। ६ से ९ वर्ष तक के बालक की रुचियां और क्षमताएं एक विशेष सीमा में बंधी होंगी। उनका भाषा-संबंधी ज्ञान अल्प होगा। अत: उन्हें चित्रों की अधिक आवश्यकता पड़ेगी। उनका विषय-ज्ञान पास-पड़ोस के मनुष्यों, पशु-पक्षियों आदि तक सीमित होगा अथवा वे भूत-प्रेत, जादू-टोना, परी की कहानियों में रुचि लेंगे। अत: उनके लिए पशु-पक्षियों के गतिपूर्ण कथानक वाला साहित्य लिखना पड़ेगा। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे वर्ग के लिए लिखे गए साहित्य में बालकों की क्षमताओं एवं रुचियों के अनुसार परिवर्तन होते जाएंगे।

बाल-साहित्य बाल-मनोविज्ञान से संबंधित होना चाहिए। बालकों की रुचियों का जिसमें परिपुट हो ताकि वे आसानी से ग्रहण कर सकें। हितोपदेश, पंचतंत्र आदि पुस्तकें इसीलिए अमर हो गईं कि इनमें बड़े रोचक ढंग से नीति-कथाओं को बालकों के मानस तक पहुंचाया गया। ये कथाएं हजारों वर्ष बाद भी जीवित रहेंगी।

कुछ लेखक भूत-प्रेत, मारधाड़ आदि की कहानियों पर बल देते हैं, जिनका परिणाम आगे चलकर घातक ही हो सकता है, हितकर नहीं।

बालकों के भविष्य का निर्माण यदि असंतुलित और अयोग्य हाथों में दिया गया तो कितना घातक होगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। पाश्चात्य देशों में बाल-साहित्य को इसीलिए इतना अधिक महत्त्व दिया गया है। वहां बाल-साहित्य लेखकों का सम्मान अन्य साहित्यकारों से कम नहीं।

भविष्य की जितनी भी सम्भव समस्याएं हैं उन्हें बालकों के यथोचित विकास के द्वारा आज ही सुलझाया जा सकता है। मानवता, देश-प्रेम, कर्तव्य-परायणता, त्याग आदि

गुणों का समावेश बीज के रूप में यदि आज हुआ तो कल वे ही वटवृक्ष की तरह विकसित हो सकेंगे। संकीर्णता की भावनाएं, छोटे-छोटे स्वार्थ, अपने-पराये का भेद, आदि प्रवृत्तियां यदि बीज-रूप में ही समाप्त की गई तो आगे का पथ निष्कंटक रह सकेगा। महात्मा गांधी, शिवाजी, नेपोलियन आदि के निर्माण में उनकी मां की कहानियों का बहुत बड़ा हाथ है। उसी तरह यदि हम आने वाली सन्तति के विकास के लिए साहित्य के माध्यम से कुछ भी कार्य कर सकें तो यह बहुत बड़ी बात होगी।

बाल-साहित्य के सृजन में कूर्मांचल का योग किसी से कम नहीं रहा। जिस समय बाल-पत्रिकाएँ हिन्दी में बहुत कम प्रकाशित होती थीं कूर्मांचल (अल्मोड़ा) से बाल-पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। इन्द्रा प्रिंटिंग वर्क्स से बालकों में देश प्रेम, राष्ट्रीय गौरव तथा स्वतन्त्रता के लिए सर्वस्व बलिदान करने की भावना भरने के उद्देश्य से १९३५ ई० में 'नटखट' मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था।

प्रो० मोहनवल्लभ पन्त ने अपनी कृति 'सदाचार के सोपान' में पंचतंत्र के समान कथा के छल से बालकों को नीति का उपदेश दिया है।

मोहनचन्द्र जोशी सुधाकर ने अनेक बाल-कहानियां लिखी हैं। इनके कथानक प्रायः पशु-पक्षियों को लेकर चलते हैं। हिमांशु जोशी ने विशुद्ध बाल मनोविज्ञान पर आधारित रोचक उपन्यास 'तीन सितारे' आत्मकथात्मक शैली में लिखा है। एक छोटा-सा बालक टिंकू जिस ढंग से अपने चारों ओर के वातावरण को देखता है इसका इसमें वर्णन है। भूतेनी या चोर-डाकू या मारपीट वाले कथोपकथन बालकों के बाल-मस्तिष्क में भय और जुगुप्सा का संचार करते हैं। इसलिए इन बुराइयों को देखते हुए जहां तक बन सका है लेखक ने बचने का प्रयास किया है। पशु-पक्षी आदि जीवों के प्रति स्वाभाविक स्नेह, त्याग-बलिदान एवं सहयोग की भावना का प्रतिपादन किया गया है। छोटा-सा बालक किस ढंग से मानवीय गुणों की रक्षा करते हुए सत्य के लिए संघर्ष करता है एवं सफल होता है। सत्य की असत्य पर, न्याय की अन्याय पर, मानवता की अमानवता पर, शान्ति की अशान्ति पर विजय उपन्यास का मूल स्वर है।

'नीलम : हंसों का देश एक बच्चे की आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया हिमांशु जोशी का दूसरा बाल-उपन्यास है। नीलम एक छोटा-सा बच्चा, अपने मां-बाप का इकलौता बच्चा, कमल के फूल बटोरने के लिए एक तालाब में जाता है परन्तु कमल के फूलों से भरे तालाब में फिसलकर डूबने लगता है तो तैरते हुए हंस उसे बचा लेते हैं और उसे उठाकर मानसरोवर में ले जाते हैं। मानसरोवर में नीलम तालाब के राक्षस का संहार कर हंसों की सहायता करता है और उन्हें शत्रु-विहीन बनाता है। हंस उसे फिर मानसरोवर के ढेर सारे मोती सहित उसी तालाब के किनारे छोड़ जाते हैं और बालक अपने माता-पिता के पास चला आता है।

कहानी लोमहर्षक एवं रोचक है। बाल-बुद्धि का चमत्कार, सहजता और रोचकता इस लघु उपन्यास की विशेषता मानी जा सकती हैं परन्तु घटनाचक्रों के आधिक्य के कारण उपन्यास जासूसी लगने लगता है और साथ ही इसकी प्रायः सभी घटनाएँ अस्वाभाविक-सी प्रतीत होती हैं जिनका बाल-स्वभाव पर अच्छा प्रभाव न पड़कर उसे अधिक कल्पनाशील बना सकता है।

हिमांशु जोशी ने लगभग सौ से अधिक बाल-कहानियाँ और बालोपयोगी लोक-कथाएँ भी लिखी हैं।

मौलिक बाल-कहानी लिखना दुरुह कार्य है, फिर भी हिमांशु जोशी ने जो कहानियाँ लिखी हैं वे सभी बाल मनोविज्ञान पर आधारित हैं —ताकि बच्चे उन्हें सहजता से ग्रहण कर सकें। भूतैनी या चोर-डाकू-लुटेरों की कहानियों के दोषों से इन्हें मुक्त रखा है ताकि बालकों के विकास में ये कहानियाँ साधक हों, बाधक नही और उनके लिए प्रेरणाप्रद भी सिद्ध हों।

हिन्दी जगत् के यशस्वी नाटककार एवं उपन्यासकार पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त के सुपुत्र जीवनचन्द्र पन्त ने भी अनेक बाल-कहानियाँ और बालोपयोगी लोक-कथाएँ लिखी हैं। जीवनचन्द्र पन्त का लेखक-जीवन 'जादू का अनार' से आरम्भ होता है। इनकी अनेक बाल-कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है जिनमें 'मायाजाल, 'सन्त की थाली,' 'मृगकन्या' 'परीक्षा' 'मत्री-पुत्र,' प्रसिद्ध हैं। इनकी लोक-कथाएँ 'कुमाऊँ की लोक-कथाएँ'' नामक संग्रह में प्रकाशित हैं। ओकले और शैलेश मटियानी ने भी कुमाऊँ की लोककथाएँ लिखी हैं। परन्तु जीवनचन्द्र पन्त की लोक-कथाओं की एक बड़ी विशेषता यह है कि इन कथाओं की भाषा, भाव तथा विषयवस्तु अपने परवर्ती संग्रहों से सर्वथा भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है मानो लेखक ने अपने सामने नन्हे-नन्हे बालक-बालिकाओं को बैठाकर ये कथाएँ लिखी हों ताकि सहज बालबुद्धि इन्हें आसानी से ग्रहण कर सके। दूसरी विशेषता यह है कि इस संग्रह की सभी कथाएँ किसी न किसी उद्देश्य एवं आदर्श को लेकर चलती हैं अर्थात् ये कथाएँ बालकों को कथा के छल से सद्प्रेरणा एवं आदर्श प्रदान करती हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

कूर्मांचल में पत्र-पत्रिकाओं की परम्परा भी अति प्राचीन है। पं० जुगलकिशोर ने सं० १८८३ में 'उदंत मार्तंड' नाम से एक संवादपत्र निकाला, जिसे हिन्दी का सबसे पहला समाचारपत्र समझना चाहिए।[1] इस पत्र के बाद कूर्मांचल का प्रथम समाचारपत्र 'अल्मोड़ा अखबार' ही नियमित रूप से प्रकाशित हुआ, जिसे हिन्दी का दूसरा समाचार-पत्र कहा जा सकता है। 'अल्मोड़ा अखबार' का प्रकाशन सन् १८७१ में पं० बुद्धिवल्लभ पन्त के सम्पादन से हुआ।[2] भारतेन्दुकालीन हिन्दी के पचीस प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में 'अल्मोड़ा अखबार' का स्थान पाँचवा है।[3] 'अल्मोड़ा अखबार' के प्रमुख सम्पादकों में बुद्धिवल्लभ पन्त, इमतियाज अली, जीवानन्द जोशी, पं० सदानन्द सनवाल एवं बदरीदत्त पांडे के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुमाऊँ में प्रेस खोलने तथा समाचारपत्र निकालने का श्रेय पं० बुद्धिवल्लभ पन्त को है जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से कूर्मांचल जैसे दुर्गम, यातायात एवं संचार की सुविधाओं से शून्य क्षेत्र में समाचारपत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। बदरीदत्त पांडे के सम्पादनकाल में 'अल्मोड़ा अखबार' विशेष रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रचार का प्रमुख अस्त्र बनने लगा। 'अल्मोड़ा अखबार' के कुछ संचालक तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को नाराज करना नहीं चाहते थे। परिणामतः संचालक मंडल के राष्ट्रवादी पुरुषों ने तत्कालीन क्षेत्रीय कांग्रेस नेता श्री बदरीदत्त पांडे के सम्पादकत्व में सन् १९१८ से 'शक्ति' नाम का साप्ताहिक समाचारपत्र निकाला और ब्रिटिश समर्थकों ने 'अल्मोड़ा अखबार' जारी रखा जो सन् १९१८ में बन्द हो गया। 'शक्ति' समाचारपत्र के सम्पादक-रूप में बदरीदत्त पांडे आज भी प्रसिद्ध हैं। पांडेजी कांग्रेस के लोकप्रिय नेता रहे हैं और आज भी हैं। उनके सम्पादन में 'शक्ति' का स्थान उस काल में किस प्रकार का रहा होगा, इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 'शक्ति' के ही द्वारा सम्पूर्ण कूर्मांचल में एक सशक्त राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास हुआ। इसी पत्र ने अनेक राष्ट्रीय नेताओं का निर्माण किया। दुर्गादत्त पांडे, मनोहर पन्त, मथुरादत्त त्रिवेदी इस पत्र के सम्पादक रहे हैं। आजकल धर्मानन्द पांडे इस पत्र का सम्पादन कर रहे हैं।

सन् १९६० तक कूर्मांचल प्रदेश में तथा कूर्मांचल-वासियों द्वारा संचालित लगभग २८ साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुई हैं जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४२७

२. कुमाऊँ का इतिहास, पृ० १५१

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४५६

(क) कूर्मांचल से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ

समाचारपत्र का नाम	प्रकाशन-वर्ष	पत्रिका का स्वरूप	प्रकाशन-स्थान	सम्पादक
१. अलमोड़ा अखबार	सन् १८७१ से १९१८ तक	साप्ताहिक	अलमोड़ा	१. बुद्धिवल्लभ पन्त २. इमतियाज़ अली ३. लीलानंद जोशी ४. विष्णुदत्त जोशी ५. सदानन्द सनवाल ६. बदरीदत्त पांडे
२. कूर्मांचल समाचार	सन् १८९३-९४	साप्ताहिक	अलमोड़ा	बाबू देवीदास
३. शक्ति	१९१८ई०	साप्ताहिक	अलमोड़ा	१. बदरीदत्त पांडे २. दुर्गादत्त पांडे ३. मनोहर पन्त ४. मथुरादत्त त्रिवेदी ५. धर्मानन्द पांडे
४. हिमालय	१९१८ ई०	मासिक	रानीखेत	१. सुमित्रानन्दन पन्त २. गोविन्दवल्लभ पन्त
५. कूर्मांचल मित्र	सन् १९१८-२०	साप्ताहिक	अल्मोड़ा	देवीदत्त तिवारी
६. ज्योति	१९१९ ई०	साप्ताहिक	अल्मोड़ा	१. लाला सिद्धदास २. भवानीदत्त जोशी
७. जिला समाचार/ कुमाऊं कुमुद	१९२२ ई०	साप्ताहिक	अल्मोड़ा	१. प्रेमवल्लभ जोशी २. वसन्तकुमार जोशी
८. क्षत्रिय हितैषी	सन् १९२८-२९	साप्ताहिक	नैनीताल	
९. स्वाधीन प्रजा	१९३० ई०	साप्ताहिक	अल्मोड़ा	मोहन जोशी
१०. समता	१९३४ ई०	साप्ताहिक	अल्मोड़ा	
११. अचल (कुमाऊँनी बोली का पत्र)	सन् १९३७-३९	मासिक	अल्मोड़ा	१. जीवनचन्द्र जोशी २. तारादत्त पांडे
१२. पताका		साप्ताहिक	अल्मोड़ा	शोबनसिंह जीना
१३. नटखट (सचित्र बालपत्रिका)	१९३५ ई०	मासिक	अल्मोड़ा	इन्द्रा प्रिंटिंग वर्क्स
१४. शिल्पी	सन् १९४८-४९	त्रैमासिक	अल्मोड़ा	विपिनचन्द्र जोशी
१५. कुमाऊं राजपूत	१९४९ ई०	साप्ताहिक	अल्मोड़ा	शेरसिंह हीत
१६. पर्वतीय	१९५२ ई०	साप्ताहिक	नैनीताल	विष्णदत्त

१७. हिमालय		साप्ताहिक	नैनीताल	श्यामाचरण पन्त
१८. जागृत जनता		साप्ताहिक	नैनीताल	पीताम्बर पांडे
१९. बिगुल		साप्ताहिक	काशीपुर	रामदत्त जोशी
२०. रूपा	--	मासिक	अल्मोड़ा	१. कैलाश पुराणी २. जीवनलाल शाह
२१. उत्तराखंड ज्योति	१९६१ ई०	साप्ताहिक	पिठौरागढ़	रमेशचन्द्र पांडे

(ख) कूर्मांचल से बाहर कूर्मांचलवासियों द्वारा संचालित पत्र-पत्रिकाएँ

१. कूर्मांचल केसरी	१९३० ई०	साप्ताहिक	कलकत्ता	डॉ० हेमचन्द्र जोशी
२. रूपाभ	१९३१ ई०	मासिक	कालाकांकर	सुमित्रानन्दन पन्त
३. राजकुमार	—	मासिक	अजमेर	भोलादत्त जोशी
४. सुधाकर	—	मासिक	लाहौर	भोलादत्त जोशी
५. सत्ययुग	—	मासिक	पटना	इलाचन्द्र जोशी
६. शैलजा	१९५८ ई०	मासिक	नई दिल्ली	शम्भूप्रसाद शाह
७. हिमकेसरी	—	साप्ताहिक	नई दिल्ली	शोभलता जोशी

उपरोक्त हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'निगार' (उर्दू) और 'लेक रिव्यू' (अंग्रेजी) भी कूर्मांचल से प्रकाशित हुए हैं। उपरोक्त पत्र-पत्रिकाओं में से अधिकांश थोड़े समय के बाद बन्द हो गईं। शक्ति, जागृत जनता, बिगुल, पर्वतीय, उत्तराखंड ज्योति और हिमकेसरी का प्रकाशन अविराम गति से आज तक चल रहा है। अतः यह एक अकाट्य तथ्य है कि कूर्मांचल के पत्रों का राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के साथ-साथ राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में भी अन्यतम योगदान रहा है।

अनूदित साहित्य

"एक भाषा के वाङ्मय को दूसरी भाषा में यथासाध्य, यथाभाव उतारना अनुवाद कहलाता है।"[1] अनुवाद कार्य के लिए पहली शर्त यह है कि अनुवादक को दोनों भाषाओं का पूर्ण ज्ञान हो और तकनीकी विषयों के अनुवादक को भाषाओं के ज्ञान के साथ-साथ उस विषय का भी अच्छा ज्ञान हो। दूसरी शर्त यह है कि अनुवादक की मूलपाठ के प्रति निष्ठा हो। जब तक अनुवादक मूलपाठ को हृदयंगम न कर लेगा तब तक वह सशक्त अभिव्यक्ति में मूलभाव को शब्दों के रुचिकर परिधान में प्रस्तुत न कर सकेगा। तीसरी शर्त यह है कि अनुवादक मूल लेखक की अपेक्षा भाषाविद् हो ताकि वह भावानुकूल शब्द-रचना करने में समर्थ हो सके। सफल अनुवाद वही है जो किसी दूसरी कृति का रूपान्तर होते हुए भी मौलिक प्रतीत हो। यदि अनूदित कृति मूल पाठ का शब्दानुवाद होगा तो उसमें मौलिकता का गुण नहीं झलकेगा, भाषा कृत्रिम-सी प्रतीत होगी और भाव-प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होगा इसलिए अनुवाद को मौलिक परिधान देने के लिए मूल पाठ का भावानुवाद होना आवश्यक है। गद्यात्मक साहित्य के सफल अनुवाद के लिए साहित्यकार होना आवश्यक नहीं अर्थात् एक अच्छा साहित्यकार ही अच्छा अनुवादक बन सकता है यह आवश्यक नहीं। परन्तु छन्दोबद्ध कृति के छन्दोबद्ध अनुवाद में अनुवादक का कवि होना आवश्यक है।

भारतीय वाङ्मय में अनुवाद की कला अति प्राचीन है। प्राचीन काल में काव्य की टीकाएं लिखी जाती थीं। टीकाएं समास-सन्धि प्रधान काव्यों का सरल बोधगम्य और स्पष्ट भाषा में अनुवाद होता था। आधुनिक युग की अनुवाद-[illegible] को हम प्राचीन [illegible] की टीका पद्धति में स्वीकार कर सकते हैं परन्तु टीका पद्धति में टीकाकार [illegible] करण की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है और अनुवादक को [illegible]। हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रारम्भ में अनुवाद कार्य को 'जूठी पत्तल चाटने' की प्रवृत्ति कहकर हेय दृष्टि से देखा जाता था, परन्तु अब इसका महत्त्व काफी बढ़ गया है। वैज्ञानिक अनुसंधानों, अन्य भाषाओं की समृद्धिशीलता की जानकारी प्राप्त करने का माध्यम मात्र अनुवाद ही है। इसलिए मौलिक साहित्य-सृजन की अपेक्षा अनुवाद का महत्त्व किसी भी प्रकार कम नहीं।

अनूदित साहित्य-क्षेत्र में भी कूर्मांचलीय विद्वानों का पर्याप्त योगदान रहा है। कूर्मांचल के विद्वानों ने संस्कृत से कुमाऊँनी, हिन्दी से अंग्रेजी, अंग्रेजी से हिन्दी तथा भारतीय प्रादेशिक भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद किया है। पं० चिन्तामणि जोशी ने दुर्गाचंडी पाठ, पं० ज्वालादत्त जोशी ने दशकुमारचरित, लीलाधर जोशी ने मेघदूत, श्यामचरण पंत ने श्रीमद्भगवद्गीता और पूर्णानन्द भट्ट ने गीत-गोविन्द का अनुवाद कुमाऊँनी भाषा-पद्यों में किया है। पं० गंगादत्त उप्रेती ने 'प्रोवर्ब्स एण्ड फोक-लोर ऑफ़ कुमाऊँ एण्ड गढ़वाल' तथा लोककवि कृष्ण पांडे के कुमाऊँनी गीतों का अनुवाद अंग्रेजी में किया है। यह अनुवाद 'इंडियन

---

१. अनुवाद कार्य का महत्त्व और उसकी कठिनाइयाँ, [illegible] : वर्ष एक, अंक तीन, पृ० ५२

एंटीक्वरी' के जरनलों में संकलित है। 'फारस के महाराज की रानी इस्तार का इतिहास' श्री गंगादत्त उप्रेती की अनूदित कृति है। प्रो० हेमचन्द्र जोशी ने जर्मन भाषा के रिचर्ड पिशेल कृत 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' तथा मैक्समूलर के 'लेक्चर्स ऑन दी लैंग्वेज' का हिन्दी में अनुवाद किया। अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित कृतियों में इलाचन्द्र जोशी ने मोपासां तथा चेखव की लोकप्रिय कहानियों का अनुवाद 'मोपासां की कहानियां' तथा 'चेखव की कहानियाँ नामक संग्रहों में किया है। जोशीजी ने गोर्की के संस्मरणों का अनुवाद भी किया है जो 'गोर्की के संस्मरण' नामक पुस्तक में हैं। प्रो० चन्द्रदत्त जोशी ने स्टीफन ज्वीग के उपन्यासों का अनुवाद 'राजनेता' और 'नौ महीने का बादशाह' नाम से किया है। शोभाचन्द्र जोशी ने स्टीफन ज्वीग की पाँच कहानियों का अनुवाद 'शतरंज का खेल' नामक कहानी-संग्रह में किया है। भारत की प्रादेशिक भाषाएँ भी कूर्माचलीय विद्वानों से अछूती नहीं रहीं। हिमांशु जोशी ने टालस्टाय के बाल-नाटकों का रूपान्तर किया जो 'नई पौध : नई सूझ' नाम से प्रकाशित हुए। प्रो० मोहनवल्लभ पन्त ने मराठी की कहानियों, रेखाचित्रों तथा गद्यगीतों का अनुवाद किया है जो 'कड़ुवी शक्कर' नामक पुस्तक में संगृहीत है। काव्य-क्षेत्र में सुमित्रानन्दन पन्त ने उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद 'मधुज्वाल' नामक काव्य-संग्रह में किया है। हरिकृष्ण त्रिवेदी ने बंगला के प्रसिद्ध लेखक श्री प्रबोधकुमार सान्याल की बंगला पुस्तक 'महाप्रस्थानेर पथे' का हिन्दी में 'महाप्रस्थान के पथ पर' नाम से अनुवाद किया। इससे स्पष्ट है कि कूर्माचलवासी सरस्वती के वरदपुत्र, प्रतिभा-सम्पन्न, प्रकाण्ड पंडित ही नहीं अपितु बहुभाषा विद् भी रहे हैं।

उपरोक्त अनूदित कृतियों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये कृतियाँ मूल पाठ के शब्दानुवाद नहीं, जिससे भाषा में कृत्रिमता एवं भावों में अवरोध उत्पन्न हो गया हो। प्रस्तुत कृतियाँ अनुवादकों के मूल पाठ के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं मूल पाठ में व्यक्त भाव-धारा के गहन अध्ययन के प्रतिफल हैं। इसीलिए ये कृतियां अनूदित होते हुए भी मौलिक हैं। इनकी भाषा में सरसता एवं स्वाभाविकता, भावों की स्पष्टता एवं सम्बद्धता, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग अनूदित भाषा की प्रकृति के अनुकूल है, जिससे ये कृतियाँ मौलिक-सी प्रतीत होती हैं और यही सरल अनुवाद की विशेषताएँ हैं।

उपसंहार

लगभग आठ हजार वर्ग मील के क्षेत्र में फैला हुआ कूर्मांचल प्रदेश यातायात की सुविधाओं से विहीन, बीसवीं शताब्दी की भौतिकवादी संस्कृति से अछूता और शिक्षा की सुविधाओं के अभाव में तथा दारिद्रय के कारण उच्च शिक्षा से भले ही वंचित रहा हो परन्तु यह देवभूमि वीर-प्रसूता होने के साथ-साथ चिरकाल से विद्वत्-जन-प्रसूता भी रही है।

हिन्दी साहित्य जगत् जिस समय देश की दुर्दशा से विमुख होकर नारी के नख-सिख-चित्रण में व्यस्त था, कविगण राजाओं के मनोविनोद के साधन मात्र बन चुके थे, उस समय कूर्मांचल के प्रथम कवि 'गुमानी' ने सुप्त देश को जगाने के लिए राष्ट्रीय चेतना का स्वर फूंका। इस विचारधारा को गुमानी के परवर्ती कवियों ने आगे बढ़ाया। परिणाम-स्वरूप कूर्मांचल में राष्ट्रीयता की ऐसी आंधी आयी जिसने ब्रिटिश सरकार की नींव हिला दी। इससे आतंकित होकर अंग्रेजी राज्य ने कुमाऊंनियों का सेना-प्रवेश व महत्त्वपूर्ण पदों पर उनकी नियुक्ति निषिद्ध कर दी। राष्ट्रीय-चेतना-प्रधान काव्य में जैसी अविरल धारा कूर्मांचल में पायी जाती है वैसी अन्यत्र नहीं मिलती है।

पन्त-प्रसाद-निराला छायावादी त्रयी हैं परन्तु खड़ी बोली को कोमल-कान्त-पदावली प्रदान करने तथा प्रकृति का आलम्बन के रूप में वर्णन करने वालों में पन्त का ही नाम पहले आता है। "हरिऔध" तथा मैथिलीशरण गुप्त प्राचीनता की ओर गए हैं परन्तु हिन्दी-खड़ी बोली में प्रौढ़ता न ला सके, परन्तु सुमित्रानन्दन पन्त की कविता अपनी कोमल-कान्त पदावली, नये छन्द, नये विधान, नई प्रकृति को लेकर आयी। अतः इस युग-त्रयी में पन्त-प्रसाद-निराला क्रम रख सकते हैं।

गोविन्दवल्लभ पन्त हिन्दी के यशस्वी नाटककार ही नहीं हैं अपितु उपन्यासकार एवं कहानीकार भी हैं। इन्होंने सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सभी प्रकार के उपन्यासों की रचना की है। 'गदारों' और 'जूनिया' को आंचलिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। कूर्मांचल के जीवन को अपने उपन्यासों की विषयवस्तु बनाने वालों में वे प्रथम उपन्यासकार हैं। ठेठ आधुनिक ढंग की अतियथार्थवादी आंचलिक भाषा का प्रयोग शैलेश मटियानी, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', हिमांशु जोशी आदि ने किया है। यदि इलाचन्द्र जोशी का मनो-वैज्ञानिक उपन्यासों में अपना निजी स्थान है तो यमुनादत्त वैष्णव का वैज्ञानिक उपन्यासों एवं कहानियों में।

गोविन्दवल्लभ पन्त ने साहित्यिक और रंगमंचीय, दोनों प्रकार के नाटक लिखे हैं। 'वरमाला' में एक विचित्र नाटकीय कौशल है। विषयवस्तु की दृष्टि से उन्होंने सभी प्रकार के नाटक लिखे हैं। पन्त ऐतिहासिक नाटकों में प्रसाद के समीप नहीं पहुंच पाते हैं परन्तु नाटक का प्रमुख तत्व है अभिनेयता और प्रसाद इसमें पन्त के समीप नहीं पहुँच पाते हैं।

कूर्मांचल की पत्र-पत्रिकाओं का भी हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाने में बहुत हाथ रहा है। 'अल्मोड़ा अखबार' १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ। अल्मोड़ा जैसे गिरि-कन्दराओं के दुर्गम-स्थान से समाचारपत्र का निकलना गौरव की ही बात हो सकती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इस समाचारपत्र की भाषा तत्सम-प्रधान थी। 'उदंड-मार्तंड' से इसकी भाषा अधिक शुद्ध एवं परिष्कृत थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में 'अल्मोड़ा अखबार' और 'शक्ति' का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

इस क्षेत्र की महिलाओं की भी हिन्दी-साहित्य को कम देन नहीं है। तारा पांडे इस प्रदेश की ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी काव्य-जगत् की यशस्विनी कवयित्री हैं। इन्होंने निराशा के गीत गाये है तो कुमारी कान्ति त्रिपाठी तथा उमा जोशी ने विरह के गीत गाये हैं। इन शैल-बालाओं ने अपने कण्ठस्वर से हिन्दी-काव्य को एक नई वेदना, नई टीस दी है। गौरा पन्त 'शिवानी' की 'लाटी' हिन्दी की उच्च कोटि की कहानी है।

यह तालिका, जो बड़े संकोच और दबी जबान से दी गई है, गौरव की वस्तु हो सकती है, घमंड की नहीं कि राष्ट्रभाषा के कलेवर की श्रीवृद्धि में कूर्मांचल के विद्वानों का प्रमुख हाथ रहा है, इसमें किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता।

परिशिष्ट

(क) सन् १९६० के बाद की रचनाएँ

(ख) चर्चित तथा सहायक पुस्तकें

(क) सन् १९६० के बाद की रचनाएं

हरी बांसुरी सुनहरी टेर (सन् १९६३) : श्री सुमित्रानन्दन पन्त की शृंगाररस-प्रधान रचनाओं का संग्रह है। इससे पूर्व पन्त जी के ऐसे संग्रह नहीं है जिनमें एक ही विषय अथवा रस की प्रधानता रही हो। प्रस्तुत संग्रह मे कुछ नई रचनाओं के अतिरिक्त अधिकांश रचनाएं पिछले काव्य-संग्रहों से संकलित की गई है। प्रस्तुत संग्रह मे कवि के शृंगाररस-सम्बन्धी विचार-दर्शन का ऐतिहासिक परिचय मिलता है।

लोकायतन (सन् १९६४) : पन्त जी का प्रथम महाकाव्य। इसे दो खण्डों—बाह्य परिवेश तथा अन्तश्चैतन्य—में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड का प्रारम्भ एक अन्तर्दर्शन से होता है जिसमें रामकथा के पात्रों को लेकर एक व्यतीत सांस्कृतिक वृत्त और आने वाले युग की सांस्कृतिक चेतना, दोनों की ओर सूक्ष्म इंगित किया गया है। इसमें कवि वाल्मीकि के रूप में नये कल्प के लिए एक नया संदेश देने की अभिज्ञा व्यक्त करता है। भू-चेतना सीता पृथ्वी पर संकट के बादल देखकर विचलित है और अपने भविष्य को जैसे फिर से आदिकवि के द्वारा साकार करना चाहती है। वाल्मीकि के रूप में कवि युग-भू की वर्तमान दशा और मानव-हृदय की सीमाएं देख रहा है। उससे ही महाकाव्य आरम्भ होता है।

स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समय देश की जो स्थिति थी, उसका चित्रण करते हुए कवि ने व्यक्त किया है कि गत संस्कारों से मानव-मन को मुक्त करने के लिए देश की स्वतन्त्रता आवश्यक है। इसमें देश की स्वतन्त्रता के लिए गांधीजी के प्रयत्नों का चित्रण एवं गांधी-दर्शन का प्रभाव मिलता है। तदुपरान्त गांधी जी का शरीर-त्याग एवं स्वातन्त्र्योत्तर काल में देश के सांस्कृतिक एवं सामाजिक विघटन का वर्णन है।

'मध्य बिन्दु : ज्ञान' सर्ग में प्राचीन दर्शनों की सीमाएं बताई गई हैं। इस सर्ग के अन्त में तथा इससे पहले के 'मधु स्पर्श' सर्ग तथा अन्यत्र भी राग तत्त्व को शुद्ध करने की कामनामुक्त होने और स्त्री-पुरुष के सच्चे सम्बन्धों पर विस्तार से कवि ने बताने का प्रयास किया है।

दूसरे खण्ड में 'पराद्वार', 'ज्योतिद्वार' से कवि के जीवन का मुख्य संघर्ष आरम्भ होता है, जिसमें मध्ययुग की अस्मिता को माधव गुरु का रूप दिया है। पुस्तक की भूमिका में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि इस महाकाव्य के चरित्र केवल मानव-चेतना के पालकी-वाहक भर हैं। अतः माधव गुरु को जैसे अनेक आलोचकों ने किया है निराला मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता। हो सकता है कि निराला और कवि के व्यक्तिगत सम्बन्धों में कवि को निराला में भी कुछ ऐसे तत्त्व दिखाई दिए हों जो मध्ययुग की अस्मिता से उत्पन्न हुए हों। 'कलाद्वार' में एक संस्कृति-केन्द्र की स्थापना होती है। यहां पर शंकर, हरि, श्री, माधो तथा अनेक पात्रों की सहायता से जीवन, कला, संस्कृति, साहित्य, साधना, अध्यात्म, मानव-सम्बन्धों आदि के बारे में जो अनेक सत्य हैं उन्हें

अत्यन्त सूक्ष्म रूप से व्यक्त किया गया है। इसमे माधो और वंसी के संघर्ष द्वारा कवि ने सत्य के साधक के आंतरिक तथा बाह्य दोनों संघर्षों की अभिव्यक्ति की है और इस महाकाव्य की भाषा, शैली और काव्यात्मकता तीनों ही यहां पर अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गए है।

'ज्योतिद्वार' के अन्त तक पहुंचते-पहुंचते हम देखते है कि कवि के सारे पात्र जैसे स्वयं ही मध्ययुग के संस्कारो से आबद्ध होने के कारण एक सीमा के आगे बढ़ने मे असमर्थ रहे हे। कवि ने इंगित किया है कि आंशिक आणुविक युद्ध से कला-केन्द्र और सुन्दरपुर ध्वस्त हो जाते है और कवि भी—

और उसी क्षण छोड़ केन्द्र प्रांगण
अंतर्धान हुआ वह त्रिभुवन में,
बढ़ता रहा पथिक शाश्वत पथ का
कार्य समापन कर भव जीवन में!

(लोकायतन, पृ० ६०६)

यहां पर मेरी की मर्मवाणी में कवि ने उस चेतना को व्यक्त किया है जो उसके भीतर कार्य कर रही है—

तुम क्या हो, कवि, जान गई अब मे,
मर्त्य वेणु में स्वर्ग प्रीति की लय,
नव जीवन रागोल विश्व उर में,
भरने आए—जन भू मंगलमय!

(लोकायतन, पृ० ६०६)

यहां पर विश्वप्रेम का अनुभव कवि को पूरी तरह से होता है और अन्तिम सर्ग 'उत्तर स्वप्न : प्रीति' में रस संस्कृति कहकर कवि ने काम शुद्ध-प्रेम से निर्मित सृष्टि का स्वप्न दिया है। सारे पात्रों का चित्रण समाप्त हो जाता है और केवल मेरी (जो बाद में कवि की चेतना के साथ संयुक्त हो जाने के कारण संयुक्ता कहलाई) और अतुल ही आगे बढ़ पाते हैं। ध्वंस के बाद ये नई सृष्टि के पात्र बनने योग्य हैं। अन्त में अतुल भी इस प्रभुमय सत्ता अर्थात् विश्वसृष्टि को अतिक्रमण करने वाले परम चैतन्य की जिज्ञासा में आगे बढ़ता हुआ ज्योति में विलीन हो जाता है। केवल संयुक्ता ही कवि का कार्य आगे बढ़ाने के लिए बची रहती है और अन्त में वह कवि की चेतना के साथ संयुक्त होकर विश्व भर में छा जाती है। 'उत्तर स्वप्न' में अधिकतर पात्र प्रकृति से ही लिए गए हैं (केवल दो ही पात्र मानव है) जैसे हिमालय, मछलियां, हिरण, पशु-पक्षी आदि जो कि मनुष्य के अहंकारमूलक विचारों से मुक्त है। इस नई सृष्टि में प्रकृति और मनुष्य सभी विषाद और अहंकार से मुक्त होकर विश्वप्रेम द्वारा संयुक्त हो गए है।

प्रस्तुत महाकाव्य में जीवन की अनेकानेक समस्याओं पर कवि ने इतना सूक्ष्म और गहन दर्शन व्यक्त किया है कि स्वाभाविक ही है अभी बहुत समय तक पक्षधर आलोचकों का मन इसे ग्रहण नहीं कर सकेगा।

किरण वीणा (सन् १९६६) : पन्तजी की समय-समय पर लिखी गई विविध विषयक नवीनतम रचनाओं का संग्रह।

पुरुषोत्तम राम (सन् १९६७) : इस खण्डकाव्य में कवि ने अपने जीवन-चरित्र के माध्यम से देश की स्वतन्त्रता-पूर्व से लेकर आज तक की समसामयिक समस्यायों, आन्दोलनों, विचारधाराओं, विघटनकारी तत्त्वों आदि का चित्रण किया है।

गोविन्दचन्द्र पाडे की १०५ कविताओं का प्रथम संग्रह 'अग्निबीज' (१९६६ ई०) है। इनकी ९२ कविताओं का दूसरा कविता-संग्रह 'क्षण और लक्षण' (१९६७ई०) है। इन दोनों संग्रहों के ग्रध्ययन के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गोविन्दचन्द्र पांडे दूसरे कूर्माचलीय कवि है जो सुमित्रानन्दन पन्त के बाद हिन्दी काव्यधारा को गति दे रहे है। भाषा की दृष्टि से भी पाडेजी को सुमित्रानन्दन पन्त की परम्परा का कवि माना जा सकता है।

आंगन में वंशी-रव अस्फुट
रच देता मानो वृन्दावन
सुन पड़ता यमुना का कल-कल
बकुल-पुलक शारद-ज्योत्स्ना-तन।

(अग्निबीज पृ० ८१)

अलक्षित स्वप्न - छल—
वीथियाँ प्रचरित ।

(अग्निबीज, पृ० ८०)

पांडेजी की शब्दशक्ति और प्रांजलता वैसी ही है जो पन्त जी की भाषा में होती है लेकिन वैसी मृदुलता नहीं है। इसलिए इनकी कुछ कविताएं साधारण पाठकों के लिए बोझिल-सी हो गई है। पांडे जी के संदर्भ में हम उस पाठक की बात करते हैं जो काव्य में रूचि रखता है। अतः काव्य के पाठक से यह आशा रखी जा सकती है कि वह पांडे जी के काव्य-तट को छू सके। लेकिन—

पोषित सावित्र रश्मियों से पादपाग्र वन
असंख्य चिड़ियों की चहचह समीर में सम्प्लुत
उपत्यकाएं ऐन्द्रधनुष फूलों से सुरभित
अधित्यकाएं सौम नन्दि-सी हिमानियों से
मुखर जाह्नवी कूलंकष भरती सैन्धव तल।

(क्षण और लक्षण, पृ० ७६)

इन पंक्तियों की भाषा में पांडित्य अधिक है और काव्यात्मकता कम। इसलिए इस कोटि की कविताएं प्रबुद्ध पाठकों को दुरुह प्रतीत हो सकती हैं। नई कविता के 'स्ट्रक्चर' बनाने में पांडे जी ने आज के कवियों से कन्धा अवश्य मिलाया है, फिर भी उनका भावबोध अभी छायावादी है—

मूढ पतिंगों-से हम इन्द्रिय-दीप विमोहित
या जटायु-से हुए असह्य ज्योतिषा अंग्वित

(अग्निबीज, पृ० ६)

परन्तु 'धन्वाकृ' (अग्निबीज, पृ० ७) के समान कुछ कविताएँ अपवाद रूप से ऐसी हैं जो नई कविता के बहुत निकट हैं अथवा नई कविता हैं। शायद ये ही कविताएँ उन्हें आधुनिक कवियों की पंक्ति में खड़ा कर सकेंगी।

'उष्मा' कुमारी कान्ति त्रिपाठी का दूसरा गद्यगीत-संग्रह है। इस संग्रह में भी पूर्व गद्यगीत संग्रह 'जीवन-दीप' के समान विरह-भावना की प्रधानता है। शैली तथा अभि-व्यंजना की दृष्टि से यह संग्रह सफल कृति है।

'वसंत और पतझर' (१६५८ ई०) और 'सफेद चिड़ियां' (१६५६ ई०) के बाद विनोदचन्द्र पांडे के दो कविता-संग्रह 'लाल फूलों की टहनी' (१६६१ ई०) और 'कृष्णपक्ष' (१६६५ ई०) प्रकाश में आए हैं। सभी काव्य-संग्रहों के अध्ययन के पश्चात ऐसा लगता है कि पांडेजी रोमांटिसिज्म के कवि हैं और इन पर यीट्स, कीट्स, इलियट आदि पाश्चात्य कवियों का प्रचुर प्रभाव है। कवि 'हाइकू शैली' की छोटी-छोटी नई कविता से भी प्रभावित प्रतीत होता है। अधिकांश कविताएं प्रेम-भावना से ओतप्रोत हैं। परन्तु यह प्रेम न तो पाठकों के हृदय में गुदगुदी पैदा करता है और न जायसी, कबीर, सूर, तुलसी की प्रेम भावना की तरह अलौकिक है बल्कि इनका प्रेम पूर्णतः लौकिक है, मांसल है—

जब भी मेंह की बूँदें
मुख पर खेलेंगी
जब भी देखूँगा
किसी दुबली लड़की को
बेसुध हँसते
लौटेगा तुम्हारी स्मृति का ज्वार
ओ लापरवाह—

(लाल फूलों की टहनी, पृ० १३)

कवि के पास प्रेम है, परन्तु प्रेम की भाषा नहीं है इसीलिए सारी कविताओं को पढ़ लेने के बाद पाठक उल्लसित नहीं होता। कहीं-कहीं कवि अति उदार और अति मानवीय हो गया है—

किसी ने देखी जात बिरादरी
किसी ने मुझे कहा शराबी
"ये तो अरे प्यार करता है
न जाने किसका चरित्र कैसा है"

(लाल फूलों की टहनी, पृ० १२)

या

चन्द्रा, तुम्हारे हों ढेर से बच्चे
एक-दो नहीं—कम से कम
दस तो लड़के ही लड़के

+ + +

और यदि कोई निकम्मा
लिखने लगे कविताएं
तो चन्द्रा, उसे भी निभाना

(लाल फूलों की टहनी, पृ० ११६)

ऐसी उक्तियां कवि की काव्य-प्रतिभा का मजाक उड़ाती लगती है। 'लाल फूलों की टहनी' या 'सफ़ेद चिड़ियाँ' संग्रहों की अधिकाश कविताएं स्थूल या मांसल है—

तुम्हें किस तरह बाँध सकूँगी ?
सुख की सीमा में।
तुम्हारी राह में सदा ये
दो उरोजों के शिखर
न तान सकूँगी—

(सफेद चिड़ियाँ, पृ० ८४)

और कवि कविताएं क्यों लिखता है इसका भी स्पष्टीकरण करते हुए वह कहता है—

छपेंगी मेरी कविताएं
मुझे एक नया सा सुख होगा
जब जब खोलोगी मेरी किताब
मेरा मन तुम्हें देखता होगा

(सफेद चिड़ियाँ, पृ० २८)

अब हम आधुनिकता के संदर्भ में सोचते हैं तो पांडे जी के ये चारों काव्य-संग्रह अपने अस्तित्व का बोध नहीं करा सकते हैं। 'मछली सी फड़फड़ाती चाल' या 'हेलन, तुम्हारे मुख में घुलें हजार बतासे' जैसे अटपटे प्रयोग खटकते हैं। यदि हम पांडे जी के कवि-जीवन का प्रारम्भ सन् १९५० के लगभग भी मानें तो भी हिन्दी कविता तब से अब तक कई करवटें बदल चुकी है। कई घेरों को तोड़ चुकी है। आज वह अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर खड़ी है। उसमें निजत्व की भूख कम, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की प्यास अधिक है। लेकिन पांडे जी अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर पाये, नहीं तो इनका प्रथम काव्य-संग्रह 'वसंत और पतझर' विपुल सम्भावनाओं को लेकर आया था—

कल कोई नई बात न होगी
बस मैं जीता रहूँगा,
जीवन वहीं से शुरू होगा
जहां आज सोऊंगा
वहीं रहेगी कल भी
जीने का डर, मेहनत
रो लेने की इच्छा
जीने भर की फुर्सत

(वसंत और पतझर, पृ० १५७)

इनकी भाषा में नये प्रयोग या बिम्बों का सर्वथा अभाव है। कुल मिला कर पांडे जी की कविता लौकिक प्रेम से संत्रस्त है और शायद यही उनकी कविता का आधार भी है।

मनोहरश्याम जोशी ने कुछ कविताएं 'कूर्मांचली' नाम से लिखी हैं। वस्तुतः हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में इनका आविर्भाव प्रगतिकाल और प्रयोगवाद काल के सन्धिकाल में

हुआ। इसलिए इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रगतिवादी कविता के गुण मिलते है। कालान्तर में ये नये भावबोध को लेकर नई कविता की रचना करने लगे। इनकी कविताएं 'कल्पना', 'प्रतीक' आदि प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है।

देवेश ठाकुर, विनोद पन्त, शैलेश मटियानी, कुमारिल पन्त, रमेश शुक्ल, ललित जोशी, हीरावल्लभ तिवारी, बलवन्त मनराल, प्रदीप पन्त, कुंकुम जोशी आदि कवियों ने भी यदाकदा कविताओं की रचना कर हिन्दी काव्य भण्डार को समृद्ध किया है। बृजेन्द्रशाह, कुमारी उमा जोशी, चन्द्रा जोशी, विपिनचन्द्र जोशी, गोवर्धन भारती, देवकीनन्दन जोशी 'विकल', गंगोत्री गब्र्याल आदि अनेक कवि साहित्यिक वादों एवं तर्क-वितर्कों से दूर कूर्मांचल की पर्वत-घाटिओं से मुसकराती उषा, ढलती सन्ध्या, घुटता कुहरा, रिमझिम बरसात के स्वर से अपने काव्य-स्वर को मिलाकर काव्य-रचना में रत है।

'कोहनूर का हरण' (१९६५ ई०) गोविन्दवल्लभ पंत का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह उपन्यास उनके लोकप्रिय नाटक 'कोहनूर का लुटेरा' पर आधारित है। प्रस्तुत उपन्यास में नादिरशाह के आक्रमण, कत्लेआम, कोहनूर हीरे का हरण आदि घटनाओं का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने आपसी फूट के दुष्परिणामों की ओर संकेत कर राष्ट्रीय एकता एवं देश-प्रेम का संदेश दिया है—"इतिहास अपने को दुहराता है। आज फिर वही स्थिति है। सीमा पर शत्रु हमारी फूट से अपनी शक्ति बढ़ा लेना चाहता है। लेकिन अब हम अपनी भूल को दुहराकर संसार के सामने अपमानित नहीं होंगे। हम सब एक होकर दुश्मनों के तमाम मनसूबे तोड़ देंगे। हम अपनी भूमि, अपने भाइयों और स्वतन्त्रता की रक्षा में सब कुछ निछावर करने को तैयार है। हम एक है।"

(कोहनूर का हरण, पृ० २६५)

'राही और मंजिल' (१९६६ ई०) कुलानन्द भारतीय का प्रथम उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का राही कथानायक महादेव है और मंजिल 'राष्ट्रीय एकता मंदिर' की स्थापना द्वारा देश में एकता स्थापित करना। वस्तुतः लेखक का व्यक्तित्व उसकी कृति में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है और प्रस्तुत कृति में तो लेखक का व्यक्तित्व ही सर्वत्र छाया हुआ दिखाई पड़ता है। उपन्यास के आरम्भ में कथानायक महादेव अपने गांव से दिल्ली आता है। जैसा कि पहाड़ से परदेश आने वाले व्यक्तियों के साथ होता है—ग्राम-ललनाएं रास्ते में स्थान-स्थान पर अपने पति, पुत्र, भाई को सन्देशा देने के लिए खड़ी रहती हैं। लेखक ने इसका सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है। उनके कथोपकथन अत्यन्त स्वाभाविक लगते हैं। लेखक ने जिस प्रकार एक अत्यन्त साधारण स्थिति से इस उच्चतम परिष्ठा पर पहुंचने में अनेक संघर्षों, कठिन परिस्थितियों का सामना कर अपना मार्ग प्रशस्त किया था, ठीक उसी प्रकार महादेव भी अपने कंटकपूर्ण मार्ग पर आगे बढ़ता जाता है। कुल मिलाकर सम्पूर्ण उपन्यास लेखक की अप्रत्यक्ष जीवनी है, जिसमें उन्होंने अपने अनुभव तथा जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति की है। लेखक एक राष्ट्रीय परिवार तथा स्वतन्त्रता-सेनानियों के गढ़ का व्यक्ति है। अतः स्वाभाविक है कि इस उपन्यास में राष्ट्र-भावना, देशप्रेम एवं राष्ट्रनिर्माण की भावना निहित हो।

'शूलपाणि' ने अब तक लगभग पचास कहानियां लिखी हैं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। उनकी कुछ कहानियां हेम तिवारी तथा धनंजय नाम से भी प्रकाशित

हुई हैं। लेकिन अब शूलपाणि नाम से ही लिखते है। अवतार, भगवान के दर्शन, वरदान, धर्म-मर्यादा, कुल-मर्यादा, पतिव्रता, उद्धार, उपदेश, घाटे का व्यापार, सामना, विजय, नई जिन्दगी, लालमन का ब्याह, अकड़, पहला कदम और मेमना इनकी लोकप्रिय कहानियाँ है। इनकी कहानियों में कुतूहल है, सरसता है और प्रत्येक कहानी अपना प्रभाव छोड़ती है। धर्म के नाम पर ढकोसलों, सामाजिक कुरीतियो और राजनीतिक उच्छृंखलताओं के प्रति सचेत करना इनका प्रच्छन्न उद्देश्य है। जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था का स्वर इनका कथ्य है। इन कहानियों में एक से एक रोचक स्थितियां है, एक से एक रोचक चरित्र है। प्रत्येक कहानी सहज और स्वानुभूत है—इनमें न वस्तु की कृत्रिमता है, न भाषा और शैली की। सच्ची कहानी पुरानी होने पर भी सदा नई होती है—यदि उसमें कुतूहल हो और बार-बार पढ़ चुकने पर कहानी के अन्त की ओर उत्सुक करने की क्षमता हो। इस दृष्टि से ये नई कहानिया है। सेक्स का नग्न चित्र न होने पर भी समाज की कुरीतियों एवं विकृतियों का इनमें यथार्थ चित्रण है। राजनीति के क्षेत्र के ढकोसलों का इनमें पर्दाफाश किया गया है। अतः नई कहानी वालों को भी इन्हें अपनाने में संकोच न होगा, परन्तु इनमें से एक भी कथाहीन कहानी नहीं है—जो 'अ-कहानी' का अनिवार्य तत्त्व है। अ-कहानी के पाठकों को भी यहाँ मनोरंजन मिलेगा—भले ही निराशा हाथ लगे। फिर भी 'अ-कहानी' वाले इन्हें अपना सकेंगे—इसमें सन्देह नहीं।

गौरा पन्त 'शिवानी' की प्रथम कहानी 'ज़मीदार की मृत्यु' सन् १९५४ में 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई। इन्होंने कविताएँ भी लिखी है जो 'गौरा पांडे' नाम से प्रकाशित हुई। इनकी प्रथम कविता सन् १९३९ में 'विश्ववाणी,' कलकत्ता में प्रकाशित हुई। शिवानी का हिन्दी कथा-साहित्य में अपना एक निश्चित स्थान है। प्रायः सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी है। 'लाल हवेली' इनकी पन्द्रह कहानियों का प्रथम संग्रह है। 'लाटी', 'बन्द घड़ी', 'शिबी', 'लाल हवेली', 'नथ', 'ठाकुर का बेटा', 'मामा' और 'शायद' इनकी उत्कृष्ट कहानियों में से हैं। शिवानी की कहानियों के अधिकांश पात्र कुमाऊँ के उच्च मध्य-वर्ग के होते हैं। संयोग एवं भाग्य का सहयोग उनके साथ होता है। परन्तु इन संयोग में नाटकीयता नहीं होती। शिवानी कथा-शिल्प एवं भाषा-सौंदर्य की धनी हैं। इनकी भाषा तत्सम-शब्द-प्रधान है जिसमें विचित्र सहज-भाव तथा अभिव्यक्तिपूर्ण की क्षमता है।

'मायापुरी' शिवानी का प्रथम उपन्यास है। यह उपन्यास भी कुमाऊँ के आभिजात्य वर्ग के एक परिवार की कथा है। अतः इसे भी आंचलिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है, यद्यपि उपन्यास का अधिकांश भाग लखनऊ के कोलाहलमग्न वातावरण में ही बीता है। उपन्यास की नायिका शोभा दुर्भाग्य के थपेड़ों को सहती हुई आगे बढ़ती है। ऐसा लगता है कि क्रूर भाग्य उसे जीने नहीं देगा। परन्तु लेखिका ने इन संघर्षों एवं कठिनाइयों का सामना करते हुए कथा-नायिका को इस प्रकार अडिगता से आगे बढ़ाया है कि उसका चरित्र एक आदर्श एवं तपे हुए सोने के समान उज्ज्वल बन गया है। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास के विभिन्न पात्रों के माध्यम से वर्तमान सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं का भी सजीव चित्रण किया है।

'चौदह फेरे' (१९६५ ई०) शिवानी का दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास में 'मायापुरी' की अपेक्षा अधिक आंचलिकता है। उपन्यास की कथा कुर्माचल की ब्राह्मण-

जाति के रीति-रिवाजो पर आधारित है। उपन्यास का सूत्र अल्मोड़ा से आरम्भ होता है और कलकत्ता, नाहन, उटकमंड, दिल्ली भ्रमण करता हुआ अन्त मे अल्मोड़ा मे ही समाप्त होता है। यह उपन्यास आंचलिक क्षेत्र की सीमा को लांघकर एक कदम और आगे बढ़ा है। इसमे उस क्षेत्र की विभिन्न जातियो के रीति-रिवाजो को छोड़कर केवल एक ही जाति के रीति-रिवाजो पर लेखनी केन्द्रित की गई है। कुमाऊँ के कथाकारो मे किसी भी साहित्यकार की लेखनी इतनी सशक्त और सफल नही दिखाई देती, जिसके द्वारा कुमाऊँ के सामाजिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक जीवन का इतना सच्चा चित्र उद्घाटित हुआ हो। निस्सन्देह यह उपन्यास कुमाऊँ की सस्कृति के सन्दर्भ मे वहाँ की पुरानी तथा नई सामाजिक मान्यताओं एव सस्कृति के सक्रमण-काल की एक अनूठी कृति है, जिसमे वहाँ के एक वर्ग विशेष के सांस्कृतिक तथा सामाजिक विचारो का सजीव चित्रण मिलता है।

कर्नल पांडे, शिवदत्त पांडे, ओभा, ताई, ताऊ, अज, नन्दी, धरणीधर, सर्वेश्वर, वसंती आदि पात्र कुमाऊँ के आभिजात्य-वर्ग की पुरानी तथा नई सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं का प्रतिनिधित्व करते है।

शिवानी के विचारों में गहरी पैठ है। वातावरण का जितना सजीव, गत्यात्मक, सयत, शिष्ट चित्रण शिवानी की रचनाओ मे मिलता है उतना कुमाऊँ के अन्य कथाकारों में कम ही दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि आधुनिक नवलेखन की प्रतिछाया इनकी रचनाओ में कम मिलती है, फिर भी उनमें अद्भुत आकर्षण है। सम्भवत यही कारण है कि आज के पाठकों के बीच इनकी रचनाएँ विशेष रूप से चर्चित होती है।

कूर्माचल की पावन भूमि के प्रतिभा-सम्पन्न एवं कथाशिल्प के धनी लेखक शैलेश मटियानी ने अपनी मातृभूमि की लोक-परम्परा, लोक-संस्कृति तथा लोक-गाथाओं को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास अपने लेखक-जीवन के प्रारम्भिक काल से ही किया है और इन्हीं के द्वारा लिखी गई कुमाऊँ के विभिन्न क्षेत्रों की लोक-कथाएँ बारह भागों में प्रकाशित हुई है। कुमाऊँ के कृषक-जीवन की लोक-गाथाओं के आधार पर आपने 'मुखसरोवर के हंस' की रचना की। इससे एक कदम आगे 'बेला हुई अबेर' है। लेखक ने इस छोटी-सी पुस्तक की भूमिका में वहां के लोक-देवताओं की परम्परा, उनकी पूजन-विधि तथा अन्ध-विश्वास आदि का सक्षिप्त परिचय दिया है जो भारत के अन्य क्षेत्रों के पाठकों के लिए पर्याप्त ज्ञानवर्धक सिद्ध हो सकता है।

'बेला हुई अबेर' महाबली हरू की अवतार-गाथा पर आधारित है। जैसा कि भूमिका से स्पष्ट है कूर्माचल में देवता-अवतरण इसी प्रकार से किया जाता है जिसे वहाँ की लोक-भाषा में 'जागेर' (जागरण) कहा जाता है। जागेर गेय-प्रधान कथानक होता है जिसे देवदास अपनी मण्डली के अन्य गायकों के साथ ढोल आदि वाद्यों की ताल के साथ गाते हैं। इस प्रकार के गेय-प्रधान कथानकों अर्थात् जागेरों का स्वर, लय एवं कार्य की गति शनैः-शनैः तेज होती जाती है और चरमसीमा तक निरन्तर बढ़ती ही रहती है। इन अवतार-गाथाओं को हम प्रमुखतया तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) वन्दना : इसमें अन्य देवी-देवताओं की वंदना और इष्टदेव का आह्वान किया जाता है। (२) अवतरण : इष्टदेव की प्रधानता स्थापित करते हुए उसकी जीवनगाथा गायी जाती है और उसके

अवतरण के कारणों पर विशेष जोर दिया जाता है। (३) समापन : इष्टदेव का अवतरण होने पर उसे अवतरित होने के कारणों पर प्रकाश तथा भक्त-जनो के कष्ट-निवारण की प्रार्थना की जाती है।

प्रस्तुत कृति में भी लेखक ने प्रथम तीन परिच्छेदों में विभिन्न देवी-देवताओं की वंदना तथा इष्टदेव हरू का आह्वान किया है। तीसरे और चौथे परिच्छेद में इष्टदेव के जन्म लेने के कारण बताए गए है। पाँचवे परिच्छेद में महाबली हरू का जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा, वीरता, पराक्रम आदि का बखान है। पुस्तक पढ़ने से प्रतीत होता है कि लेखक ने हरू देवता के पराक्रम एवं वीरता का चित्रण करना ही अपना लक्ष्य रखा है, परन्तु बालक हरू और केदारनाथ के युद्ध का वर्णन, जो पुस्तक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आकर्षक स्थल था, उसे लेखक ने कुछ ही घटनाओ के वर्णन करने के पश्चात् समाप्त कर दिया है।

प्रस्तुत कृति नाद-सौंदर्य-प्रधान है। इसे गेय काव्य की श्रेणी में भी रखा जा सकता है। बाजे की ताल एव ध्वनि 'घिना घी घ्यान्-घ्यान् के कुटुकि' के द्वारा व्यक्त की गई है, जब कि जागेरों की कथा और कार्य के साथ वाद्यों की ध्वनि और ताल भी शनैः-शनैः अधिक प्रभावोत्पादक एवं ओजपूर्ण होती है। परन्तु लेखक एक ही प्रकार की ध्वनि को बार-बार दोहराता है। परिणामतः घटनाओं और कार्यों में ओज उत्पन्न नहीं हो सका।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने नई उपमाओं, नए मुहावरों का प्रयोग किया है, यथा—'सौ वर्ष काँस का फूला वृद्ध', नायिका के रूप के लिए 'रिंगाले की छड़ी', 'दूब की जड़ी, पूस की पालक; फाल्गुन की सरसों'; नायिका के रुदन के लिए 'गाव काट देने से कदली खम्भ से पानी का नितरना' आदि नए प्रयोग है। अधिक मारकाट के लिए—'धान जैसे कूटना, भट्ट जैसे चूटना', और हृष्ट-पुष्ट के लिए 'गंगलोड़ जैसा' आदि लोक-प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग किया है। कुमाऊनी शब्दों का भी प्रयोग यत्र-तत्र किया है जैसे 'भक्वे का सोटा', 'ध्वजा छकोरी' आदि। ये शब्द वातावरण-सृजन में सहायक है और भाव एव शैली के अनुरूप है।

प्रस्तुत पुस्तक में आदि से अन्त तक हरू का ही वर्णन है। उसकी ही जीवनगाथा गायी गई है। यदि प्रस्तुत पुस्तक का नाम 'बेला हुई अबेर' के स्थान पर 'महाबली हरू' या 'बाल-देवता हरू' होता तो अधिक सार्थक होता।

लेखक ने कुमाऊँ की आंचलिक पृष्ठभूमि पर 'चिट्ठीरसैन', 'मुखसरोवर के हंस', 'चौथी मुट्ठी, 'एक मूठ' 'सरसों' और शहरी वातावरण पर 'भागे हुए लोग', 'दो बूंद जल', 'कोई अजनबी नहीं', 'मंजिल दर मंजिल', 'वसुन्धरा' और 'जयमाला' उपन्यास लिखे हैं। 'मेरी तेंतीस कहानियाँ', 'दूसरों के लिए', 'दो दुःखों का एक सुख' इनके कहानी-संग्रह हैं।

वस्तुतः गोविन्दवल्लभ पन्त के बाद शैलेश मटियानी ने ही इतनी बड़ी संख्या में उपन्यास लिखे हैं और वह भी अल्पतम अवधि में। इन्होंने अब तक चौदह उपन्यास लिखे हैं परन्तु इनकी औपन्यासिक कला तथा शिल्प में विकास परिलक्षित नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार एक समान आँचलिक मुहावरों, उपमाओं तथा घटनाओं के घेरे में घिर गया है। 'भागे हुए लोग' तथा 'मुखसरोवर के हंस' इस कड़ी में थोड़ा

पृथक् अस्तित्व लिए हुए है। मटियानीजी आजकल 'विकल्प' साहित्यिक अर्धवार्षिक पत्रिका का सम्पादन कर रहे है। इससे उनके मौलिक लेखन मे अवश्य ही 'विराम' आएगा परन्तु यह 'विराम' उनकी लेखन-प्रक्रिया मे एक नया मोड तथा नवीनता प्रदान करेगा।

'रेत शून्य हवा' (१९६५ ई०) तथा 'एक भीनी गंध' (१९६५ ई०) विनोदचन्द्र पांडे की कथा-कृतियाँ है। प्रस्तुत कृतियो में लेखक ने हमारे बदलते हुए समाज के उच्च तथा मध्यम वर्ग की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्थाओं का चित्रण किया है। पाडेजी मूलतः कवि है इसलिए उनका कवि-हृदय यत्र-तत्र झलकता है। ये दोनों कृतिया प्रारम्भिक होते हुए भी पर्याप्त चर्चित एवं सफल है।

डॉ० देवेश ठाकुर की प्रमुख कृति उनकी पी-एच० डी० उपाधि का शोध-प्रबन्ध 'प्रसाद के नारी पात्र' है। आपके दो छोटे कविता-संग्रह 'मधूरिका' और 'अन्तरछाया' भी प्रकाशित हुए है। एक उपन्यास 'मानसी के कगार' 'भारती' मे धारावाहिक छप चुका है।

मनोहरश्याम जोशी अपने प्रखर व्यंग्य और चुटीली भाषा के कारण बहुचर्चित है। यद्यपि ये विज्ञान के छात्र रहे है, इन्होने प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालय तक की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से प्राप्त की और अपने छात्र-जीवन में कभी भी हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में नही पढ़ा; फिर भी अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अंग्रेजी साहित्य की पृष्ठभूमि तथा कुमाऊँ के धर्मनिष्ठ कुलीन एवं पांडित्य परम्परा के ब्राह्मण परिवार के जन्मजात संस्कारो से इन्होंने जो कुछ भी तथा जिस विधा में भी लिखा—वह साहित्यिकों की चर्चा का विषय बना तथा वे उस विधा में अपना एक निश्चित स्थान अल्प समय में ही बना सके।

जोशी जी की प्रथम कहानी 'धुआं' 'सरगम' पत्रिका में 'गीत जो बंद हो गए' शीर्षक से सन् १९५१ में प्रकाशित हुई। इसके बाद इनकी कई कहानियां 'रानी', 'नवजीवन', 'प्रतीक', 'उत्तरा', 'हंस', 'निकष', 'कल्पना', 'नई कहानियां' और 'सारिका' में प्रकाशित हुई। 'तीन तस्वीरें', 'ढाई मन टिड्डियां', 'हो लिया', 'मेडिला मैरून', 'जिन्दगी के चौराहे पर', 'गणेश जी', 'उसका बिस्तर', 'शक्करपारे', 'एक दुर्लभ व्यक्तित्व', 'धरती, बीज और फल' इनकी विशेष चर्चित तथा प्रतिनिधि कहानियां है। कुछ समय तक जोशी जी फिल्म-प्रभाग में भी रहे। पिछले कुछ वर्षों से 'दिनमान' के सम्पादकीय विभाग में हैं।

जोशी जी ने इण्टरव्यू भी लिखे हैं और कहानियों के समान इन्होंने इस विधा में भी अल्पतम अवधि में अपना एक निश्चित स्थान बना लिया है। 'सारिका' और 'धर्मयुग' में इनके कुछ इण्टरव्यू तथा शब्दचित्र प्रकाशित हुए हैं। 'सारिका' के जून, जुलाई और अगस्त १९६७ के अंकों में प्रकाशित इण्टरव्यू हिन्दी-जगत् में पर्याप्त चर्चा के विषय रहे हैं—सम्भवतः प्रखर व्यंग्य, अद्भुत शिल्प, पैनी दृष्टि एवं आकर्षक भाषा के कारण; और यही एक सफल इण्टरव्यू की विशेषता होती है। जोशी जी के एक अप्रकाशित उपन्यास 'किस्सा पौने चार यार का' के कुछ प्रकाशित अंश भी 'विग्रह' में दिखाई दिये।

जोशी जी पैनी दृष्टि, गहन पैठ और सूझ-बूझ के प्रतिभाशाली कथाकार तथा इण्टरव्यू-लेखक हैं तथा सफल पत्रकार भी। इनकी भाषा में अद्भुत आकर्षण और सहज भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता होती है और यही इनकी सफलता का कारण है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे प्रतिभाशाली तथा सूझ-बूझ के लेखक ने कभी भी अपने लेखन-कार्य को गम्भीरता से

नहीं लिया। यही कारण है कि इनकी अनेक अधूरी कहानियां, कई अधूरे इण्टरव्यू तथा शब्दचित्र एवं उपन्यास मुक्ति के लिए कराह रहे है। यदि जोशी जी अपने लेखन कार्य के प्रति तनिक भी गम्भीर रहते तो नि.सन्देह ही आधुनिक (नये भावबोध) साहित्यिको मे इनका स्थान शीर्षस्थ होता। फिर भी चाहे किसी भी विधा मे लिखे, इनसे काफी सम्भावनाओं की आशा की जा सकती है।

'कोसी का घटवार' के बाद शेखर जोशी की लेखन-गति में कुछ शिथिलता आयी। यद्यपि उनका नाम 'नई कहानी' के कहानीकारो की टीम के साथ सदैव जुड़ा रहा किन्तु सृजन के क्षेत्र मे वे अधिक क्रियाशील न रहे। 'माया', 'नई कहानिया' तथा 'सारिका' मे इनकी रचनाए इन दो-तीन वर्षो मे प्रकाशित हुई है। नई पीढी के जिन नवोदित कथाकारो से कुछ आशाए थी, शेखर उनमे से एक है।

'बुरूंश फूलते तो है' (१९६५ ई०) हिमांशु जोशी का प्रथम उपन्यास है। यह उपन्यास काली कुमाऊ (अल्मोड़ा) की आचलिक पृष्टभूमि पर लिखा गया है। भाषा एव शैली की दृष्टि से ही यह उपन्यास आंचलिक नही है बल्कि इसमे हर पहलू से वहा के जन-जीवन को सजीवता से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। परिणामत. आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, हर पहलू से उपेक्षित इस क्षेत्र की कुछ निरीह समस्याएं उभर कर आयी है।

'पर के लिए स्वयं का विसर्जन' इस उपन्यास की मूल कथावस्तु है। दीन-हीन, सदियों से सताए हुए, शोषित, प्राचीन रूढ़ियों एवं संस्कारो से जकड़े हुए, अबोध ग्रामीण किसी न किसी प्रकार जी रहे है अर्थात् जिन्दा रहने का प्रयास करते है। शासन-तंत्र की दुर्व्यवस्था, जो शोषितों को शोषण से मुक्त होने को नही, बल्कि और अधिक शोषण के लिए बाध्य करती है; पटवारी-पेशकारों के अत्याचार, अकाल, महामारी, अज्ञान, अंधविश्वास, अर्था-भाव, कितने ही चक्रव्यूह जीने के लिए उन्हें भेदने पड़ते है। मनुष्य के सुख-दुःख की एक लम्बी कहानी—मानिक, कावेरी, बूढ़ा माधो, माया जिसके जीवित साक्षी है।

लेखक की प्रथम कृति होने के कारण यद्यपि इस उपन्यास मे अधिक प्रौढ़ता नही आ सकी, फिर भी यह उन उपन्यासों से भिन्न है जो इन्हीं पर्वतीय अँचलों को आधार बनाकर लिखे जा रहे हैं।

'अन्ततः' (१९६५ ई०) हिमांशु जोशी का प्रथम कहानी-संग्रह है। इसमें लेखक की गत सात-आठ वर्षों में लिखी गई कहानियों में से कुछ प्रतिनिधि कहानियां संगृहीत है। एक-दो आँचलिक कहानियों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियां है। आंचलिक कहानियों के बाद लेखक की कहानियों में कहीं-कहीं विविधता दिखाई देती है। 'अन्ततः' से 'किसी एक शहर में' तक ऐसी बहुत कहानिया है, जो हर दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं। कहानी का फार्म तोड़कर उससे अलग होने की प्रक्रिया लेखक की कोशिश रही है। 'किसी एक शहर में', स्वभाव' आदि कहानियां इस ओर इंगित करती हैं।

'अन्ततः' कहानी-संग्रह के बाद अर्थात् १९६५ ई० के बाद उपर्युक्त परिवर्तन और अधिक गहनता से परिलक्षित हुआ है। आज की कहानी से आगे आने वाली कहानी के फार्म का आधार कहीं-कहीं मिल सकता है। 'कहानी नहीं' (ज्ञानोदय), 'तीसरे क्षितिज तक' (कथाकोण) ये ऐसी कहानियाँ हैं, जिन्हें अब तक की मान्यताओं वाली कहानियों से हर

अर्थ में पृथक् रखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक का उद्देश्य कहानी के रूप में कहानी कहना ही नहीं अपितु एक अधिक सचित्र और सबल कहानी को प्रस्तुत करना भी है। टूटे हुए फार्म की कहानियों को शायद अभी लोग कहानियों की श्रेणी में न ले सकें क्योंकि अभी तक लोगों के देखने और सोचने के पुराने ढंग में अधिक अन्तर नहीं आया है। कहानी से अ-कहानी की ओर जाने वाली यह यात्रा किसी और दूसरे रूप में सामने आती है—'लिखे हुए शब्द', 'प्रति अर्थ', 'अक्षांश', 'एक समुद्र भी' आदि इसी कोटि की कहानियां हैं। कितने विविध तथा प्रभावशाली ढंग से आज के मानव की स्थिति को प्रस्तुत किया जा सकता है, इसके लिए लेखक ने कई प्रयोग किये हैं। 'लिखे हुए शब्द' में पांच भिन्न-भिन्न घटनाएँ हैं जिनका एक-दूसरे से सीधा संबंध नहीं है। किंतु कहानी पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि ये पाँच पंखुड़ियां एक ही पुष्प की थीं। 'अक्षांश' में घटनाएं कुछ दूसरे रूप में उपस्थित होती हैं। बहुत से तर्क अविश्वसनीय लगते हैं किंतु एक गहन विश्वास अंत में छोड़ जाते हैं। 'आज के टूटते हुए व्यक्ति' का एक चित्र, जो बहुत-सी घटनाओं और दुर्घटनाओं के बाद जीवित रहता है, फैंटेसी के ढंग से ही एक यथार्थ को कितने प्रखर रूप से रखा जा सकता है इसका उदाहरण यह कहानी है। 'प्रति अर्थ' में भी घटनाओं का क्रम (जिसके हम अभी तक अभ्यस्त हैं) कुछ अलग ढंग से आता है।

किस तरह से अपनी बात कम शब्दों में अधिक से अधिक प्रभावशाली ढंग से रखी जाए कि वह पाठक को प्रभावित कर दे—इधर की कहानियों में एक और सिलसिला दिखाई देता है कि एक वाक्य का दूसरे वाक्य से सीधा सम्बन्ध नहीं। एक पैरे का दूसरे पैरा से तथा दूसरे का तीसरे से कोई सम्बन्ध नहीं अर्थात् कहानी नाम की वस्तु, क्रम नाम की चीज कहीं भी न हो, फिर भी वह कहानी हो तथा उसमें एक अप्रत्यक्ष क्रम हो। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक का झुकाव इस ओर अधिक है। इस ढंग की कहानियां यद्यपि हिन्दी में कम लिखी गई हैं किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि आने वाला समय इस ढंग की कहानियों का नहीं होगा क्योंकि घिसे-पिटे क्रम और पद्धति से पाठक स्वयं भी उभरना चाहता है।

इस तरह की कहानियों में एक खतरा भी रहता है यदि गहन पैठ न हो, कथन-शैली अधिक प्रभावशाली न हो तो कहानी के सपाट और निरर्थक हो जाने की सम्भावना रह सकती है।

कुल मिलाकर इन बदलते हुए संदर्भों की कहानियों के बारे में अधिक नहीं कहा जा सकता। देखना होगा कि आने वाला समय इन्हें किस रूप में ग्रहण करता है और स्वीकार करता है या नहीं।

शीतांशु भारद्वाज पहले श्यामाप्रसाद भारद्वाज 'विरही' नाम से लिखा करते थे। कुमाऊं की लोकगाथा पर आधारित 'मालू शौमयाणा' इनकी पहली कहानी है, जो 'शैलजा' में प्रकाशित हुई। इसके बाद इनकी अब तक अनेक कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ कहानियां आंचलिक पृष्ठभूमि पर और कुछ आधुनिक शहरों अर्थात् लेखक के आसपास के जीवन पर आधारित हैं। 'नागफनी के कांटे', 'कयामत', 'नीली आँखों का धोखा', 'सामन्त-पुत्र', 'रिटायर्ड हवलदार', 'इन्तजार' इनकी प्रमुख कहानियां हैं।

प्रदीप पंत ने सन् १९६० के बाद प्रायः सभी विधाओं—कहानी, कविता, लेख, भेंट-

वार्ता, गोष्ठी-चर्चा आदि—में लिखा है। इन्होंने पर्वतीय जीवन से लेकर बड़े नगरों की नगरी सभ्यता तक पर कहानियां लिखी हैं, जिनमें 'छोटा आदमी', 'छोटी आंखों के बड़े दायरे', 'दुख', 'एक भटकी हुई याद', 'एक विधवा बचुली, एक कुंवारी खिमुली', 'जाते हुए पांव', 'जोड़ा', 'पराजय' आदि प्रमुख एवं चर्चित कहानियां हैं। प्रदीप पंत ने आधुनिक भावबोध को लेकर कुछ सशक्त लेख भी लिखे हैं परन्तु अब मौलिक लेखन से पत्रकारिता की ओर इनका झुकाव अधिक प्रतीत होता है।

गोपालदत्त उपाध्याय ने कुमाऊँ की आंचलिक पृष्ठभूमि तथा शहरी जीवन पर कुछ कहानियाँ लिखी हैं। एक उपन्यास 'मन के मैले' भी आपका प्रकाशित हुआ है। इसमें आपने कुमाऊँ की कतिपय निरीह समस्याओं को उठाने का प्रयत्न किया है परन्तु जिन आदर्शों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन करने का प्रयास किया है तथा कथा के आरम्भ में जिस चरित्र की दृढ़ता व्यक्त की है उपन्यास के अन्त में उन्हीं आदर्शों और दृढ़ता का अपने ही हाथों से गला भी घोंट दिया है। उपन्यास की नायिका कुन्ती विधवा है। उसका पति भारत-पाक-युद्ध में मारा जाता है। कथा-नायिका कुन्ती आरम्भ में अपने देवर को अपने बच्चे और छोटे भाई-सा समझती है और सारे गांव से लोहा लेती है। उसका देवर सुन्दर भी अपनी भाभी को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है परन्तु उपन्यास के अन्त में उनके आदर्श की महानता कांच की प्रतिमा की भांति चकनाचूर हो जाती है, जब दोनों प्रेमी और प्रेमिका के रूप में आलिंगनबद्ध होते हैं। सरकारी तथा सार्वजनिक संस्थानों के कार्यकलापों का चित्रण भी पाठकों को इस उपन्यास मे मिलेगा। परन्तु वह सब साहित्यिक स्तर पर न होकर पत्रकारिता के ढंग से वर्णित है। परिणामस्वरूप औपन्यासिक कला के दृष्टिकोण से उपन्यास निम्नस्तर का रह जाता है। भाषा तथा वातावरण सृजन में लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास को आंचलिकता का रंग देने का प्रयास तो किया है परन्तु आंचलिक शब्दों के अटपटे तथा बलात् प्रयोग एवं इतिवृत्तात्मक चित्रण से आंचलिक वातावरण का सृजन नहीं हो पाया है।

'प्रिंसेस मारिया' (१९६३ ई०) हरीश तिवारी का प्रथम उपन्यास है। उपन्यास की भूमिका में लेखक ने कहा है—"रोटी की समस्या सुलझाने के लिए मनुष्य को प्रयत्न करने पड़ते हैं, संघर्ष करना पड़ता है।" लेखक का यह कथन ध्रुव सत्य है। और उपन्यास की नायिका पहाड़ी क्रिश्चियन बाला मारिया को भी अपने जीवन-यापन के लिए संघर्ष करना पड़ता है जब कि इस संघर्ष से उसे उबारने के लिए तथा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिए रामसिंह, लिजा आदि चरित्रवान एवं निष्ठावान पात्र हैं परन्तु वह अपने नारीत्व की बलि देना ही जीवन-यापन का मार्ग समझती है और नाइट-क्लबों तथा ताड़ी-खाने में अपना सर्वस्व लुटाकर पुनः अपनी पूर्ववत् दरिद्रावस्था में पहाड़ को लौटती है। उपन्यास को पढ़ने से प्रतीत होता है कि लेखक ने अपने युवाकाल की दमित काम-वासना की तृप्ति के लिए अपनी लेखनी का सहारा लिया है तथा पाठकों की सुप्त वासना को भड़काने के लिए ईंधन जुटाने का प्रयास किया है।

हरीश तिवारी ने अनेक कहानियां भी लिखी हैं।

'गगास के तट पर' श्री जगदीश पांडे का प्रथम उपन्यास है। इसमें लेखक ने कुमाऊँ की आंचलिक पृष्ठभूमि पर वहां की समसामयिक समस्याओं का अंकन करने का प्रयास किया है। पांडेजी ने कहानियां भी लिखी हैं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

पानू खोलिया का आविर्भाव कुछ ही समय पहले हुआ था किन्तु इतने अल्प समय में इनकी रचनाएँ बड़ी तेजी से प्रकाशित हुई। शैलेश मटियानी की तरह पानू खोलिया ने भी कुमाऊँ के आंचलिक जीवन को ही अपनी अधिकांश रचनाओं का आधार बनाया है और करीब-करीब उस शिल्प के वे काफ़ी पास है जिसके निर्माण में शैलेश मटियानी का बहुत बड़ा हाथ है। इनकी रचनाओं में यद्यपि अभी अधिक प्रौढ़ता नहीं आ सकी है, फिर भी वे रोचक होती हैं। 'बरगद', 'हस्ती', 'फर्क', 'एक किरती और', 'ज्यादती' इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं। पानू खोलिया का एक उपन्यास 'जो अपने थे' 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में धारावाहिक प्रकाशित हो चुका है। यह उपन्यास भी कुमाऊँ के अंचल पर लिखा गया है। इधर हाल ही में इनका एक कहानी-संग्रह 'एक किरती और' प्रकाशित हुआ है।

श्रीमती लीला कुमार ने अधिक नहीं लिखा। इनकी एक कहानी 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई थी, तदनन्तर कोई रचना दृष्टिगोचर नहीं हुई।

कुमारिल पंत ने कविताएँ और कहानियाँ दोनों ही लिखी है। शहरों के कोलाहल से दूर रहकर कुमारिल अपनी एकान्त-साधना के द्वारा लेखन के क्षेत्र में कोई विशेष योगदान नहीं दे सके। यदि ये अपने लेखन के प्रति तनिक भी सजग रहते तो आज निश्चय ही हिन्दी नवलेखन में इनका अपना विशिष्ट स्थान होता।

कुंकुम जोशी ने थोड़ा ही लिखा है, लेकिन जितना कुछ लिखा है वह बड़ी सम्भावना की ओर इंगित करता है। इनकी प्रथम कहानी 'दूसरा दिन' 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद 'धर्मयुग' में 'जो किसी के लिए नहीं' और 'सूअर' तथा 'विकल्प' में 'औपचारिक' कहानियाँ प्रकाशित हुई। इनकी प्रायः सभी कहानियाँ पर्याप्त चर्चित रही है। कुंकुम जोशी कुमाऊँ की उन नवोदित प्रतिभाओं में से हैं जिनसे आगे बड़ी आशाएं की जा सकती हैं।

लक्ष्मणसिंह बटरोही का साहित्यिक आविर्भाव सन् १९६४ के बाद हुआ। बटरोही ने विद्यार्थी जीवन के साथ-साथ लेखन का कार्य भी अपनाकर आशा से अधिक सफलता प्राप्त की। 'नई कहानियां', 'धर्मयुग', 'ज्ञानोदय', 'सारिका', 'कहानी' आदि में इनकी कहानियां एवं इण्टरव्यू प्रकाशित हुए हैं। जिन पर्वतीय नवलेखकों के भविष्य में आशा बांधी जा सकती है बटरोही भी उनमें हैं।

बलवन्त मनराल के बाद जो दो-तीन नाम इधर उभरे हैं उनमें देवेन मेवाड़ी भी हैं। इनकी कई कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं जिनमें 'सांड' अधिक प्रभावशाली है। इनसे भी भविष्य में बड़ी सम्भावनाएँ हैं।

छात्र-जीवन के साथ देवेन्द्र उपाध्याय की लेखन में भी रुचि है। इन्होंने कविताएं और कहानियाँ लिखी हैं। 'परिभाषा' पत्रिका का सम्पादन भी किया है। अभी व्यक्तित्व निर्माण की स्थिति में है। यदि ये इसी गति से लिखते रहे तो निःसन्देह आशातीत सफलता अर्जित कर सकेंगे।

चलचित्र जगत् के कुछ अनुभवों से परे उतर कर मुरलीमनोहर जोशी ने कुछ कहानियाँ लिखी हैं। इनका अधिक झुकाव इण्टरव्यू एवं पत्रकारिता की ओर है। इनके इण्टरव्यू 'धर्मयुग', 'विग्रह' आदि पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। आजकल पत्रकारिता में विशेष रूप से संलग्न हैं।

मौन मन्थर गति से लिखने वाले कहानीकारों में नित्यानन्द अग्रणीय है। इनकी अधिकांश कहानियों में आधुनिक जन-जीवन का चित्रण मिलता है। इनकी कहानियों में व्यंग्य का भी पुट रहता है। कुछ कहानियों में आधुनिक कहानी का भावबोध और प्रयोग की क्षमता भी परिलक्षित हुए बिना नहीं रहती। 'दो धाराएँ', 'आवरण', 'सपने', 'दीदी', 'इनिड का त्यागपत्र', 'कलई', 'खण्डहरों के बीच', 'जाने से पहले' इनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। इनकी कहानियों में प्रौढ़ता है। यदि इनका क्रमिक विकास इसी गति से होता गया तो एक दिन अवश्य ये अपना स्थान बनाने में सफल हो सकेंगे।

गौरी पंत, गिरीश पांडे, जीवन पंत, विनोद पंत, हीरावल्लभ तिवारी भी कुमाऊँ के उदीयमान कथाकार हैं।

रामदत्त पंत ने 'नारद मोह' और 'रामाश्वमेध' नाटकों की रचना की। शूलपाणि तथा जीवन पंत ने कुछ एकांकी लिखे और शैलेश मटियानी के एकांकियों का संग्रह 'खाँसी को फाँसी' प्रकाशित हुआ।

प्रो० मोहनवल्लभ पंत संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। चार-पाँच वर्ष पूर्व उनकी एक पुस्तक 'कारक-दीपिका' प्रकाशित हुई। पाणिनि के सूत्रों पर श्री शारदारंजन रे का अंग्रेजी रूपान्तर इनकी एक प्रसिद्ध कृति है, महाभाष्य के आधार पर इतनी विस्तृत एवं विशद व्याख्या किसी भी भाषा में नहीं है। सरलता और स्पष्टता तो पंत जी की प्रत्येक कृति की विशेषता है। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में एक शोधपूर्ण भूमिका है जिसमें संस्कृत व्याकरण के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा फैलाई हुई भ्रांतियों का निराकरण करने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। 'निकष' और 'विविधा' विद्वतापूर्ण साहित्यिक लेखों के दो संग्रह प्रकाशनाधीन हैं।

सुमित्रानन्दन पंत के लेखों, रेडियो-वार्ताओं तथा व्याख्यानों के तीन संग्रह 'शिल्प और दर्शन', 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' तथा 'कला और संस्कृति' प्रकाशित हुए।

शिवानी ने अपने विद्यार्थी जीवन के संस्मरणों के आधार पर 'गुरुदेव और उनका आश्रम' संस्मरणात्मक पुस्तक लिखी।

हिमांशु जोशी का बाल-उपन्यास 'अग्निसंतान' 'नन्दन' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ तथा शिवानी ने पर्वतीय वनों के पशु-पक्षियों पर 'कुमाऊँ की जंगल-कथाएँ' लिखीं।

कृष्णानन्द जोशी ने बाल-साहित्य की रचना की, जो मुरादाबाद से लगभग सन् १९०४ में प्रकाशित हुआ। भवानीदत्त जोशी ने 'माधुरी' और 'सुधा' पत्रिकाओं में लेख और कहानियाँ लिखीं। इन्होंने एक नाटक 'भारत विजय' भी लिखा। लक्ष्मीदत्त जोशी का अधूरा उपन्यास 'रजनी' उनके सुपुत्र श्री हरिश्चन्द्र जोशी के पास पड़ा है। श्रीमती यशोदादेवी, कौशल्यादेवी, लक्ष्मीदेवी ने 'सुधा', 'माधुरी', 'नारी-दर्पण', 'भारतभगिनी' आदि पत्र-पत्रिकाओं में लिखा। स्वर्गीय मथुरादत्त ने हास्यव्यंग्य-प्रधान कुछ कविता, कहानी, नाटक और लेख लिखे हैं। स्वर्गीय जीवानन्द जोशी ने कई नाटक लिखे जिनमें 'मंगलविजय' अत्यन्त लोकप्रिय है।

तारादत्त पांडे ने कूर्माचल के ऐतिहासिक पुरुषों, ऐतिहासिक तथा धार्मिक स्थानों का एक जीवनकोश; कुमाऊँनी बोली की लोकोक्तियों एवं मुहावरों का 'लोकोक्ति-मुहावरे'

कोश', 'कुमाऊँनी व्युत्पत्ति कोश', 'उर्दू-हिन्दी कोश' तैयार किए हैं। आपने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का कुमाऊँनी बोली में छन्दबद्ध अनुवाद भी किया है।

श्री जीवनचन्द्र जोशी ने सुंग राजा पुष्यमित्र पर आधारित एक उपन्यास 'पुनरुत्थान', लगभग सौ कहानियाँ तथा 'स्वैरिणी', 'प्रदर्शिका' नाटक लिखे हैं।

चन्द्रादत्त जोशी ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर 'भारत भाग्योदय' महाकाव्य की रचना की। भोलादत्त भोला ने 'पद्य पनसोई', 'गीतालद्रुप', 'बटुक भैरव' काव्य-कृतियों की रचना की। धर्मानन्द पंत (श्रीधनपंत) ने स्वतन्त्रता की विभूतियाँ (कविता-संग्रह), दमयन्ती काव्य, करुणा, कर्णजन्म (खण्डकाव्य) काव्य-कृतियों की रचना की तथा नैथेनियल फील्ड के अंग्रेज़ी नाटक का अनुवाद 'कुमारी बेल' शीर्षक से किया। इन्होंने एक उपन्यास 'सुहाग सिन्दूर' भी लिखा है। विपिनचन्द्र जोशी ने कुछ कविताएँ, कहानियाँ और लेख लिखे है। इन्होंने 'अरुणोदय' तथा 'शिल्पी' हस्तलिखित पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया, जो तीन-चार अंक बाद बंद हो गयीं।

बृजेन्द्रशाह ने समसामयिक सामाजिक समस्याओं पर कहानियों, नाटकों एवं कविताओं की रचना की।

इसी प्रकार मालूम नहीं कुमाऊँ की कितनी प्रतिभाओं का साहित्य प्रकाश के अभाव में विलीन हो रहा है, अनुमान कठिन है।

(ख) चर्चित तथा सहायक पुस्तकें

लेखक	पुस्तक
अमृतराय :	नई समीक्षा
(डॉ०) अम्बादत्त पन्त :	अपभ्रंश काव्य-परम्परा और विद्यापति
(डॉ०) अष्टभुजाप्रसाद पाण्डेय :	हिन्दी में गद्य-काव्य का विकास
(डॉ०) इन्द्रनाथ मदान :	प्रेमचन्द : एक विवेचन
	हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष
इलाचन्द्र जोशी :	ऐतिहासिक कहानियाँ
	खण्डहर की आत्माएँ
	डायरी के नीरस पृष्ठ
	महापुरुषों की प्रेम-कथाएँ
	रोमांटिक छाया
	धूमलता
	होली और दीवाली
	आहुति
	जहाज का पंछी
	जिप्सी
	निर्वासित
	पर्दे की रानी
	प्रेत और छाया
	मुक्तिपथ
	लज्जा
	संन्यासी
	सुबह के भूले
	विजनवती
	देखा-परखा
	विवेचना
	विश्लेषण
	साहित्य-चिन्तन
	साहित्य-सर्जना
	गोर्की के संस्मरण
	चेखव की कहानियाँ

मोपासा की कहानियां
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर
शरत्चन्द्र : व्यक्ति और कलाकार

कांति त्रिपाठी : उपमा
जीवन-दीप

(डॉ०) किरणकुमारी गुप्त : हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण

कुलानन्द भारतीय : राही और मंजिल

(डॉ०) केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा
आधुनिक काव्यधारा के सांस्कृतिक स्रोत

(डॉ०) गुलाबराय : काव्य के रूप
सिद्धान्त और अध्ययन

गोपालदत्त उपाध्याय : मन के मेले

गोविन्दचन्द्र पांडे : अग्निबीज

गोविन्दवल्लभ पन्त : क्षण और लक्षण
अनुरागिनी
अमिताभ
एक सूत्र
कागज की नाव
चक्रकान्त
जल-समाधि
जूनिया
तारिका
तारों के सपने
नूरजहां
नौजवान
प्रगति की राह
पर्णा
प्रतिमा
फॉरगेट-मी-नॉट
मदारी
मुक्ति के बंधन
मैत्रेय
यामिनी
एकादशी
संध्या-प्रदीप
अन्तःपुर का छिद्र
अंगूर की बेटी
कंजूस की खोपड़ी
ययाति

राजमुकुट
वरमाला
सुजाता
कोहनूर का हरण
सुहाग बिन्दी
विषकन्या

गौरा पंत 'शिवानी' : चौदह फेरे
मायापुरी
लाल हवेली
गुरुदेव और उनका आश्रम

गंगादत्त उप्रेती : फारस के महाराज की रानी इस्तार का इतिहास
अल्मोड़ा का भूगोल

गंगाप्रसाद पाण्डेय : छायावाद और रहस्यवाद

चन्द्रादत्त जोशी : राजनेता
नौ महीने का बादशाह

(डॉ०) चन्द्रावती सिंह : हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास

(डॉ०) जगदीशचन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक

(डॉ०) जगदीशनारायण त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी-काव्य में अलंकार-विधान

(डॉ०) जगन्नाथप्रसाद शर्मा : कहानी का रचना-विधान
प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन

(डॉ०) जयनाथ नलिन : हिन्दी नाटककार

जयशंकर प्रसाद : काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध

जीवनप्रकाश जोशी : कलाकार
विवाह की मंजिलें
आग और आकर्षण
दिल और दर्पण
धरती, आकाश और मनुष्य
माला
हृदयावेश
जायसी और उनका पद्मावत
निबन्ध-नवनीत
हिन्दी गद्य के सोपान
हिन्दी-साहित्य मंजूषा

तारकनाथ बाली : सुमित्रानन्दन पन्त

तारा पांडे : अन्तरंगिनी
आभा
काकली
गोधूलि
रेखाएँ

	विपंची
	वेणुकी
	शुक पिक
	सीकर
	उत्सर्ग
(डॉ०) दशरथ ओझा :	हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास
दीनानाथ शरण :	हिन्दी काव्य में छायावाद
(डॉ०) देवराज उपाध्याय :	आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान
	छायावाद का पतन
	साहित्य और संस्कृति
डॉ० देवेश ठाकुर :	प्रसाद के नारी-पात्र
	मयूरिका
	अन्तरछाया
(डॉ०) नगेन्द्र :	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ
	विचार और अनुभूति
	विचार और विवेचन
	विचार और विश्लेषण
	सुमित्रानन्दन पन्त
नन्ददुलारे वाजपेयी :	आधुनिक हिन्दी साहित्य
	बीसवीं शती का इतिहास
(डॉ०) नामवरसिंह :	छायावाद
निराला :	पन्त और पल्लव
(डॉ०) पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' :	हिन्दी गद्य काव्य
पानू खोलिया :	एक किरली और
(डॉ०) प्रतापनारायण टण्डन :	हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास
प्रेमचन्द :	साहित्य का उद्देश्य
(डॉ०) प्रेमनारायण शुक्ल :	हिन्दी साहित्य में विविधवाद
प्रेम भटनागर :	इलाचन्द्र जोशी : साहित्य और समीक्षा
फणीश्वरनाथ रेणु :	मैला आँचल
बद्रीदत्त पाण्डेय :	कुमाऊँ का इतिहास
(डॉ०) ब्रह्मदत्त शर्मा :	हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन
बलदेव कृष्ण :	संन्यासी : एक विवेचन
(डॉ०) बलभद्र तिवारी :	इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास
भोलादत्त जोशी :	मन्दिर की चाबी
(डॉ०) महेन्द्र भटनागर :	आधुनिक साहित्य और कला
प्रो० मोहनवल्लभ पंत :	अन्योक्ति-कल्पद्रुम
	आलोचनाशास्त्र
	तुलसी का अलंकार-विधान
	नहुष का स्वाध्याय

भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच
रस-विमर्श
सूर पंचरत्न
कड़ुवी शक्कर
साहित्य-स्रष्टा
सदाचार-सोपान
भारत के निर्माता
कारक-दीपिका

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' : अग्नि का आविष्कार
चक्षुदान
दोपहर को अंधेरा
शैलवधू
अस्थिपंजर
भेड़ और मनुष्य
शैलगाथा

यशदेव शल्य : पन्त का काव्य और युग
रघुवीरसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी
(डॉ०) रणवीर रांग्रा : हिन्दी-उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास
(डॉ०) रवीन्द्रसहाय वर्मा : हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव
(आ०) रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि
हिन्दी साहित्य का इतिहास
(डॉ०) रामचरण महेन्द्र : हिन्दी एकांकी का उद्भव और विकास
रामरतन भटनागर : सुमित्रानन्दन पन्त
राहुल सांकृत्यायन : कुमाऊँ
लक्ष्मीदत्त जोशी : जवा-कुसुम
(डॉ०) लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास
वासुदेवनन्दन : पन्त की काव्य-चेतना में 'गुंजन'
विनोदचन्द्र पांडे : वसंत और पतझर
सफेद चिड़ियाँ
रेत शून्य हवा
लाल फूलों की टहनी
कृष्णपक्ष
एक भीनी गन्ध
स्वयंवर

(डॉ०) विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : पन्त का नूतन काव्य और दर्शन
विश्वम्भर मानव : सुमित्रानन्दन पंत
साहित्य-दर्शन
शचीरानी गुर्टू : सुमित्रानन्दन पन्त : काव्य-कला और जीवन-दर्शन
(डॉ०) शम्भूनाथ पाण्डेय : आधुनिक हिन्दी काव्य में निरालावाद

शम्भूप्रसाद शाह :	मेरा बाप : मेरा दुश्मन
श्यामसुन्दर दास :	साहित्यालोचन
शांति जोशी :	माटी की गंध
शान्तिप्रिय द्विवेदी :	कवि और काव्य
	ज्योति विहग
शिवनारायण श्रीवास्तव :	हिन्दी उपन्यास
शेखर जोशी :	कोसी का घटवार
(डॉ०) शैलेशकुमारी माथुर :	आधुनिक हिन्दी-काव्य में नारी-भावना
शैलेश मटियानी :	कबूतरखाना
	चौथी मुट्ठी
	मुखसरोवर के हंस
	चिट्ठीरसैन
	मंजिल दर मंजिल
	वसुन्धरा
	भागे हुए लोग
	जयमाला
	दो दुःखों का एक सुख
	दूसरों के लिए
	बेला हुई अबेर
	खाँसी की फाँसी
	एक मूठ सरसों
	कोई अजनबी नहीं
	बोरीवली से बोरीबन्दर तक
	किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई
	हौलदार
	मेरी तैंतीस कहानियाँ
श्रीकृष्ण : मनमोहन सरल	प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ
	प्रतिनिधि हास्य एकांकी
शोभाचन्द्र जोशी :	एकलव्य
	बुद्धिहीन
	सप्तर्षिलोक
	शतरंज का खेल
सुमित्रानन्दन पन्त :	अतिमा
	अभिषेकिता
	उत्तरा
	कला और बूढ़ा चाँद
	गद्यपथ
	ग्रन्थि

ग्राम्या
गुंजन
पल्लव
युगपथ
युगवाणी
युगान्त
पल्लविनी
हरी बाँसुरी सुनहरी टेर
लोकायतन
किरण-वीणा
पुरुषोत्तम राम
रजत शिखर
वाणी
वीणा
ज्योत्स्ना
शिल्पी
स्वर्ण-किरण
स्वर्ण-धूलि
सौवर्ण
मधुज्वाल
साठ वर्ष एक रेखांकन
शिल्प और दर्शन
आधुनिक कवि—भाग २
हार
पाँच कहानियाँ
छायावाद पुनर्मूल्यांकन
शिल्प और दर्शन
कला और संस्कृति

सेठ देवेन्द्रनाथ शर्मा : छायावाद और प्रगतिवाद

सोमनाथ गुप्त : हिन्दी नाटक-साहित्य का इतिहास

हरीश तिवारी : प्रिंसेस मारिया

हरिकृष्ण त्रिवेदी : सुभाषचन्द्र बोस
महाप्रस्थान के पथ पर

हिमांशु जोशी : नई पौध : नई सूझ
तीन सितारे
नीलम : हंसों का देश
बुरांश फूलते तो हैं
अन्ततः

(डॉ०) हेमचन्द्र जोशी : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण
भारत का इतिहास
भाषा-विज्ञान पर भाषण
यूरोप : जैसा मैंने देखा
विक्रम
स्वाधीनता के सिद्धान्त
(डॉ०) त्रिलोचन पांडे गुप्त की काव्य-कला
साकेत-दर्शन

अंग्रेज़ी पुस्तकें :

दी मदर : श्री अरविन्द
लाइफ़ डिवाइन (जिल्द १ और २) : श्री अरविंद
फिलासफी ऑफ़ श्री अरविन्द : एस० के० मित्रा
पिलग्रिम्स वांडरिंग इन हिमालया—श्री० बैरन
अल्मोड़ा गजेटियर—१९०४
अल्मोड़ा गजेटियर—१९११
अटकिंसन गजेटियर (जिल्द १२—भाग २)
नैनीताल गजेटियर—१९०४
होली हिमालय—ई० एम० ओकले
हिस्टॉरिकल एण्ड पॉलिटिकल नोट्स ऑन कुमाऊँ—डी० डी० तिवारी
हिमालयन ट्रैवेल्स—जोधसिंह नेगी
सेन्सस ऑफ इंडिया—१९६१